



# नयी कविता का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी०  
उपाधि हेतु प्रस्तुत  
शोध-प्रबन्ध  
1989

निर्देशक :

डा० अजबसिंह

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

रीडर, हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

शोधकर्ता :

रेखा वर्मा

एम० ए० (स्वर्ण पदक प्राप्त) एम० फिल०

हिन्दी विभाग, सीनियर रिसर्च फेलो

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।



T3729





Dr. Ajab Singh,  
M.A., Ph.D., D.Litt.  
Reader,

Department of Hindi,  
Aligarh Muslim University,  
ALIGARH.

TO WHOM IT MAY CONCERN

This is to certify that the thesis entitled  
" Nai Kavita Ka Swachhandatavadi Moolayakan " has  
been written by Miss. Rekha Verma under my  
supervision. It is an original research work  
and is suitable for the submission for the award  
of Ph.D. degree in Hindi of Aligarh Muslim University,  
Aligarh.

*Ajab Singh*  
( Dr. Ajab Singh )  
Supervisor

## नयी छविता का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन

### प्रास्ताविक

#### प्रथम अध्याय :

स्वच्छन्दतावाद : स्वयं चिन्तना  
स्वच्छन्दतावाद : सामान्य परिचय  
शास्त्रीयतावाद : रोमांटिक एवं आधुनिक  
स्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में विद्वानों के अभिमत  
पारंगत  
भारतीय

#### द्वितीय अध्याय :

स्वच्छन्दतावाद : मासगत ऐतिहास्य  
तर्जनात्मक वाक्यना  
अनुमति  
व्यक्तिवाद  
मानववाद  
चिह्नोद्घाटन, प्रतीति और नवीनता  
प्रेम  
प्रकृति प्रेम-देश प्रेम  
अतीत प्रेम ॥ विनी कृत मध्ययुगीन ॥  
सौन्दर्य  
संस्कृति-लोक-संस्कृति  
चित्तमय एवं रहस्यानुमति  
अवसाद-विवाद-वेदना भाव

### तृतीय अध्याय :

स्वच्छन्दतावाद : विान्वगत विशिष्ट  
भाषा  
चिह्न  
प्रतीक  
मिथ्य  
प्रगीतात्मकता

### चतुर्थ अध्याय :

स्वच्छन्दतावाद का नवोन्मेष : नवस्वच्छन्दतावाद  
नवस्वच्छन्दतावाद की चिंतन रेखाएं  
व्यथार्थवाद का स्वच्छन्दतावादी संदर्भ

### पंचम अध्याय :

नयी कविता का स्वयं चिह्न ✓  
प्रयोगवाद : नई कविता  
नयेन और नयी कविता  
प्रयोगवाद, नयेन और नयी कविता : साम्य के तत्त्व

### षष्ठ अध्याय :

नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ  
आधुनिकता बोध  
मनोविश्लेषवाद  
व्यथार्थवाद  
सामाजिक चेतना ✓  
नवमानववाद

अस्तित्ववाद

मरुतस्यवाद

कलापः

सप्तम अडयाय :

नयी कविता की मावगत स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिषां

सर्जनात्मक कल्पना

अनुमृति

५ व्यक्तित्ववाद ✓

मानववाद

५ पिद्रोह, क्रांति और नवीनता

प्रेम

प्रकृति प्रेम-देवा प्रेम

तीन्द्र्य

संस्कृति - लोक संस्कृति

चित्मय सर्व रहस्यानुमृति

५ अवताद-विवाद-वेदना भाष ३२७

अष्टम अडयाय :

नयी कविता की निरालयता स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिषां

भाषा

विषय ✓

प्रतीक

विषय

प्रगीतात्मकता

-

उपसंहार

-

संदर्भ ग्रंथ

## प्रावचन

स्वच्छन्दतावादी काव्यपारा काव्य का केवल एक प्रकार ही नहीं, बल्कि काव्य का एक तत्त्व भी है। मानवीय प्रकृति तथा जीवन से सम्बन्ध होने के कारण स्वच्छन्दतावाद एक शाश्वत प्रवृत्ति है जो किसी भी ज्ञान या ज्ञेय के साहित्य में अभिव्यक्त होती है। स्वच्छन्दतावाद जीवन की यथार्थता, स्वभाविकता एवं सत्यता तो है ही साथ हठों के त्याग की साधना मूर्ति भी है।

स्वच्छन्दतावादी कवि जब लोक चेतना से जुड़कर समाजवादी यथार्थ प्रतिक्रिया प्रकट करता है तो वहीं वह नयी कविता से भी जुड़ता है। यस्तुतः स्वच्छन्दतावादी कवि में लोक-चेतना तो होती ही है, जबकि उसकी दृष्टि समाज के चारों ओर जाती है, वह उसका आकलन करने लगता है तो एक क्रांतिकारी चेतना उसमें जागृत होती है। यह मनोवैज्ञानिक भी है। क्रांतिकारी चेतना के फलस्वरूप ही वह समाजवादी यथार्थवाद से सम्पृक्त होता है। एन्हीं मिली-जुली प्रवृत्तियों के फलस्वरूप वह स्वच्छन्दतावादी कवि कहलाने लगता है। ऐसा ही आकलन नयी कविता में परिलक्षित होता है। अतः नयी कविता स्वच्छन्दतावादी चेतना में गुम्फित है।

नयी कविता के तथाकथित प्रमुख हस्ताक्षर हैं, उनकी काव्य-कृतियों में ही मैंने स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को देखा है। अतः प्रमुख है जैसे : 'अजय', मुक्तिबोध, शमशेर चट्टापुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, नागार्जुन, धर्मवीर भारती, केदार नाथ सिंह, केदार नाथ अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, शबुन्त माथुर, दुष्यंत कुमार, हुंजर नारायण, नरेन्द्र मेहता, सर्वेश्वर दयाल तल्लेना, शम्भूनाथ सिंह, 'रवीन्द्र' कुमार'.

इन कवियों के काव्य-संग्रहों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को देखा है।

वस्तुतः इन कवियों के काव्यों में जो समाजवादी यथार्थवादी चिन्ता है, जो सर्वद्वारा वर्ग के प्रति संवेदना है, मजदूर वर्ग के प्रति जो आत्मिक दृष्टि है वह आधुनिक भाव-बोध से त्रिप्त है। सर्वद्वारा वर्ग, मजदूर वर्ग को क्रांति एवं चिह्नोह के स्वरों को उन्होंने पहचाना है। अतः इन भावाभिव्यक्ति में गुम्फित हो अपने उद्गारों को व्यक्त किया है। नयी कविता का कवि मनोविश्लेषणवादी यथार्थवाद से जुड़ा है। नयी कविता में 'स्व' या अस्तित्ववादी विचारधारा का मान्य है। इन कवियों का मत है कि हम किसी वाद युक्त क्रिया में न पड़कर स्वतंत्र रूप से विचारणा करते हैं।

प्रस्तुत शोध के प्रथम अध्याय में, स्वच्छन्दतावाद का स्वल्प - विश्लेषण को कर भारतीय एवं पश्चात्त्य मतों के साथ सामान्य-परिचय के रूप में प्रस्तुत किया।

द्वितीय अध्याय में स्वच्छन्दतावाद का भावबोध के रूप में, सर्वनात्मक कल्पना, अनुभूति, व्यक्तिवाद, मानववाद, चिह्नोह क्रांति और नवीनता, सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति-प्रेम, संस्कृति-लोक संस्कृति, चिन्मय एवं रहस्यानुभूति तथा अवसाद-विषाद-वेदनाभाव को वर्णित किया है।

तृतीय अध्याय में स्वच्छन्दतावाद की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ, भाषा, चित्र, प्रतीक, मिथ्य, प्रगीतात्मकता को विश्लेषित किया है। छायावाद के पश्चात् छायावादोत्तर काल, स्वच्छन्दतावाद की रोमांटिक क्रिया से दूर होने का फल है। इस युग में काल्पनिक विचारधारा को त्याग कर यथार्थ की भाव भूमि को तलाश है। इस यथार्थवादी चेतना से जुड़ने के फलस्वरूप ही मार्क्सवादी-नवमानववादी चेतना जागृत होती है, जो मानव अधिकारों की प्राप्ति हेतु क्रांति लाना चाहता है। यह मानव संघर्ष चिन्तन में बदलाव लाकर समाजवादी



यथार्थवाद के रूप में कविता के धित्व पर परिलक्षित होता है। अतः उस युग में जो भिन्न-भिन्न प्रकार के काव्यान्दोलन उभरे वह स्वच्छन्दतावाद का नवोन्मेष ही है। क्योंकि नवस्वच्छन्दतावादी कवि सर्वद्वारा वर्ग से जुड़कर, आलोचनात्मक यथार्थ और समाजवादी यथार्थवाद पर दृष्टि डालता है। उस प्रकार वह मार्क्स एवं लेनिनवादी विचारधारा से भी स्पष्ट: जुड़ जाता है। इन्हीं बिन्दुओं को मैंने चतुर्थ अध्याय में विस्तारित किया है।

नयी कविता का काव्यान्दोलन, प्रयोगवाद, नकेन के आन्दोलन से जुड़ा हुआ है अथवा भिन्न है या यह आन्दोलन किस प्रकार अपने-आपको उन दोनों आन्दोलनों से साम्य रखे हुए भी अपने आपको अलग रख स्थापित हुआ है, इसी साम्य: धारणा को प्रथम अध्याय में व्याख्यायित किया गया है। नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को छठे अध्याय में विस्तारित किया है।

नयी कविता के कवियों में जो सर्वद्वारा वर्ग की प्रतिधारी धेतना है, जो आत्मिक दृष्टि है, वह सामाजिक, प्रगतिशील धेतना लेकर ही उभरी है। नयी कविता के कवियों ने मनोवेदान्तिक आधार पर एसेआलोचनात्मक यथार्थवाद से मिलाया है। वस्तुतः नयी कविता आधुनिक भाव-बोध की कविता है। और आधुनिक भाव-बोध की धेतना यथार्थपरक ही है। जिसमें कवि सामाजिक धेतना को लेकर चलता है। सामाजिक धेतना के विकास के फलस्वरूप वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होता है। जिससे नवमानववाद का उदय होता है। मानव अपने विवेक एवं महिमा के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में अपने-आपको स्थापित करता है। मध्ययुग में धार्मिक भावना के फलस्वरूप मानव को तुच्छ, और अज्ञात-अच्युत सत्ता के प्रति सम्मान था। किन्तु आधुनिकता के फलस्वरूप या अस्तित्ववादी विचारधारा के उदय होने के कारण आधुनिक युग में मानव को प्रत्येक क्षेत्र में उन्नतिशील होने के कारण उसे

सर्वोपरि माना गया। अतः आधुनिक युग में मानव को सर्वोत्तम है।  
 इस अस्तित्ववादी विचारधारा में 'अथवा' 'स्व' में ही नयी  
 कविता के कवियों में नवरहस्यवाद के विचारों का भी उल्लेख है।  
 इसमें छायावाद के समान अपने प्रत्येक आरोपों को रहस्यवाद की  
 ओर सीधा न जानकर अप्रत्यक्ष रूप से 'स्व' के माध्यम से अथवा  
 उसके स्वाकार-अस्वीकार में घोसा गया है। वस्तुतः यहाँ  
 नवरहस्यवाद में भी मानव का अस्तित्व कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है।  
 समाजवादी यथार्थवाद के युग में जैसा कि मोर्फी ने क्रांतिकारी  
 नवस्वच्छन्दतावाद की चर्चा की है, उसी क्रांति की बात डॉ० नायडर  
 सिंह ने 'अधरे में' कविता में उठायी है। यही प्रवृत्ति नयी कविता  
 में भी परिलक्षित होती है। नयी समीक्षा एक प्रकार से नयी कविता  
 की समीक्षा ही है। जिसमें तनाव विरोधाभास और व्यंग्य की  
 बातें हैं, वहाँ नयी कविता की प्रवृत्ति है। नयी समीक्षारतों ने कहा  
 कि हम किसी भी व्यक्तिपरक आलोचना को नहीं मानेंगे, बल्कि कृति  
 के माध्यम से जो चेतना उमरेगी, जो मानसिकता बनेगी, उसी का  
 आधार बनाकर आलोचना करेंगे। नयी समीक्षा में शिष्ट-वच  
 को ही अधिक उभारा गया है। इसमें भाषा के माध्यम से समीक्षा  
 हुई है, कवि के व्यक्तित्व के माध्यम से नहीं। अतः इसमें जो विषय,  
 प्रतीक उमरे हैं, वह नवीनता लिए हुए हैं। जो नयी समीक्षा है  
 वह ही नयी कविता है। वस्तुतः जहाँ विद्रोह, क्रांति और नवीनता  
 की बातें हैं, वहाँ स्वच्छन्दतावादी चेतना होती है। स्वच्छन्दतावादी  
 कवि परम्परा एवं कवियों का परित्याग कर नवीनता लाता है।  
 यह नवीनता सुचनात्मक कल्पना से अभिव्यक्त करता है। अतः नयी  
 कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति इसलिये परिलक्षित होती है कि  
 नयी कविता के कवियों ने जितना अपने विषय में लिखा, उतना  
 अन्य किसी काल या वाद में नहीं लिखा गया। अतः यह  
 स्वच्छन्दतावाद या आधुनिक स्वच्छन्दतावाद जिसे कुछ विद्वानों ने  
 नवस्वच्छन्दतावाद कहा है, इसमें यथार्थवादी चेतना का रंग उभरा

है। मूलतः यह यथार्थवादी चेतना ही है। उन्हीं हिन्दुओं पर प्रस्तुत शोध की नवीनता आधारित है। यहीं पर प्रस्तुत-शोध की मौलिकता परिलक्षित होती है। स्वच्छन्दतावाद के व्यापक स्तर पर 'नयी कविता' स्वच्छन्दतावादी तत्त्वों के अन्वेषण की दृष्टि से यह शोध-ग्रन्थ अपने ज्ञान क्षेत्र में नवीनता एवं मौलिकता लिए हुए है। सप्तम अध्याय में नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को खोजा है। सुखनात्मक कल्पना के आधार पर ही काव्य का सुजन होता है। इसमें कवि की अनुभूति जब प्रवेश करती है तब काव्य सौन्दर्य अधिक बढ़ जाता है। छायावाद में व्यक्तिवाद का उदय होता है, जो नयी कविता में भी परिलक्षित होता है। मानववाद के साथ-साथ नयी कविता का कवि मनुमानव और नवमानव की अभिव्यक्ति भी देता है। समाजवादी यथार्थवादी चेतना से त्रिप्त होने के कारण यहाँ विद्रोह के साथ-साथ क्रांतिकारी स्वर भी उभरा है। क्योंकि आजादी प्राप्त करने से पहले जो कौमल भावनाएँ आजादी प्राप्त करने के बाद बनीं, उन्हें नेताओं ने छिपित कर जाला। छायावाद का कवि देश की स्वतंत्रता के लिए विद्रोह मुक्त था, किन्तु आजादी प्राप्त करने के बाद भी सामाजिक दृष्टि नहीं बदलता तब सर्वद्वारा क्रांतिकारी चेतना जाग्रत हुई, जो नेताओं की लोभुपतावादी प्रवृत्ति को समाप्त करना चाहती है। नयी कविता के कवियों ने सौन्दर्य को कर्मठ, एमर्गोन मजदूर वर्ग के श्रेष्ठ कर्णों में खोजा है। वहीं यह प्रेम से ओत-प्रोत भी होता है। नयी कविता के कवियों ने आराम के क्षण में प्रकृति सौन्दर्य को भी निहार है। छायावादी कवि देश-प्रेम की भावना से प्रभावित हैं, किन्तु नयी कविता का कवि देश-प्रेम के साथ-साथ विश्व प्रेम में आस्था व्यक्त करता है। यह प्रवृत्ति मुख्य रूप से श्री गिरिजा कुमार माथुर में परिलक्षित होती है। इसी क्रम में नयी कविता में संस्कृति - लोक-संस्कृति, अवसाद-विजाद-वेदना भाव एवं विस्मय एवं रहस्यानुभूति भी परिलक्षित होती है।

अष्टम अध्याय में शिल्पगत वैशिष्ट्य को स्पष्ट किया है। भाषा के माध्यम से नयी कविता में नये चिह्न एवं नये प्रतीक, नये विधक, उभरे हैं। छायावाद में नारी-सौन्दर्य, प्रकृति-सौन्दर्य के रूप में चिह्न, एवं प्रतीक उभरे थे, किन्तु नयी कविता में सौन्दर्य की दृष्टि ही यथार्थ परक हो गयी जिससे चिह्न एवं प्रतीक का रूप बदल गया। अतः नयी कविता में चिह्न एवं प्रतीक नये रूप में परिवर्तित होते हैं। प्रगीतात्मकता के संदर्भ में डॉ० रामनाथ सिंह एवं डॉ० रवीन्द्र कुमार के प्रगीतों में स्वच्छन्दतावादी तात्त्व दृष्टि बने हैं।

एत शोध प्रबन्ध को ध्यान पूर्वक परीक्षा करने में अक्षय गुप्तर डॉ० अजय सिंह ने जो अपना अमूल्य समय दिया, उसे मैं अपना तीव्रान्वय समझती हूँ। उनके प्रति आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता ही होगी। मैं गुप्तर धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी सिंह के सहयोग एवं आत्मीयता को चिन्तित नहीं कर सकती, जिन्होंने पारिवारिक उत्तरदायित्वों के कारण भी, मेरे प्रति अपने स्नेह को बराबर बनाये रखा तथा शोध-कार्य को शीघ्र पूरा कराने के लिए डॉ० सिंह से समय-समय पर सिकाशित करती रहीं। विषयविशारद के हिन्दी-विभाग में मौखिक परीक्षा लेने के लिए प्रो० केतरी कुमार के अनीय आग्रह पर उनके दर्शन करने का तीव्रान्वय प्राप्त डॉ० अजय सिंह के निवास स्थान पर हुआ। साक्षात्कार के दौरान प्रो० केतरी कुमार ने 'नकेन' से सम्बन्धित विषय में जानकारी प्राप्त हुई, जिससे नयी कविता और नकेन की एक नई दिशा मिली। उन्होंने जो अमूल्य समय दिया उसके लिए मैं आजीवन आभारी रहूँगी।

जिन मनीषी विद्वानों के ग्रन्थों ने मुझे विशेष रूप से लाभान्वित किया है, उसमें डॉ० नोबल, डॉ० नामवर सिंह, प्रो० केतरी कुमार, डॉ० प्रेमचंद, डॉ० रामेश्वर नाथ छेनवाल, डॉ० तारकनाथ घाली, डॉ० विमल सिंह, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, डॉ० देवराज,

डॉ० शिव कुमार सिंह, डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह, डॉ० निर्मला देव, डॉ० अजय सिंह, डॉ० हनु नाथ मदान। इनके अतिरिक्त भी अपने शोध-ग्रन्थ में जिन विद्वानों की पुस्तकों से कितनी न कितनी रूप में लाभान्वित हुए हैं, उन सबकी हृदय से आभारी हूँ।

हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डॉ० रवीन्द्र 'स्मर' एवं प्रो० नजीर मोहम्मद का आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन भी समय-समय पर मिलता रहा है। प्रो० कुँवरपाल सिंह का स्नेह भी मार्गदर्शन में सहायक रहा है। प्रो० सत्य प्रकाश सिंह & संस्कृत विभाग & ने भी मनोविनयेष्वादा के संदर्भ में मदद दिखा दी। जिसके प्रति नम्र-मस्तक हूँ। इसी संदर्भ में, मैं घोमेन्त कॉलेज की प्रिन्सीपल प्रो० बाकिया आपा की शुक्रगुजार हूँ जो मुझे अपनी स्नेहमयी वाणी से सदैव प्रोत्साहित करती रही हैं। प्रस्तुत शोध-कार्य में मुझे मेरानल लाइब्रेरी, कलकत्ता, पब्लिक लाइब्रेरी, दिल्ली तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से विशेष लाभ मिला है। आर्य भाषा पुस्तकालय नागरी प्रचारिणी सभा काशी की भी हूँ। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के मौलाना आजाद पुस्तकालय के हिन्दी-संस्कृत प्रशाखा के ग्रंथागार से विशेष सहायता मिली है, जिसके लिए मैं उसके संचालक श्री विजयदत्त शर्मा जी एवं श्रीमती विजय गायक की विशेष रूप से आभारी हूँ। श्री राकेश अली का जिन्होंने पुस्तकें ढूँढ़-ढूँढ़कर मुझे दी, उनके प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। स्थानीय मालवीय पुस्तकालय से मिली सहायता के लिए भी आभारी हूँ।

मेरी ममातामयी माँ ने भी हर कार्य में मुझे युक्त रह अध्ययन-अन्वेषण का विशेष समय दिया उनके प्रति भी नम्रमस्तक हूँ। मेरी अग्रजा डॉ० कमला कुमारी एवं अग्रज श्री अशोक कुमार ने इस

गोध कार्य को पूर्ण करने में मेरी बहुत सहायता की है, जो  
अविस्मरणीय है। अन्त में, मैं अपने उन सभी स्वजनों के प्रति  
आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी सहायता मुझे किसी न किसी रूप में  
मिली है।

विनीत  
रेखा वर्मा

5. जनवरी, 1989 ई०

रेखा वर्मा



प्रथम अध्याय :

स्वच्छन्दतावाद : स्वल्प विवेचना  
स्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में विद्वानों के अभिमत

स्वच्छन्दतावाद : सामान्य परिचय

शास्त्रीयतावाद, रोमैन्टिक एवं प्रायुनिक्ता

स्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में विद्वानों के अभिमत

पाश्चात्य

भारतीय

## प्रथम अध्याय

स्वच्छन्दतावाद : स्वल्प विवेचना  
~~~~~

### स्वच्छन्दतावाद : सामान्य परिचय

स्वच्छन्दतावाद मानव-मन की स्वाभाविक चेतना है, जो पुनः-सापेक्ष में उभरती है। प्राणिमय दृष्टि से जो जन्मजात होती है। जिसके प्रत्येक भाषा के साहित्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव कभी न कभी अवश्य होता है क्योंकि वह मानव जीवन के एक विशेष दृष्टिकोण का परिचायक है। मानव जीवन से गहनता के साथ जुटकर होने के कारण कला एवं साहित्य के फल पर चित्रित होना स्वच्छन्दतावाद के लिए अवश्यम्भावी है।

‘सौन्दर्य’ में अद्भुत के मिलन से कविता स्वच्छन्दतावादी भाव-बोध से घेरित होती है। कला-जगत में सौन्दर्यावादी की विद्याशा के संयोग से स्वच्छन्दतावादी चेतना उभरती है।

स्वच्छन्दतावादी कविताओं में विद्याशा और चिन्मय की भावना प्रबल होती है जो अपनी परिणति में रहस्य-भावना के रूप में बदलती रहती है। पन्तुतः स्वच्छन्दतावाद एक चेतना है, उसके मूल में श्रुति एवं अभिन्न सुख की प्रधानता है। इसलिये स्वच्छन्दतावादी चेतना की एक विशेष पहचान इसकी प्रवृत्ति की यौगिकता एवं नवीनता है। स्वच्छन्दतावादी कवि सत्ता तथा नदियों का विरोधी होता है, चाहे वह राजनीतिक,

सामाजिक एवं कलात्मक संपत्ता से विद्रोह भी करता है। उसमें विषयीगत सौन्दर्य को वैयक्तिकता से भिन्न करके कलात्मक एवं मनोवैधानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। उसमें नूतन काल्पनिक विचार होते हैं, जो नूतन शब्दावली, नवीन प्रचार की कलात्मक अभिव्यक्ति का जन्म देते हैं। स्वच्छन्दतावाद जीवन और जगत् की अतिनूतन, अत्याधुनिक एवं विषयीगत अभिव्यक्ति है।''<sup>1</sup>

स्वच्छन्दतावाद की गुञ्जात अंग्रेजी साहित्य से मानी जाती है। जब भारतीय साहित्य अंग्रेजी साहित्य के निकट आया तो उसका स्वाभाविक सम्पर्क 'रोमांटिसिज्म' से बढ़ा। उसके प्रारम्भ में भारतीय रचनाओं में अंग्रेजी चिन्तन का प्रभाव अवश्य आया परन्तु बाद में उसका स्वतंत्र अस्तित्व बन गया। '' स्वच्छन्दतावाद वस्तुतः एक जीवन दर्शन है जिसमें साहित्यिक कलात्मक और सामाजिक लक्ष्मिवाद बहुशास्त्रीयता और समष्टियुक्त वास्तुनिष्ठता के विरुद्ध कल्पना-कैव्य वैयक्तिकता और अभिनव भावोन्मेष के विद्रोह के तत्त्व प्रमुख हैं। उसका जन्म ऐतिहासिक दृष्टि से नव-शास्त्रवाद के तुरन्त पश्चात् उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। अतएव उससे सम्बद्ध प्राचीन आदर्शों और परम्परित जीवन दृष्टि से भिन्न स्वच्छन्दता के मूल आयातों में उच्छ्वासपूर्ण रहस्योन्मुख सौन्दर्यप्रियता, भावात्मक आदर्शवाद, अतिशय संवेदनशीलता असादृशपूर्ण मनःस्थिति, प्रकृति-मोह, अतीत-मोह, अन्तर्मुखी दृष्टि आदि का उन्मेष इसके लिए स्वाभाविक ही था।''<sup>2</sup> वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद एक कलात्मक आन्दोलन है, श्रान्ति है, परम्परा एवं लक्ष्यों के प्रति विद्रोह है तथा जीवन

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 1

2. सं० डॉ० नगेन्द्र : भारतीय साहित्यकोश : पृ० 140

के प्रति एक विशेष प्रकार की स्थान। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद सर्व प्रथम एक विचारधारा है जिसका प्रकाशन साहित्य और कला के विभिन्न क्षेत्रों में क्रमशः होता आया है। कवि इसमें सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूतियों का चित्र कल्पना एवं अनुभूति के आधार पर प्रस्तुत करता है। इसमें कवि क्रांतिकारी विचारधाराओं का समावेश करके स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावनाओं का हृदय की मार्मिक एवं तीव्र अनुभूतियों के साथ गहराई से मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित करता है। इसमें कल्पना गतिशील एवं सूक्ष्म होती है जो कवि में भावावेश की स्थिति ला देती है। इस तरह स्वच्छन्दतावाद आन्तरिक अनुभूतियों का काल्पनिक उच्छलन है। इसमें जीवन एवं जगत् के प्रति एक भावात्मक क्रांतिकारी चेतना की सुन्दर प्रस्तुति मिलती है। वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद केवल कविता की धारा ही नहीं है, प्रत्युत साहित्य संस्कृति और जीवन को देखने की एक दृष्टि भी है।<sup>१</sup>

‘स्वच्छन्दतावाद’ में मानव की आजादी को सर्वोपरि माना है, आध्यात्मिक शक्तियों के बावजूद ईश्वर से अधिक महत्त्व मनुष्य को मिला है। ‘यूरोप में स्वच्छन्दतावाद एक काव्य आन्दोलन मात्र न होकर, एक सम्पूर्ण वैचारिक जीवन-आन्दोलन है, इसलिए उसने अपने को एक उदार मानवीय जीवन-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा। यह मानवीयता आदर्शों-कल्पनाओं पर आधारित है और उसमें कवियों रचनाकारों और अपनी-अपनी दृष्टियाँ भी सक्रिय रही हैं। इसी प्रकार यूरोप के विभिन्न-देशों-जर्मनी, फ्राँस, इंग्लैंड के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलनों की अपनी जातिगत विशेषताएँ हैं।’<sup>२</sup>

डॉ० प्रेमशंकर ने स्वच्छन्दतावाद में अंग्रेजी प्रभाव इस

१. डॉ० अजब सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० १

२. डॉ० प्रेमशंकर : हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य : पृ० २

प्रकार बतलाया है, 'अंग्रेजी रोमानी कविता और हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की बनावट में अन्तर है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कई रोमानी कवियों ने आरम्भ में छायावाद को प्रभावित किया। जब अंग्रेजी राज्य भारत में पुख्ता हो गया, तब एक विजेता के नाते अंग्रेज अपनी सभ्यता, संस्कृति और साहित्य का धीरे-धीरे चतुराई से यहां आयात करने लगे। यह भारतीयमानस में घुसने की एक होशियार कोशिश थी। मैकाले द्वारा अंग्रेजी पढ़ा कर बाबुओं की लम्बी जमात खड़ी करने की तरकीब के बाद अंग्रेजी प्रभाव और बढ़ता दिखायी देता है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से भारत पाश्चात्य विचारणा, विशेषतया अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में आया और क्योंकि अंग्रेज एक विजेता के रूप में यहाँ आये थे, इसलिये अनजाने ही हमने एक मानसिक पराजय का अनुभव किया। हमारे पास पुरानी संस्कृति की धरोहर थी, पर हम उसका ठीक उपयोग नहीं कर पाये। हाँ, एक लाभ यह हुआ कि इस एक पक्षीय व्यापार में देश ने आधुनिकता के आरम्भिक संपर्क प्राप्त किये। एक विजित राष्ट्र होने के कारण पर्याप्त समय तक हमारी यह पराजित मनोवृत्ति बनी रही और हम अपने साहित्य को पाश्चात्य विशेषतया अंग्रेजी साहित्य के समानान्तर देखने के अभ्यस्त होते गये।' वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद अठारहवीं शती के अंत और उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में पश्चिम में प्रादुर्भूत प्रसिद्ध साहित्यिक, कलात्मक एवं दार्शनिकवाद और 'रोमांटिसिज्म' नाम आन्दोलन का हिन्दी पर्याय है। 'रोमांटिसिज्म' का मूल शब्द 'रोमांटिक' पुरानी फ्रेंच भाषा के 'रोमांज' से निष्पन्न है, जिसका प्रयोग उस समय लैटिन से 'इतरदेशी' भाषाओं के घटियापन को उभारने के लिए किया जाता था।—यद्यपि

शास्त्रीय औपचारिकता की जड़बंदी से मुक्त स्वच्छन्दता का भाव उत्तम निष्पत्ति ही विद्यमान था। बाद में कोमलता, कल्पनाशीलता, भावुकता और वायवीयता आदि के लिए फ्रेंच में 'रोमान्टिक' शब्द का प्रयोग होने लगा। अठारहवीं शती के मध्य तक योरोप की प्रायः प्रत्येक भाषा में कुछ परिवर्तन के साथ यह शब्द व्यापक रूप से प्रचलित हो चुका था। साहित्यिक विवेचना के क्षेत्र में आन्ध्रवात्यवाद की विरोधी प्रवृत्ति के रूप में इसका सर्व प्रथम प्रयोग जर्मन साहित्यकार फ्रेडरिक शलेगल ने 1798 ई० में किया। फ्रांस में इसके प्रचार का क्षेत्र मुख्य रूप से मध्य दिक्कत का है। सब साहित्यिक आन्दोलन के रूप में स्वच्छन्दतावाद का प्रमुख केन्द्र इंग्लैण्ड बना।<sup>1</sup> अतः इंग्लैण्ड में स्वच्छन्दतावाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति मुख्यतः वर्तमान शैली, कीदस, वायरन, कालरिज और ब्लेक आदि के द्वारा हुई। वर्तमान में अपने काव्य भाषा विषयक सिद्धान्त और कालरिज ने कल्पना-सिद्धान्त के प्रतिपादन द्वारा साहित्यिक गीर्वाणा के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा की। वाल्टर पेटर और श्लेगल ने स्वच्छन्दतावाद की कला-दृष्टि प्रस्तुत की। फ्रांस में स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तन त्यों ने और व्यापक आन्दोलनात्मक प्रचार मध्य दिक्कत ने किया। विक्टर ह्यूगो के काव्य एवं नाटकों तथा वाल्टर स्कॉट से प्रभावित कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा भी कतिपय स्वच्छन्दतावाद का विकास हुआ। जर्मनी में स्वच्छन्दतावाद सर्वनात्मक साहित्य की ओर विवेचनात्मक साहित्य मुख्यतः दर्शन के क्षेत्र में अधिक मुखर हुआ। विवेचन की दृष्टि से फ्रेडरिक शलेगल और ए० विल्होल्म शलेगल का योगदान प्रमुख है। दर्शन के क्षेत्र में जर्मन स्वच्छन्दतावाद की उपलब्धि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कटि और हीगेल के नाम प्रस्तुत संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। यों नीचे



का चिन्तन भी स्वच्छन्दतावाद से निश्चय ही प्रभावित था। धामसन् परसी, गेटे और शिबर ने सर्वनात्मक साहित्य को समृद्ध किया। उसी और अपने भी इस आन्दोलन से अछूते न रहे।

'शैले' पर 'गाडविन' के दर्शन का प्रभाव अधिक था। अतः उसमें वैयक्तिकता के दर्शन हुए। मानवीय प्रेम, नारी के सौन्दर्य की अलौकिक व्याख्या हमें उसमें मिली। संगीतमय गीतियों का प्रकृति के पीछे रहस्यमय गणित की अनुभूति का, गतानुगतिक समाज की व्यवस्था के प्रति घोर असन्तोष की किरणें हमें उसी में मिलती हैं। व्यक्तिवाद की दृष्टि से एक ओर तो उन कवियों में क्रांति की राज्य क्रांति के प्रातृत्व, समानता, स्वतंत्रता तथा क्लेश-मानवता के तत्त्व ध्वनित हुए तथा दूसरी ओर सौन्दर्योपासना, असन्तोष, रहस्यप्रियता के साथ-साथ कठिनाइयों की टकराहट से उत्पन्न निराशा, विषाद का पुंजापन भी मिलता है।''

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के विकास में औद्योगिक क्रांति की विशेष भूमिका रही है। औद्योगिक क्रांति विश्व की प्रमुख तीन क्रांतियों में महत्वपूर्ण है। इस क्रांति का सुरुवात प्रमुखतः अंग्रेज़ में हुआ, किन्तु उसने समस्त योरोपीय देशों को प्रभावित किया। जिससे पूर्वी देश भी अछूते न रह सके। 1750 ई० के बाद ही इस क्रांति के बीच प्रस्फुटित हुए। इसकी प्रारम्भिक प्रगति 1915 ई० तक दृष्टिगत होती है। तत्पश्चात् वैज्ञानिक अनुसंधानों ने जोर बढ़ा, विज्ञान की सार्वभौमिकता के समय प्राचीन जड़ियाँ छोड़ा देने लगीं। मानव की विशेष परिस्थिति ही विद्रोह तथा क्रांति को बढ़ावा देती है तथा मानव के क्रांतिकारी पक्ष को उभारती है। नवीन यंत्रों के अन्वेषणों एवं निर्माण ने विश्व में विविध रूप में प्रभाव डाला।

1. डॉ० क्लिफ़ोर्ड नाथ उपाध्याय : हिन्दी साहित्य के प्रमुख 'वाद'  
और उनके प्रवर्तक : पृ० 14-15

सामाजिक, पारिवारिक, कला तथा आर्थिक पहलु भी इससे अत्यन्त प्रभावित हुए।

औद्योगिक-क्रांति का मुख्य लक्ष्य जन-सामान्य के जीवन के आर्थिक दृष्टिकोण से सुखद बनाना था, परन्तु आशा के विपरीत ही परिणाम उपस्थित हुए। पूँजीपतियों ने गृह उद्योगों को समाप्त किया। नई-नई मशीनों, यंत्रों का प्रयोग करके मशीन और मजदूरों को संयुक्त किया गया। कारखानों का निर्माण हुआ, अस्तुतः व्यक्तिवाद को बल मिला। कालान्तर में व्यक्तिवाद पूँजीवाद का सहचर बन गया।

इस समय तक साम्राज्यवाद पूर्णतः स्वेच्छाकारी था। जिससे जनता असहनीय पीड़ा को घेन रही थी। जन-समाज का अभिमत मूल्यहीन हो गया। शासकों को एकाने में अमेरिका और फ्रांस के क्रांतिकारियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मानवतावादी सिद्धान्त को लेकर उन्होंने सामाजिक जीवन में उन्नति और आशा की लहर व्याप्त हो गयी। धैर्यात्मक विचारवादी दृष्टिकोण ने धर्म के प्रति मानव की आस्था को कम कर दिया। धर्म का आडम्बर तथा अंध-विश्वास क्रमशः क्षुब्ध होने लगे। मध्य वर्ग के व्यक्तियों को इन आन्दोलनों से अधिक बल मिला। सदा से उपेक्षित रहने के कारण यह वर्ग सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में क्रांति चाहता था। इस बौद्धिक क्रांति ने प्रकृति-विज्ञान को आधुनिक रूप प्रदान किया। स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति की महत्ता का स्थान सर्वोपरि है। वास्तविक प्रकृति के मोह में जादूगरकी भाँति प्रकृति के आकर्षण में बंध गये। स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक दृष्टिकोण में स्वच्छन्द मनुष्य के रूप में मनुष्य का आकलन होने लगा। सरल प्राकृतिक जीवन के प्रति आकर्षण तत्कालीन पद्य तथा गद्य दोनों में अभिव्यक्त हुआ। लसों ने इस दिशा में सबसे पहले कदम उठाया था। उसने मनुष्य के रूप में मनुष्य का आदर करने की शिखा दी तथा मानवीय प्रेम में प्रबल आस्था प्रकट की।

उसने नागरिक सभ्यता की बढ़ती हुई कठिनाइयों के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त किया। यह विचारधारा रूसों के विशाल प्रकृति प्रेम की धोतक थी। फलस्वरूप ब्लेक, बर्न्स, बर्न्सवर्थ तथा कालरिच ने भीने विमुखों अनपढ़ ग्राहीनों एवं ग्राम-बालाओं का चित्रण-प्रस्तुत किया। रेनेसेन्स ने ग्रीको स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के स्वप्न को विश्लेषित करते हुए कहा है कि विस्तृत संदर्भ में यह नव-शास्त्रीयतावाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी, जिसका अर्थ मेटिन की परम्पराओं को अस्वीकृत करना था तथा कविता की एक विचारधारा की स्वीकृति थी जो सवैग की अभिव्यञ्जना एवं सप्रेषणीयता पर केन्द्रित थी।<sup>1</sup>

चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप में जो रेनेसाँ युग आया, वह उदार सांस्कृतिक आन्दोलन था, जो आधुनिक युग की पृष्ठभूमि बना। इस रेनेसाँ युग ने नयी मानव सभ्यता का परिचय कराया, उसे एक नयी दृष्टि से सम्पन्न किया, नहीं तो आधुनिक युग का सूत्रपात ही कठिन था। रेनेसाँ युग के अन्त में जिस मानववाद की स्थापना की, वह पश्चिम में स्वच्छन्दतावाद लाने में पर्याप्त थी, पर इतिहासकार कहते हैं कि अठारहवीं शती के अन्त में जो फ्रांसीसी फ्राँसि हुई वह रोमांटिसिज्म के आन्दोलन में तेजी लाया।

फ्रांसीसी फ्राँसि की पार्श्वगत्य रोमांटिसिज्म का प्रस्थान-बिन्दु स्वीकारा जाता है। सम्भव है इस फ्राँसि के मूल में 1776 ई० की उस अमरीकी फ्राँसि की भी प्रेरणा है, जब अमरीकी जनता ने अपने ही पूर्वजों की जन्मभूमि ब्रिटेन से स्वतन्त्र होने की घोषणा की थी। पर फ्रांसीसी फ्रान्ति, जिसका आरम्भ 1789 ई० में हुआ, वास्तव्य और रूसों के विचारों को लेकर आगे बढ़ी।

---

<sup>1</sup> Hono Collek : History of modern criticism, p.3

वास्तव में धीरे-धीरे सन्त यूरोप में प्रजातन्त्र अध्यात्म लोकात्म की  
 विचारधारा प्रबल हो रही थी और एक पीढ़ीक क्रान्ति जोर पकड़ती  
 जा रही थी। वान्तेयर ने अपनी रचनाओं के द्वारा अन्याय का  
 विरोध किया और इसके लिए उसे अनेक यातनाएँ भी सहनी पड़ीं।  
 उसे सरकार और वर्ग का विरोध करते हुए कहा कि इन दोनों के  
 अधिकारी ही यह निर्णय करते रहे हैं कि समाज के लिए अच्छा-बुरा  
 क्या है, पर इससे मनुष्य के विकास और प्रगति में बाधाएँ पैदा होती  
 हैं। उसकी पुस्तक 'वेल्थ ऑन दि इंग्लिश' की प्रति जब निन्दनीय  
 कहकर भस्म कर डाली गयी तो क्रान्ति में वान्तेयर की रचनाओं की  
 माँग और बढ़ गयी। इसी प्रकार लॉ का स्वयं का जीवन वयपि  
 संदर्भित था, पर राज्य की उत्पत्ति के विषय में सामाजिक अनुबन्ध  
 पर विचार करते हुए उसने अपने सामाजिक परिधेरा के प्रति धीरे  
 असन्तोष व्यक्त किया। उसका विचार था कि अपनी आदिम अवस्था  
 में मनुष्य वर्तमान की अपेक्षा वहीं अधिक सन्तुष्ट रहा होगा, क्योंकि  
 वह शोषणमुक्त था। उसका बहुउद्धृत वाक्य 'मनुष्य स्वतंत्र जन्मा है,  
 किन्तु हर जगह वह बंधीरों में जकड़ा है' लॉ की प्रसिद्ध पुस्तक  
 'दि सोशल कॉन्ट्रैक्ट' के आरम्भ में है, जिसने क्रान्ति में क्रान्ति का  
 पीकारोपण किया। लॉ ने 'स्वतंत्रता, समानता, धन्युत्त्व' का  
 जो नारा लगाया वह क्रान्तिवादी क्रान्ति का प्राप्त वाक्य बन गया।  
 उसने कहा कि समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिए शासन और  
 जनता के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार आधुनिक राज्य  
 की नींव पड़ी। इस प्रकार, शासक और उसके अधिकारी केवल  
 जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं और यदि वे इन तीनों बातों में  
 धर्म की बाधा बसते हैं तो जनता का पूरा अधिकार है कि वह  
 उन्हें उतार दे। यह क्रान्ति, विद्रोह के लिए बुना आह्वान था।  
 लॉ मानव-व्यक्तित्व को स्वतंत्र कराने का स्वप्न देखता है और

क्रांति की क्रांति उसे साकार करने की दिशा में एक प्रयोग है।

इस प्रकार, 1789 ई० की क्रांति की क्रांति, जिसे प्रजातंत्र की जननी कहकर भी सम्बोधित किया जाता है, अपनी पुष्कभूमि में वैचारिक क्रांति की परम्परा लिए हुए है और इसीलिए उसका प्रभाव केवल राजनीतिक न होकर सम्पूर्ण इतिहास, जीवन, संस्कृति, साहित्य और कला आदि पर है।<sup>1</sup>

“ नव्यशास्त्रवाद की लक्ष्मियों से वाच्य-चिन्तन को मुक्त कर उसे एकदम नई दिशाओं में गतिशील करने का हीय स्वच्छन्दतावादी वाच्यचिन्तन को है।<sup>2</sup> ” इंग्लैंड का स्वच्छन्दतावादी चिन्तन उस नई सामाजिक एवं मानसिक क्रांति का प्रतिनिधित्व करता है, जो क्रांति की 1789 ई० की प्रतिष्ठित राज्यक्रांति के पश्चात् क्रांति और तत्पश्चात् इंग्लैंड आदि देशों में सर्वथा नए जीवन मूल्यों को लेकर उदित हुई। उस क्रांति के जनक क्रांति में लसी आदि विचारकों के विचार थे जिन्होंने सामन्तवादी व्यवस्था के विरोध में मनुष्य की स्वतंत्रता का नारा देते हुए क्रांति की नदों, इंग्लैंड तथा यूरोप के अनेक देशों में प्रजातंत्र के नए युग का सूझाव किया, उन समस्त पुरातन जीवन मूल्यों का विरोध किया जो सदियों से मनुष्यता के स्वाभ्युदय के विरुद्ध किए हुए थे। स्वतंत्रता समानता और धन्यत्व के महान उद्देश्यों से प्रेरित उस क्रांति ने न केवल सामाजिक जीवन में परिवर्तन उपस्थित किए, साहित्य और कला मूल्यों को भी प्रभावित किया। फलतः सामाजिक जीवन में प्रजातंत्रिक व्यवस्था के प्रारम्भ के साथ साहित्यिक क्षेत्र में उस नए आन्दोलन का शुभारम्भ हुआ जिसे स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के रूप में जाना और समझा

1. डॉ० प्रमाणिक : हिन्दी स्वच्छन्दतावादी वाच्य : पृ० 5-6

2. डॉ० शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिन्तकः इतिहास तथा सिद्धान्त : पृ० 91

जाता है। इन नए परिवर्तनों ने सामाजिक जीवन के क्षेत्र में जहाँ मानव स्वातंत्र्य समानता और संयुक्त जैसे नये जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए लक्ष्य सामन्ती जीवन पद्धति तथा विचारधारा के अन्त की घोषणा की, वहाँ साहित्य एवं कला के क्षेत्र में पुरातन शास्त्रवादी तथा मर्यादावादी पारम्परिकता एवं नियमबद्धता की अवमानना करते हुए व्यक्ति की अन्तःप्रेरणा को शीघ्र स्थान प्रदान किया, वास्तविक नियमों के स्थान पर अनुभूति को साहित्य एवं कला के क्षेत्र में केन्द्रित तत्त्व के रूप में मान्यता दी, प्रकृति के प्रति एक अत्यन्त आत्मीय दृष्टिकोण अपनाने की सकारित्व करते हुए मानव व्यक्तित्व की गरिमा को उतनी सम्पूर्ण संभावनाओं के साथ प्रतिष्ठित किया। इस मानसिक उन्मुक्ति के संदर्भ में स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत उत्पन्न-तन्त्र को साहित्य या कला के क्षेत्र में केन्द्रित के रूप में स्वीकार किया जाता है और ऐसा हुआ भी। यह सत्य है कि कालान्तर में पूँजीवादी समाज व्यवस्था के उदय के साथ स्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में जन्में आदर्श जीवन मूल्य सचजन्म स्थापित हुए और स्वच्छन्दतावादी साहित्य एवं कला वास्तविक एवं अमूर्त धनकर जीवन से दूर होती गई, फिर भी स्वच्छन्दतावादी युग के उदय के साथ साहित्य तथा जीवन के क्षेत्र में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन भी हो एक समय विशेष में प्रस्तुत हुए और विन्हीं ने उस समय विशेष में युग जीवन तथा कला के क्षेत्र का नेतृत्व किया, उनके ऐतिहासिक महत्त्व को स्वीकार करना पड़ेगा। स्वच्छन्दतावादी के साथ जन्में जीवन-मूल्यों एवं कला मूल्यों को 19वीं शती के अन्त के वास्तविक विन्हीं एवं वास्तविक-सर्वना में अपने सम्पूर्ण उन्मेष के साथ देखा जा सकता है। 1.1

‘स्वच्छन्दतावाद’ को अंग्रेजी में ‘रोमान्टिसिज्म’ कहा जाता है, जिसकी उत्पत्ति रोमान्स | शब्द से हुई है, जो  
Romance

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन : इतिहास तथा सिद्धान्त : पृष्ठ 96-97



लैटिन शब्द 'रोमना' । *Romana* । से निःसृत है।

हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद अंग्रेजी के 'रोमांटिसिज्म' के पर्याय रूप में उभरा। भारतीय साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसके पर्याय रूप को स्वीकार किया। लेकिन कुछ विद्वानों ने इस अर्थ में स्वीकार करने में आपत्ति प्रकट की। उस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है, "कुछ विद्वानों ने हिन्दी में इसे 'स्वच्छन्दतावाद' कहा है, परन्तु यह शब्द उसी सम्पूर्ण साहित्य की आत्मा को प्रकट करने में समर्थ नहीं है।" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस स्वच्छन्दतावाद शब्द को नकारने के साथ कोई अन्य विकल्प भी नहीं सुझाया। अतः धीरे-धीरे जाय तो 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द को कहने में जैसा रेणु-धिम बनता है वैसा ही 'रोमांटिसिज्म' कहने से बनता है। लेकिन डॉ० रामेश्वरनाथ छन्देलनाथ ने इसे 'रोमांसवाद' <sup>1</sup> कहा है। डॉ० रामधारी सिंह ने भी स्वच्छन्दतावाद को 'रोमांसवाद' <sup>2</sup> ही कहा है। लेकिन हिन्दी के अधिकांश आलोचकों ने सही अनुवाद स्वच्छन्दतावाद ही माना है। परन्तु जन मानस में बोल-चाल की भाषा के द्वारा सर्व प्रथम शब्द आया उसका ही प्रचलन चल निकला यानी स्वच्छन्दतावाद। मैं अपनी स्वीकृति स्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में ही देती हूँ। वस्तुतः जो साहित्य प्राचीन परम्परागत रुढ़ियों को तोड़कर चलता है, वही स्वच्छन्दतावाद कहलाता है।

### शास्त्रीयतावाद :

'शास्त्रीय' का अंग्रेजी अनुवाद 'क्लासिक' है। जिसका अर्थ सर्वोच्च अद्वितीय तथा उच्च श्रेणी का बोधक है। दूसरे अर्थ में 'क्लासिक'

1. डॉ० देवराज उपाध्याय: रोमांटिक साहित्य शास्त्र [भूमिका आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : पृ० 1]
2. डॉ० रामेश्वरनाथ छन्देलनाथ: आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य : पृ० 318
3. डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' शुद्ध कविता की ध्वज : पृ० 29-30

शब्द कलाकृति के 'कालातीत' रहने की अभिव्यक्ति देता है।  
 इस अर्थ में कलात्मक सुचना और कान के बीचेतर पात्र-प्रतिपातों  
 से कभी धीना नहीं होती और इसे संवेदना की दृष्टि से कभी भी  
 पुरानी नहीं होती। तीसरे अर्थ में 'कलात्मिक' शब्द स्वच्छन्द के  
 चित्तोपलब्ध में प्रयोग किया जाता है। चम्पूतः शास्त्रीयकाव्य  
 साहित्य वह है जिसमें जातीय विषेय परम्परागत संस्थिति तथा  
 शास्त्रीयता की सुरक्षा हो। स्तमेहेन का कथन है, "शास्त्रीय  
 कवि में मौलिक उद्भापना का अभाव होता है, उसकी कृति केवल  
 कलात्मक मूल्य की वस्तु है। शास्त्रीय कवि सभ्यता एवं संस्कृति  
 के विकास के लिए नीति एवं बर्खास्त पावन को आवश्यक समझते थे  
 और इस कार्य के लिए उन्होंने कविता का कुलकर प्रयोग किया।  
 कलात्मक शास्त्रीय काव्य नीति एवं इतिवृत्त प्रधान हो गया और  
 उसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं स्वानुमति के लिए कोई अवकाश न  
 रहा। शास्त्रीयवाद काव्य में दर्शन और इतिहास का शुद्ध रूप  
 ढोवने लगा।" 1 यही नहीं उतने प्रज्ञा या दर्शन को चित्तोपलब्ध महत्त्व  
 दिया और सभ्यता के साथ काव्य में उसकी अवतारणा की।" 2  
 कलात्मिक के संदर्भ में डॉ० अणुब सिंह का अभिमत है, "एकत्व की  
 कलात्मिक की जात्या कहा गया है तथा संज्ञान-त्रय सिद्धान्त से  
 उसकी जात्या की रक्षा होती है। कलात्मिक कविता, हृदय की  
 कविता न होकर प्योट-कार्य की कविता होती है। कलात्मिक शब्द  
 का अर्थ — तत्कीर्ण, अतिशय अर्थवादी होती वस्तु जिसकी सभ्यता संसार  
 की कोई वस्तु न कर सके।" 3

'कलात्मिकी विचारधारा के निर्माण में यूनान, रोम की

1.

Thompson : The classical background of English

2. literature, p. 35

H.J.C. Grierson : 'Classical & Romantic' in Romanticism-  
 a new point of view : p 23

3. डॉ० अणुब सिंह : नवस्यच्छन्दवाद : पृष्ठ 3

जीवन-दृष्टि, सम्पत्ता, -संस्कृति, साहित्य, कला आदि का सम्मिलित योग था और यह बात इस तथ्य से प्रमाणित हो जाती है कि साहित्य रचना के साथ-साथ मूर्तियों और चित्रों की रेखाएँ भी निश्चित करने का प्रयत्न किया गया। क्लासिकता युग का अन्त होने पर जब यूनान, रोम की सम्पत्ताएँ यूरोप के अन्य देशों में फैलने लगीं, तब वे अपना प्रभाव भी स्थापित करती गयीं।<sup>1</sup> क्लासिकी की पुष्कलमूर्ति के संदर्भ में जे. ए. के. आगसन ने कहा है, "यूनानी और रोमन सम्पत्ता की विराटता का प्रमाण यह है कि अस्तंगत हो जाने के बाद भी वह यूरोपीय साहित्य की भीतर-भीतर मथती रही और रचनाकार उन ऊँचाइयों पर जाना अपने जीवन का स्वप्न मानते रहे, जिन तक यूनानी अथवा रोमन कृती पहुँचे थे।"<sup>2</sup> रोमॉटिसिज्म के विरोध में जाने वाले टी०एस० एलियट ने वर्जिल सोसायटी में दिये गये अपने भाषण 'ह्वाट एज से क्लासिक' १ में कहा था, 'ग्रीकता किसी क्लासिक की सर्व प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। जब कोई सम्पत्ता अपने शीर्ष पर पहुँच जाती है तब उसमें ऐसी कृतियाँ बन्य लेती है, जिन्हें हम 'युनिवर्सल क्लासिक' कह सकते हैं। पर उनके अतिरिक्त भी रचनाएँ होती हैं जो अपने-अपने समय का प्रतिनिधित्व करती हैं। शेक्सपियर अथवा वर्जिल ने हमें प्रथम कोटि के क्लासिक दिये।"<sup>3</sup> अतः धीरे-धीरे क्लासिक की जड़े मजबूत होती गईं।

परन्तु रेनेसाँ युग की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में क्लासिक के विरोध में नव-क्लासिक आन्दोलन शुरू हुआ। जिस पर एक बार साहित्य ने फिर से क्लासिकल युग पर दृष्टि डाली और नये ढंग

1. डॉ० प्रेमशंकर : हिन्दी स्वच्छन्दतावादी शास्त्र : पृ० 13

2. J. A. K. Thompson: The classical background of English Literature : ( Introduction )

3. टी०एस० एलियट : ह्वाट एज से क्लासिक १ : पृ० 11-12

जितने विचार बंधे हुए हैं। रोमांटिक वह है, जो इसी चिन्तन के प्रवाह में है।''<sup>1</sup>

यूरोप में रोमांटिक धारा होमर से प्रारम्भ होकर, रैनेटा से होती हुई शेक्सपियर, मिण्टन, शैली, कीट्स, बायरन, वर्तमान, कॉलरिज आदि को प्रभावित करती हुई आज तक चली आयी है। रोमांटिक प्रवृत्ति सामान्य विरोधी है, इसलिये प्रगतिशील है। कलात्मक साहित्य सामान्यी संस्कृति का पोषक होता है, कलात्मक चेतनशील होता है। फ्रेडरिक श्लेगल का ध्यान है कि रोमांटिक कविता सदैव प्रगतिशील होती है।''<sup>2</sup> प्रीट्स्ले रोमांटिक कविता को अचेतन मानस का स्फोट मानता है तथा क्लासिकी काव्य को चेतन मानस से स्फुटित मानता है। टी.टी. हल्प्स ने रोमांटिक एवं क्लासिक पर नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उसके कथनानुसार जहाँ मानव की परिसीमाओं को स्वीकार कर उसे प्रवृत्ति के अधीन माना गया है, वहीं क्लासिक विचारधारा मिलेगी तथा जहाँ मानवीय जीवन को अनन्त संभावनाओं का केन्द्र माना गया है, तब रोमांटिक विचारधारा पायेंगी। विज्ञान के प्रभाव के कारण आज का मानव अपनी परिसीमाओं को पुनः देख रहा है, अतः क्लासिक युग आने वाला है।''<sup>3</sup> जब कभी एक वाद की प्रमुखता से अनुसरण होने लगता है, तब उसके विरोध में दूसरी काव्यधाराएँ आविर्भूत होती हैं और एक सन्तुलन बनाती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से समस्त विश्व काव्य पर एक नजर डालने से यह भी ज्ञात होता है कि ठेठ कवियों ने कितनी एक ढाढ़ या सीमित तरणि का आधार नहीं लिया। क्लासिकल काव्य, स्वयच्छन्दतावादी काव्य और

1. डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' : शुद्ध कविता की पोषःपृष्ठ 31

2. L. R. Purser : Romanticism in perspective : P. 23

3. T. L. Hulme : Speculations : P. 118

से उसका उपयोग करना चाहिए। यूरोपीय रोमांटिसिज्म के पूर्व की नवजातसिद्धि के विषय में यह भी कहा जाता है कि स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन उसकी प्रतिक्रिया में विकसित हुआ। वस्तुतः नवजातसिद्धि से आधुनिक गद्य के निर्माण के साथ-साथ यथार्थवादी प्रवृत्तियों का आगमन हुआ। मैथिल चरित्तन<sup>1</sup> को ज्ञासिद्धी परम्परा की अन्तिम कड़ी कहा जाता है क्योंकि उसी के बाद स्वच्छन्दतावादी रोमानी प्रवृत्तियों का आन्दोलन तेज होता गया।

### रोमांटिक :

ज्ञासिद्ध शब्द की तरह 'रोमांटिक' भी कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य में विचार-तत्त्व की आधुनिकता के साथ-साथ प्रेम-कल्पना और तथेय की बहुलता भी रहती है। इसी प्रेम में स्वच्छन्दतावादी साहित्य वह है जो स्थापित नियमों के विरोध में स्वच्छन्द मार्ग को अपनाता हो। जितनी बेचक के विचार उद्भूत करते हुए डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है, 'ज्ञासिद्धवाद को एक बेचक ने सूर्य का प्रकाश और रोमांसवाद को अंधेरी रात का आत्मान कहा है, जिसमें अतंज्य तारे टिमटिमाते रहते हैं। ज्ञासिद्धवाद ज्ञान का संगठित रूप है, साहित्य में वह लगभग वैज्ञानिक शैली का प्रयोगकरता है, किन्तु रोमांसवाद कल्पना है, कल्पना है, जो धूमिलता के भीतर से भी हमें अंधेरानुभूति तक ले जाता है। ज्ञासिद्धवाद की शैली काल्पनिक होती है, उसका आधिकार सदिशों पूर्व हो चुका है। किन्तु रोमांटिक कवि को अपनी राह अपनी घेदना और निराशा में खोजनी पड़ती है। ज्ञातः ज्ञासिद्ध चरित्रधान तथा रोमांटिक व्यक्तिच्छाया होता है। ज्ञासिद्ध वह है

व्यार्थान्युस रचनाएँ एक दुसरे के साधनों और उपादानों को बराबर अपनाती आयी हैं और यही काव्य के स्वाभाविक विकास के लिए अव्यक्त भी है। जो लोग आधुनिक-सोच के नाम पर कविता को संकीर्ण दायरे में घेरना चाहते हैं उन्हें काव्येतिहास के पृष्ठों को अच्छी तरह पढ़कर देखा चाहिए। जिस प्रकार मानव-जीवन के विभिन्न युगों में एक दृष्टिकोण की प्रमुखता होते हुए भी दूसरे दृष्टिकोण अपवारित नहीं होते, उसी प्रकार काव्य में भी समय-विशेष में किसी शैली और मावधारों की प्रमुखता होते हुए भी दूसरी शैलियों और मावधारों का अछेद नहीं किया जा सकता।<sup>1</sup>

वस्तुतः कुछ विद्वानों की धारणा है कि रोमांटिक और क्लासिक दोनों भिन्न हैं, ऐसा नहीं है। प्राचीन साहित्य को देखने से मालूम होता है कि क्लासिकल युग में रोमांटिक रचनाएँ हुईं और रोमांटिक युग में क्लासिकल रचनाएँ हुईं। अतः न कोई काल, वाद या व्यक्ति निरपेक्ष क्लासिकल या रोमांटिक होती है। शोध का इस संदर्भ में कथन है, कि क्लासिकल तथा रोमांटिक काव्य के नितान्त भिन्न गुण नहीं हैं। एक ही कवि क्लासिक या रोमांटिक दोनों हो सकता है। सभी महान कलाकार क्लासिक तथा रोमांटिक दोनों होते हैं, केवल मध्यम तथा निम्नस्तर के कलाकार ही विपुल रोमांटिक या विपुल क्लासिक होते हैं।<sup>2</sup>

1. आचार्य नन्द कुमार वाजपेयी : धर्मयुग : [रविवार 6 अगस्त 1967]

पृष्ठ 31

2.

A. E. Fowell : Romantic Theory of poetry : p. 2

स्टैंडन का कथन है, 'सभी बड़े कलाकार अपने युग में रोमांटिक होते हैं।'<sup>1</sup>  
 श्लेगन का मत है, 'रोमांटिक कविता केवल कविता का एक प्रकार हो  
 नहीं, बल्कि कविता एक तत्त्व भी है।'<sup>2</sup> क्लासिक और रोमांटिक  
 को एक-दूसरे का पर्याय मानते हुए डॉ० अब्ब सिंह का मत है, 'क्लासिक  
 और रोमांटिक परस्पर विरोधी नहीं है। साहित्य का इतिहास इस  
 बात का साक्ष्य है कि क्लासिकल युग में भी रोमांटिक रचनाएँ होती हैं  
 और रोमांटिक युग में भी क्लासिकल रचनाएँ होती हैं। क्लासिकल  
 कलाकार भी क्लासिकल प्रवृत्ति की रचना प्रस्तुत करता है। इस प्रकार  
 यह कहा जा सकता है कि न कोई काल या कृति या व्यक्ति निरपेक्ष  
 रूप में क्लासिकल या रोमांटिक होता है। धृत्तियों की प्रधानता  
 या धृत्तिरूप के मुताबिक उसकी रचनाएँ भी क्लासिक और कभी  
 कहलाती हैं।'<sup>3</sup>

वस्तुतः मानव-मन तर्कमय होकर कभी रोमांटिक तो कभी  
 क्लासिक और कभी पथार्थ भाव को धिमेचित करता है। यह कार्य  
 क्लृप्ताव्य एवं आलोचना दोनों में करता है। इन तीनों के संपर्क में ही  
 कवि आत्कारी काव्य उत्पन्न करता है। अतः कवि रचना करते समय  
 किसी वाद के धरे में न रहकर, क्लासिक, रोमांटिक, पथार्थ के धिन्दुओं  
 में झुमन कर अपनी सुचना करता है।

वस्तुतः क्लासिकी कवि वर्तमान में विश्वास एवं आस्था  
 रखता है जबकि रोमांटिक कवि भूत व भविष्य के प्रति स्वप्नित

1. L.R. Furot : Romanticism in perspective : p 317

2. Ibid.

3. डॉ० अब्ब सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 7

विज्ञातार्थें प्रकट करता है। क्लासिकल काव्य दिव्य प्रधान है जबकि रोमांटिक काव्य वैयक्तिक प्रधान है। अतः क्लासिकल काव्य सच्चिदानन्द है तो रोमांटिक काव्य अंतर्मुखी है। क्लासिकल में वास्तव उन्मिष्टवागादय वास्तव सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है तो रोमांटिक में उन्मिष्टवासीत काव्यमय सौन्दर्य का आग्रह है। क्लासिकल काव्य मानव प्रेमी है तो रोमांटिक काव्य मानव एवं प्रकृति से प्रेम करता है। अन्त में, आचार्य नन्द हुनारे पात्रवेदी के शब्दों में, 'दोनों में समोपता और समन्वय की भी संभावना है।'\*

### आधुनिक :

'आधुनिक' शब्द के विभिन्न अर्थ हैं। यह शब्द संस्कृत के 'अधुना' शब्द से स्थापित है 'उत्' प्रत्यय से निर्मित हुआ है। अतः 'अधुना' काव्यमय आधुनिक शब्द अर्थ नितान्त नवीन है, जो कई अर्थों की अभिव्यक्ति देता है। भाव प्रत्यय 'ता' के लग जाने पर इस शब्द से गुण, अवस्था एवं परिणाम का आभास होता है।

प्राचीन एवं मध्ययुगीन गुण अवस्था एवं परिणाम आदि विभिन्न परिस्थितियों एवं वातावरण के फलस्वरूप बौद्धिक कल्पनार्थ विभिन्न परिवर्तनाओं को ग्रहण करती हुई उत्पन्न नवीनतम रूप में दृष्टि गोचर होने लगीं। जो ही आधुनिकता की संज्ञा दी गयी। इसका प्रथम अर्थ है : प्राचीन एवं मध्ययुगीन भावबोध से भिन्न तथा नूतन उद्द-मौलिक विचारधारा। पुरातन भावबोध, आध्यात्मिकता, पारम्परिकता के कट्टरवादी अभिव्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न बलित हो चुका था। परिणामस्वरूप आधुनिक जगत के लिए यह बोधगम्य नहीं है।



मध्यकालीन भावबोध अपने अवरोध, वज्रता और लट्टिवादिता के लिए  
 छिंदे हो चुका था, ऐतिहासिकता ने उसमें परिधीन प्रस्तुत किया।  
 मध्यकालीन वज्रता और आधुनिक गत्यात्मकता को काव्य और कला के  
 द्वारा आत्मसात् किया जा सकता है। ऐतिहासिक कविताओं में कव्य  
 अलंकरण एवं शैली में तारतम्य की स्थिति थी। ऐतिहासिक कवि और  
 सुंगारिक भावना के धारा-प्रपात में बह रहे थे, साथ ही एक ही प्रकार  
 के छन्द, एक ही प्रकार के चिन्तासूत्र : डिक्शन में बँधे हुए भी।  
 आधुनिकता की तरंगों ने बोधन की धारा को बिखेर दिया।  
 अन्तर्गतता साहित्य के सुत-दुःख के साथ गठबन्धन भी हुआ। इसका  
 द्वितीय अर्थ है : ऐतिहासिकदृष्टिकोण। इसमें धर्म, दर्शन, साहित्य,  
 चित्र आदि सभी के प्रति नवीन विचारधाराएँ प्रवाहित हुईं। मध्यकाल  
 में पारलौकिक विचारधारा से व्यपन्न मनना मिलता था कि उसे अपने  
 जीवन का बोध भी नहीं था। लेकिन आधुनिकता ने उसे अपने विषय  
 में चिन्तन - मनन करने के लिए विवश किया।''

आधुनिकता एक वैज्ञानिक- मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

उसके अन्तर्गत कई संदर्भ अभिव्यक्त होते हैं। उदाहरणतया, नयी  
 कविता, नये संदर्भ, सचेतनता, नई कहानी, नयी अभिव्यक्ति, नये बोध,  
 नये मूल्य आदि। आधुनिकता के संदर्भ में डॉ० रामेश्वरनाथ कण्ठेननाथ  
 का कथन है, '' आधुनिकता जीवन और जगत को काल-बिन्दु से देखने  
 समझने की एक भिन्न स्थिति या दृष्टि-भंगिमा है, जो मुख्यतः हमारे  
 पीछे पड़ा हुआ है सम्बन्धित रहकर हमारे जीवन मूल्यों का निर्धारण  
 व जीवन प्रणाली का नियमन तथा त्यागन करती है।'' 2 डॉ० कण्ठेननाथ

1. डॉ० अश्वय सिंह : आधुनिक काव्य की स्वयच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ:  
 पृष्ठ 6-7

2. संभावना : पृष्ठ एक अंक दो: पृष्ठ 86

मदान आधुनिकता को प्रक्रिया मानते हैं, जिसे परिभाषित नहीं किया जा सकता।''<sup>1</sup> डॉ० ब्रह्मन् सिंह इसे एक विन्दु पर स्थिति और गति दोनों मानते हैं।''<sup>2</sup> डॉ० सिंह का पुनः कथन है, '' आधुनिकता तो आधुनिकता है ही, उसका अस्वीकार भी आधुनिकता है। आधुनिकता के स्वीकार अस्वीकार के परे जाना ही आधुनिकता है।''<sup>3</sup>

डॉ० विष्णुनाथ टैगोर नामक निबन्ध में एलियट वर्तमान की स्थापना का विरोध करते हुए कहता है — काव्य भावना को उन्मुक्तता के साथ प्रवाहित करना नहीं है, वह तो माप से प्रभावित है। काव्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, उसे स्वतंत्र होना है।''<sup>4</sup> आधुनिकता मुख्यतः पौष्टिक है, लेकिन 'स्वच्छन्दतावाद' मूल रूप से पौष्टिकता का विरोधी है।

वस्तुतः आधुनिकता मध्ययुग के बदलाव की प्रिया है। मध्ययुग के प्रति विद्रोह है, तथा मध्ययुग के बाद के साहित्य की भाँति है। अतः मध्ययुग के पश्चात् ही आधुनिकता का विकास होता है। जिसके विकास के चरण समय सापेक्ष हो गये हैं। अतः आज तक अथवा अब तक को परिवर्तन है वह आधुनिकता है।'' आधुनिकता एक काल-सापेक्ष शोध है जिससे रचना में ताप का संसार होता है और जिसके अभाव में उत्पन्न श्रेष्ठ काव्य - सम्पादा के अधिकारी होते हुए भी कवि रत्नाकर आधुनिक नहीं बन सके। लेकिन घाट बाँधकर पानी को गहरा बनाना परम्परा का काम है और इस तत्त्व के अभाव में मुक्ति योग्य कलात्मक नहीं बन सके।''<sup>5</sup>

1. डॉ० ब्रह्मन् नाथ मदान : निबन्ध और निबन्ध : पृष्ठ 96

2. आलोचना : नैमासिक ॥ अप्रैल-जून 73 : पृष्ठ 113

3. आलोचना : ॥ नैमासिक ॥ अप्रैल-जून 73 : पृष्ठ 114

4. टी०एस० एलियट : एलेक्जेंडर सेल : पृष्ठ 17

5. डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह : काव्यालोचन की समस्याएँ : 123

आधुनिकता सिर्फ साहित्य के क्षेत्र से ही नहीं उभरी धरन् देना के समग्र विकास तथा प्रत्येक क्षेत्र का अंग लेकर पैदा होती है। उसके मूल में साहित्यिक विज्ञान, मनोविज्ञान, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हर प्रकार की चेतना कार्यरत रहती है। अतः सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों में 1957 की राज्यक्रांति भी आधुनिकता ही है। उसके बाद आधुनिकता मजबूतकरण, स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, पथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, नवगीत आदि के रूप विकास में उत्तरोत्तर विकास पाती है।

वस्तुतः छायावादी काव्य में आधुनिकता की प्रवृत्ति अतीत प्रेम राष्ट्रिय प्रेम आदि प्रवृत्तियों में दिखाना पड़ती है। इसमें आधुनिकता प्रकट है कि रीतिरिवाजों को काव्य पद्धति थी उसमें राष्ट्रिय प्रेम का वर्णन शून्य था। अतः स्वच्छन्दतावादी छायावादी कवियों ने यह नवीनता लाकर इसे आधुनिकता के रंग से रंगा। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नयी चेतना को उभारा जो आधुनिकता ही है। स्वच्छन्दतावाद में मनोविज्ञानवाद भी उभरा जिसमें ड्रायड, फ्लोर तथा पुंग का मनोविज्ञानवाद काफी व्यापक रहा। अतः छायावाद तथा मध्ययुग में यह प्रवृत्ति नहीं है। इस प्रवृत्ति को लाने का हेतु स्वच्छन्दतावादी कवियों को ही है। यह एक नवीनता है। अतः जहाँ पर पौड़ी ली भी नवीनता है वहाँ आधुनिकता अवश्य है। स्वच्छन्दतावाद में तुलनात्मक कल्पितता की शक्ति है परन्तु नवस्वच्छन्दतावाद में प्रकाश उभाप है अतः स्वच्छन्दतावाद के बाद नवस्वच्छन्दतावाद आया, यह भी आधुनिकता है। यह

आधुनिकता में कवि वैयक्तिक अनुभूतियों का भाव देता है और वैयक्तिक अनुभूति के लिए प्रगीत को अपनाया जाता है।

राष्ट्रीय चेतना भी आधुनिकता की पहचान है। इसी में नवजागरण  
 रेंगता आदि आते हैं। आधुनिकता की सही पहचान स्वच्छन्दतावादी  
 प्रवृत्तियाँ हैं। जिसमें मनोविलेपनवाद सर्वोपरि है। उसके बाद यथार्थवाद  
 आता है जो आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद में  
 विभक्त है। प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद में वैयक्तिकता एवं  
 मनोविलेपन का रंग गाढ़ा हो जाता है। नयी छविता में  
 अस्तित्ववादी दर्शन आता है जो आधुनिकता का रंग है। नयी छविता  
 में एक और घात झार जो अतियथार्थवाद के रूप में उभरी, जो  
 आधुनिकता ही है। स्वच्छन्दतावाद में जो नाथि की घात थी वह नयी  
 छविता में गहरी बीघन के रूप में बढ़त गई। इसका आकलन होने लगा  
 जिसमें वैयक्तिकता एवं मनोविलेपन, प्रेम की प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं।  
 यह भी आधुनिकता ही है। इसमें प्रेम मानवीय अधिक हो जाता है।  
 स्वतंत्रता आधुनिकता का एक ऐसा आयाम है जिसे आधुनिकता के प्रमुख  
 तत्त्व स्वीकार किया जाना चाहिए। स्वतंत्रता मुक्तः एक मानवीय  
 चेतना है जो आत्म चेतना से उदित होकर अपना रूप सार्थभोग बनाती  
 है। वस्तुतः आधुनिकता ही मूल चेतना आत्म चेतना है। ऐसी स्थिति  
 में स्वतंत्रता भी आधुनिकता से बढ़ जाती है। आधुनिकता की दो विरोधी  
 अवधारणाएँ आधुनिकता का भित्तिारित करने में सहायक रही। एक  
 मनोविलेपनवाद दूसरी मार्क्सवाद। मार्क्सवाद आधुनिकता का एक चरण  
 है। कार्ल मार्क्स की मार्क्सवादी दृष्टि जो पूँजीवादी विरोधी आन्दोलन  
 जिसे कार्ल मार्क्स ने स्वच्छन्दतावादी नाम दिया है। यह आधुनिकता  
 का दूसरा पक्ष है। पूँजी के अज्योतन में जो अनिष्ट, अन्या की घात की  
 है वह भी आधुनिकता के चरण हैं।

आधुनिकता सभ्यता एवं संस्कृति से भी जुड़ी हुई है।  
 क्योंकि सभ्यता और संस्कृति का आपस में गहरा सम्बन्ध है जिसे जगम  
 नहीं किया जा सकता। संस्कृति हमें परम्परानुसार ही प्राप्त होती है।  
 इसी से सभ्यता विरासत होती है। जब दोनों का रूप बढ़त कर सामने

आता है कही आधुनिकता कहनाती है । वस्तुतः संस्कृति बहुत है उसमें  
चेतनता लाती है और वहाँ पर सजगता एवं चेतनता होगी वहाँ पर  
वह आधुनिकता से जुड़ जाती है । वस्तुतः सभ्यता भी नगरीय एवं  
ग्रामीण जीवन में सम्मिलित हो गई है । जो रहन-सहन, ऋषदा  
शहरी जीवन में मिलता है, उसका ग्रामीण जीवन में अभाव है । शहर  
और ग्राम भी दो मार्गों में विभाजित किए जा सकते हैं —

|        |     |       |
|--------|-----|-------|
| महानगर | - - | नगर   |
| कस्बा  | - - | ग्राम |

वस्तुतः राजनीतिक हलचल, पूँजीवादी परिष्कार, या विज्ञान का  
आधुनिकीकरण अथवा अन्य आधुनिक वस्तु या परिष्कार पहले पश्चिमी  
देशों से महानगर में आता है, उसके बाद नगर में फिर कस्बे में और  
ग्राम में फैलता है ।

एत सन्दर्भ में डॉ० अब्दुल सिद्दिक का मत पुष्टि करता है, “ आधुनिकता  
के स्वल्प की विपुलता के लिए उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ एवं प्रवृत्ति का  
परिचय आवश्यक है । आधुनिक काल अपने ज्ञान-विज्ञान और प्रविधियों  
के कारण मध्यकाल से विभक्त हुआ । यह काल औद्योगिकीकरण, नगरीकरण  
और वैदिकता से विभक्त हुआ है, फलस्वरूप नूतन आशायें उभरी और  
मध्यकाल का नूतन स्वप्न देखा जाने लगा । देश धर्म, राष्ट्र, ईश्वर आदि  
की नवीन व्याख्याएँ होने लगी । प्रत्येक देश में पुनर्जागरण हुआ, बहुत  
देश स्वतन्त्र हुए, अपने-अपने ढंग से उनकी नयी सरकारें बनी । लेकिन  
शक्ति की आशाओं का तुल्यारोपण हुआ । मनुष्य या तो व्यवस्था या  
प्रविधि का पुर्जा हो गया है । सांसारिक व्यवस्था में व्यक्ति का अपना  
व्यक्तित्व एवं उसकी पहचान हो गयी । इस छोटे हुए व्यक्तित्व की  
खोज-प्रक्रिया की संज्ञा आधुनिकता है । ”

## स्वच्छन्दतावाद के तन्त्र में विद्वानों के अभिमत

### पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में स्वच्छन्दतावाद :

रीडर्स एन साइक्लोपीडिया में स्वच्छन्दतावाद को एक रूप में परिभाषित किया गया है, " स्वच्छन्दतावाद की मुख्य विशेषताएँ हैं, व्यक्तिवाद, प्रकृति-पूजा, अतीतवाद, मध्ययुग के प्रतिनिधित्व, दार्शनिक, आदर्शवाद, स्वतंत्र विचार और धार्मिक रहस्यवाद की ओर प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति राजनीतिक सत्ता और सामाजिक रुढ़ियों के प्रति विद्रोह, शारीरिक आघात का उन्नयन, स्वतंत्रता, सुखमय सव्य तथा मनोद्वेष का प्रोत्साहन तथा अनौचित्य, दुष्टि ऐकान्तिक और निर्दय के प्रति अबाध-आकर्षण ।" <sup>1</sup> इस परिभाषा में व्यक्तिवाद, प्रकृति-पूजा, मध्य-युगीन स्थान, राजनीतिक सत्ता तथा सामाजिक परम्पराओं से विद्रोह विचार-स्वातंत्र्य, भावप्रवणता तथा अनौचित्य के प्रति प्रेम आदि स्वच्छन्दतावाद की स्पष्ट विशेषताएँ हैं। ये अनुमूर्तियाँ प्रायः आन्तरिक भावनाओं तथा आत्मसुख से सम्बन्धित हैं। इसमें आन्तरिक अनुमूर्तियों, सामाजिक-राजनीतिक रुढ़ियों तथा परम्पराओं के प्रति विद्रोह की ध्वनि को स्वरित किया गया है। लेकिन समस्त स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ इस परिभाषा में उभर कर नहीं आ सकती। निम्नी तथा कबालियाँ का कथन है, ' स्वच्छन्दतावाद चेतना की परिभाषा अनुमूर्तिगीन जीवन की प्रबल प्रधानता के रूप में ही की जा सकती है, जो कल्पना प्रधान दृष्टि के प्रयोग द्वारा उत्प्रेक्षित या संयोजित होती है, और बदले में ऐसे प्रयोग को प्रोत्साहित या संयोजित करता है ।" <sup>2</sup>

<sup>1</sup> Readers Encyclopedia : Third printing . p 943

<sup>2</sup> A History of English literature : p 997

उन्हीं अनुभूतिगीत जीवन की प्रथम प्रधानता को स्वच्छन्दता की चेतना कहा है जो उत्पन्ना की दृष्टि से उददीप्त अथवा निर्दिष्ट होती है। स्वयं कवि की आत्मा उस उत्पन्नादृष्टि को सशक्त बनाती है एवं निर्देश करती है।

अवशिष्ट स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों पर एन्साइक्लोपीडिया आफ अमेरिकन प्रजाता ज्ञाता है, " क्योंकि स्वच्छन्दतावाद भावात्मक जीवन में जो कुछ विधिवत और रहस्यात्मक है, उसे अभिव्यक्ति करने का प्रयास करता है, वह प्रकृति से अपनी सामग्री का आधार अतीत में ढूँढ़ता है, विशेषकर मध्ययुग से महाभूमि रक्षता है, जबकि भावात्मक साक्षात् शौर्य या साधनिकता के प्रति प्रेम और रहस्यात्मक धोप की अभिव्यक्ति करती थी। इसलिए अतीत के प्रति महाभूमि और मानवता की जीवन अभिव्यक्ति स्वच्छन्दतावाद के लक्ष्य हैं।"<sup>1</sup>

इज्जुटीक बोन्स का कथन है—“ स्वच्छन्दतावाद गतिशील है, इसमें व्यवस्था की अपेक्षा अव्यवस्था अधिक है, चौकितता की अपेक्षा निरन्तरता पर धन है। जिसके अन्तर्गत तीव्र प्रकारा हिन्दु की अपेक्षा धुँधले प्रकारा हिन्दु की अधिकता है, जिसमें वाह्य गुणवत्ता की अपेक्षा आन्तरिकता पर धन है और जिसमें उस संसार की अपेक्षा दूसरे संसार की त्याग पर धन दिया है।”<sup>2</sup> एडवर्ड स्कॉट ने

स्वच्छन्दतावाद को अहंवादी कहा है तथा उसकी वैयक्तिक अनुभूतियों को नवीन सर्वनाम का प्रेरक माना है। उनका कहना है—“स्वच्छन्दतावाद सशक्त स्व में अहंवादी है। इसमें वैयक्तिक अनुभूति प्राण जीवन और

1. The Encyclopedia : Americana : Vol. 23, p 639-50

2. Ren o Colloke : Concepts of Criticism : p 203

सर्वन प्रेरणा के सक्रिय पुनर्जागरण की प्रधानता रहती है।''<sup>1</sup> स्कॉट जेम्स के अनुसार, '' स्वच्छन्दतावाद साहित्यिकता को आकर्षण देने वाला, नूतनता के प्रेमी तथा उन सब गुण-दोषों को समाहित करने वाली काव्यधारा है जो आवेश, शक्ति, आकुलता, आध्यात्मिकता, उत्सुकता, क्षोभ-प्रगति स्वातन्त्र्य, प्रायोगिकता एवं उत्तेजकता की भावनाओं के साथ सम्बद्ध हो।''<sup>2</sup>

वाल्टर पेटर ने स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा इस प्रकार दी, ' सौन्दर्य के साथ अनुठेपन का योग ही कला में स्वच्छन्दतावादी स्वल्प का निर्माण करता है। और प्रत्येक कलात्मक सर्वन में सौन्दर्य लालसा एक निश्चित तत्त्व होने के कारण, सौन्दर्य लालसा के साथ जिज्ञासा का योग स्वच्छन्दतावादी स्वभाव का निर्माण करता है।''<sup>3</sup>

1. " Romanticism is strongly egotistical. There is predominance of the personal . emotional life and an active re-awakening of creative impulse; A.F. Scott : poetry and appreciation: p 15
2. Scott James : The making of <sup>lit</sup>ature p. 152
3. It is the addition of strangeness to beauty that constitutes the romantic character in art and the desire of beauty being a fixed element in every artistic organization it is the addition of curiosity to this desire of beauty. that constitutes the romantic temper. " Walter Pater : Appreciations p. 258



वस्तुतः विलक्षणता का सौन्दर्य के साथ योग जिसमें कौतूहल का भाव सन्निहित रहता है। स्वच्छन्दतावादी नूतन प्रवृत्ति को आगे बढ़ाता है।

विलेन्सी स्वच्छन्दतावाद को विद्वद् पंक्ति बतलाते हैं। जिसमें वर्तमान वास्तविकता का पूरी तरह परित्याग कर दिया जाता है। इस मान्यता के अन्तर्गत उसने संशोधन किया। उसने काव्य को वास्तविक और आदर्शमय इन दो प्रकारों में विभक्त किया है और बताया है कि एक कवि अपने जीवन को आदर्शों के अनुस्यूत दर्शन करता है और दूसरा इसकी नग्न वास्तविकता में उपस्थित करता है जब आदर्शमय दृष्टि और जीवन को पुनर्संजना समृद्धि बना दिया जाता है। शैलीगत चित्रण और आलंकारिता के द्वारा परिवर्तित सौन्दर्य अति मानवीय आवेशमय चरित्रों के साथ स्पष्ट आत्मपरकता के द्वारा रंगा हुआ जो कि कतिपय कलात्मक विशिष्ट उपायों के द्वारा प्रकट किया गया हो, यहीं पर हम स्वच्छन्दतावाद का कार्य देखते हैं। विलेन्सी की केनुसार, स्वच्छन्दतावाद का क्षेत्र मनुष्य का सम्पूर्ण आन्तरिक और आत्मिक जीवन है, जो कि आत्मा और हृदय की पवित्र भूमि है, जहाँ से उन्नति के लिए किए गए सारे प्रयास उत्पन्न होते हैं और कल्पना के द्वारा रचित आदर्शों में सन्तोष पाते हैं। आगे इनका कहना है कि वहाँ जीवन, है जहाँ मनुष्य है और जहाँ मनुष्य है वही स्वच्छन्दतावाद है।<sup>1</sup>

2. " And further life is where man is and where man is there you will find romanticism " A  
ovcharonko : socialist Realism and modern  
literary process : pp 151-52

स्वच्छन्दतावाद में मनोवैज्ञानिकता का गहरा प्रभाव है। यही कारण है कि जानोवर्गों तथा मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान की दृष्टि से भी स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा एवं उसके स्वस्व पर विचार प्रकाश डाला है। बीसवीं शती के फ्रायड, एडलर युंग आदि मनोवैज्ञानिकों ने साहित्य के मूल अन्त का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवलोकन किया है :

1. लिबिडो                      § स्वच्छन्द मूल प्रवृत्तियाँ §
2. इड                              § यथार्थोन्मुखी अवचेतन मन §
3. सुपर इडो                      § आदर्शोन्मुखी चेतन मन §

फ्रायड के अनुसार स्वच्छन्दतावाद की मूलवृत्तियाँ § लिबिडो § यथार्थोन्मुखी अवचेतन मन और आदर्शोन्मुखी चेतन मन से संघटित होती हैं। मूलवृत्तियाँ ही फ्रायड के अनुसार मनुष्य की सभी क्रियाओं की चमकी हैं।

लिबिडो की प्रतिक्रिया को ही स्वच्छन्दतावाद का मूल बताया गया है। इडो, सुपर इडो और अवचेतन की द्वन्द्वात्मकता को स्वीकारते हैं — स्वच्छन्दतावाद से आशय है चेतन का पाप से मित्राप और स्वच्छन्दतावाद की निर्दोषता के प्रति उसलिये सामायित है कि वह अवचेतन से काफी दूर और दूर होता गया। इसी की चिंतिन दूसरे त्व में रखी हैं, आत्मचेतना उदात्त माननीय गुण है। उसलिये स्वच्छन्दतावादी कलाकार आत्म चिन्ता होने के नाते स्वच्छन्दतावादी नायक बन जाता है किन्तु चेतना की प्रतिमा एक बहुदेवता है जो प्रकृति में व्याप्त है।”

स्वच्छन्दतावादी जानोवर्ग टी०३० हल्लम ने अपनी पुस्तक ‘स्येकुलैरिज्म’

में स्वच्छन्दतावाद पर नवीन दृष्टिकोण दिया है, " तुम ईश्वर में  
 को विश्वास नहीं करते हो, इसलिए तुम मनुष्य में ही ईश्वर का विश्वास करने लगते  
 हो, तुम स्वर्ग में विश्वास नहीं करते हो, इसलिए तुम बरती पर ही स्वर्ग है ऐसा  
 विश्वास करते हो। इसी शब्दों में तुम स्वच्छन्दतावाद को प्राप्त करते हो।<sup>1</sup>

### भारतीय

भारतीय विद्वानों ने स्वच्छन्दतावाद के प्रद्वर्ष में अपने मत  
 इस प्रकार व्यक्त किए हैं : ' हिन्दी साहित्य कोष' में प्राचीन  
 परम्परा तथा आत्मीयता से विद्रोह कर नये उठने वाली भाष-विचारों  
 को स्वच्छन्दतावाद मानते हुए कहता है, " साहित्यिक उदारवाद  
 ही रोमांटिसिज्म है। अर्थात् प्राचीन शास्त्रों तथा पुराणिक  
 परिपाटी के विरोध में उठ खड़ी होने वाली विचारधारा को  
 रोमांटिसिज्म कहा जाता है।<sup>2</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार  
 " प्रकृति-प्राणों के पर-अपर प्राणियों का रागद्वेष परिपक्व, उनकी  
 गतिविधि पर आत्मीयता-व्यंजक दृष्टिगत, सुख-दुःख में उनके  
 साहचर्य की भावना, ये सब बातें स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद के  
 पञ्च-पिन्द हैं।"<sup>3</sup> शुक्लजी ने स्वच्छन्दतावादी उचितता को कृत्रिम

1. I. E. Mulkas Speculations : Edited Herbert Road  
 : p. 118

2. डॉ० पीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोष : पृष्ठ 676

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, तेरहवां  
 सं० पृष्ठ 13-14

और सद्बिम्ब काव्य-प्रवाह की प्रतिष्ठिता से उत्पन्न स्वाभाविक भावधारा की कविता माना है। स्वच्छन्दतावादी कविता की वृद्ध भूमि पर प्राकृतिक वस्तुओं को सर्वाधिक महत्त्व देने के कारण ही उन्होंने वीथर पाठन, राम नरेश शिवाली, गुल्मजा सिंह तथा उदय शंकर मन्दट आदि के नवी काव्य प्रकृति के प्रतिनिधि कवि घोषित किया है। आचार्य गुप्त ने जिस अर्थ में स्वच्छन्दतावादी कविता की आत्मगत उद्भाषनाओं, प्रकृति, कल्पना तोन्दर्य वैविध्यपूर्ण प्रेरणाओं का आकलन इसमें नहीं हो सता है। वस्तुतः यह परिभाषा नूतन काव्य प्रकृति के समस्त स्वल्प को व्याप्त करने में असमर्थ है। उसके अतिरिक्त गुप्तजी ने जिन कवियों को प्रमुखा दी है वे नवीन काव्य आन्दोलन के प्रारम्भिक कवि हैं। निश्चय ही इनको कविता में प्राकृतिक-तोन्दर्य की वृद्धभूमि दिखाई देती है, किन्तु केवल इसी आधार पर उन्हें उस काव्यधारा का प्रतिनिधि कवि नहीं स्वीकारा जा सकता।

आचार्य चिन्मयाथ प्रसाद मित्र के शब्दों में "साभाविक वस्तुओं को तोड़कर बीचन में स्वच्छन्द विवरण करने की वास्तवता ही स्वच्छन्दतावाद है।" 1 उस परिभाषा में केवल साभाविक वस्तुओं से चिद्रोह की बात पर जोर दिया गया है। आचार्य नन्द हुनारे बाजयेयी के अनुसार, "स्वातन्त्र्य की वास्तवता और वस्तुओं का त्याग रोमांटिक धरा के मूल में व्याप्त है।" 2 आचार्य बाजयेयी ने स्वच्छन्दतावादी कविता के लिए स्वतन्त्रता की वास्तवता और वस्तुओं का त्याग सर्वोपरि घतवाया है, उनका पुनः कथन है 'रोमांटिसिज्म' में वस्तु का उदात्त होना आवश्यक नहीं, साधारण से साधारण वस्तु में भी काव्यात्मिक चित्रण करने की क्षमता है, यह स्वच्छन्दतावादी मत है। रोमांटिक काव्य-प्रवृत्ति में चित्रण है

1. आचार्य चिन्मयाथ प्रसाद मित्र: हिन्दी का समतामयिक साहित्य, प्र० सं० : पृ० 45

2. 3. आचार्य नन्द हुनारे बाजयेयी : आधुनिक साहित्य: हि० सं०, पृ० 439-443

वस्तुओं की सीमा निर्धारित नहीं।''<sup>1</sup>

प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का ध्यान है, '' उन्नतवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी कवियों में एक अद्भुत उन्मुक्त भावधारा प्रकट होकर प्रकट हुई उसमें परिपाटी-विहित और परम्परामुक्त रस-दृष्टि के स्थान पर कवि की आत्मानुभूति आगे धारा और कल्पना प्राधान्य था। इस विशिष्ट दृष्टिकोण की प्रधानता को ध्यान में रखकर कुछ विद्वानों ने हिन्दी में इसे 'स्वच्छन्दतावाद' कहा।''<sup>2</sup> आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वच्छन्दतावादी स्वल्प को स्पष्ट करने में आत्मानुभूति आगे-धारा, व्यक्तित्व का प्राधान्य तथा कल्पना की उपस्थिति को स्वीकारते हैं। '' रोमांटिक साहित्य की वास्तविक उत्पत्ति भूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरत प्रवाह से मन-संश्लिष्ट निश्चित आधेरा की प्रधानता होती है। मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व-प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी हैं।''<sup>3</sup>

'' राष्ट्रीय अतीत तथा मध्ययुग से सम्बन्धित दृश्यों, घटनाओं एवं पात्रों का चित्रण, अमूर्त की अपेक्षा मूर्त की स्वीकृति प्राकृतिक दृश्यावली तथा तज्यनीय प्रकृत रागात्मक अद्भुत तथा विस्मय उत्पादक व्यापार आत्मा और परमात्मा स्वप्न तथा ज्योतन-यह सभी स्वच्छन्दतावादी साहित्य के प्रिय विषय रहे हैं।''<sup>4</sup>

डॉ० नामवर सिंह के शब्दों में, '' स्वच्छन्दतावाद प्राचीन लक्ष्यों से मुक्ति की आकांक्षा है।''<sup>5</sup>

1. आचार्य नन्द कुमार बाजपेयी: प्राचिन साहित्य : वि० १०, पृ० ५५३

2. डॉ० देवराज उपाध्याय: रोमांटिक साहित्य शास्त्र [भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : पृ० १

3. वही, पृ० ३

4. डॉ० मोन्द्र: मानसिक पारिभाषिक शोध [साहित्य सं०] पृ० 226-227

5. डॉ० नामवर सिंह : आकांक्षा : पृ० 15

डॉ० सिंह जी इस व्याख्या में प्राचीन रुढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा को ही स्वच्छन्दतावाद कहा गया है। डॉ० मोन्ट्ज़ का मत है, “स्वदेश-विदेश के अनेक ज्ञानोपयोगों का मत है कि सभी कविता मूलतः रोमानी और प्रगीतात्मक होती है। उनका तर्क है कि चेतना का स्वच्छन्द उन्मेष ही सर्वत्र प्रतिमा का सञ्जा है, और यही स्वच्छन्दतावाद का भी प्राण-सत्य है।”<sup>1</sup> प्रो० कैसरी कुमार ने इस तर्क में कहा है, “मनुष्य सृष्टि का अंग है, और सृष्टि का अंग भी। सृष्टि के त्व में वह देहधर्मी परतंत्रता है, सृष्टि के त्व में स्वतंत्रता का चेतन्य। लेकिन मनुष्य द्वारा की जाने वाली सृष्टियों में इस चेतन्य का भी एक स्तर नहीं होता। प्रजनन में वह नियति-विश्रुत नियम भर है, वस्तु गिन्नाई में मुक्तामुक्त यह साहित्य ही है जिसकी तर्जना में वह सर्व-तंत्र-स्वतंत्र होता है। पर उस स्वतंत्रता की भी, जिसके बिना साहित्यिक रचना नहीं होती, वो मूल प्रेरक चेतना होती है वह सृष्टि से जुड़ी बलिक उसकी एक प्रतिक्रिया ही है। इस प्रकार रचना प्रथमतः और अन्ततः एक सामाजिक प्रतिक्रिया है। यदि और मुक्ति के इस घोषन संभाषण के दर्शन का एक साहित्यिक नाम स्वच्छन्दतावाद है।”<sup>2</sup> डॉ० अजय सिंह का ज्ञान है, “स्वच्छन्दतावाद नवीन अनुभूति की भूमि पर पुरानी परम्पराओं और रुढ़ियों से विद्रोह कर, चेतन प्रकृति तथा लोक जीवन की अनुभूति को वाणी देता है।” नये काव्य त्यों, नयी शैलियों को पल्लवित एवं पुष्पित करता है। चेतन और अचेतन, विषय और विषयी, अन्तः और बाह्य, मानव और प्रकृति, दो विरोधी तत्वों का समन्वय

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : ॥ ग्रामुप ॥

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : ॥ साधु-राद ॥

भी करता है तथा इसकी दुनिया पूरी तरह से नयी होती है।<sup>1</sup>

डॉ० रामेश्वर साहू काउलवास के अनुसार, "हिन्दी

स्वच्छन्दतावाद या रोमांसवाद के मूलतत्त्व प्रायः वे वे ही ज़िंदगी की बातें हैं जो रोमांसवाद में प्राप्त होती हैं। अर्थात् लक्ष्मियों से मुक्ति, व्यक्तिगत जीवनानुभूति, स्वच्छन्द व समीप कल्पना, प्रकृति के प्रति गम्भीर प्रेम तथा उसमें घेना सत्ता का आरोप, अतीत और भविष्य के प्रति मानस-सम्बन्ध, सीद्दिता के स्थान पर लोभन भावना का प्राधान्य मुक्त छन्द विधान आदि।"<sup>2</sup> डॉ० काउलवास जी के इस मत में लगभग सभी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ समाहित होती हैं।

उपर्युक्त विद्वानों के मत से, यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी के स्वयं को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विशेषताओं की ओर ध्यान दिया है। लेकिन कुछ सामान्य तत्व भी उसको स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करते हैं। आकाशेन अन्य कल्पना प्रकृति स्वातन्त्र्य मानस आत्मपरकता, परस्पर विरुद्ध वस्तुओं एवं लक्ष्मियों का त्याग, व्यक्ति मन की निजी अनुभूतियों का अभिव्यक्तिपूर्ण, प्रकृति पर मानवीय घेना का आरोप, मानववाद की प्रतिकृति, लोक जीवन का चित्रण आदि तत्त्वों से मुक्त समन्वयात्मक दृष्टि से युक्त तरलतम शैली में व्यक्त भावों की अभिव्यक्ति ही स्वच्छन्दतावाद है, जिसमें परस्पर दो विरोधी तत्त्वों को समन्वित करने की चेष्टा रहती है।

1. डॉ० जयसिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ : पृ० 44

2. डॉ० रामेश्वर साहू काउलवास, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य : पृ० 325

## द्वितीय अध्याय :

स्वच्छन्दतावाद : माकगत वैशिष्ट्य

सर्वनात्मक कल्पना

अनुभूति

व्यक्तिवाद

मानववाद

विद्रोह, श्रान्ति और नवीनता

प्रेम

प्रकृति-प्रेम-देहा-प्रेम

अतीत प्रेम ॥ विशेषकर मध्ययुगीन ॥

तौन्दर्य

संस्कृति- लोक-संस्कृति

चित्तमय सपन रहस्यानुभूति

अवसाद-विषाद-वेदना भाव



## द्वितीय अध्याय

स्वच्छन्दतावाद : भावगत वैशिष्ट्य  
स्वच्छन्दतावाद स्वच्छन्दतावाद स्वच्छन्दतावाद

“ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ कवि की आन्तरिक अभिव्यक्ति हैं। अतः उन प्रवृत्तियों में आन्तरिकता एवं वैयक्तिकता की प्रमुखता है। कवि न केवल विचार सम्यन्धी रुढ़ियों तथा परम्पराओं के विरुद्ध होता है, बल्कि काव्यात्मक प्रेरणा में रुढ़ियों के प्रति वह विद्रोह करता है। ऐसी स्थिति में अनुभूतियों के बाहरी आसम्भनों की अपेक्षा कवि की आन्तरिक स्थितियों पर अधिक निर्भर करता है। वास्तव : स्वच्छन्दतावादी कला प्रचार में आत्मिक पक्ष की अभिव्यक्ति मुख्य है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी कला में व्यक्ति की स्वतन्त्रता, सामाजिक तथा राष्ट्रीय भावना तथा आन्तरिक संवेदना एवं अनुभूतियों की गहन अभिव्यक्ति होती है। विश्व के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी विचारक गेटे, वॉल्फे, गेली, कान्तिरिज, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सुमित्रा नन्दन पंत, जयकिशोर प्रसाद एवं महादेवी वर्मा आदि के कला की महानता की अभिव्यक्ति करने के लिए परम्परावादी नियमों को तोड़कर मानवीय संवेदना तथा सहानुभूति के प्रति अपने भावों अनुभवों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से की है। आत्मानुभूति उस अनुभूति की व्यंजना के लिए प्रगीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है। अनुभूति की ऐसी स्थिति में कवि की सर्वमात्मक कल्पना, अनुभूति व्यक्तिवाद, मानववाद, विद्रोह और नवीनता, सौन्दर्य, प्रेम, विस्मय और रहस्यानुभूति, विनाश एवं अस्तित्व प्रकृति प्रेम, संस्कृति एवं लोक संस्कृति आदि को अपने भाव-व्यंजना का आधार बनाता है।

सुखनात्मक कल्पना :

कल्पना को अंग्रेजी में 'इमेजिनेशन' कहते हैं। इसका

हिन्दी में शाब्दिक अर्थ 'दृष्टि करना' है। कल्पना शब्द कल्प धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ सामर्थ्य रहना है।<sup>1</sup> यथापूर्वमकल्पयत' कल्पना सुजन कवी शक्ति है, कवि प्रतीक्षा का अनिवार्य अंग है। कल्पना आज कन कैंसी और कैंटेसी शब्दों में प्रचलित है।

कल्पना हमें वैयक्तिक अनुभव के परे ले जाती है। कल्पना की सामग्री अन्य चिन्तन की भाँति अनुभव का पुनर्स्थापना चाहती है। कल्पना पूर्व अनुभव से प्राप्त किये गये तथ्यों को नये रूप में रखकर एक नये तत्त्व की रचना करती है।<sup>2</sup> 'कल्पना' आध्यात्मिक शक्ति है, जीवन के अपूर्ण स्थलों को भरने का सुन्दर तथा सर्वोच्च उपकरण है। कल्पना की आध्यात्मिकता में धियात रहने वालों के लिए कल्पना इतनी महत्वपूर्ण है कि वे उसके अभाव में कविता का अस्तित्व मानते हैं।<sup>3</sup> 'कल्पना को मस्तिष्क की सबसे प्रणवान *visual activity* क्रिया मानते हैं।<sup>4</sup> कल्पना उसके लिए एक मन्त्र है जो कवियों की अन्तर दृष्टि की शक्तियों को सक्रिय बना देता है।<sup>5</sup>

कल्पना कवि की आन्तरिक अनुभूति है। उसके अभाव में काव्य सुजना असम्भव है। वास्तव में सुजनात्मक कल्पना स्वच्छन्दतावादी काव्य की आत्मा मानी जाती है। डॉ० रामेश्वर लाल छन्देलवाल का कथन है, 'अंधी में दहकते अंगार के समान जागृत कल्पना नई-नई विचार भावमयियाँ तोड़ती है, अभिव्यक्ति की सी-सी नई भूमियाँ का आविष्कार करती है और अवाच्य-अज्ञात मनोबोहों को लीज निहालने का होतला दियाती है। कल्पना का यह उन्मेष कवि के जीवन व अन्तर्मन की स्फूर्ति व नई दृष्टि का ही परिणाम है।'<sup>6</sup>

1. The Romantic Imagination: P. 1 : C. H. Dowse,

2. वही, पृष्ठ 3

3. वही पृष्ठ 12

4. डॉ० रामेश्वरलाल छन्देलवाल : समीक्षा के साक्षात्कार : पृष्ठ 51

पाश्चात्य कवियों तथा आलोचकों ने कल्पनात्मक कल्पना को नया दृष्टिकोण दिया है। वर्तमान, कल्पित, छले, रिपर्स, अस्तु, लोकात्मक दृष्टि, प्राप्ति, स्थान, कौट, रोलिंग आदि कवियों ने कल्पना को सबसे बहुमुखी वस्तु माना। उनमें से कल्पित ने कल्पना को काव्य की संज्ञात्मक और आलोचक शक्ति कहा। कल्पित के अनुसार, ' ' कल्पना अनेकता की वृत्तमूर्ति में विद्यमान रहता है जो धीरे धीरे होती है। यह वह तत्त्व है जो पदार्थ और मन को पार्श्व भूमि में विद्यमान रहता है, वह प्रकाश है, जो पदार्थ, मन और शक्ति को परिचालित करता है एवं अवस्थायी शक्ति से मिलती है। ' '।

कल्पना के द्वारा धूमिल अतीत चित्रण कथानक की कड़ियों को जोड़कर व्यवस्थित कथानक का निर्माण होता है। पात्रों की चरित्र कल्पित में भी कल्पना प्रयुक्त होती है। इतिहास में से उतारे गये पात्रों का अमूर्त चरित्र कल्पना के द्वारा ही पूरा किया जाता है। भावों, विचारों को मूर्तत्व देने हुए उनका पात्रों के रूप में प्रस्तुत करना भी कल्पना का ही काम है। संवादों में भी कल्पना का प्रयोग होता है। वस्तु-वर्णन, व्याप्ति-वर्णन अथवा अवस्थान की रूप प्रतिकृति भी कल्पना का ही व्यापार है। वस्तुतः कल्पना से कुछ भी छाली नहीं है, यहाँ तक कि वस्तु जगत में जो कुछ हम देखते हैं वह भी हमारी भीतरी कल्पना की ही प्रतिकृति है।<sup>1</sup> कल्पना और यथार्थ के समन्वित रूप का व्यापक उत्कृष्ट कविता की आत्मा है। कल्पना के अभाव में कविता का सर्वत्र संभव नहीं है। कल्पना-प्रभु तब सर्वत्र वास्तविक जगत द्वारा प्रस्तुत घटना-क्रम की अनुकूलि मात्र होता है। प्रत्येक देश तथा क्षेत्र की एक सांस्कृतिक परम्परा होती है। उसी भावनाएँ, शब्दावली, सर्वनाम के रूप विम्ब, प्रतीक, मिथ्य एवं प्रतीक आदि होते हैं। कवि

1. डॉ० राम अयोध हिरेदी : अंग्रेजी भाषा और साहित्य:पृ०119

2. J.N.Doss Supto : Fundamentals of Indian Art:194

अपनी सांस्कृतिक चेतना को जीव नहीं सकता, बल्कि उसके पास यदि दृष्टि और विचारधारा है तो वह उस परम्परा को बढोरकर भी उसमें नवीनता का स्पर्श दे सकता है। यह कार्य कवि अपनी कल्पना-शक्ति से करता है।''<sup>1</sup>

वर्तमान ने कल्पना को आत्म चेतना का प्रतिफल मानते हुए उसे समस्त ज्ञान एवं अनुभूति का आधार धरलाया है।''<sup>2</sup> वेबस्टर के अनुसार कल्पना एक चित्र विधायिनी शक्ति है। इस कल्पना शक्ति के द्वारा व्यक्त पूर्व प्रत्यक्ष वस्तुओं अर्थात् पूर्वानुभूति प्रत्ययों या भाव-स्थितियों का पुनर्भाषन करता है।''<sup>3</sup> अरस्तु ने कल्पना को मनोवैज्ञानिक परिवार में परिभाषित किया। अरस्तु के कल्पानुसार साहित्य को कल्पनात्मक पुनर्निर्माण का क्षेत्र है, जिसमें वस्तु जगत के आधार पर प्रकृष्ट के निगूढतम अवचेतन के भाव, आकांक्षाओं, स्मृताओं, स्वप्नों व आकाशों की कृप्ति या तिरिद्धि के लिए नवीन व समजीव माननी दृष्टि का निर्माण होता है, यह निर्माण मुख्यतः एक रहस्यमयी आन्तर शक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है, जिसे 'कल्पना' कहते हैं।''<sup>4</sup>

जमिनी, एलेक्स की यह अवधारणा है कि सर्वनात्मक कल्पना मस्तिष्क की क्रिया से उत्पन्न होती है। इनका कथन है, 'कल्पना, मानसिक अनुभूतियों, मानसिक विषय, स्मृति और मनोचिन्म की अनेक ततहों पर निर्भर रहती है।''<sup>5</sup> लोक की मान्यता थी कि कल्पना का संसार अनन्त और दिव्य है तथा वास्तविक जगत् नाश्वर है।''<sup>6</sup>

1. डॉ० अरुण सिंह : नवसंस्कृततावाद : पृ० 92

2. Wordsworth, Poems : p. 917

3. Webster's : New World Dictionary of the American Language, p. 725

4. डॉ० प्रमोद वर्मा : अंग्रेजी की स्वच्छन्द कविता : पृ० 63

5. John C. Eccles : The Physiology of Imagination : p. 141

6. G.M. Cowan : The Romantic Imagination, p. 4

कवि ने कल्पना का सम्बन्ध बुद्धि से जोड़ा है, जिसके द्वारा अनुभूति मूलक विचारों की योजना को सौन्दर्य बोधात्मक कल्पना आगे बढ़ाती है। कल्पना को कृति की मूलवर्ती प्रेरणा के रूप में स्थिर करते हुए उन्होंने उसके रचनात्मक, सौन्दर्यापेक्षक और पुनर्रचनात्मक भेद किए।<sup>1</sup>

साहित्य का मानव ज्ञान के विधि क्षेत्रों से पृथक् स्वतन्त्र व व्यक्तित्व स्थापित करने वाले जितने भी तत्त्व हैं, उनमें कल्पना का स्थान सर्वोच्च है। कल्पना समन्वय और विचार चित्र के विश्लेषणा के प्रसंग में कविने कल्पना के स्वतन्त्र को स्पष्ट करते हुए दो महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। कल्पना आत्मा की अन्ध किन्तु अपरित्याज्य क्रिया है और कल्पना वह शक्ति है, जो उस अदृश्य वस्तु को भी जिसका गहरा प्रत्यक्ष का संबंध सम्पर्क प्राप्त नहीं है, सहजानुभूति का अंग बना देती है।<sup>2</sup>

भारतीय विद्वानों ने 'कल्पना' के संदर्भ में अपने मत इस प्रकार व्यक्त किए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके समोच्च का अनुभव करना ही उपासना है। साहित्य वाले इसी को भावना कहते हैं और आज हम के लिये कल्पना।"<sup>3</sup>

श्री बाल कृष्ण भट्ट के कथनानुसार, 'मनुष्य की अनेक मानसिक शक्तियों में कल्पना शक्ति भी एक अद्भुत शक्ति है। यद्यपि अभ्यास से यह अधिक शक्तिशाली अधिक हो सकती है, पर इसका सूक्ष्म अंकुर किसी-किसी के अन्तःकरण में आरम्भ से ही रहता है, जिसे प्रतिभा के नाम से पुकारते हैं और जिसका कवियों के नेत्रों में पूर्ण उदगार देखा जाता है।"<sup>4</sup> डॉ० श्यामसुन्दर दास के शब्दों में, "मन की एक विशेष क्रिया

1. J. Croce : Aesthetic : p. 171

2. Commentary to Kant's Critique of pure reason, Norman Kempster Macmillan, London, p. 112, 166, 162

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : रस मीमांसा, पृष्ठ सं० पृष्ठ 21

4. श्री बाल कृष्ण भट्ट : साहित्य सुमनः पृष्ठ 113

के स्मरण शक्ति द्वारा संचित अनुभवों को विमिश्रित कर और फिर उनके पुनः-पुनः भागों को छिन्नानुसार जोड़कर हमने मन में एक नवीन व्यक्ति की रचना कर ली जिसका अस्तित्व वास्तव जगत में नहीं है, परन्तु जिनका वास्तव जगत, से स्वतंत्र चित्र हमारे मन में रहता है। मन की इसी प्रक्रिया को कल्पना कहते हैं।<sup>1</sup>

भारतीय साहित्य में कल्पना का महत्त्व मुद्देस रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने साहित्य में व्यक्त किया। उनका कथन है, 'जिस प्रकार भौतिक वातावरण की विसंगतियों का अनुशासन प्रकाश के द्वारा होता है उसी प्रकार मनुष्य के मानसिक परिवेश के विचाराव का अनुशासन कल्पना के हाथों होता है। कल्पना हमारे भीतर सोए हुए 'समष्टि मानव' को जागृत करती है और जीवन के विहरे तथ्यों को एक दर्शन के सूत्र में पिरोकर संघटित करने में हमारी सहायता करती है।'<sup>2</sup> सुखी महादेवी वर्मा ने 'छन्दा' में कहा है, 'कलाकार यदि सत्य अर्थों में कलाकार हो, तो वह कल्पना के सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रंग भरेगा और उससे जीवन-संगीत की सुरीली लय को सृष्टि कर लेगा।'<sup>3</sup> डॉ० नोन्ड ने इसे आधुनिक शब्दावली में अभिव्यक्त किया है, 'एक प्रकार से अचेतन दशा में जो स्वप्नावस्था है, वही चेतन दशा में कल्पनावस्था समझनी चाहिए।'<sup>4</sup>

'' कला दर्शन में कल्पना शब्द उस सम्पूर्ण प्रक्रिया का पौक है जो काव्य सृष्टि में आदि से अन्त तक व्याप्त रहती है। कल्पना का मूल ज्ञान अनुभूति है और उसकी परिणति है— काव्य की स्वात्मक

1. डॉ० जयाम सुन्दर दास : साहित्यालोचन : तेर वाँ सं० पृ० 1931

2. Ravindra Nath Tagore : The Religion of an Artist, 14

3. महादेवी वर्मा : छन्दा : पृ० 128

4. डॉ० नोन्ड : आस्था के चरण : पृ० 115

अभिव्यञ्जना । इस प्रक्रिया में गतिमान तत्त्व अनुभूति है और इस प्रकार कल्पना अनुभूति से अभिव्यञ्जना तक विस्तृत है।<sup>1</sup> डॉ नामवर सिंह का कथन है, 'चिन्ता की तीव्रता चिन्ता के मन में एक सुखी शक्ति को जन्म देती है, जिसके द्वारा मन उस वस्तु के अन्तस्थल में प्रवेश करता है। इस शक्ति का नाम है कल्पना।'<sup>2</sup> डॉ केदार नाथ सिंह ने कल्पना के संदर्भ में कहा है, 'कल्पना का महत्त्व कार्य है। इसी के संपर्क से किसी कलाकृति में जीवन आता है तथा पुरानी वस्तुओं में नया सौन्दर्य उद्भासित होता है। इसी के द्वारा कला में वह संगम आता है जिसको विवेक अथवा तर्क से पाना असंभव है।'<sup>3</sup>

स्वच्छन्दतावादी काव्य में कल्पना के साथ-साथ ललित कल्पना का प्रयोग कृता होता है। अंग्रेजी में इसे 'फैन्सी' कहा गया है। इसका हिन्दी अनुवाद स्वच्छन्दतावादी विद्वान डॉ नगेन्द्र ने 'ललित कल्पना' पद के प्रयोग में किया है। जो सर्वथा उचित है। कल्पना सुष्ठु विधापिनी कल्पना है तो 'फैन्सी' आरोप विधापिनी कल्पना है तो 'फैन्सी' आरोप विधापिनी अथवा संगठनात्मक कल्पना है।

बॉगारिय ने कल्पना एवं ललित कल्पना पर विस्तार पूर्वक वृष्टि डाली है। 'कल्पना वह शक्ति है जो विचारों और भावों को सामंजस्यपूर्ण रूप देती है और ललित कल्पना इसे ठाढ़ करती है, वह 'स्थिरता' और 'निश्चयता' के साथ झोझा करती है। वह स्मरण की एक ऐसी अवस्था है जो देश और काल के बन्धनों से मुक्त होती है।'<sup>4</sup> वर्तमान, ईनी आदि ने ललित कल्पना पर विवेक का अनुशासन आवश्यक माना है, कल्पना जब विवेकत्व से रहित होकर अनापुष्ट रूप में सामने आती है तो वह ललित कल्पना कहलाती है। परन्तु: विवेक

1. आचार्य नन्द दुलारे वाखणेयी : नए साहित्य नए प्रश्न : पृ० 146

2. डॉ नामवर सिंह : छायावाद : पृ० 82

3. डॉ केदार नाथ सिंह : कल्पना और छायावाद : पृ० 26

4. Coleridge on imagination, p. 72

विवेक चेतना-वस्था है और चेतना बुद्धि और हृदय के संघर्ष से उत्पन्न होती है। कॉलरिज ने इसे इस प्रकार व्यवस्थित किया, 'यदि ललित कल्पना और कल्पना, दोनों पर से चेतना और तर्क का नियंत्रण उठा लिया जाय तो पहली सन्निपात की दशा में पहुँच जायेगी और दूसरी सनक की दशा में।'।

वस्तुतः कल्पना मानव की वह उर्जा है जो बाहरी जगत् से समन्वय कर बिम्बों का रूप देती है, तथा 'फैंसी' वह चंचल, चपल, चुलचुली सृजनात्मक प्रक्रिया है जो हृदय में चुपके से घुसकर, वस्तुओं का स्वागत करती है। आलोचना से परे जो भी साहित्य सृजन किया जाता जाता है उसमें कल्पना एवं ललित कल्पना प्रधान होती है। ब्रह्मवर्ध ने ललित कल्पना को एक ऐसे सादृश्यविधान का नाम दिया था जो गम्भीरता के अभाव में संघटित होता है।

भारतीय मनीषी 'मुक्तिबोध' ने ललित कल्पना के संदर्भ में कहा है, 'कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव-क्षण दूसरा-क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैंटेसी अपनी आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैंटेसी के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्ण-वस्था तक की गतिमानता। शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया की भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैंटेसी अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह फैंटेसी अपने मूल रूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है। जिस फैंटेसी को शब्द-बद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है वह फैंटेसी अपने मूल रूप से इतनी अधिक दूर चली जाती है कि यह कहना कठिन है कि



कैटेसी का यह नया रूप अपने मूल रूप की प्रतिकृति है। कैटेसी को शब्द-बद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो-जो सुझाव होता है—वितर्क कारण वृत्ति क्रमशः विकसित होती जाती है—वही कला का तीसरा और अन्तिम धारा है।<sup>1</sup> वस्तुतः जब-जब व्यक्ति कल्पना को शब्द-बद्ध करने की प्रक्रिया शुरू होती है, तभी उसके अंतर्गत रंग घुलने लगते हैं। व्यक्त करने के दौरान प्रकट करने की प्रक्रिया में व्यक्ति कल्पना बढ़ाने जाता है। 'सुखितबोध' का पुनः कथन है, 'कैटेसी' अनुभव प्रसूत होते हुए भी अनुभव विमिश्रित होती है। इस कैटेसी में वस्तुतः एक भावनात्मक उद्देश्य समाया रहता है। उसमें एक संवेदनात्मक दिशा रहती है। कैटेसी के भीतर यह दिशा और उद्देश्य उस कैटेसी का धर्म-प्राण है।<sup>2</sup> डॉ० नालन राय का इस संदर्भ में मत है, 'कैटेसी' एक भाववादी शिल्प है, लेकिन उसमें मयार्थवादी दृष्टि को भी सम्मता पूर्वक ध्यस्त किया जा सकता है।<sup>3</sup>

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कल्पना का विकास धैर्यशील परिस्थितियों में होता है और व्यक्ति कल्पना मानसिक दृष्टि परिवर्तन के थोड़े से प्रयास मात्र से उग आती है। बहुत सवें चेतन के बीच की दूरी को कम करना कल्पना की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, उपलब्धि है। व्यक्ति कल्पना 'विश्रुता' और 'निश्चितता' के साथ खीटा मग्न रहती है, वह स्मरण की उस अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जो देखा और जान के घन्टों से स्वच्छन्द रहती है। व्यक्ति कल्पना द्वारा संकलित विषय स्थिर और निश्चित तो होते हैं किन्तु वे विवृण्वित होते हैं। कल्पना जब तर्क और विवेक का अधिकार छोड़ने लगती

1. गजानन माधव 'सुखितबोध' : एक साहित्यिक की टायरी : पृ० 18

2. गजानन माधव 'सुखितबोध' : एक साहित्यिक की टायरी : पृ० 22

3. डॉ० नामवर सिंह : शैक्षणिक आलोचना : जुलाई से दिसम्बर 1980 :

है, तो यह तबित कल्पना का रूप धारण कर लेती है। वस्तुतः कल्पना मानसिक व्यापार है। कल्पना के माध्यम से मन की आन्तरिक वृत्ति से लेकर विषय नियन्त्रा की शक्ति तक आभासित हो उठती है। किसी भी वस्तु के निर्माण अथवा शिल्प के निर्माण के लिए कल्पना का होना अनिवार्य है। यह अपनी उपस्थिति से उसमें रंग-धरंगे रंगों से सराबोर कर देती है। वस्तुतः कल्पना सुम्बलीय आकर्षण है। यह एक पक्षे वृत्ति के समान है और तबित कल्पना उसकी असंख्य छातों एवं पक्षों के समान है जो मस्तिष्क में तरङ्ग-तरङ्ग के रंग बदलती है। यदि आत्मिक हो और विस्तृत किया जाय तो जहाँ जा सकता है कि कल्पना अंग है और तबित कल्पना अंगी। दोनों में अंगीगति सम्बन्ध है। न तो तबित कल्पना के बिना कल्पना काव्य को अमूर्त कर सकती है, न कल्पना के बिना तबित कल्पना किसी कृति को सम्पूर्णता प्रदान कर सकती है। वस्तुतः 'कल्पना स्वच्छन्दतावादी कविता की मूल धेतना कही गयी है। इसी के द्वारा कवि या साहित्यकार स्वच्छन्दतावादी धरातल का निर्माण करता है।'।

### अनुभूति :

अनुभूति मनोविज्ञानिक प्रक्रिया है। मनोविज्ञान के अनुसार यह एक आन्तरिक क्रिया है जो इन्द्रियजनित है। यह संवेदना से उत्पन्न होती है। इस प्रकार अनुभूति ऐन्द्रियिक और तरल प्रक्रिया है। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों में अनुभूति का विशिष्ट स्थान है। अनुभूति में प्रसन्नता, सुख, दुःख, प्रेम तथा घृणा आदि भाव निहित हैं जो किसी भी बाहरी वस्तु के गुण-अवगुण को अभिव्यक्ति अनुभूति के द्वारा कराते हैं।

अनुभूति में निम्नलिखित तत्त्वों का समावेश है वह वस्तु जो अनुभव का विषय है §28 विषयी या आत्मा जो अनुभव करती है §29 विषय और विषयी के संघात से उत्पन्न संवेदन। अनुभूति के निर्माण में इन तत्त्वों का संयोग होने के कारण उसके स्वतन्त्र और वैशिष्ट्य में अंतर्गत श्रेष्ठों का होना स्वाभाविक है, परन्तु काव्यात्मक अनुभूति अत्यन्त उच्चस्तर का अनुभव होने के कारण बहुत कुछ सभरत और समस्य भी हुआ करती है। उसमें देहाकार के अनुसार गतिशीलता का तत्त्व भी होता है और मानवात्मा की विकासवस्था के अनुसार उसमें व्यापकता और वैशिष्ट्य की भी मात्राएं रहती हैं।''<sup>1</sup>

आचार्य नन्द हुनारे बाबूयेयी का कथन है, '' वह वस्तु जो कल्पना के विविध अंगों और मानस छवियों का नियमन और सन्तुलन करती है, अनुभूति कहलाती है।''<sup>2</sup> इस संदर्भ में डॉ० नामवर सिंह का कथन प्रस्तुत है, 'अनुभूति एक रचनात्मक क्रिया है। अपने जीवन और परिस्थितियों को बदलने के क्रम में हमारी अनुभूतियाँ भी बदलती चलती हैं — उनमें नवीनता आती है। अनुभूति वास्तविकता नहीं बल्कि वास्तविकता सम्बन्धी मशयना है इसीलिए वह वास्तविकता का एक अंग अथवा पहलु है। अनुभूति वास्तविकता की जगह नहीं ले सकती, उसकी सामर्थ्यता इसी बात में है कि वह वास्तविकता को रचनात्मक रूप दे सके।''<sup>3</sup> डॉ० जय सिंह को मान्यता है, '' अनुभूति चित्रकला का प्रतीक है, जो काल्पनिक अनुभव को प्रस्तुत करती है परन्तु: कलाकार की परिचल्यना ही अनुभूति है।''<sup>4</sup>

- 
1. आचार्य नन्द हुनारे बाबूयेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न : पृ० 147
  2. आचार्य नन्द हुनारे बाबूयेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न : पृ० 146
  3. डॉ० नामवर सिंह : इतिहास और आलोचना : पृ० 65-66
  4. डॉ० जय सिंह : आधुनिक काल की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ : पृ० 17

परन्तुतः अनुभूति की अभिव्यक्ति वैयक्तिकता प्रधान है। कविता में कवि की तन्मयता के परिणामस्वरूप वैयक्तिकता ही धारा प्रवाहित होने लगती है। कविता की भाषा सरल और सुधीय होने चाहिए तभी सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति सम्भव हो सकती है। कॉलरिज का कथन है, "कविता की भाषा सरल हो वह अधिक शास्त्रमिष्ठ हो तथा हृत्ते भी अधिक उत्तरी तादगी हो।" <sup>1</sup> कॉलरिज की कविता 'बुधवाँ छाँ' की भाषा सरल तथा तादगी की हुई है। <sup>2</sup> 'होरो रोमॉटिक' में लोकोत्तों की लय तथा वातावरण की ठण्ठी अभिव्यञ्जना हुई है। कविता लोक-कविता से तन्मयिष्ठ है। कविता के विषय का संकेतन जन-साधारण का आख्यान है, जैसे: गेरिया, मछली मारने वाला, मित-भावति, मायाधर, अतपन प्रेमी तथा पात्री, अपरिणीता कन्या जो चर्चा बना रहती है, माँ जो अपने बच्चे के हिंसोने के पास ऐं-ऐंसे विषय की अभिव्यक्ति का माध्यम 'विमेष' को बनाया गया जो लोक-गीत की शैली तथा अभिव्यक्ति को लिए हुए है। कविता में जन-जीवन का अंश प्रगीतों के द्वारा होने लगा। 'होरो रोमॉटिक' के गीतों की तुलना वर्तमान की कविताओं से की जा सकती है। वर्तमान ने 'दी सोनटिरी रीपर', 'ए लीव गेदर', एन जोन्ड कुवर रीडिंगर' को अपनी कविता का विषय बनाया, ठीक ऐसे ही साधारण लोगों की अभिव्यञ्जना हो जो रोमॉटिक के कविता का विषय बन गयी है। वर्तमान का कथना है, 'कविता मानव तथा प्रकृति की छाया है।' <sup>3</sup> इस प्रकार अनुभूति वर्तमान के लिए एक साधन है जहाँ से मानव

1. Coleridge : Table Talk : 31 May. 1930

2. L.R. Frost, Romanticism in perspective quoted on page. 242

3. Preface to lyrical ballads in poetical work. p.p. 11396

हृदय को सम्प्रेषित किया जाता है, जो वास्तविक सत्य है और उनकी कविता की वास्तविक लोच है।<sup>1</sup>

वर्तमान की कवितारें जन-जीवन तथा लोकगीत की धुन के साथ अभिव्यक्त होती रही हैं। वर्तमान की 'दी सोनीटरी रीपर'<sup>2</sup> तथा एन जोन्स कुपर मैड कैपर<sup>3</sup> में स्वच्छन्दतावादी मनोवैज्ञानिक स्वार्थ तथा जन-जीवन की सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति का दृष्ट है। वर्तमान ने 'दी सोनीटरी रीपर' में एक ग्राफीक तरीके को प्रस्तुत किया है, जो खेत काट रही है, साथ ही साथ गीत भी गा रही है।

सारतया यह कहा जा सकता है कि स्वभाव एवं प्रकृति की दृष्टि से अनुभूति के दो पक्ष हैं — सुखात्मक अनुभूति और दुखात्मक अनुभूति। मानव का अनुभूति क्षेत्र सुख-दुःख के तटों के मध्य सिमटा रहता है और मानव मन सुख-दुःख की अनुभूति से स्पन्दित हो उठता है, जिसकी अभिव्यक्ति स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत होती है।

कवि या लेखक को, अपनी अनुभूति को अपने समस्तानयिक जीवन, परिवेश के साथ मिलाकर प्रस्तुत करना चाहिए। तभी उसकी सर्वना सफल होगी। अपनी रचना को आत्मिक अनुभूति एवं परिवेश के साथ उसकी वास्तविक अनुभूति प्राप्त कर कलात्मक रूप में आकलन करना चाहिए। इससे नयी भाषानुभूति में ताजगी, नवीनता होगी। जिसमें कवि को चेतना एवं वाह्य जगत की एवनि प्रतिबिम्बित होगी।  
 " अनुभूति वास्तविकता नहीं, बल्कि वास्तविकता सम्बन्धी भावना है।  
 इसीलिए यह वास्तविकता का एक अंग अथवा पक्ष है। अनुभूति वास्तविकता की जगह नहीं ले सकती, उसकी सार्थकता इसी बात में है कि वास्तविकता को रचनात्मक रूप दे सके। " 4

1. L.R. Frost : Romanticism in perspective: p.264

2. Ibid : p.264

3. Ibid : 264

4. डॉ० रामवर सिंह : इतिहास और आलोचना : पृष्ठ 44

महान कवि या लेखक सुवनात्मक अभिव्यंजना में अनुभूति एवं परिष्कार को मिला देता है। यही कारण है कि सभ्यता के विकास के साथ मानवीय अनुभूतियों का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है और अनुभूतियों के विस्तार में परिवेश पथार्थ जीवन एवं वास्तविकता पर काफी वल दिया जा रहा है। अनुभूति एवं परिवेश के मिलन-धिन्दु पर ही सच्ची कविता उभरती है।<sup>10</sup>

### व्यक्तिवाद :

अंग्रेजी के 'इंडिविजुअलिज्म' का हिन्दी अनुवाद व्यक्तिवाद है। अंग्रेजी में इस शब्द का प्रचलन 'पर्सनल' शब्द के बदले होता है, जो आत्मपरक शब्दार्थ को व्यक्त करता है। सर्व प्रथम इसका प्रयोग 'आक्सफोर्ड शब्दकोष' के अनुसार 'इंडिविजुअलिज्म' शब्द का अंग्रेजी में प्रयोग किया गया।<sup>11</sup> हेनरी रीयस ने 'इंडिविजुअलिज्म' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'इगोटिज्म' के बदले में किया है। 'इगोटिज्म' जिस मानसिक दृष्टिकोण और जिन नैतिक प्रतिमानों का प्रतीक था, 'इंडिविजुअलिज्म' शब्द उनसे कहीं अधिक संयत मानसिक दृष्टिकोण और कहीं अधिक विस्तृत नैतिक मानदंडों का प्रतीक है। 'इगोटिज्म' के अनुसार हर एक व्यक्ति के प्रत्येक कार्य का लक्ष्य है, उसका सम्पूर्ण स्नेह, समूचा लगाव अहम् के व्यक्ति सम्पर्क से ही है। अतिस्वार्थवादी प्रवृत्तियाँ ही उसकी प्रेरणाशक्ति हैं। परन्तु 'व्यक्तिवाद' उस मानसिक दृष्टिकोण का सूचक है, जिसके अनुसार व्यक्ति समष्टि से अलग तो दिखता है परन्तु वह घोर स्वार्थवादी मनोवृत्तियों के आवेग में अपने अहम् के प्रति सम्पूर्ण स्नेह और लगाव नहीं रखता।

कुछ देशों में व्यक्तिवाद का भावनात्मक आधार जन-तांत्रिक सिद्धान्त है।<sup>1</sup>

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति व्यक्तिवाद तीन प्रान्तियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई। अमेरिका का स्वातन्त्र्य संग्राम, औद्योगिक प्रान्ति तथा फ्रांसीसी राज्य प्रान्ति। फ्रांस की राज्यप्रान्ति में 'व्यक्तिवाद' जन-समाज के निरुद्ध दिवार्द्ध दिया, जो अठारहवीं शताब्दी की देन है। उसके पूर्व 'व्यक्तिवाद' अग्रत्यय रूप में धर्म और नीति में प्रवर्तमान होता रहा है। वास्तविक व्यक्तिवाद का जन्म स्वातन्त्र्य संग्राम, परम्परा और लड़ियों से विद्रोह की पूर्णतन्त्रि में होता है।<sup>2</sup> इन दो देशों के व्यक्तिवाद के अतिरिक्त दूसरी साहित्य के व्यक्तिवाद में अधिकांश व्यक्त करते हुए डॉ० क्लेमेंट नारायण सिंह पाठ्य है, "जो व्यक्तिवाद एक नए समाज द्वारा स्थापित अनुस्यता के विना विद्रोह था। यह व्यक्तिवाद व्यक्ति के उन गुणों पर धन न देकर जो कि उसके साधियों के अनुस्य है, उन गुणों पर जोर देता है जो कि उसके समाज के अन्य लोगों के अनुस्य नहीं है। व्यक्ति की अद्वितीयता में विधान साहित्य के लिए मुख्यमान होता है : यह निजी आवेग का प्रगीत रूप सजता है, आत्मरक्षा या अन्य किसी रूप में व्यक्तित्व की मुक्ति अभिव्यंजना कर सजता है।"<sup>2</sup> फ्रांस की राज्यप्रान्ति ने समस्त देशों में जनवादी विचारधारा पर मानवतावादी विचारधारा की जन्म दिया। मानवतावाद व्यक्तिवाद का व्यापक रूप माना जाता है। व्यक्तिवाद स्वच्छन्दतावादी काव्य का मूल संदेश है। इसमें कवि समाज की लड़िकादिता से विद्रोह कर अपने आत्मत्व को काव्य के माध्यम से व्यक्त करता है। यह शास्त्रीयतावाद की मुख्य समझ, अपनी हृदय और अपनी लय को ही ठेकठ समझता है, उसमें अलम्बादी विचारधारा पल्लवित और पुष्पित होती है। व्यक्तिवाद के प्रबन्ध-काव्य का नायक एवं

1. श्री डॉ० पीरेन्द्र कर्मा : हिन्दी साहित्य कोश-भाग-1, दिल्ली 800

2. डॉ० क्लेमेंट नारायण सिंह: अग्रुह काव्य की संतुति में : पृ० 86

केन्द्रित व्यक्ति होता है और गीति-साध्य में कवि अपनी उदात्ती, निराशा, वेदना तथा पीड़ा की अभिव्यक्ति करता है। इस साध्य में बुद्धिबद्ध के स्थान पर व्येदनशीलता, आदर्शमयता का बाहुल्य होता है। वह अस्था की भावना में भ्रमण करता है और स्थूल से अधिक सूक्ष्म को महत्त्व देता है, उसमें गहन अनुभूति होती है। स्वच्छन्दतावादी कविता वैयक्तिक अनुभूति तथा आत्मपरकता पर विशेष बल देती है, उसके अभाव में स्वच्छन्दतावादी कविता रोमांटिक परात्म से पृथक् होती दिखाई देती है। ती०एम० बोरा ने स्वच्छन्दतावाद कतिपय कारणों की ओर संकेत किया है, "स्वच्छन्दतावाद वैयक्तिक अनुभूतियों पर इतना अधिक बल देता है कि इससे एक दोष तो यह उत्पन्न होता है कि साहित्यकार बाह्यजगत को विस्मृत कर केवल अपनी दुनियाँ तक ही सीमित हो जाता है। १. अपनी प्रतिनिधि को दूसरों पर थोपने का आकांक्षी हो जाता है। जिससे जगत् के धर्म में ग्राह्यता की निराली उत्पन्न हो जाती है। स्वच्छन्दतावादी केतना से अधिक स्वच्छन्दता मिल जाती है। तो यह निष्पत्ति का कार्य करती है।"

जार्जफोर्ड लिबनरी के अनुसार मानव जीवन में उसका व्यक्तित्व और अपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। समाज और राज्य की अवस्था व्यक्ति के अधिकारों को अधिक महत्त्व प्रदान करना ही व्यक्तिवाद है।<sup>2</sup> समाज स्वतन्त्र व्यक्तियों का संगठन है। व्यक्ति

1. Collingwood : The Romantic Imagination, p. 275

2. Individualism is defined in the Oxford dictionary as the tendency to regard oneself as the paramount interest in one's life. egoism, social doctrine which emphasizes the right of individuals rather than those of society and of the state as a whole, quoted on page 59, Romanticism in perspective : L.R. Froese, New York, 1960



स्वतन्त्र जन्मा है और स्वतन्त्र ही रहना चाहता है। उसके अधिकारों और स्वतन्त्रता पर सामूहिक शक्ति तथा राज्य शक्ति का सम्पूर्ण प्रतिबंध रहना नैतिक नहीं है। संसार का प्रत्येक व्यक्ति अधिकारों, स्वार्थों और मूल्यों को भली-भाँति समझता है। समाज के द्वारा यह कार्य सम्भव नहीं। अतः लोक के आधार पर सामाजिक बन्धन, परम्परागत रीति-रिवाज, सामूहिक संस्कार और उनकी मान्यताएँ निर्झुटा होकर व्यक्ति पर शासन नहीं कर सकती। व्यक्ति मूलक व्यापारों का साम्य व्यक्ति का हित है और उसका सम्मान प्राप्त व्यक्ति है। कविता की रचना करते समय कवि अपनी चेतना का उपयोग करता है। रचना प्रक्रिया में कवि की पूरी मानसिकता उभरती है। अतः कविता में वैयक्तिक भूमिका का रहस्य कवि की सामाजिक चेतना में निहित होता है। इस काल्पनिक पुनर्जन्म के अन्तर्गत वैयक्तिक अनुभूतियाँ एवं सामाजिक परिवेश से प्रसूत प्रवृत्तियाँ अपना रूप निर्मित करती हैं।<sup>1</sup>

व्यक्तिवाद के सम्बन्ध में समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह सिद्ध किया है कि समाज की ऐसी सर्व-व्यवस्था होगी, साहित्य का स्वयं भी सर्वोत्तम गठित होगा। जिस प्रकार पूँजीपति विनियम और बाजार के क्षेत्र में हमलों का शोषण करता है, उसी प्रकार कृषाकार का भी शोषण होता है, और वह समाज से संघर्ष न करके कल्पना के साहचर्य से प्रकृति के सम्पत्तियों में विचरणा करता है। इस प्रकार परम्परा और कदियों के विरोध में स्वतन्त्रता और आत्मसुखित को प्राप्त करने का साधन है।)

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्व व्यक्ति के दायों, व्यवहार : के त्यों, रुचियों, अभिवृत्तियों सामर्थ्यों, योग्यताओं और अभिवृत्तियों का सबसे संकलन है।<sup>2</sup> गार्डन आसपोर्ट का कहना है, " व्यक्तित्व व्यक्ति

1. डॉ० अश्व सिंह : नवसंस्कृतवाद : पृ० १८

2.

Munn, N. L. Psychology 1953. p. 239

के भीतर उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो परिष्कृत के प्रति होने वाले उसके अपूर्व अभियोजन का निर्णय करते हैं।<sup>१</sup> इस प्रकार व्यक्तित्व सामाजिक स्थितियों की पृष्ठभूमि में किसी व्यक्ति की संरचनाओं, व्यवहार के रूपों, रुचियों मनोवृत्तियों, योग्यताओं, क्षमताओं और पात्रताओं का अनन्य संगठन है। व्यक्तित्व से वैयक्तिकता प्रकट होती है। वैयक्तिकता व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से पृथक् करती है, जिसका निष्कर्ष संकल्प की स्वतन्त्रता है।

प्रस्तुत संदर्भ में डॉ० नामवर सिंह का कथन है, 'पुराना कवि अपने निजी प्रणय-सम्बन्ध को सीधे ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ था। रीतिकाल के कवियों के लिए भी राधा-कन्हाई की ओट अनिवार्य थी। सामन्ती नैतिकता का बन्धना इतना कड़ा था, लेकिन इस सम्बन्ध को अस्वीकार करते हुए पंत ने 'उच्छ्वास' और 'आँसू' की बालिका के प्रति सीधे शब्दों में प्रणय प्रकट किया और यह निश्चित है कि 'उच्छ्वास' की सरल बालिका कोई रहस्यात्मक शक्ति नहीं है। उसके विषय में कवि की स्पष्टोक्ति है : बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।<sup>२</sup> डॉ० नगेन्द्र का अभिमत है, 'व्यक्तिवाद की अधिकता के कारण अपने ही भावोन्माद में लिप्त रहता है। इसके दो रूप हैं। 'एक' विषय पर विषयी की मनसा का आरोप अथवा वस्तु को व्यक्तिगत भावनाओं में रंग कर देना, दूसरा समाष्ट से निरपेक्ष होकर व्यष्टि में लीन रहना।<sup>३</sup> डॉ० अजब

---

1. Personality is the dynamic organisation of the individual of these psychology physical systems that determine his unique adjustment to his environment  
Allport G.W. personality : A psychological interpretation. p.18

2. डॉ० नामवर सिंह : छायावाद : दि० सं० पृ० 17

3. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : पृ० 16

सिंह का कहना है, " वस्तुतः कविता की प्रकृति में कवि वैयक्तिक व आत्मपरक ही होता है। कवि की सर्वनात्मक सक्रिय कल्पना यथापि जगत् से भीमात्मक ज्ञान के आधार पर उसकी रचना का दशाव वैयक्तिक या आत्मपरक ही होता है। कवि अपने काव्य संसार का निर्माता होता है। कविता की रचना विज्ञान में वह जिज्ञा के अंश का स्वीकार नहीं करता, उसकी पैतृक सत्त्व अकृत्रिम ढंग से एक नवीन रूप में ढल जाती है। स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व व्यक्तिवाद का दशाव सर्वनात्मक कल्पना की अधिकता प्रकृति का आत्मपरक अनुभव, अनुभूति की महत्ता एवं प्रतीकात्मक विम्व-विधान का प्रयोग ही है। ये प्रकृतियाँ वहाँ भी कविता में गुम्फित होती हैं, वहाँ स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व को देखा जा सकता है।" 1

प्रस्तुत संदर्भ में मुक्तिबोध का कथन है कि व्यक्तिवाद प्रकृति के रूप में इस तरह प्रकट होता है कि वह आत्मव्यक्ति का ही दूसरा नाम हो जाता है। वस्तुतः व्यक्तिवाद वह सूक्ष्म प्रकृति है जो अहम् को अर्थ नहीं देने देना चाहती, वह अपने लिए नाम ही नाम का संकलन करना चाहती है, चाहे वह किसी भी प्रकार से क्यों न हो, सत्य के प्रति, अन्याय के प्रति तथा अपने प्रति ऐतानिक रूप से जहाँ मनुष्यतापूर्ण दृष्टि अव्यक्त है, उसका अभाव व्यक्तिवाद की बहुत बड़ी विशेषता है।" 2

वस्तुतः 'व्यक्तिवाद' पारंपारिक ही है। विज्ञान की निरन्तर प्रगति से व्यक्ति भी जागृत होना चाहता है। ऐतानिक अनुसंधानों से जनता में जागृति जाग्रत हुई, और सदियों से चली आ रही सामाजिक कुरियों के प्रति अविवेक उत्पन्न हुआ। सभ्यता का विकास होता गया। जाति-पाँति के घन्यन कमजोर पड़ गये। अतः स्वच्छन्दतावादी कविता में व्यक्तिवादी भावनाएँ अनेक रूपों में व्यक्त

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 101

2. गजानन नाथ 'मुक्तिबोध': कामायनी एक पुनर्निर्धार : पृ० 64

हुँ है। चाहे वह पार्थिक प्रेम की कविता रही हो अथवा आध्यात्मिक प्रेम की, राष्ट्रिय या मानवतावादी, सर्वत्र कलाकार जैसा ही सामाजिक बंधनों से स्वतंत्रता पाने के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। अतः स्वच्छन्दतावादी काध्य व्यक्तिपरक चेतना की अभिव्यक्ति का ही परिणाम है।

### मानववाद :

मानववाद को अंग्रेजी में 'ह्यूमेनिज्म' कहा जाता है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'होमो' § Homo § शब्द से हुई है। जिसका शब्दार्थ 'मानव' है। आधुनिक मानव आज अपने अस्तित्व की पहचान खमाने में प्रयत्नशील है। आज वह परम्परागत आस्थाओं, दिव्य शक्ति एवं धर्म के आश्रय से वंचित है। अतः उसका ऐसे दर्शन को पाने का प्रयास है जो उसे जीने का विश्वास दे। आधुनिक मानववाद मनुष्य को जीने की प्रेरणा देता है।

मानववाद आधुनिकतावादी, पुष्टीपिया विचारधारा है, जिसमें प्रकृतिवादी भौतिकवादी, वैज्ञानिक, नैतिक तत्त्व सम्मिलित हैं। अतः मानववाद की परिभाषा में सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का दर्शन निहित है। मानववाद किसी देश या जाति के प्रति भेदभाव को सहन नहीं करता वह सम्पूर्ण नागरिकता, भौती और मनुष्य की अनिवार्य वस्तुताका समर्थक है। मानववाद सहता उत्पन्न विचारधारा नहीं है, बल्कि इसके पीछे मानव के आग्रहशील विचारों की एक तुदीय परम्परा है। जिसका विकास पारंपार्य विकासशील देशों में हुआ है। जो वैज्ञानिक प्रगति से भी जुड़ा है। मानव ने अपने चिदेक, संज्ञान, साहस से बहुत प्रगति की है। इसकी प्रेरणा देने वाली आज की चिन्ताओं की सामान्य संज्ञा मानववाद है।

आधुनिक प्रगति के कारण होने वाली भौतिक उन्नति

और ज्ञान-विज्ञान की निरन्तर प्रगति ने यूरोप का कायाकल्प कर दिया और वह एक अपूर्व जागृति की नई दीप्ति से आभासित हो उठा। उसलोक को तृप्ति बनाने की कामना, देव प्रेम की भावना, स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के विचार आदि उच्च मानवीय मूल्यों ने यूरोप की आत्मा को मया रूप दे दिया। प्राचीन, महान और गौरवपूर्ण संस्कृति वाले सभ्यता देशों में और अफ्रीकी प्रदेशों में यूरोपीय शक्तियों का शासन उत्पीड़क साम्राज्यवादी शक्तियों का शासन था, किन्तु यूरोपीय व्यक्तित्व शासक के अतिरिक्त पाश्चात्य-नवात्मा के प्रतीक बनकर भी गए। पश्चिम के संतर्प ने दुनिया के अन्य समाजों को भी आधुनिक युग के सिंदूरार पर ला छोड़ा दिया। सम्पूर्ण विश्व-इतिहास के विस्तार को उद्भासित करते हुए आधुनिक युग की आत्मा ने पश्चिमी चिन्तन से अपना प्रकाश विकीर्ण किया।<sup>1</sup>

मानववादी चेतना के विकास में ऐतिहासिक चरणभूमि है जैसे, ऐनेता मानववाद, स्केडेमिक नवमानववाद, आचरणवादी मानववाद, केथोलिक मानववाद, उदारतावादी मानववाद, व्यक्तिपरक मानववाद, अधवा प्रकृतिवादी मानववाद। ऐनेता युग ने ही आधुनिक मानववाद को सुदृढ़ बनाया है। मानववाद का प्रथम आन्दोलन मध्ययुगीन ईसाई धर्म की परलोकवादिता के विरुद्ध ऐलनीतिक मंगल कामना के रूप में सामने आया। जिसमें दीयजित अस्तित्व को त्याग जीवन के आनन्दपूर्ण उपयोग को मान्यता दी गई।<sup>2</sup> ल्यूनाई ३० विंसी और माइकेल ऐंगेलो एक आदर्श के प्रतिमान थे। केथोलिक धर्म की प्रभुता और ईसाई धर्म के साम्यवृत्त के विपरीत यह नवमानववाद आदर्श पर्याय के रूप में विकसित हुआ। केथोलिक मानववाद का बाहरी रूप टायल सन्धिनात की विचारधारा में प्राप्त होता है, जिसमें नैतिक और सामाजिक

गन्तव्यों को प्राथमिकता दी और सर्वप्रथम मानवता को दर्शन का रूप देना चाहता। लेकिन मानववाद, देवतावाद, परमेश्वरवाद, के स्थान पर मनुष्य केन्द्रित बुद्धिवादी, भौतिकवादी, विज्ञानवादी जीवन दर्शन हैं, जो मानव-कल्याण की दृष्टि पहराती है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने इस मानव को 'नया मनुष्य' कहा है, "नया मनुष्य नयी आवश्यकताओं नयी तृप्तियों या संतुष्टियों वाला है। उसकी संवेदना और बोधकता भी दमन तथा असंतुलन से विमुक्त हैं। अतः उसका मनोविज्ञान और सांस्कृतिक-दर्शन उसकी तथा उसके समाज की स्वतन्त्रता और सम्पूर्णता के साधक हैं। वे भी निरन्तर भिन्न तथा नये हैं।" 1

मानववाद की परिभाषा करते हुए अमेरिकी विद्वान प्रो० वेने ने कहा है, "यह जीवन का विवेक-संगत संतुलन हो सकता है जिसे आरम्भिक मानववादियों ने पुनर्निर्माण में पाया, यह केवल दृष्टान्तीय का अध्ययन हो सकता है। यह धार्मिकता से मुक्ति और रानी एलिजाबेथ या बैजायिन क्रैकलिन के जीवन के सभी पक्षों में गहरी दिसवस्पी हो सकता है। शेक्सपीयर या गेटे द्वारा स्थापित सभी मानवीय आवेगों के प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया का भाव हो सकता है। या, यह एक दर्शन हो सकता है, जिसका केन्द्र मनुष्य है। इस अन्तिम अर्थ में मानववाद को संभवतया सर्वाधिक महत्त्व सौलहर्वीं सदी में मिला।" 2 कार्लिन लेमॉन्ड का कथन है, "इसी पार्थिव संसार में सम्पूर्ण मानवता के महत्तर हित के लिए सेवा-दर्शन है जो विवेक-सम्मत और जनतान्त्रिक पद्धतियों के सर्वथा अनुकूल है। मानववाद केवल शास्त्र व्यवसायी दार्शनिकों की सम्पत्ति नहीं है, अपितु सम्पूर्ण और तोददेश्य जीवनयापन के लिए जन-सामान्य के चिन्तन एवं कार्य का मार्ग है।" 3 कैथोलिक मानववादी

2. Edward P. Cheyney : Encyclopedia of Social Science  
Vol. 7.6. P.541

3.

Coelio Lomant : Humanism as a philosophy-p.10

विचारक जॉर्ज मारितार् का कथन है, "मानववाद अनिवार्य रूप से मनुष्य को अधिक सही अर्थों में मानवीय बनाता है तथा प्रकृति और इतिहास में मनुष्य को छेड़ने वाली सभी क्रियाओं में योगदान के लिए उसे सन्नद्ध कर उसकी मौलिक महानता को प्रकट करता है। यह तुरन्त ज़ेहो करता है कि मनुष्य अपनी सम्पादनाओं, सर्वनात्मक क्षमताओं और मेधों का उपयोग करे तथा भौतिक वस्तु की शक्तियों को अपनी स्वाधीनता का उपयोग बनाने के लिए प्रयत्नशील हो।" <sup>1</sup> गोरकी के शब्दों में, 'सामान्य' बन केवल ऐसी शक्ति ही नहीं है, जिन्होंने तारे भौतिक मूल्यों का सुझाव दिया है, अपितु ये ही आत्मीय मूल्यों के सम्मान और अनन्त होत हैं, ज्ञान, सौन्दर्य और प्रतिभा में वे ही सामूहिक रूप में प्रथम और प्रमुख दार्शनिक तथा कवि हैं, जिन्होंने सारी महान् कविताओं, विषय की सम्पूर्ण प्रेक्षणीय और उनमें श्री सबसे महान् प्रेक्षणीय विषय-संस्कृति के जड़ता हैं।" <sup>2</sup>

"मेरे लिए मनुष्य से बाहर कोई भी भाव या विचार अपना अस्तित्व नहीं रखे। मनुष्य ही सारी वस्तुओं, तारे भावों एवं विचारों का जड़ता है, यही प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियों का भावी स्वामी है। संसार में जो कुछ भी सुन्दर तथा छेड़ है, वह सब मानव-धर्म की उपज है, धर्म की प्रक्रिया ही समस्त भावों एवं विचारों का उद्गम है। ज्ञान, विज्ञान तथा विज्ञान का समूचा इतिहास हमें उच्च मूल्यों के प्रति आश्चर्य करता है। मैं इस मनुष्य के प्रति पूरी तरह समर्पित हूँ। यह संसार उसी की कल्पना, उसी के विवेक और उसी के अनुमान का मूर्तरूप है। स्वतः संसार भी उसी के मानस का आधिपत्य है।" <sup>3</sup>

परिचामी जगत् में मध्यकाल की समाप्ति करने में जिन विचारधाराओं ने विशेष योग दिया है, उनमें से मानववाद एक

1. Jacques Maritain : *True Humanism-Introduction*, p. 12

2. Gorky : *On Literature*, p. 71

3. Gorky : *On Literature*, p. 67

प्रमुखविचारधारा है। मध्यकाल में धार्मिक घटाटोप के कारण समस्त मूल्यों और प्रतिमानों का झोत किसी न किसी दिव्य सत्ता को माना जाता था। मानववादियों ने इस मान्यता का तिरस्कार किया। उन्होंने घोषित किया कि सम्पूर्णतः मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है।<sup>1</sup> डॉ० नवल बिशोर का कथन है, "मानववाद का प्रतिपाद्य मनुष्य का लौकिक सुख है, न कि किसी कल्पित संसार का मरणोत्तर आनन्द, एक ऐसा सुख जो कि उसको प्राप्य है और जो किसी पराशक्ति की स्थिति या भूमिगता पर निर्भर नहीं है। मानव-महत्त्व के प्रति एक अटूट विश्वास को मानववाद का मर्म माना जा सकता है, जिसके तत्वे समर्थ अभिव्यक्ति ज्ञातव्यियों पूर्व दो पुर्वों के महर्षियों के इन आप्त-वाक्यों में मिलती है — मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं है।"<sup>2</sup> वस्तुतः प्राचीन साहित्यकार लौकिक जगत से उदासीन होकर अध्यात्म के प्रति समर्पित होता था। आधुनिक साहित्यकार मानवनिष्ठ है, वह अस्तित्वगत प्रश्नों से साधात्कार कर उनसे उबराने की शक्ति मनुष्य को देता है। क्योंकि मानववादी साहित्यकार की ध्येयता स्वतंत्र और उत्तरदायी होना, मुक्त और ग्रहणशील बनना, अनुभववादी और ऐतिहासिकपरक होना है। डॉ० नवलबिशोर का पुनः कथन है, "मानववादी बोद्धिज्ञता, न्याय संगति, पारस्परिक सहयोग, संतुलित एवं संगठित विकास की स्वतंत्रता जैसी 'क्लासिक' मूल्य-धारणाओं के प्रति आग्रही है, पर ये वह भी स्वीकारते हैं कि कला बहुत बार परम्परागत मानवीय आदर्शों का उत्खनन करते हुए भी सांस्कृतिक विकास की दृष्टात्मक प्रक्रिया के कारण एक नयी, अधिक जटिल और वैविध्यपूर्ण साहित्य-चेतना की प्राप्ति में योग देती है।"<sup>3</sup> वस्तुतः मानववाद मनुष्य को ही सर्वोत्तम मानता है।

1. तं० डॉ० पीरेन्द्र धर्मा, हिन्दी साहित्य डोग : पृ० 404

2. डॉ० नवल बिशोर : मानववाद और साहित्य : पृ० 17

3. आलोचना : ऐमासिक : जनवरी-मार्च 1971 में डॉ० नवल बिशोर का लेख- मानववादी सौन्दर्य शास्त्र की परिकल्पना : पृ० 19-20



'मानववाद के संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का कथन है, " समाजवादी यथार्थवादी चेतना के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में नए मानव का रूप स्पष्ट होता है । सर्वद्वारा वर्ग की समस्याओं, उसकी सांस्कृतिक चेतना के अंजन के फलस्वरूप उच्च एवं ग्राह्य में समाजवादी चेतना लोक परिधेना लोक संस्कृति एवं लोकगीत के रूप में साहित्यकार नव-मानव की अनुभूतियों को चित्रित करता है । नयी दुनियाका साहित्य एक साथ नवमानव समाजवादी विचार धारा में खिंचात करके लाता है तथा मनुष्यतावादी, मानव प्रेम एवं लघु मानव का प्रेमी है । नवमानव ऐतिहासिकता को महसूस करता है । मनुष्य की प्रतिष्ठा की सम्पूर्ण उत्पत्ति है । " ' डॉ० सिंह का पुनः कथन है, " मानववादी विचारधारा चिन्तन-जगत की श्रेष्ठतम उपलब्धि है । राजनीति, दर्शन अध्यात्म और संस्कृति की नवीनतम और उत्तुङ्ग विचार-सम्पदा द्वारा मानववादी चिन्तन पुष्ट और समृद्ध हुआ है । " 2

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आद्य का युग विज्ञान का युग है । विज्ञान की प्रगति से मानव के चिन्त में, व्यवहार में, समाज की व्यवस्था में, संसार भर की सांस्कृतिक-राजनीतिक गतिविधियों में मानववादी विचारधारा की स्वीकृति मिली । इस स्वीकृति के फलस्वरूप समानता, स्वतंत्रता, अविरोधता का नारा बुलंद किया गया । इन गतिविधियों के फलस्वरूप साहित्य में भी मानव स्वर मुखरित हुआ और नव साहित्य चेतना मानव के मंगलमान के लिए व्यंजित हुई ।

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ 136

2. डॉ० अजय सिंह : आधुनिक आर्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ: पृष्ठ 22

### विद्रोह क्रांति और नवीनता :

विद्रोही कवि वा साहित्यकार अपनी स्वतंत्रता चाहता है। वह लक्ष्मिबद्ध अमानवीय व्यवस्थाओं, परिस्थितियों में परिवर्तन कर अपने नये सामाजिक विचारों की स्थापना करता है। विद्रोही कवि वा साहित्यकार को सामाजिक ध्वज पतन नए जाते अपितु वह समाज को अपने सुनस्य बनाना चाहता है। परन्तु क्रांतिकारी कवि वा साहित्यकार कर्मठ एवं सक्रिय होता है जो अपनी मान्यताओं को एक व्यवस्थित रूप देना चाहता है। वस्तुतः विद्रोह के पश्चात् ही क्रांति की लहर फूटती है। अंग्रेजी स्वतन्त्रतावाद का सम्बन्ध क्रांति की राज्यक्रांति एवं इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति से था। अतः उसमें स्वतंत्रता एवं विद्रोह का भाव होना अपेक्षित था। उसमें न केवल भौतिक शक्तियों के अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध ही, अपितु नीति, धर्म, साहित्यिक परम्पराओं और नास्त्रीय नियमों के विरुद्ध भी विद्रोह मिलता है। जैसे पी०बी० ग्रेवी का काव्य विरोधतः 'प्रोमेथियस' अनचाउन्ड' इसका प्रमाण है। इस काव्य में न केवल भाषा-शैली के क्षेत्र में विद्रोह किया, अपितु विश्व के क्षेत्र में भी नये साम का अनुसरण किया। उसके नये-नये साहित्यिक प्रयोग किये और सफल भी हुए। उन्होंने अभिजात के आधार पर सामान्य को भी जाना वर्ण विषय बनाया। उनके लिए वस्तु का उदात्त होना आवश्यक नहीं था, साधारण से साधारण वस्तु जैसे, लूनी-पत्ती, स्मॉल सार्क, वेस्ट विण्ड, इमरान आदि वस्तुएँ काव्यात्मक चित्रण के लिए उपयुक्त थीं। साधारण मानव के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति थी। अतः उनकी कविता के पास अभिजात या कुलीन के स्थान पर साधारण और सामान्य स्तर के हुए हैं। उन्होंने बुद्धिवाद का भी विद्रोह किया। सामाजिक दायित्व और वैयक्तिक अनुभूतियों के बीच द्वन्द्व का अंकन भी हुआ है।''

- 
1. तै० उदयराम सिंह : 'नई धारा' : ॥ ६१० अजय सिंह का लेख: विद्रोह और क्रांति : नवस्वतन्त्रतावादी संदर्भ : पृ० 6॥ अक्टूबर-नवम्बर 1986

नवीनता और मौलिकता स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषता है। अतः इसीलिए स्वच्छन्दतावादी कवि विद्रोही होता है। सत्ता एवं व्यवस्था साहित्यिक व साध्यात्मक स्तरों एवं अभिव्यञ्जना शक्तियों से विद्रोह करना स्वच्छन्दतावादी कवियों एवं साहित्यकारों की विशेषता है। क्योंकि परम्परा एवं सदियों को तोड़ना, उनसे घृणा करना, विद्रोह करना इनका स्वभाव है। विद्रोह के पश्चात् ही स्वच्छन्दतावादी कवि नवीन सृजन करता है। नवीन सृजन के संदर्भ में योग देना उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसके उपादान चाहे नये हों या पुराने, परिणति नये में ही होनी चाहिए। नयी परिणति में ही वह स्वच्छन्दतावादी कहलायेगा, अन्यथा नहीं। विद्रोही कवि व साहित्यकार उसे कहते हैं जो समाज के अनुस्यू नहीं बन सकता तथा जो अपने क्रिया कलापों में समाज का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता। विद्रोही कवि व साहित्यकार अपनी स्वतंत्रता चाहता है। इसके विपरीत श्रान्तिकारी कवि व साहित्यकार अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करके संतुष्ट नहीं हो जाता। श्रान्तिकारी कवि व साहित्यकार चाहता है कि वह समाज के खदम दे और अपनी इच्छाओं से उसका निर्माण करे। श्रान्तिकारी कवि व साहित्यकार कर्मठ एवं सक्रिय होता है जो अपने सिद्धान्तों को एक व्यवस्थित रूप देना चाहता है। विद्रोही कवि व साहित्यकार को अपना श्रान्तिकारी कवि व साहित्यकार अधिक वस्तुगत होता है, साथ ही उसका लक्ष्य उन शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेना है, जो समाज का नियंत्रण करती है तथा समाज की गति को निर्धारित करती है। श्रान्तिकारी कवि व साहित्यकार प्रभुसत्ता पर अधिकार करना चाहता है। इसके साथ ही साथ पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके समाजवादी कान्याणकारी व्यवस्था को लाना चाहता है।<sup>1</sup>

प्रयत्नित जब तक स्मॉलिट की धेतना से जुड़ता नहीं है तब तक सर्वना नहीं होती। इससे जुड़ने के लिए धेतना को वहाँ संघर्ष करना पड़ता है। यही प्रतिमा के पढ़ने का काम है। उस संघर्ष का आभ्यान्तरिक इतिहास प्रतिमा के विकास का इतिहास होता है।''<sup>1</sup>

पाश्चात्य प्रतिष्ठ स्वच्छन्दतावादी कवि धिनियम ब्लेक का कथन है, '' मैं एक नियम का सृजन करूँगा या दूसरे के बनाये हुए नियम पर चलूँगा तो गुनाह हो जाएगा। मैं तर्क और तुलना नहीं करूँगा, मेरा उद्देश्य सृजन करना है।''<sup>2</sup> ' संगीत रचनाएँ' में लेनिन ने विद्रोह एवं क्रांति की निम्न परिभाषाएँ दी हैं, '' क्रांति गम्भीर कल्मि और उत्था हुआ विज्ञान है।''<sup>3</sup> ' सामाजिक क्रांति समाज की प्रतिक्रिया है, जो नये तथा उच्च विकास की प्रक्रिया से प्रभावित है।''<sup>4</sup>

1. क्लेन्ट नाशाएन सिंह : आभ्यान्तरिक की समस्याएँ : पृष्ठ 19
2. William Blake. " I must creat a system or be enslaved by another mans, I will not reason and compare, My business is to create " Quoted by C.M.Dowse in the Romantic imagination, p.22
3. V.I. Lenin " extraordinary fourth All Russian congress of Soviets, March-14,16 1918, Collected works, Vol.27 p. 198 Revolution is a profound, difficult and complex Science.
4. Anna Gertsova, Volentina Shi Shkina , Lyudmila Yakovleva : What is Revolution: p.11-1986

‘ फ्रांति वह परिवर्तन है जो पुरानी सृष्टि को तोड़ने का संस्थापन करती है।’<sup>1</sup> वस्तुतः कोई भी फ्रांति ऐतिहासिकता को बदलने के लिए अनिवार्य है। लेनिन का पुनः कथन है, ‘‘ विद्रोह संघर्ष और फ्रांति तोड़ने की सुंझा, पिछात जरा जगति, बदलाव की क्रिया का गुण है।’’<sup>2</sup> कार्ल मार्क्स का कथन है, एक समाज पूरी तरह ऐतिहासिक विकास पर, एक समाज के साथ अग्रुप पुथक भूमिका निभाता है।’’<sup>3</sup> विद्रोह के संदर्भ में ‘ निराला’ का कथन है, ‘‘ तोड़ो-तोड़ो कारा, निकले गंगाजल धारा।’’<sup>4</sup> इसी विद्रोहात्मक भावना के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावादी कवियों की उग्रान सामाजिक चेतना की दिशा की ओर घटी। इसका कारण परिघेरागत वैशिष्ट्य था। सन् 1917 ई में रूसी फ्रांति ने विश्व के रचनात्मक साहित्य को पूर्वीवाद से समाजवाद की ओर केन्द्रित किया। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावादी कवियों के कलात्मकता केन्द्र में विद्रोह के साथ फ्रांति के स्वर सुपरित होने लगे।

1. V.I. Lenin " Revolution is a change which breaks the old order to its very foundations " collected works, vol.33, 1973, p.110
2. V.I. Lenin, collected works, vol.21, 1977 p.54
3. Karl Marx " a society at a definite stage of historical development, a society with a peculiar, distinctive character, wage labour and capital in, collected works page, 212
4. हर्षान्त बिपारी ' निराला' : अनामिका : पृष्ठ 137

‘क्रांति’ न-स्वच्छन्दतावादी साहित्य में लोक-सांख्यिक चेतना के रूप में हृष्टिगोचर होती है। न-स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार समाकालीन जीवनानुभूतियों को चित्रित करता है साथ ही समाकालिक जीवन एवं समस्याओं को साहित्य में स्थापित करना उसका अभिप्रेत है। यही वह विन्दु है जहाँ से न-स्वच्छन्दतावादी कवि व साहित्यकारकी चेतना ‘क्रांति’ की ओर पहल करती है।” ।

वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी कवियों ने स्थूल बंधनों से विद्रोह कर सूक्ष्म तात्पर्यनिष्ठ, सौन्दर्यप्रिय तथा स्वतंत्र अभिव्यक्ति से नवीन सर्जना को। बौद्धिक नोरसता के स्थान पर भावुकता को प्रधानता दी। आत्मनात्मक प्रेम के स्थान पर आदर्शवादी तथा स्वाभाविक प्रेम की उदात्त भावना ने स्थान पाया। विद्रोह के पश्चात् नवीन सर्जना करना स्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना है। नवीन सर्जना के संदर्भ में योग उसका कार्य है, उसके उपादान चाहे पुराने हों या नये परन्तु उसकी अभिव्यक्ति नवीनता लिए होनी चाहिए। क्रांति के अन्दर सामाजिक समुदाय का संमेलन रहता है, जबकि विद्रोह में अकेला व्यक्ति भी सक्रिय हो उठता है। किन्तु किसी एक व्यक्ति के करने से नहीं हो सकती।

वस्तुतः संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का कथन है, ‘समाजवादी क्रांति हर प्रकार की पूर्ववर्ती सामाजिक क्रांति से सर्वथा भिन्न होती है। वस्तुतः इससे पूर्व की किसी क्रांति का महय शोषण को समाप्त करना नहीं था। पहले की सभी क्रांतियों ने केवल शोषण के रूप को संशोधित किया है, परन्तु समाजवादी क्रांति सदा के लिए हर शोषण का अंत कर देना चाहती है, साथ ही वर्ग-विहीन समाज के निर्माण के पुनः का सूत्रपात करती है। वस्तुतः समाजवादी क्रांति एक नये

1. डॉ० उदयराम सिंह : ‘नई पारंग’ अक्टूबर-नवम्बर 1986 : डॉ०

अजय सिंह का लेख : विद्रोह और क्रांति : न-स्वच्छन्दतावादी

संदर्भ : पृष्ठ 7

समाजवादी ग्रंथ संग्रह का सर्वन करती है। इसमें जनता की सक्रियता सर्वोपरि है।<sup>1</sup> इस द्वाँति में सर्वहारा-वर्ग पूँजीवाद के विरुद्ध तथा समाजवाद के लिए मेहनतकश जनता के व्यापक हिस्सों और जनतांत्रिक शक्तियों को अपने धर्म-गिर्द जुटाता है। मजदूर - वर्ग समाजवादी द्वाँति को निर्माणक शक्ति है। समाजवादी व्यवस्था जिसके विकास-क्रम पर यमीर द्वाँतिकारी प्रभाव डाल रही है। समाजवादी द्वाँति सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता को हस्तगत करना चाहती है। घस्तुतः मजदूर वर्ग-की अपना ऐतिहासिक कार्य पूँजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन एवं नये समाज की रचना अपना सर्वहारा-राज्य स्थापित करके ही पूरा कर सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करना और नये सर्वे द्वारा राज्य का निर्माण-समाजवादी द्वाँति की मूल चेतना है। समाजवादी द्वाँति में सर्वहारा को नेतृत्वकारी भूमिका की प्रधानता है, साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी है। पूँजीवादी द्वाँति राजनीतिक दल के प्रयास से ही हो सकती है किन्तु समाजवादी द्वाँति के लिए किसान, मजदूर आदि वर्गों की सक्रिय भूमिका अनिवार्य होती है। समाजवादी द्वाँति के लिए किसानों, मजदूरों तथा निम्न मध्यम वर्ग आदि शोषित वर्गों का संगठन जरूरी है।<sup>2</sup>

1. डॉ० अजय सिंह : मधस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 109

2. डॉ० अजय सिंह : मधस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 109

### प्रेम :

ज्ञानन्द की परम अनुभूति अथवा मानसिक शान्ति की परम अभिव्यक्ति का नाम ही प्रेम है। प्रेम की अभिव्यक्ति चाहे किसी भी पदार्थ एवं वस्तु के द्वारा हो, उसमें अनन्त ज्ञानन्द की प्राप्ति होती है। मानवीय धरातल पर इस अनन्त ज्ञानन्द की प्राप्ति हेतु बासक, वपस्क एवं छुर्ग बार-बार वो ही क्रियाएँ करते हैं जो उन्हें, ज्ञानन्द एवं सन्तोष प्रदान करती हैं। वस्तुतः बिन क्रियाओं एवं व्यवहार के द्वारा व्यक्ति के अन्दर अद्भुत अतीकृता जाग्रत होकर परम सुख देती है, वही 'प्रेम' है।

प्रेम का स्वल्प तिरफ मानवीय धरातल पर ही संभव है। अतः प्रेम करने के लिए मानव होना अति आवश्यक है। प्रेम का स्वल्प न तो देवताओं में मिलता है और न दानवों में। यदि देवगण प्रेम की अभिव्यक्त करें तो वह उनकी लीला ही अधिक प्रतीत होगी, प्रेम नहीं। इसी प्रकार दानवों में वह मायाखाल जैसे शब्दों में फँस जायेंगे। प्रेम का स्वल्प तो सिद्ध मानवीय व्यवहार से ही अभिव्यक्त होता है। प्रेम की अभिव्यक्ति कभी व्यक्तिपरकता में समाप्त नहीं होती, क्योंकि प्रेम का परिणाम इस संसार में सृष्टि का विकास है। प्रेम सदैव स्व के आकर्षण से ही बन्म लेता है। प्रेम की अभिव्यक्ति प्रत्येक प्राणी के अन्दर होती है, किन्तु वह अपनी अभिव्यक्ति अपने समाज के नियमों के अन्दर होती है, किन्तु वह अपनी अभिव्यक्ति अपने समाज के नियमों के अनुकूल रहकर किया करता है। प्रेम की मूल भावना प्राकृतिक होती है।

सौन्दर्य, प्रेम और ज्ञानन्द का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सौन्दर्य की ज्ञानन्दानुभूति ही प्रेम का मूल तत्त्व है। प्रेम से ही सम्पूर्ण सृष्टि सौन्दर्यमयी लगती है। 'प्रेम' एक सैवेनात्मक अवस्था है, जिससे व्यक्ति चेतन अथवा अचेतन रूप में स्वीकारता है। मानवीय प्रत्यक्ष ज्ञान



मानवीय प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रारम्भिक स्फुरण ही 'प्रेम' की सैव्यात्मक अवस्था को उत्पन्न करते हैं। 'प्रेम' के स्वल्प को व्यक्त करने के लिए विद्वानों ने विभिन्न स्थानों में 'प्रेम' की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। डॉ० रामेश्वर लाल छानेवाल का कथन है, "'प्रेम' शब्द की इस रूप में अभिव्यक्ति हुई है। उच्छा [कीर्ति] [ज्ञान] [नोद] व क्रिया या संकल्पवृत्ति—इन तीनों में से प्रेम का सम्बन्ध उच्छा वृत्ति केन्द्र से है। पर उच्छा करना मात्र ही प्रेम नहीं है। कई काम भी हो सकता है और 'प्रेम' भी। जब हम एक विशिष्ट उच्छा करते हैं तभी प्रेम कहलाता है। यह विशिष्ट उच्छा क्या है ? जिसे को चाहना और शुद्ध आनन्द के लिए चाहना। प्रत्यक्ष या परीक्ष से हमको आनन्द मिले और दूसरे को भी सुख मिले, यही प्रेम की मूलभूत भावना है।" 1 डॉ० छानेवाल का पुनः कथन है, "'प्रेम' शब्द की परिध्याप्ति अत्यन्त विज्ञान है। मानवीय आचरण के सहस्रों प्रभाव इसके अन्तर्गत आते हैं। दाम्पत्य प्रेम, आत्मात्म प्रेम, प्रकृति-प्रेम, मानव प्रेम, देश प्रेम, ब्रह्मा भक्ति सब कुछ प्रेमान्तर्गत ही है।" 2 वस्तुतः प्रेम का स्वल्प दाम्पत्य रूप में सबसे अधिक मिश्रित हुआ है। दाम्पत्य रूप में इसकी अभिव्यक्ति की जरूरत पराकाष्ठा है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार 'प्रेम' का स्थायी आदर्श एवं सर्वोदात्त स्वरूप दाम्पत्य जीवन में ही व्यक्त होता आया है। प्रेम का सर्वोत्कृष्ट एवं शक्ति सम्पन्न रूप दाम्पत्य प्रेम है। 3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है, "'विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सत्त्विक रूप प्राप्त करता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।" 4 वस्तुतः यही प्रेम का यही सत्त्विक रूप दाम्पत्य रूप में ही अधिकांश मिलता है। दाम्पत्य रूप में प्रेम का यह व्यापक संसार दो प्राणियों

1. डॉ० रामेश्वर लाल छानेवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य : पृ० 102

2. वही ; पृ० 118-24

3. डॉ० नगेन्द्र : विचार और विवेचन : पृ० 45

4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि : प्रथम भाग : पृ० 69

वीच सिमट कर परम आकांक्षा हो जाता है। इसके कारण तब मैं आचार्य  
 यौन सम्बन्ध की कोमलता को स्वीकारते रहे हैं।''<sup>1</sup> परिष्कृत मानवीय  
 पराक्रम पर आध्यात्मिक क्षेत्रों में बाँटकर प्रेम के दो भेद भी किये जा  
 सकते हैं।''<sup>2</sup> प्रथम प्रेम का प्रेम पाशाङ्क वृत्तियों के उदात्तीकरण की  
 परिष्कृत भूमि में पल्लवित होता है। इन्द्रियों के शमन तथा अनासक्त  
 योग की धारणा से भोग्य प्रेम एसी कोटि में आता है। आनन्द प्रसाद  
 सुगिट का मूल है और यही काव्य का अभिप्रेत भी।''<sup>3</sup> अतः काव्य में  
 ऐसे ही प्रेम का चित्रण अव्यक्त है जो वासनाओं के उपराम करके मानव  
 को उच्च भाव-भूमि पर अवतरित कर सके।''<sup>4</sup> द्वितीय कोटि का प्रेम  
 आध्यात्मिकता से जुड़ा हुआ इन्द्रियातीत माना गया है। ईश्वरोन्मुख  
 प्रेम इसकी पराकाष्ठा है। प्रेम का लौलोत्तर व्यापार आध्यात्म से जुड़ा  
 है भक्त तथा सन्त कवियों का प्राणी-विधान इन्हीं सुनों से सुसज्जित है।  
 सांसारिक जीवन की जग में प्रेम काया के समान सुखदायी है।''<sup>5</sup>  
 प्रेम में परमेश्वर का ही रूप प्रतिबिम्बित है।''<sup>6</sup> एसीनिर यह सम्पन्न  
 निवृत्त प्रेममय है।''<sup>7</sup> अस्तुतः प्रेम ही जग का जीवन है।''<sup>8</sup>

1. डॉ० रामेश्वर लाल कठेनवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और  
 सौन्दर्य : पृ० 118-24
2. यही , पृ० 12
3. डॉ० सम्पूर्णानन्द : चिद विज्ञान : पृ० 212
4. Have look ellis in ' psychology of sex : vol.9 by  
 oswald schwaab-p.133
5. श्रीधर पाठक : मनोजिज्ञोद : पु० भाग : पृ० 13
6. श्री रामनरेश त्रिपाठी : भिन्न : पृ० 33/14
7. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० 91
8. ठाकुर गोपाल शरणसिंह : सागरिका : पृ० 53/26

**सौन्दर्य :**

‘सौन्दर्य’ का अंग्रेजी अनुवाद ‘एस्थेटिक’ है जो ग्रीक भाषा से लिया गया है। इसका वास्तविक अर्थ है। यही ग्रीक शब्द आगे चलकर ‘एस्थेटिक्स’ बनकर प्रचलित हुआ, जिसका अर्थ-‘ऐन्द्रिय सुख की चेतना है’। कालान्तर में ‘एस्थेटिक्स’ शब्द का स्व बदलकर ‘एस्थेटिक्स’ शब्द प्रचलित हुआ। इसके पश्चात् बाउम गार्तेन ने इसके बहुवचन स्व ‘एस्थेटिक्स’ का प्रयोग किया। इस प्रकार ‘एस्थेटिक्स’ का शाब्दिक अर्थ है ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष का ज्ञान के माध्यम की दृष्टि से किया गया अध्ययन। परन्तु, इसके पश्चात् ‘एस्थेटिक्स’ उस शास्त्र को कहा जाने लगा जो ऐन्द्रिय बोध से प्राप्त सौन्दर्य-भावना के मनोमय आनन्द का विवेचना करता है।<sup>1</sup>

वस्तुतः ‘सौन्दर्य’ शब्द जितना व्यापक है, उसका उतना ही गूढ़ है। सौन्दर्यानुभूति मनोवैज्ञानिक है, जो मनोदशा के अनुसार अनुभव गम्य है। मानव को आसक्ति सिद्ध अनुभूति जिस वस्तु या वस्तु में रमणीय प्रतीत होता है उस स्थिति को सौन्दर्य कहा जा सकता है। अतः सौन्दर्य वह गुण कहलायेगा जो व्यक्ति के बाहरी और आन्तरिक गुणों से सामंजस्य स्थापित करता है।<sup>2</sup> लेकिन सौन्दर्य आनन्द देने वाले उपकरण के सिवा और कुछ भी नहीं है।<sup>3</sup> सौन्दर्य दो त्यों में विभक्त है [1] प्रकृति मूलक और [2] कलामूलक। प्रकृति मूलक सौन्दर्य के अन्तर्गत विषय के सम्पूर्ण पदार्थ और व्यापार का आवलोकन है। कलामूलक सौन्दर्य में व्यक्ति की उत्पत्ति और भावना के द्वारा अन्य माध्यम से अभिव्यक्त करना है। सौन्दर्यानुभूति के समय मानव को कोई बौद्धिक तर्क नहीं लेना पड़ता है। सौन्दर्य एक उत्पत्ति है। अतः सौन्दर्य में अनुभूतियों का सामंजस्य है। प्राकृतिक वस्तु की स्थूल में जब मानव की संवेदना सम्मिलित होती है तब वस्तु की स्थूलता या कुम्भता उत्पन्न हो जाती है, और नया अनुभव प्रदान करती है। यही नया अनुभव

1. Encyclopaedia britannica. Eleventh edition. 1910 p.216

2. डॉ० विवेन्द्र नारायण सिंह : आधुनिक काव्य की संरचना में : पृष्ठ 63

सौन्दर्यानुमति है। अतः सौन्दर्य अभिव्यञ्जना है।<sup>1</sup> विद्वानों ने सौन्दर्य को अनेक  
 स्थों में विभाजित किया है - [१] दिव्य [२] प्राकृतिक और [३] कृत्रिम।<sup>2</sup>   
 धिक्कमेन<sup>3</sup> के भी सौन्दर्य को द्वा त्रय में रखा है [१] स्व सौन्दर्य [२] विचार  
 या प्रत्यय का सौन्दर्य तथा [३] अभिव्यक्ति का सौन्दर्य।<sup>4</sup> २ स्वयं मुनर  
 ने सौन्दर्य के दो प्रकार किए हैं - [१] सामान्य सौन्दर्य और [२] व्यक्तित्व  
 सौन्दर्य [३] ३ दिव्य निष्पन्ना की दृष्टि से डॉ० रामेश्वर लाल छण्डेनवाल  
 ने इसे चार भेदों में प्रस्तुत किया है। - [१] शारीरिक [२] मानसिक [३]  
 ३ प्राकृतिक तथा [४] कलागत। साहित्य की सीमा में जितना भी सौन्दर्य  
 कल्पित किया जा सकता है वह सब, इन भेदों में समाविष्ट किया जा सकता  
 है।<sup>5</sup> ४

वस्तुतः सौन्दर्य एक जीवन्त विज्ञान है, जिसकी प्राप्ति या देखे  
 जाने पर सुखानुमति कराता है। डॉ० रामेश्वर छण्डवाल का कथन है<sup>6</sup> जहाँ  
 जहाँ आकर्षण है, वहाँ-वहाँ सौन्दर्य अवश्य है। अतः सौन्दर्य का स्वरूप  
 आकर्षण<sup>7</sup> है।<sup>8</sup> ५ वास्तविक ज्ञान जगत् में आत्मा और आनन्द जैसे तत्त्वपूर्ण  
 उपादखनों को प्रत्यक्ष में लाये बिना वस्तु के प्रति आकर्षण ही सौन्दर्य का  
 प्रमुच तत्त्व है। क्योंकि व्यक्ति मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करने वाली  
 वस्तु का पूर्वज्ञान व्यक्ति को नहीं होता बल्कि दिखाई देने वाली वस्तु यदि  
 उसकी रूपा को प्रभावित करती है, तब व्यक्ति उस वस्तु को प्रति सहज भाव  
 से आकर्षित होकर सम्मोहित हो उठता है। अतः आकर्षण में ही सौन्दर्य  
 की मूल धेतना निहित है। सौन्दर्य का मूल तत्त्व यह होता है कि यह किसी  
 साध्य का साधन न होकर स्वयं ही साध्य है। इसकी आत्मा उसकी अनुपयोगिता

1. दान्तद्वय : एवाट एव आर्ट : पृ० १५

2. दान्तद्वय : एवाट एव आर्ट : पृ० १५

3. दान्तद्वय : एवाट एव आर्ट : पृ० १६

4. डॉ० रामेश्वरलाल छण्डेनवाल : जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला, प्रथम  
 सं० : पृ० २१०

5. डॉ० रामेश्वर लाल छण्डेनवाल : जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला, प्रथम सं० पृ० २८१

में निहित होती है। जीवन का प्रत्येक मूल्य पश्चिमी होता है, क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक पश्चिमीय मूल्यों की ओर हमें ले जाता है, केवल सौन्दर्य ही ऐसा मूल्य है जो असंपृक्त रूप से पश्चिमीय होता है और उसकी पश्चिमीयता का अनुमान केवल सुबन वेतना द्वारा लगाया जा सकता है। सौन्दर्य की प्रतीति के लिए दृष्टव्य और संदर्भित वस्तु का गुण तथा उसके द्वारा उत्पन्न मनोभावों की सख्त अपेक्षा होती है। व्यक्ति की लक्ष्मी ही आकर्षण का स्थिरता प्रदान करती है, तब यही आकर्षण प्रेम में परिणत हो जाता है। प्रेम स्वयं मूल्यों के ऐसे अनुक्रम पर आधारित है, जिसे वेतनत्व में प्रेमी स्वीकारता है। अस्तुतः जो सुन्दर है वह प्रेम्‍य भी है, उसमें मनोभावों का प्रवाह एक ही तथ्य की ओर होता है।

सौन्दर्य के संदर्भ में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के अभिमत हैं जोहो के अनुसार 'सौन्दर्य सुष्ठु का मूलतत्त्व है और उसका संधान करना ही तत्त्वज्ञान का परम लक्ष्य है। वह सत् का वर्णन है और ज्ञेय से अभिन्न है। सौन्दर्य और प्रेम एक ही तत्त्व के दो वास्तविक पक्ष हैं।' 1 क्रोचे अधिष्ठापना में ही सौन्दर्य का अस्तित्व मानते हैं। 2 वरुं उस वस्तु अथवा गुणों को सुन्दर कहते हैं जिसे प्रेम उत्पन्न होता है। 3

1. गिलबर्ट स्पेड बुन : ए हिन्दी आफ एस्थेटिक्स : पृ० सं०, पृ० 45-55

2.

To define beauty as successful expression of rather expression and nothing more . because, expression when it is not successful is not expression. B. croche Aesthetics. p.79

3.

\* By beautiful I mean. that quality or it these qualities in bodies . by which they cause love or some passion similar to it- carrit, Philosophies of beauty. p.99

सौन्दर्य ही प्रेम का मूल तत्त्व है। प्रेम की सत्ता सौन्दर्य पर ही अवलम्बित है। प्रेमी अपनी प्रिय वस्तु के प्रति कभी यह शंका नहीं करता कि वह उसके प्रेम के योग्य है अथवा नहीं। उसका ध्यान उन गुणों अथवा लक्ष्यों पर केन्द्रित रहता है, जो प्रिय वस्तु द्वारा जाग्रत हो उठते हैं। वह भाव जिसके उत्पन्न होने से दो हृदयों के विचार, संशय और प्रतिहार, भाव समाप्त होकर आनन्द में परिणत हो जाते हैं, प्रेम कहलाता है। वस्तुतः दो हृदयों के संगम में अनुभूत्यात्मक आनन्द प्रेम है। डॉ० अजय सिंह का कथन है, "प्रेम, इच्छा, ज्ञान और क्रिया वृत्ति की त्रिवेणी है। ये तीनों मिलकर जब एक हो जाते हैं तो इसी मिलन-स्थल को प्रेम कहा जाता है। प्रेम मूलतः इच्छा है जो ज्ञान के सहारे से एक प्रकार का त्व ग्रहण करता है। जब सहृदय व्यक्ति उचित वस्तु, व्यक्ति या द्रव्य का अवलोकन करता है तो उसके प्रति अनायास ही रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है। उस प्रकार सुन्दर वस्तु, व्यक्ति या द्रव्य के प्रति वृष्टा के रागात्मक सम्बन्ध को प्रेम कहते हैं।" क्रियायें वस्तुनामूलक प्रेम की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। इसमें प्रेमी अपनी तुष्टि के लिए सुन्दर वस्तु का भोग करता है। सुन्दरता उसके लिए भोग की वस्तु बनकर रह जाती है। अनेक बार वह अपने प्रेमी को रिझाने के लिए विविध शारीरिक चेष्टारों और भंगिमारों दिखाता है, जिन्हें शास्त्रीय शब्दावली में 'अंगज-अंगकार' कहते हैं।<sup>2</sup> प्रेम वास्तव में राग है का ही पूर्ण विकसित रूप है। राग और द्वेष दोनों ही वासना के रूप में प्रत्येक प्राणी में होती है। यही राग जब अंकुरित या व्यक्त होकर किसी व्यक्ति विशेष की ओर पहले पहल उन्मुख होता है, तब 'सुभाना' कहलाता है और जब उस विशेष में जाकर स्थित हो

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 162

2. सं० डॉ० पीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, दि० सं० :

जाता है, तब प्रेम कहलाता है। सीधी बात यह है कि वातनात्मक अवस्था में हुआ राग ही 'अनुराग' या 'प्रेम' है।<sup>1</sup> वस्तुतः सत्वेनात्मक अनुभूतियों के साथ प्रेम वैयक्तिक आवश्यकताओं की दृष्टि होती है। उन्मुक्त परिधेरा में जो गहनता गम्भीरा प्रेम में दिखाई पड़ती है वह अन्य दुर्लभ है। स्वच्छन्द प्रेम की गहराई और तानता उन्मुक्त परिधेरा में ही संभव है। इसीलिए प्रेम के कई रूपों में से दाम्पत्य प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न रूप है। अतः जीवन का समस्त एवं स्वयं मानवजाति की प्रेम परम्परा और सौन्दर्य योप में ही उपलब्ध होता है। मानवीय क्रियाओं के अनुस्यू होने के कारण प्रेम सर्वमानव व्यापार से सामंजस्य स्थापित करता है, परन्तु इसको प्रेरणा सौन्दर्य पर ही टिकी है। प्रेम स्वच्छन्दतावादी कविताओं में यथार्थ की पुकार के रूप में दिखाई पड़ता है। यहाँ प्रेम क्रांतिकारी अभिव्यक्ति का एक तत्त्व है। यहाँ क्रांति अपना राग सर्वत्र फैला रही है, पूरे समाज का दण्डास्पर्क हम चिखर गया है। सर्वत्र क्रांति ही दृष्टिगत होती है। अतः प्रेम में भी क्रांति का आगमन हो गया है। प्रेम आज का एक मूल्य है और बदलते हुए मूल्यों के रूप में इसका आकलन आज के संदर्भ में आवश्यक है। नवस्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रेम लौकिक, वातनात्मक है। इसमें आध्यात्मिकता का आवरण नहीं है। प्रेम के संयोग-वियोग-अन्य ही-विवाद, उदासी, दूटन-मुटन, आसंतोष, हुंता आदि का सामन स्वर नवस्वच्छन्दतावादी कविताओं में सुख हुआ।<sup>2</sup>

स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रेम मानवी है। इस प्रवृत्ति के कवियों ने मानवी प्रेम का ही आकलन किया है। इन कवियों ने यथार्थवादी दृष्टि से ही प्रेम को देखा है। उसमें कल्पना एवं भावुकता नहीं है। अतः यहाँ प्रेम मानवीय, लौकिक एवं सांसारिक है।

1. डॉ० नामवर सिंह : चिन्तामणि भाग - 3 : पृ० 232

2. डॉ० अश्व सिंह : नवस्वच्छन्दतावादी पृ० 164

मध्ययुगीन राष्ट्रीय चेतना की याद उसे विभोर कर देती है। वह अतीत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक महिमा की स्मृति में लीन रहता है।''<sup>1</sup>

### अतीत प्रेम & विशेषकर मध्ययुगीन & :

स्वच्छन्दतावादी कवि अतीत प्रेमी होता है। वह अतृप्त छायाओं, कुंठाओं, काम चसनाओं का दमन तो करता है, लेकिन उन्हें विसृजित नहीं कर पाता है। वर्तमान की स्थिति से झुझकर वह स्वर्णिम अतीत & विशेषकर मध्ययुगीन & में चिन्तन करने लगता है। अतीत का चिन्तन, राष्ट्रीय संस्कृति की प्रगति का राह होता है। अतीत गौरव की गाथा गाकर ही वह वर्तमान को उन्नत बनाता है। कीदस की जा वेस ..... तथा ईय आफ तेड एग्जस रचनाएँ मध्ययुगीन स्वच्छन्दतावाद की कृष्णभूमि पर आधारित हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इन्हीं विन्दुओं को अपनी कविता में उतारा है। इसके लिए रीली की रमेनिस, कालरिज की एन्विगंट मेरिनर, वायरन की वाउल्ड हेराल्ड आदि कविताएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। वाउल्ड हेराल्ड में ग्रीक के पुराने गौरव को वर्तमान से जोड़ा गया है।''<sup>2</sup> हेने रे स्वच्छन्दतावाद को मध्ययुगीन कविता का पुनर्जागरण कहा है। ग्रियर्सन की मान्यता है कि स्वच्छन्दतावाद की मध्ययुगीन प्रवृत्ति अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेच सभी काव्य आन्दोलनों में दिखाई देती है।''<sup>3</sup> मध्ययुगीन प्रवृत्ति को स्वच्छन्दतावाद का मूल-मन्त्र मानते हुए वीयर्स ने कहा है कि मध्ययुगीन के जीवन और विचारों का आधुनिक कला और विचारों में पुनः प्रस्तुतीकरण ही स्वच्छन्दतावाद है।''<sup>4</sup> वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी कवि या तो अतीत की दुनियाँ में विचरण करता है अथवा भविष्य की दुनियाँ में। अतीत कालीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक गौरव-महिमा को स्मरण कराने में स्वच्छन्दतावादी साहित्यकालीन रहता है।

1. डॉ० अजय सिंह : स्वच्छन्दतावाद : पृ० 175

2. Dr. R. D. Sharma : English Romantic Poetry. page 109

3. डॉ० विवेन्द्र नारायण सिंह : आधुनिक काव्य की संस्कृति में: पृ० 63



हीनेल सौन्दर्य को अभिव्यक्ति का विषय मानते हुए उसकी सत्ता विचार में मानते हैं।<sup>1</sup> वाममार्टन के अनुसार सौन्दर्य की स्थिति पूर्णता के आधिभावि में है।<sup>2</sup> हरव अमर मूल्यों में सौन्दर्य के दर्शन करते हैं।<sup>3</sup> अस्तु मंगल का सुन्दर मानते हैं, जो मार्गमिह होने के कारण आनन्ददायक भी है।<sup>4</sup> वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों ने सौन्दर्य को सुष्ठि का मूल सत्य अभिव्यक्ति, स्थिति को पूर्णता एवं मार्गमिह माना है। जो प्रकृतिमूलक एवं कलामूलक अभिव्यक्ति है।

भारतीय मनी ाि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सौन्दर्य को इस प्रकार व्याख्यायित किया है, " सौन्दर्य बाहर की ओर वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है..... कविता केवल वस्तुओं के ही रंग-रूप के सौन्दर्य की दृष्टि नहीं दिखाती प्रत्युत कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी उत्पन्न मार्गमिह रूप सामने रखती है। वह जिस प्रकार चिन्तित कर्म, रमणी के मुख मंडल का सौन्दर्य मन में लाती है, उसी प्रकार उदारता, क्षौरता, त्याग, दया, प्रमोदार्थ प्रत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौन्दर्य भी मन में लाती है।"<sup>5</sup>

1. Beauty is the idea as it shows itself to sense".  
D. Bosanquet: History of Aesthetics. p. 336
2. The appearance of perfections. or perfection. obvious to test in the wise sense is beauty (Carritt: philosophies of beauty. page. 64
3. Beauty stands out more and more as somethings permanent possessed of undeniable value (D. Croce: Aesthetics )  
p. 309
4. "The beautiful is that good which is pleasant because it is good". D. Bosanquet : History of Aesthetics. p. 63
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि : प्रथम भाग : पृ० 164-166

आचार्य शुक्ल ने सौन्दर्य के आन्तरिक रूप को महत्त्व देकर उसे मानसिकता से जोड़ा है। क्योंकि बहुत से व्यक्तियों को किसी वस्तु या पदार्थ में सुन्दरता में भी असुन्दरता नजर आती है और असुन्दरता में सुन्दरता नजर आती है। यह मानसिकता ही है। डॉ० रमेशा कुन्तल मेम का कथन है 'सौन्दर्यबोधोपात्मक' निर्णय' या सौन्दर्यात्मक अनुभव या सपि का निर्णय चिंतन प्रधान है। एक क्षण या मीर की व्याकृति के प्रति आनन्द का अद्भुत उनके प्रति सामना नहीं है, वरन् उनही अवस्थिति में हमारी मानात्मक [बोध्य + बोधात्मक + ज्ञानात्मक] वृत्तियाँ का मुक्त विलास है।''<sup>1</sup> किन्तु यदि रवीन्द्र नाथ टैगोर का कथन है, 'सत्य के साथ मंगल के पूर्ण स मंगल्य को यदि हम देख लें तो फिर सौन्दर्य हमारे लिए अजीब नहीं रहता।''<sup>2</sup> आचार्य हमारी प्रसाद द्विवेदीसौन्दर्य को 'साहित्य' मानते हैं, उनका कथन है, 'प्राकृतिक सौन्दर्य से भिन्न किन्तु उसके सामानान्तर चलने वाला मानव रचित सौन्दर्य, अन्त में आकाशों में वर्णित विषकायनी सर्वनात्मक शक्ति 'समिता' के प्रभा मंडल से मंडित करते हुए मनुष्य निर्मित सौन्दर्य तत्त्व को 'साहित्य' की संज्ञा देते हैं। किन्तु भिलावर सम्प्लित्य और व्यञ्जित दोनों ही स्तरों पर द्विवेदी जी सौन्दर्य दृष्टि मूलतः मानव केन्द्रित ही है।''<sup>3</sup>

युनः आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं, 'जीवन का समग्र धिगत ही सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य वस्तुतः एक सूत्र व्यापार है। इस सूत्र की क्षमता के कारण ही मनुष्य है। इस सूत्र व्यापार का अर्थ है पन्थों से

1. डॉ० रमेशा कुन्तल मेम : साक्षी हैं सौन्दर्यप्राग्निक : पृ० 118

2. This is the ultimate object of existence that we must ever know that, "Beauty is truth, truth is beauty" Tagore Sadhana, p. 141

3. डॉ० नामवर सिंह : दूसरी परम्परा की धारा : पृ० 96

विद्रोह इस प्रकार सौन्दर्य विद्रोह है - मानव सृष्टि का प्रयास है।''<sup>1</sup>

डॉ० रामविलास शर्मा आनन्दानुभूति पर बल देते हुए वस्तु के आनन्द प्रदान करने वाले धर्म को सौन्दर्य मानते हैं। उनका कहना है, '' प्रकृति मानव जोधन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।''<sup>2</sup> जिस वस्तु या व्यापार या भाव में व्यक्ति का चित्त रमणा करता है, उसे वह उस धरा सुन्दर प्रतीत होता है। उस समय विषय और विषयी में, दृश्य और द्रष्टा में, प्रमेय और प्रमाता में एक सामंजस्य स्थापित हो जाता है। एकान्त अनुकूलता उपलब्ध होते ही व्यक्ति का चित्त वस्तु के साथ रमणा करता है। एक तत्त्व के दो भिन्न रूप, जब अपनी भिन्नता को भुलाकर, उस तत्त्व की अभिन्नता का अनुभव करते हैं, तभी वे रमणा करते हैं। वस्तु और व्यक्ति की चित्रवृत्ति का सम्यक् योग-रमणा कहा जायेगा। जिस वस्तु या व्यापार के साथ चित्त रमणा करता है, वह रमणीय हो जाता है, सुन्दर लगता है। इसलिए सौन्दर्य वह गुण है जो वस्तु और व्यक्ति के बाह्य और अन्तर के सामंजस्य से उत्पन्न होता है। x x x अतः सौन्दर्य ही अनुभूति सुख:दुख से परे होती है, इसलिए उसे आनन्द की संज्ञा मिली है।''<sup>3</sup> वस्तुतः सौन्दर्य चित्तवृत्तियों का संयोग, रमणा एवं आनन्द की सहज प्रक्रिया का नाम है, लेकिन जर्मन कांच ने कहा है कि '' सौन्दर्य और छुट नहीं बल्कि नास का आरम्भ है।''<sup>4</sup>

1. डॉ० नामवर सिंह : दूसरी परम्परा की खोज : पृ० 96
2. सं० समालोचक : सौन्दर्यशास्त्र विभागांक : पृ० 176
3. आचार्य शिवदास रामः कातिदास के सौन्दर्य सिद्धान्त और मेघदूतः पृ० 1-2
4. डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह : अगुह काव्य की संस्तुति में : पृ० 88 से उद्धृत

प्राकृतिक विज्ञान बोलता है कि सौन्दर्य के अभिव्यञ्जना प। पर बल देते हुए कहा है, 'सुन्दर वह है जिसमें चारित्र्य या वैशिष्ट्यपूर्ण प्रकाश रहता है। वह रेन्द्रिय या उत्पन्ना रूप में प्रकाशित वस्तु धर्म है। उसे प्रकाशित होने के लिए कोई माध्यम चाहिए। अभिव्यक्त सौन्दर्य में सार्वजनीन अथवा अमूर्त व्यञ्जनात्मकता सम्मिलित होती है।' <sup>1</sup> डॉ० कुमार विमल सौन्दर्य को कुल्यता से सम्बन्धित मानते हैं। उनका कथन है, 'सौन्दर्य का विपरीतार्थक अथवा प्रतीप असौन्दर्य नहीं बल्कि कुल्यता है। कुल्यता भी हमारी सौन्दर्य चेतना से सम्बन्धित है।' <sup>2</sup> प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रा नन्दन पंत ने सौन्दर्य का सम्बन्ध 'प्रज्ञा' <sup>3</sup> से जोड़ा है। श्री जयशंकर प्रसाद ने सौन्दर्य को 'चेतना का उज्ज्वल' वरदान' <sup>4</sup> कहा है।

सत्य शिव सुन्दरम् इति का उद्गम है। कुछ विद्वानों ने इसे वास्तव रूप में तथा कुछ ने सौन्दर्य के आन्तरिक स्वभाव को महत्त्व देते हुए इसे आध्यात्मिक स्तर पर स्वीकारा है। कर्म क्षेत्र में सत्य ही शिव बन जाता है और कल्याण से सम्बन्धित होकर यही सत्य सौन्दर्य में परिणत हो जाता है। सौन्दर्य सत्य का परिमार्जित रूप है जिसमें सम्पूर्ण संसार कल्याणमय प्रतीत होता है। प्लोटे ने सौन्दर्य को शिवतत्त्व से निष्पन्न मंगल विधावक माना है। <sup>5</sup> हाल्स्टेड के द्वारा सौन्दर्य का विवेचन विषय एवं विषयीगत दोनों ही दृष्टिकोणों से हुआ है। उनका कथन है

1. Bosanquet : A History of Aesthetic : p.6

2. डॉ० कुमार विमल : सौन्दर्यशास्त्र के सत्य : पृ० 116

3. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव : पृ० 87

4. जयशंकर प्रसाद : कामायनी : रकादश श्लो : पृ० 112

5. Bosanquet : A History of Aesthetic : p. 33

यदि एक ओर विषयीगत रूप में हम उस वस्तु को सुन्दर कहते हैं, जो एक प्रकार का आनन्द प्रदान करती है तो दूसरी ओर विषयीगत रूप में सौन्दर्य की सत्ता हम वस्तु की पूर्णता को मानते हैं।<sup>1</sup> विषयीगत सौन्दर्य ऐन्द्रिय होता है। वस्तु का बाहरी रूप एवं मानसिक आकर्षण दोनों ही सौन्दर्यानुभूति के लिए परम आवश्यक हैं। विषयीगत सौन्दर्य आत्मपरक है। मानव आत्मा सृष्टि के परमत्व से मिलने का व्यग्र रहती है, जो शिव और सुन्दर की मूल धेतना है। सौन्दर्य की भावना आध्यात्म की आधार भूमि पर स्थित है, उसके अभाव में सौन्दर्य की वास्तविक अनुभूति नहीं हो सकती। अरिस्टीन और एस्किनस ने सौन्दर्य को ऐश्वर्योपेतत्व माना है। वस्तुतः सौन्दर्य ऐन्द्रियरूप पर आधार होता है यह धेतनागत और आध्यात्मिक भी हो सकता है, परन्तु ऐन्द्रियगोचर रूप में भी उसकी अनुभूति सम्भव है।<sup>2</sup> उन दार्शनिकों का मत है सौन्दर्य वस्तुओं में नहीं होता, अपितु ये वस्तुएँ द्रष्टा के मानस में तरंगित सौन्दर्य सिन्धु में अवगाहन कर, उसे आकर्षण प्रतीत होती है।<sup>3</sup>

संक्षेप में सौन्दर्य के संदर्भ में यह कहा जा सकता है, सौन्दर्य में रोचकता अनिवार्य तत्त्व है। अतः रोचक या तुष्टि देने वाली वस्तु या पदार्थ ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य की तुष्टि से मानव जीवन में स्फूर्ति, हृदय

1. In the subjective aspect, we call beauty that which supplies us with a particular kind of pleasure, in the objective aspect, we call beauty some thing absolute ( absolutely ) perfect carries philosophies of beauty

2. p-191

W.B. Warfield : Judgement in literature. p. 83

3. Beauty is not quality in things them selves. It exists merely in the mind which contemplate them.

[उद्धृत आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य : डॉ रामेश्वरनाथ कपूरदास : पृष्ठ 146]

उदात्त भावना तथा कल्पना के लिए नये प्रतिमानों का सुजन और शक्ति का संसार होता है। सौन्दर्य के रक्षण से महाशक्ति का अनुभव होता है। मन में अलौकिकता का आभास होता है। वस्तुतः सौन्दर्य भावना हृदय में होमलता, माधुर्य और इस उत्पन्न करती है, जिसके लिए बन्धनों की मुक्ति आवश्यक है। इसलिये भी नैतिक पवित्रता और सौन्दर्य भावना का साथ जरूरी नहीं। जिस प्रकार सत्य की पवित्रता नैतिक पवित्रता से व्यापक है, उसी प्रकार सौन्दर्यस्वरूप पवित्र है, और इसकी पवित्रता नैतिक पवित्रता से अधिक व्यापक, गहुर और गम्भीर एवं उदात्त है।

‘रोमांटिक मूड’ [ स्वच्छन्द भाव - मुद्रा ] का कवि सौन्दर्य का सहज प्रेमी होता है। सौन्दर्य के प्रति गहरी उत्कंठा और तीव्र आकर्षण की प्रकृति स्वच्छन्दतावाद [ रोमांटिसिज्म ] का प्रधान लक्षण मानी गई है<sup>1</sup>। वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी प्रेम में कवि अपनी चेतना के सौन्दर्य में अटूट आस्था के कारण ही स्वच्छन्दतावादी कवि बाह्य वस्तुओं के वस्तुगत सौन्दर्य को भी अपनी ही आन्तरिकता के सौन्दर्य में रंग देता है और इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति के साथ ही सौन्दर्य-सर्वन भी करता चलता है। उसकी भावना, कल्पना की समन्वित प्रकृतिशीलता ही सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य सर्वन-प्रक्रिया को जन्म देती है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य में आन्तरिक या आत्मिक सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति पाकर आनन्दमग्न हो जाता है। उसे प्रकृति से असीम अनुसरण होता है। स्वच्छन्दतावादी कवि, मानव तथा प्रकृति से सर्वत्र आकृति सौन्दर्य से ही कहीं अधिक शीत-सौन्दर्य का दर्शन करता है। अनेक बार वह अपनी सौन्दर्यविधायिनी कल्पना से वास्तविक सौन्दर्य-बोध के आधार पर दिव्य-सौन्दर्य-लोकों की अवतारणा करता है। स्वच्छन्दतावादी कवि को प्रकृति, मानव और मानवोत्तर दिव्य प्राणियों और लोकों में सर्वत्र एक ही सौन्दर्य-सत्ता के दर्शन होते हैं।<sup>2</sup> किसी भी समाज में सौन्दर्य का जो आदर्श प्रचलित

1. डॉ० रवीन्द्र भूषर : छायावाद : एक पुनर्मूल्यांकन : पृ० 113

2. डॉ० अमर सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 168

रहता है वह ज्ञातः तो मानव जाति के विकास के वैयक्तिक स्थितियों में सम्मिलित रहता है जो कि जातिगत विविधता को भी निर्धारित करता है और ज्ञातः उन ऐतिहासिक स्थितियों में जिनमें समाज का उद्भव और विकास हुआ है।'' 1

### संस्कृति - लोक संस्कृति :

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग के साथ संस्कृत की [संस्कृत] धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है। आज के साहित्य में यह अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है। संस्कृति शब्द का प्रयोग कम से कम दो अर्थों में होता है : एक व्यापक और दूसरा संकीर्ण अर्थ में। व्यापक अर्थ के संदर्भ में इसका प्रयोग नर विज्ञान में किया जाता है। इसके अनुसार संस्कृति समस्त जीवों द्वारा व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ में 'संस्कृति' को सामाजिक प्रथा का पर्याय भी कहा जाता है।'' 2

वस्तुतः संस्कृति वैदिक युग से लेकर आज तक मानवीय विकास की चेष्टा संस्कृति है। यह मानव की विविध साधनाओं की सविशेष उपलब्धि है। संस्कृति धर्म का विरोध तो नहीं करती परन्तु समस्त दुर्यमान विरोधों में सामंजस्य स्थापित करती है। प्राचीन संस्कृति की सामाजिक संरचनाएँ बन्धनहीन और मुक्त थीं। उसके सदस्यों में ग्रहण करने की अपार क्षमता थी। फलतः समाज के जादूशों नियमों व्यवहारों तथा सामाजिक विचारों आदि में परिवर्तन होते रहे। इस बदलाव के फलस्वरूप बदली हुई स्थितियों संस्कृति की आधारशिला बनीं। अतः वैदिक युग से लेकर आज तक होने वाले विविध परिवर्तनों का समावेश भारतीय संस्कृति का विस्तार है।

1. डॉ० विवेक नारायण सिंह : असुक्त का संस्कृति पृष्ठ 58

2. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य ज्ञान : भाग 1 : पृष्ठ 868

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति के पाँच तत्वों को माना है।  
 ॥१॥ ब्रह्म के अनुभव अर्थात् ज्ञान के पाँच उत्तरोत्तर स्तर क्रमशः जन्म  
 ॥ भौतिक पदार्थ ॥ प्राण, मन, विज्ञान ॥ बुद्धि ॥ तथा आनन्द ॥  
 आध्यात्मिक तत्व हैं। ॥२॥ इसमें धर्म विज्ञान ॥ थियोलॉजी ॥ तथा  
 तत्त्व-विज्ञान ॥ फिलॉसफी ॥ सभी परस्पर विरोधी तत्व नहीं माने गये।  
 ॥३॥ इसमें शरीर और मन की बुद्धि आवश्यक है। ॥ बाह्य और अंतः  
 करणों की बुद्धि ॥४॥ मनुष्य को देवपुत्र, गृधि-पुत्र तथा पितृपुत्र चुकाने  
 होते हैं ॥५॥ भारत ने अपनी धर्म साधना की अहिंसा और मेरी का  
 सम्देश एशिया तथा यूरोप के देशों को दिया। ये तत्व धार्मिक नैतिक  
 संस्कृति के माने जाते हैं। यह विशेषकर प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन संस्कृति  
 के मार्ग दर्शक हैं।<sup>१</sup> वस्तुतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सभी प्रकार  
 की धार्मिक भावनाओं, साधनाओं, भक्ति योग की अनुभूतियों की  
 परिपूर्णता को संस्कृति मानते हैं। ऐसे संस्कृति का अर्थ उत्पन्न है। प्रत्येक  
 व्यक्ति अपनी जाति एवं स्थिति संस्कारों के अनुसार उसका अर्थ समझ लेता  
 है। फिर इसको एकदम उत्पन्न भी नहीं कह सकते क्योंकि प्रत्येक मनुष्य  
 जानता है कि मनुष्य की केवल साधनाएँ ही उसकी सांस्कृतिक धरोहर है।

डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है, "जब भी दो  
 जातियाँ मिलती हैं, उनके सम्पर्क या संघर्ष से जिन्दगी की एक नई धारा  
 फूट निकलती है, जिसका प्रभाव दोनों परपूरता है। आदान-प्रदान की  
 प्रक्रिया संस्कृति की जान है और इसी के सहारे यह अपने को जिन्दा  
 रखती है।"<sup>२</sup> डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का अभिमत है, "संस्कृति वह  
 है जो मनुष्य द्वारा सिरजी जाती है। यह मनुष्य की सर्वनात्मकता का  
 कुल योग है। यह सृजन प्रक्रिया भी है तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का  
 परिणाम भी।"<sup>३</sup>

- 
१. डॉ० नामवर सिंह : आलोचना जुलाई-सितम्बर १९८५ : १ में डॉ०  
 रमेश कुन्तल मेघ का लेख : कार्ल मार्क्स के पाँच बीज-वाक्य ॥पृ० ३२
  २. डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' : संस्कृति के चार अध्याय : पृ० ६९५
  ३. डॉ० नामवर सिंह : आलोचना जुलाई-सितम्बर १९८५ : पृ० ३२



वस्तुतः संस्कृति मानव द्वारा संचित की हुई अनुभव व्यापार की प्रक्रिया है। कम-कम संचित किये हुए हमारे पूर्वजों के संस्कार ही संस्कृति में परिणत हुए हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'आज के पून' में संस्कृति को पूनों के माध्यम से उद्धृत किया है। 'एक-एक पून, एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है।' 'संस्कृति में 'संग्रह' के साथ-साथ 'त्याग' भी मिलता है। पुनः द्विवेदी जी का कथन है, 'मनुष्यकी जीवनी शक्ति यही निर्भर है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों की रौंदती जली आ रही है। न जाने कितने धर्मधारों, विचारों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जरन धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।' 2

वस्तुतः मानवीय व्यवहार या व्यक्तित्व को शुद्ध करने का माध्यम संस्कृति है। लिन्टन के अनुसार, 'संस्कृति व्यक्ति के व्यवहार, अभिवृत्ति और मूल्यों का वह समुच्चय है जिसे समाज के सदस्य ग्रहण करते हैं तथा हस्तान्तरित करते हैं।' 3 **हॉब्स** L.A.Hobbes का कथन है, 'संस्कृति ऐसे समन्वितस्रोतों द्वारा व्यवहार प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है जो एक समाज विशेष की विशेषताओं की ओर इंगित करता है और इसीलिए वैश्विक विरासत का परिणाम नहीं होती है।' 4 **जेम्स डेवर** J. Dever का अभिमत है, 'संस्कृति सभ्यता के वैश्विक पक्ष से सम्बन्धित है या तकनीकी पक्ष से संस्कृति वह समुच्चय है जिसमें व्यक्ति के वैश्विक उद्देश्य, सामाजिक प्रथाएँ, विधान और कला आदि सम्मिलित हैं।' 5 **रेन्च**rench के अनुसार व्यवहार तथा विचार के नमूने जो पीढ़ी दर पीढ़ी सोखने के द्वारा हस्तान्तरित होते हैं, उन्हें संस्कृति कहते हैं।' 6

1. डॉ० नामर सिंह : दूसरी परम्परा की खोज : पृ०

2. डॉ० नामर सिंह : दूसरी परम्परा की खोज : पृ०

3. 4. 5. 6. डॉ० जयगोपाल त्रिपाठी : सामाजिक मनोविज्ञान से उद्धृत

वस्तुतः संस्कृति समाज में पायी जाने वाली व्यवस्थाओं का वह समन्वित और सम्पूर्ण योग है जो एक समाज के व्यक्तियों में नयी होता वल्कि उनका विकास भी समाज के व्यक्तियों के द्वारा ही किया जाता है। समाज के व्यक्ति इनको तोड़कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित करते हैं। संस्कृति आंतरिक एवं वाह्य प्रतिमानों से बनी हुई होती है जो कि प्रतीकों द्वारा होता है यह मानव समूहों के स्पष्ट जीवन से निर्मित होती है जो कि मूल सत्त्वों का भी अभिव्यक्ति करते हैं। संस्कृति का मुख्य केन्द्र परम्परागत विचारों एवं विरोध से मिले हुए मूल्यों से बना होता है।

नगरों, गाँवों, महानगरों के बीच जो सन्नता बनयी है उसमें संस्कृति एवं लोक-संस्कृति का समावेश है। अतः लोक संस्कृति से तात्पर्य लोक जीवन की संस्कृति से है। इसमें सरल, साफ जीवन विचित्रताओं से दूर का जीवन मिलता है। वस्तुतः जहाँ जीवन की सन्नता मिलती है वहाँ लोक संस्कृति मिलती है। प्राचीन मान्यताओं के अनुसार-लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में विकसित होती है, जिससे उसमें सन्न स्वभावविषयता आ जाती है। इसमें पढ़ा-भक्ति का समावेश सम्मिलित रहता है।

वस्तुतः लोक संस्कृति तिनके जुड़-जुड़ कर बनी है। इसमें बार-बार लोगों ने प्रयोग किए, कई पीढ़ियों तक यह प्रयोग बने तब कहीं उन्हें मान्यता मिली। लोक-संस्कृति में ऐसी भावना है जो मनुष्य को आपस में मिलती है। यहाँ तक कि व्यक्ति काल में लोकोक्ति 'बूझते को तिनके का सहारा' भाविक उधार लेती है। जितनी भी लोकोक्तियाँ हैं वह जीवन पर प्रयोग कर ही गयीं हैं। और इसमें धार्मिकवादी चेतना मिलती है। लोक संस्कृति में आन्तरिकता की मधुरता, स्निग्धता मिलती है। मनुष्य के प्रेम पूर्ण स्पर्श में जो स्नेहिलता है, स्निग्धता है वह किसी में भी नहीं। अतः वही शक्ति लोक-संस्कृति के तमाम उपादानों में संविता है। जो गीत प्राचीन काल से जन में बसे हुए हैं वह जीवन को

गति एवं जीने का प्रयोजन देते हैं। लोकगीतों के बिना जोवन नीरस लगता है। व्यक्ति के लोक-गीत के गायन से उसकी जातीयता का पता चलता है। जब सभी मनुष्य एक लय में एक ही मानसिकता में लोक-गीत का स्मरण करते हैं तो पता चलता है कि पशु-पक्षी, नदी-पर्वत, धरती-आकाश सभी का सभी उसका अपना है, उसके सुख-दुःख में साथ देने वाला है। फलतः लोक संस्कृति से संबंधित मानसिकता बनती है।

जिन मान्यताओं से लोक संस्कृति को स्वीकार करते हैं वह तर्क नहीं, आस्था, निष्ठा, परम्परा, विश्वास और श्रद्धा पर ही आधारित है। इसमें पवित्रता को प्रमुखता देनी पड़ती है। 'लोक' निर्मय होता है। वस्तुतः लोक संस्कृति का बोध सहज ही होता है। लोक दृष्टि अधिकृत और अविकल होती है जो सच्चाई को सहज ही पकड़ और पहचान लेती है।

डॉ० वासुदेव शरणा अग्रवाल का कथन है, 'ब्रह्म के समान यदि भारतीय जीवन को चतुष्पात माना जाय तो उसके एकपाद की प्रतिष्ठा वेद या शास्त्रीय चिन्तन में और त्रिपाद को अभिव्यक्ति लोक के क्रियाशील जीवन में है ..... लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वल्प है, लोक कूत्सन् ज्ञान और उसके सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए 'लोक' सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री, सर्वभूत माता पृथिवी और लोक व्यक्तस्व मानव यही हमारे नये जीवन का अध्यात्मशास्त्र है।' इंडियन कोक-लोर सोसाइटी, कलकत्ता के महासचिव तथा भारतीय लोकवार्ता की अन्तराष्ट्रीय पत्रिका 'फोक लोर' के संपादक डॉ० शंकरसेन गुप्त संस्कृति लोक-संस्कृति में साम्य वैषम्य प्रकट करते हुए कहते हैं 'पहले जनपदीय

1. सं राजेन्द्र रंजन: लोकोक्ति और लोक विज्ञान, विद्यालय पत्रिका :

के 0एल0 जैन इण्टर कालजे, सातनी से उद्धृत पृ० 138

जनपुरों और ग्रामों में रहते थे और धार्मिक-जीवन जीते थे, मध्यकाल में धार्मिक केन्द्रों के त्य में तीर्थों का विकास हुआ और लोगों को एकत्र होने का नया अंतर मिला, तीर्थ मानवीय-गतिविधियों के केन्द्र बने, विभिन्न जनपदों के कवि, कथाकार, व्यास, सूत यहां मिलकर धीरगाथा तथा धर्मगाथा सुनाकर आध्यात्मिक-जीवन का विकास करते थे। जब मध्यवर्ग ने सत्ता ग्रहण की, तो उसने सामान्य जन की राजनैतिक और सांस्कृतिक सत्ता को प्रतिबंधित करने का प्रयास किया और इसके कारण अभिजातवर्ग संस्कृति का जन्म हुआ। विदेशी आक्रमण और योद्धा की प्रभुता के दबाव के परिणामस्वरूप लोक-संस्कृति में मोड़ आये। उसके बाद विज्ञान और तकनीक के साथ संसार-माध्यमों के विकास ने लोक-संस्कृति को पुनः प्रभावित किया।<sup>1</sup> लोक संस्कृति के संदर्भ में डॉ० रामानंद तिवारी का कथन है, "लोक संस्कृति, संस्कृति का लोकप्रिय और जीवंत रूप है।"<sup>2</sup> डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक संस्कृति के अन्तर्गत जन-जीवन से सम्बन्धित आचार-विचार, विधि, निषेध, विश्वास, प्रथा, परम्परा, धर्म, मूढ़ागुह एवं अनुष्ठान आदि आते हैं।<sup>3</sup> एच० ग्रेटर का कथन है, "लोकवागी जन संस्कृति का वह कला है जो विश्वासी, प्रथाओं, रीति-रिवाजों, पौराणिक उपाख्यानो, वास्तविक कहानियों तथा कला एवं विज्ञान, जो व्यक्ति से अधिक समुदाय की मनः स्थिति तथा प्रतिभा की अभिव्यक्ति करे, सुरक्षित रहता है क्योंकि यह 'लोकवागी' लोक प्रिय परम्पराओं की निधि है तथा लोक प्रिय 'वातावरण' का एक अभिन्न तत्व भी है।"<sup>4</sup>

1. डॉ० राजेन्द्र रंजन : लोकप्रिय लोक और विज्ञान : विज्ञान पत्रिका : ७०२२० थ्रन एक्टर कालेज, तासनी । से उद्धृत पृ० 204
2. डॉ० रामानन्द तिवारी : हमारी जीवंत संस्कृति : पृ० 18
3. डॉ० राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी साहित्य का इतिहास : चौथा भाग, पृ० 11
4. डॉ० जयाम परमार : भारतीय लोक-साहित्य : से उद्धृत : पृ० 17

‘लोक साहित्य सभी देशों और प्रदेशों का अपना अद्भुत सौन्दर्य और माधुर्य रखता है। उसके पीछे लिखित साहित्य की तरह की एक सच्ची परम्परा है जो लिखित साहित्य से जहाँ अधिक घड़ी और अधिविच्छन्न होती आई है। लिखित साहित्य भी लोक-साहित्य की ही उपज है।’<sup>1</sup>

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है, ‘‘ भारतीय साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग, लोक साहित्य पर आधारित था। कहना व्यर्थ है कि वहाँ के लोक कथनकों का अध्ययन बहुत सख्त नहीं है। न जाने कितनी बार वह साहित्य-उपर स्वर के ग्रन्थों से प्रभावित हुआ है और कितनी बार उसने उसे प्रभावित किया है।’<sup>2</sup>

जिस प्रकार मनोविज्ञान ‘मन’ का विज्ञान है, उसी प्रकार लोक-संस्कृति भी लोक-मन का उद्भव है। पण्डित मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने ‘मन’ के दो भागों किये हैं - चेतन एवं अचेतन। जिसमें मनुष्य के सारे क्रिया-कलाप निहित हैं, परन्तु युग तथा संस्कार इन दोनों अवस्थाओं के अतिरिक्त ‘मन’ में कुछ और भी मानते हैं। क्योंकि दैनिक जीवन में कुछ बातें ऐसी भी बिना चेतन को कुछ ज्ञान नहीं होता। किन्तु फिर भी उसका चित्त उसके मन में धनता है, मानों सहस्रों वर्ष पूर्व बनाया गया हो। अतः लोक संस्कृति में मनोवैज्ञानिक तत्त्व विद्यमान रहते हैं। युग आदिम वृत्तियों आचक्षिष्य, कैंटी, प्रतीक एवं मिथक सिद्धान्त को सामाजिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं। अतः लोक-संस्कृति का पूरा आग्रह का आरम्भ बिन्दु ये ही हैं।

सारतः समस्त विश्व में लोक संस्कृति का मूल एक ही है। किन्तु स्थान, काल, वातावरण की भिन्नता के कारण यह भिन्न-भिन्न रूपों में परिवर्तित है। अतः उसके अन्तर्गत जीवन के सभी भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्य आ जाते हैं। प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न नैतिक स्तर, धार्मिक विश्वास, सामाजिक नियम, संस्कार तथा अन्य सामाजिक क्रिया-कलाप होते हैं जिनको सामाजिक तथा धार्मिक

1- राहुल सांस्कृत्यायन: राहुल निबंधावली : पृष्ठ 23

2- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: विचार और तर्क : पृष्ठ 210

स्वीकृति प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रत्येक देश समाज की संस्कृति की आधार शिधा वहाँ का लोक समाज होता है। अतः प्रत्येक जाति की अपनी एक परम्परा एवं संस्कृति होती है। परन्तु आधुनिकता एवं भौतिक साधनों से परे जो संस्कृति है वही लोक संस्कृति है। वस्तुतः उसमें आदिम वृत्तियों की प्रधानता दिखमान रहती है। लोक-संस्कृति आस्था-इश्वरों से स्वच्छन्द होती है। यह उन्मुक्त वातावरण में ही विचरणा करती है। अतः लोक संस्कृति सत्यता के आश्चर्यचकित वस्तुओं को तोड़ने के कारण नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है। जिसमें रागात्मक प्रवृत्तियों का विनाश मिलता है। जो स्वाभाविकता एवं स्वच्छन्दता से परिपूर्ण होती है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति की धेतना मूलतः मानवीय गुणों से पूरी होने के कारण, मानवीय क्रिया-कलापों के व्यवहार स्वयं उसकी प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावादी धेतना से जुड़ती है। संस्कृति मानवीय आधार व्यवहार से जुड़ी होने के कारण व्यक्ति की व्यक्तित्वता भी इसमें आ जाती है। अतः मानवीय आन्तरिक, व्यक्तित्व गुणों के कारण भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति बन जाती है। संस्कृति में सामाजिक धेतना परिलक्षित होती है, फलतः समाजवादी यथार्थवादी एवं सामाजिक धेतना, नवमानववाद से जुड़ने के फलस्वरूप नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति फैलती है। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृति पूर्णतः मानवीय आधार-व्यवहार पर टिकी हुई है। जिसमें आन्तरिक रूप में मनोवैज्ञानिकता और बाह्य रूप में सामाजिक धेतना परिलक्षित होती है। लोक संस्कृति मिथवीय धेतना से सिद्ध होती है। अतः लोक संस्कृति आध्यात्मिक, दृष्टि, प्रतीकों का सहारा लेकर आगे बढ़ती है। सामूहिक अवेगन रूप में संस्कृति-लोक संस्कृति को अपनाकर चलती है। फलतः इन्हीं विशेषताओं के फलस्वरूप संस्कृति लोक-संस्कृति, नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति बन जाती है। अन्त में डॉ० जयसिंह के शब्दों में 'नवस्वच्छन्दतावाद के विकास में लोक-जीवन, लोक-परिचय लोक संस्कृति एवं लोग-नीतात्मकता दिखाई पड़ती है। वस्तुतः

वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावादी चेतना लोक-चेतना का विस्तार है।  
 आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में सन् 1937 ई० में अपने-आपमें  
 एक महत्वपूर्णटना-घिन्नु है। इसके अनन्तर हिन्दी कविता कल्पना  
 के आकाश से उतरकर यथार्थ की धरती पर पाँव रखती है। यह धरती  
 शहरों की धरती नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन का परिवेश है। धरती  
 मिट्टी, फसल जैसे शब्द लोक-जीवन और लोक-भाषा के रूप में प्रयुक्त  
 हुए हैं। निराला, पंत, मधुसूदन प्रसाद मिश्र, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन  
 मिलोचन, शम्भूनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, ज्ञानेश्वर, धर्मवीर भारती,  
 नरेन्द्र मेहता, रामदरश मिश्र इत्यादि की कविताओं में लोक-परिवेश  
 , लोक-संस्कृति एवं लोक गीतात्मक शैली का अंकन मिलता है। इस  
 तरह लोक - संस्कृति एवं लोकगीतात्मकता हिन्दी कविता के  
 नवस्वच्छन्दतावादी प्रवाह में विकसित होता है।''

#### चिन्मय एवं रहस्यानुभूति :

लौकिकता से परे, जब किसी अज्ञात, अव्यक्त, रहस्यमय  
 अलौकिक शक्ति के प्रति उत्सुकता, चिन्मय, जिज्ञासा, मानसता एवं  
 भिन्नानुभव व्यक्त किया जाने लगता है तब उस अनुभव-वैय अवस्था  
 को रहस्यानुभूति की अवस्था कहते हैं।''<sup>2</sup> वस्तुतः चिन्मय और  
 रहस्यानुभूति रोमांचकता की स्थिति है, जिसके अन्दर मय, जिज्ञासा,  
 उत्सुकता की अनुभूति होती है। अतः रहस्यानुभूति के मूल में अभाव  
 गुप्त, नाश और निस्तार प्रतीत होने वाले संसार के प्रति अज्ञात-  
 विभाव, निराशा तथा अनास्था की भावना रहती है।

1. डॉ० ज्ञान सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 160-61

2. सौ० डॉ० पीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश : पृ० 638

भावुक कवि सांसारिक धंधलों के प्रति विमुख होकर अन्तर्मुखी हो जाता है। सांसारिक व्यथाओं से परे, समस्त लोका-परलोकों में व्याप्त एक अनवरत, अतीत और अनन्त सत्ता में लीन हो जाता है। कभी-कभी भावुक कवि बाहरी संसार में व्याप्त अतीत सौन्दर्य में किसी अद्भुत अज्ञान सत्ता के दर्शन करने लगता है और इस प्रकार अनन्त सांख्यिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर अतीतिता से सामंजस्य स्थापित करता है, सौन्दर्य स्वप्नों में मग्न हो एवं नियन्त्रा का आभास पाने लगता है। वह उसी सर्वव्याप्त, अव्यक्त सत्ता में पूर्ण विश्वास करता है, उसी के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करता है, उसी का सामोप्य पाने के लिए व्याकुल रहता है और उसी के विधोम में सुलसता, तद्रूपता हुआ मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति करता है।

चित्मय एवं रहस्यानुभूति के संदर्भ में डॉ० जयसिंह का कथन है, "चित्मय एवं रहस्यानुभूति वास्तव में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की ही अत्यन्त वैयक्तिक, स्वाभाविक परिणति है, जिसमें वैयक्तिक सत्ता देश और काल से परे, अनन्त और नित्यसत्ता के साथ तादात्म्य ग्रहण करता है। स्वतन्त्रता की लालसा और धन्धलों के त्याग की जो भावना स्वच्छन्दतावादी अनुभूति के मूल में व्याप्ता है, वह यहाँ परम उत्कर्ष पर दिखलाई पड़ती है।"

वस्तुतः चित्मय एवं रहस्यानुभूति वैयक्तिक अनुभूति है। जिसे मनुष्य कभी-कभी अनुभव करता है। प्रकृति के प्रांगण में बैठकर या शान्त स्थल पर बैठकर जब वह अव्यक्त सत्ता में लीन होता है तभी रहस्यमयी अनुभूति प्रतीत होती है। 'इस रहस्य-चित्मय एवं विधाता भाव में कवि अतीत या भविष्य के आदर्शों को स्वच्छन्दतावादी प्रस्तुत करते है, देवी देवताओं की शक्ति की तरह कला की प्रारम्भिक एवं आदिम सद्य प्रकृति या संवेदना जो यथार्थ को चित्रित करने का



यातन्मय प्रयास करती है, 'वही सदैव' रहस्य' की स्थिति होती है।  
 वहाँ कभी भी स्वच्छन्दतावादी स्थिति बनती है, वहाँ पर रहस्य।  
 जिज्ञासा भाव को भी और वहाँ कहीं भी रहस्य चिन्मय जिज्ञासा भाव  
 की स्थिति है, प्रतीक भिन्ना। केवल प्रतीक ही रहस्य चिन्मय जिज्ञासा  
 भाव को अभिव्यंजित कर सकता है। जोधन जगत् एवं अलौकिक सत्ता  
 के संदर्भ में रहस्य-चिन्मय/जिज्ञासाभाव की विवृति साहित्य या कलात्मक  
 अभिव्यंजना में स्वच्छन्दतावादी हुआ करती है और आज की यथार्थवादी  
 अभिव्यंजना में रहस्यात्मक भावना प्रतीकात्मक अभिव्यंजना का रूप ग्रहण  
 करती है। इसलिए नवस्वच्छन्दतावादी कवि अपनी चिन्मय एवं  
 रहस्यानुभूति को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है।  
 और इसीलिए प्रत्येक युग में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति उभरती रहती है।<sup>10</sup>

#### अवसाद विषाद-वेदना भाव :

स्वच्छन्दतावादी कवि जीवन की विषमताओं से दृष्टर किसी  
 मनोरम स्थान में खो जाना चाहता है। वह कल्पना के पंखों पर मनोरम  
 स्थानों में विहार करना चाहता है। स्वच्छन्दतावादी कवि में वैयक्तिक  
 अनुभूतियों की अतिशयता के कारण अई भाव अधिक होता है। अतः  
 आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यंजित करते समय निराशा का भाव स्वतः  
 आ जाता है। 'फलस्वरूप' 'पलायनवाद' और 'भाग्यवाद' का जन्म होता  
 है। यथार्थ से दृष्टर अवास्तविक स्थानों की शारणा लेना ही पलायन  
 है। 'साहित्य में उसका प्रयोग मुख्यतः उसी प्रवृत्ति को व्यक्त करने के  
 लिए किया जाता है, जिसमें वस्तुस्थिति और यथार्थ से कतराकर या  
 जीवन और उसकी अनिवार्यताओं की अपेक्षा करके किसी दिवास्वप्न  
 या स्वप्नलोक या अयथार्थ काल्पनिक स्थितियों में साहित्यकार रत  
 और आनन्द लेकर जीवन को अनुत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से बिता देना

क्षेपस्वर समझता है। जीवन और यथार्थ से पदच्युत एवं संस्कारहीन तत्त्वों से विस्थापित मनोवृत्ति को व्यक्त करने वाला साहित्य पलायनवादी साहित्य कहा जाता है।'' 1

राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक धरातल पर हुए विद्रोह ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया। व्यक्तिवाद ने व्यक्ति की महत्ता को स्वीकारा। कवि मानवतावादी भावना से सिक्त होकर लोकहित के निर्माण का प्रयत्न करने लगा। वह ऐसे नव्य संसार का पुनर्निर्माण करना चाहता था, जिसमें अज्ञात, विषाद, दुःखा, ईर्ष्या, संघर्ष, क्लेश आदि की व्यवस्था न हो, जहाँ किसी प्रकार की असुविधा, असुरक्षा से जन व्याकुल न हो। इस नूतन संसार की रचना के लिए स्वच्छन्दतावादी कवि को प्राचीन सद्धियों से गम्भीर संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में निरन्तर उत्तपन्नता मिलने से कवियों में असुरक्षा की भावना सुपरित होने लगी, भावुक कवि का मन अज्ञात-विषाद और वेदना से भर उठा। प्रेम में विफलता, नैराश्य एवं विषादसिक्त टीस, वेदना रोनाटिक कवियों की कविताओं की केन्द्रिय भाव है। स्वच्छन्दतावादी कलाकार और व्यक्ति मात्र के मन की संशय-दशा प्रतिकूल होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कविता में यत्र-तत्र निराशा, पलायन और भाग्यवाद की छलक दिखायी पड़ती है। स्वच्छन्दतावादी कवि अपने में केन्द्रित रहने के कारण उसे सहायीपन का अनुभव होने लगता है। अतः वह उदास हो जाता है।'' 2

डॉ० रामेश्वर लाल छठेवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य : पृ० 102

2. डॉ० अजय सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ : पृ० 31

**तृतीय अध्याय :**

**स्वच्छन्दतावाद : निरात्मगत वैशिष्ट्य**

**भाषा**

**विषय**

**प्रतीक**

**विषय**

**प्रगतितात्पर्यता**



का नित नवीन ढोंग और अर्थ-मर्म के निगूढ़ स्थल उन सबकी अनुस्यूति रहती है।'' अतः भाषा सविदना, अनुस्यूति, कोमलता, कठोरता, भाषानुस्यूतियों का सम्मेलन है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों का काव्य संस्कृत के तत्सम, तदभव, वंगल। प्रभाव एवं लोक जीवन से बना हुआ है। उनका-उनका पर्यायवाची शब्दों में उच्चारण भेद के आधार पर स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उनके भिन्न-भिन्न चिन्तों का मार्गदर्शन किया। भाषा की कोमलता स्वच्छन्दतावादी कवियों में बहुत पायी जाती है। उनकी कोमल भाषा और शब्दावली कोमल भावनाओं की अभिव्यञ्जना में पूर्ण तत्त्व सिद्ध हुई। शब्द चिन्त्यास की छटि-छटि, भाव-जोष भाव प्रेम्णीयता की पहचान स्वच्छन्दतावादी कवियों की तुलना में शायद ही मिली कवि को हो।

अपर्युक्त संदर्भ में डॉ० अमर सिंह का कथन है, 'सर्वत्र कवि व्यक्तित्व की अभिव्यञ्जना है। भाव और शिल्प कवि व्यक्तित्व के दो पहलू हैं। स्वच्छन्दतावादी साहित्य विषय प्रधान न होकर व्यक्ति प्रधान है। वैयक्तिक भावना का उफान अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी प्रकार के बाह्य आसंकरण की अपेक्षा नहीं रहता। जिस प्रकार स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति किसी देश का व्यक्तित्व या साहित्य तक ही सीमित नहीं है, उसी प्रकार वैयक्तिक भावना की अभिव्यक्ति भी किसी विशिष्ट शैली का अनुसरण नहीं करती। स्वच्छन्दतावादी साहित्य की शैली भी व्यक्ति प्रधान होती है। उसमें किसी प्रकार के अंकार, रीति, वृत्ति आदि नियमों का निर्बन्धन व्य में पालन नहीं किया जाता। साहित्यकार की भावना अनायास ही अनुकूल शब्दावली में ढल जाती है। इस तरह साहित्यकार

को अनुभूति की तीव्रता ही उसको शैली के रूप को निर्धारित करती है।''<sup>1</sup> नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में कवि की घेतना की अभिव्यंजना चिम्बों, प्रतीकों एवं मिथकों के रूप में हुई है। कल्पना की उद्धान प्रकृति नहीं है। यहाँ कवि समकालीन जीवन-बोध को मिथको, चिम्बों एवं प्रतीकों में प्रस्तुत करता है। ये उपादान नवस्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। फलतः कवि को आधुनिक जीवन-बोध के अंकन में इन उपकरणों से पर्याप्त संबल मिलता है।<sup>2</sup>

### चिम्ब :

भावों और विचारों के काव्यगत संश्लेष में सबसे बड़ा सहायक तत्त्व चिम्ब होता है। वस्तुतः चिम्ब ऐन्द्रियता की अभिव्यक्ति है। 'चिम्ब' पाशचात्य आलोचना की देन है। जो आधुनिक हिन्दी काव्यधारा की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। भारतीय कवियों के अनुसार 'चिम्ब' को अंग्रेजी में 'इमेज' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति कल्पना के माध्यम से होती है।

चिम्ब के संदर्भ में भारतीय मनीषियों का अभिमत है, '' काव्य अमूर्त और अव्यक्त अनुभूतियों को मूर्त रूप देकर संश्लेषित करने का प्रयास करता है। अतः काव्य में अर्थग्राहना मात्र से काम नहीं चल सकता, चिम्ब ग्राहना अपेक्षित होता है।''<sup>3</sup>

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 186

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 186-187

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, प्रथम भाग : पृ० 145

वस्तुतः प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप में मूर्त या अमूर्त पदार्थ को कल्पना वस्तु, क्रिया या गुण के द्वारा अभिव्यक्त करता है, वह चिन्म कहलाता है। आचार्य मन्द दुलारे वाजपेयी का कथन है, 'आधुनिक युग में जिसे हम चिन्म-विधान कहते हैं। वही मुख्यतः अलंकारों की वस्तु है। काव्य में चिन्म-योजना अव्यक्त को व्यक्त करती है।' 1

डॉ० केदार नाथ सिंह का अभिमत है, 'चिन्म वह शब्द चिन्म है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।' 2

डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, 'चिन्म पदार्थ नहीं, वरन् उसकी प्रतिकृति या प्रतिरूप है। मूल सृष्टि पुनः सृष्टि है..... चिन्म एक प्रकार का चिन्म है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न ऐन्द्रियों के सन्निकर्षों से प्रमाता के चित्त में उद्बुद्ध होता है।' 3

डॉ० कुमार विमल का कथन है, 'जब कलाकार अपने मूर्त संवेगों की यथातथ्य अभिव्यक्ति के लिए बाह्य जगत से [आवेकन-गत] ऐसी वस्तुओं को कला के फलक पर इस रूप में उपस्थित करता है कि हम भी उनकी भावना से वैसे ही मर्म संवेग की प्राप्ति कर सकें, जिससे कलाकार पहले ही गुजर चुका है तब उन योजित वस्तुओं की धेती प्रस्तुति को हम चिन्म-विधान कहते हैं।' 4 डॉ० अजय सिंह का स्वच्छन्दतावादी चिन्मों के सन्दर्भ में कथन है, 'जहाँ तक स्वच्छन्दतावादी चिन्मों का सम्बन्ध है, उनके कवि एक नवीन अनुभूति प्रस्तुत करता है, जिसमें नवीनता, मौलिकता एवं ऐन्द्रियता का स्पर्श अव्यक्त होता है। परम्परागत चिन्मों से विद्रोह और उनके स्थान पर मौलिक एवं नवीन आत्मचिन्तनात्मक चिन्मों की रचना स्वच्छन्दतावादी चिन्म-सृष्टि की विशिष्टता है।

1. डॉ० अजय सिंह : स्वच्छन्दतावाद : छायावाद से उद्बुद्ध : पृ० 36

2. डॉ० कुमार विमल : सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व : पृ० 204

3. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक कविता में चिन्म-विधान का विकास : पृ० 23

4. डॉ० कुमार विमल : काव्य चिन्म : पृ० 62

स्वच्छन्दतावादी विम्व जी न की गतिशीलता से भी जुड़ा होता है। इसमें रचनाकार अपने अनुभवों को मानवीय क्रियाओं के साथ चित्रित करता है।''<sup>1</sup> (वस्तुतः विम्व मन की वह प्रक्रिया है जो अनुभव को व्यवस्थित, सौन्दर्य युक्त रूप प्रदान करती है।)

पारंपार्य विद्वान् विम्व पेरि के कथनानुसार, '' काव्य विम्व है और विम्व संवेदना है, जो मन की आन्तरिकता और सुधार की क्षमता द्वारा न्यूनाधिक मात्रा में परिशुद्ध कर दिये जाते हैं। काव्य का कार्य पदार्थों की संवेदना का सम्प्रेषण करना है, न कि उसका ज्ञान प्रदान करना है। विम्व के शब्द नहीं, ऐन्द्रिय संवेदना के उत्तेजक तत्व हैं।''<sup>2</sup> स्वच्छन्दतावाद के समर्थ आलोचक स्वरा पाउण्ड ने विम्व-विधान में ऐन्द्रिय संवेदना के साथ सांकातिक स्मरण का भी महत्व दर्शाया है। 'दी एन्ड ऑफ ज़ेबरी' के लेख स्टोफन जे. ब्राउन ने विम्व को व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। ब्राउन के कथनानुसार 'विम्व किन्हीं अन्य भाषाओं या विचारों के लिए तैयार गया ऐन्द्रिय गुणयुक्त वस्तु-विधान है जो शब्दों या वाक्यांशों में प्रकट होता है। विम्व-वस्तु का धार्मिक स्थानापन्न है जो साहित्य में भी प्रकट हो सकता है और उसके बिना जी।''<sup>3</sup> सी० डे० लीविस का कथन है, 'विम्व को परिभाषा के अन्तर्गत बाँधने के प्रयास का प्रयास अपूर्ण है। उनका कहना है-विम्व का जन्म अव्यक्त मन से होता है।''<sup>4</sup>

1. डॉ० जेम्स रॉड : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 190

2. Richard Hertz fogle : The Imagery of Keats and Shelley Chaplin Hill : 1949-p.5

3. Stephen J. Brown : The world Imagery : p.2

4. C. Day Lewis : The poetic Image: London, 1955. p.22



और तत्पक्ष विम्व के लिए जो गुण अपेक्षित हैं वे हैं-सावनी, तीव्रता, आलोच्यता, परिचितता, उर्वरता और ओचित्य।''<sup>1</sup>

वस्तुतः साहित्यकार असंयुक्त वस्तुओं वटनाओं को अपने अचेतन मन में रचता है। उसी तृजन प्रतिभा का नाम 'विम्व' है। सी०३० कीविस का पुनः कथन है, 'काव्य-विम्व शब्दों के माध्यम से व्यक्त होने वाला न्यूनाधिक उन्मिष्यपरक चित्र है जो कुछ सीमा तक स्वाकात्मक होता है। तथा जो अपने संदर्भ में मानवीय भावों से युक्त होने के साथ-साथ उचित के विशिष्ट भावों और आवेशों को पाठक में सम्प्रेषित करता है।''<sup>2</sup> कानरिब का कथन है 'विम्वों' के लिए 'सावनी एवं' संवेग' का स्पर्श अपेक्षित है।''<sup>3</sup> क्योंकि वातनात्मक एवं संवेगात्मक स्पर्श के कल्पनात्मक विम्व-विधान का उलात्मक स्वरूप स्वयन्दतावादी होता है।

वस्तुतः काव्यविम्व, शब्द चित्र की प्रतिबिम्बि है। जिसका द्रष्टव्य होना अनिवार्य नहीं है। विम्व किसी भी वस्तु का ध्यान नहीं करता बल्कि मानव मस्तिष्क ही संवेदना के द्वारा उसका प्रत्यक्ष अनुभव करता है। साहित्यकार उन्मिष्यपरक अनुभव को

1. Freshness, Intensity, Evocative power, Familiarity fertility and congruity, Ibid, p p. 40.46
2. The poetic Image is a more or less a sensuous picture in words to some degree metaphorical with an under note of some human emotion in its context but also charged with and releasing into the reader a special poetic emotion or passion.. Ibid, p.22
3. Coleridge : Imagination : p.35

अपनी अनुभूति से सम्पुष्ट कर उसका पुनः निर्माण करता है। साहित्यकार की स्मृति में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ संजोर रहती हैं। इसी प्रतिका का दूसरा 'य' बिम्ब' है। वस्तुतः किसी भी प्रकार के बिम्ब के अन्दर मुख्य तत्त्व ऐन्द्रियता है। बिम्ब का प्रमुख कार्य अमूर्त, अस्पष्ट एवं अस्पष्ट अनुभूतियों को ऐन्द्रिय के माध्यम से मूर्त एवं स्पष्ट आकार प्रदान करना है। काव्य का बिम्ब-विधान संवेष्टात्मक और संकेतात्मक होता है। कविता कल्पना की उद्भासना है। बिम्ब कल्पना की विशेषताओं को पुष्ट करता है, इसलिए बोद्धिमान से जुड़ा होता है। उसने का तात्पर्य यह है कि बहु पदार्थ में चेतना का आरोप जिसमें कल्पना एवं अनुभूतियों के आधार पर किया जाए, उसे ही बिम्ब कहते हैं। प्रयोग एवं परीक्षाओं के आधार पर बिम्ब ही कालान्तर में प्रतीक का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार-काव्य-बिम्ब शिल्प का एक प्रमुख और महत्वपूर्ण उपादान है। काव्य में बिम्ब-विधान एक शैली-विशेष ही है, जिसका अपना एक सर्वनात्मक पक्ष है। बिम्ब भाषाभिधान एवं भाव-सम्बन्ध का एक सशक्त माध्यम भी है।

स्वच्छन्दतावादी युग में 'बिम्ब' सौन्दर्य, तत्त्व, बुद्धि, चेतना, प्रेम, ममता, आदि मूर्त भाव भी ऐन्द्रिय संवेदना तथा भावना से सिक्त होते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति के अतिरिक्त जन-मानस कोष में संचित जातीय संस्कार, लोक कथाओं, लोक-गीत, धर्म-पुराण से भी बिम्ब लेकर यान्त्रिक जीवन को सहज बनाना चाहा। परी कथा, देवताओं की प्रणय कथा, तंत्र-मंत्र तथा आदिम युग के कर्मकांड इत्यादि में भी बिम्बों के भंडार को समुद्रगामी किया।

काव्य की रचना वस्तुतः चिन्मय-रचना का ही रूप है। चिन्मय आन्तरिक अनुभूति के द्वारा आध्यात्मिक या बौद्धिक सत्त्यों तक पहुँचने का मार्ग है। बाह्य वस्तु के साथ हमारी इन्द्रियों का संसर्ग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। दोनों ही स्थिति में होता है। प्रत्यक्ष स्थिति में इन्द्रियों की क्रिया मुख्य होती है, अप्रत्यक्ष स्थिति में सूक्ष्मात्मक कल्पना का सहयोग सर्वोपरि हो जाता है। परन्तु इसमें इन्द्रियों का योगदान भी गणित होता है। वस्तुतः इसी के माध्यम से जो रचना की जाती है। उसे काव्य-चिन्मय है। इस प्रकार काव्य-चिन्मय शब्दों के माध्यम से सूक्ष्मात्मक कल्पना द्वारा प्रेरित एक ऐसी मनोवैज्ञानिक क्रिया है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा निहित रहती है। डॉ० ग्लेन ह्यूगो सहजानुभूति को चिन्मय का प्रतिरूप कहते हैं, 'सहजानुभूति वास्तव में आत्मा की वह क्रिया है जो चिन्मय का उत्पादन करती है — किसी भी पदार्थ की सहजानुभूति मनुष्य को चिन्मय रूप में ही होती है अतः क्रिया रूप में सहजानुभूति और चिन्मय के अनेक सम्बन्ध हैं यद्यपि मूलतः सहजानुभूति और चिन्मय में उत्पादक-उत्पाद सम्बन्ध है।' 1

स्वरा पाण्डे ने चिन्मय की बौद्धिकता एवं भावात्मक तथा उसके संश्लिष्ट स्वरूप पर बल देते हुए लिखा है, 'चिन्मय वह है जो काव्य की तात्त्विकता में बौद्धिक भावात्मक संतुष्टि उपस्थित कर देता है।' 2 कुमारी कैरोलिन एक 0 स्पर्सियन ने चिन्मय की दृष्टि से विविध व्यावहारिक आलोचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया, 'चिन्मय एक छोटा शब्द चिन्मय है जिसका प्रयोग कवि या गणकार अपने विचार को स्पष्ट करने या प्रकाश में लाने के लिए करता है। चिन्मय एक वर्णन या चिन्मय है। कवि या लेखक ने अपने वर्णन-चिन्मय को जिस ढंग

---

1. डॉ० ग्लेन ह्यूगो : काव्य-चिन्मय : पृ० 8

2. Glen hughes in Imagism and Imagists. London 1931  
P. 23

से देखा, सोया या अनुभव किया है, बिम्ब उसकी समग्रता गहनता या विशदता से कुछ अंश को अपने द्वारा उद्बुद्ध भावों और अनुभूतियों के माध्यम से पाठक तक सम्प्रेषित करता है। वह यह कार्य जितनी अन्य वस्तु से उसकी तुलना द्वारा करता है, जिसका अभी तो स्पष्ट उल्लेख होता है और अभी नहीं।<sup>1</sup> कीदर और ईली के बिम्ब-विधान का विशेष अध्ययन करने वाले फोनल का कथन है, 'काव्य-बिम्ब, मोटे तौर पर, उपमा या तुलना है जिसमें विशेष शक्ति होती है और जिसका साक्षात्कार विशेष सौन्दर्यपरक एवं संवेदित काव्य-रस से होता है।'<sup>2</sup>

### प्रतीक :

'प्रतीक' शब्द का प्रचलन प्राचीन काल से प्रचलित है। यह भिन्न-भिन्न बिम्बों के अनुरूप ही अपना रूप ग्रहण करते हैं। काव्य के क्षेत्र में 'प्रतीक' भाव एवं संवेदना लिए हुए होते हैं। परन्तु अन्य क्षेत्रों में इनका रूप लघुवद् ही अधिक होता है। भाव एवं संवेदना लिए हुए होने के कारण ही काव्य के क्षेत्र में इनका विशेष महत्त्व है। काव्य के परितर में 'प्रतीक' मनोवेष्टानिष्ठा लिए हुए होते हैं। जिससे यह स्वच्छन्दतावादी 'प्रतीक' बन जाते हैं।

वस्तुतः 'प्रतीक' में विषय और विषयी की भाषा में सांकेतिक अर्थ निहित होता है। यदि दोनों में से कोई एक सांकेतिक अर्थ का नहीं समझेगा तब वहाँ 'प्रतीक' नहीं बन सकेगा। अतः 'प्रतीक' के संदर्भ में सांकेतिक भाषा समझना या जानना अनिवार्य है।

1. Corolin F. Spurgeon : Shakespear's Imagery and what it tells to us, Cambridge 1938, p.8

2. Richard Harter Fogle : Imagery of Keats and Shelley, Chaplin Hill, 1949, p.22

ठन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में फ्रांस में साहित्य के अन्तर्गत प्रतीकवादी सम्प्रदाय की स्थापना हुई। प्रतीक के सम्बन्ध में इस सम्प्रदाय के नेतृकों की मान्यता यह थी कि शब्द किसी विषय के बोद्धिक या भावपूर्ण तत्त्व की अभिव्यक्ति न करके मानसिक स्थिति का द्योतन करते हैं।<sup>1</sup> इस सम्प्रदाय की प्रति का तथा विकास में वादवेयर, मलार्ने ब्लैन आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। पाल सेलरी ने कविता को शुद्ध उद्भासना के रूप में मान्यता दी। फ्रेड आयिन का कथन है, 'प्रतीक' जिसके द्वारा कल्पनाशील साहित्यकार या चित्रकार आत्माभिव्यक्ति करता है कलाकार के मन की गहराई से उभरे होते हैं और वाक्य के मन पर छापी अद्भुत रिक्तता में गूँज उत्पन्न करते हैं।<sup>2</sup> एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के निमित्त होता है जो मनुष्य-मस्तिष्क के समक्ष किसी अस्तित्व वस्तु के सादृश्य को अपने सम्बन्ध स्तरों के माध्यम से व्यक्त करती है।<sup>3</sup> जार्ज वेली ने 'प्रतीक' में प्रतीकात्मकता को महत्वपूर्ण घटनाकर उसमें चिह्न, प्रतीक, और उपमान सभी को समाहित कर लिया है। इस आधार पर वे यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि प्रतीक का अर्थ प्रतीकात्मकता का महत्त्व तो समझा जा सकता है किन्तु प्रतीकाका नहीं।<sup>4</sup> अर्नेस्ट कैसिरेर का कथन है 'मनुष्य की भाषा, संस्कृति, धर्म और कला ही वे सब विभिन्न तन्तु हैं जो प्रतीकों का जाल बुनते हैं। मनुष्य के जीवन का समस्त अनुभव प्रतीकों का उल्लास हुआ जाल है, एक सुन्दर और अद्भुत जाल।'<sup>5</sup>

1. Shipley : Dictionary of world literature. p. 568

2. Band ovin : psycho- analysis and aesthetics. p. 9

3. Encyclopaedia britannica : Vol. 21 p. 700

4. G. Challey : Poetic process : P. 166

5. Ernest Cassirer : An essay on man : p. 48

उनका मत काफी व्यापक है। वेम्बर्स डीश के अनुसार 'प्रतीक' परम्परा से किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करते हैं।<sup>1</sup> वस्तुतः 'प्रतीक' वह है, 'जो मानस प्रत्यक्ष तथा कल्पना के क्षेत्र में आने वाले विचारों भावों और अनुभूतियों के गोचर संकेत अथवा चिन्ह हैं।'<sup>2</sup> इस शब्द का व्यवहार किसी ऐसे दृश्य पदार्थ के लिए होता है जो कि हमारे मन में किसी अतर्क्य और अप्रमेय वस्तु की अनुभूति-उत्पत्ति के साथ अपने सम्पर्क के कारण करा देता है। प्रतीक के साथ सामान्यतः सहचरित भावना ही अनुभूति की उत्पन्न करने का कारण होती है। अतः खुर की शाखा विजय प्रतीक है, और लंगर आशा का।<sup>3</sup> वेबस्टर ने प्रतीक की परिभाषा में कहा है कि प्रतीक अपने सम्बन्ध, सामंजस्य, लक्ष्मि अथवा संयोग से किसी दूसरी वस्तु को संकेतित करता करता है, किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्रतीक का उद्देश्य समानता या सादृश्य होता है। वस्तुतः प्रतीक तो किसी अदृश्य वस्तु का दृश्य संकेत भर है।<sup>4</sup> अदृश्य वस्तु के दृश्य संकेत कहकर वेबस्टर ने प्रतीक की मूल प्रकृति दर्शायी है। अतः 'प्रतीक' सादृश्य का उद्देश्य लेकर नहीं चलते हैं, अपितु भावसंज्ञना को व्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से यह बात भी सहज ही स्वीकृत हो सकती है कि महत्त्व का मूल्य प्रतीक का नहीं होता, वह उसके मिलने वाली अनुभूति का गुणात्मकता में होता है।<sup>5</sup>

वेम्बर्स डीश : पृष्ठ 1117

2. A symbol is a visible or audible sign or emblem of some thought, emotion or experience, interpreting what can be really grasped only by the mind and imagination by something which enters in to the field of observation Encyclopaedia of Religion and Ethics sp: 139 Vol. 12

3. Encyclopaedia Britannica, Vol. 26— p. 234

4. Fiddell, The literary symbol, p. 6

5. 'अपेय' : आत्मनेपद : पृष्ठ 256

काव्य में 'प्रतीक' निश्चित मनोदशा अन्तर्दृष्टि एवं गूढ़ चिन्तन की छाया होते हैं। जिसमें एक विशेष संकेत का अर्थ निहित होता है। सी. डे. लीविस के अनुसार 'जैसे गणित में अंकों की निश्चितता होती है वैसे ही एक प्रतीक भी अनिवार्यतः उसी भाव या विचार का नेतृत्व करता है जिसके लिए प्रयुक्त होता है।' <sup>1</sup> 'किन्तु प्रतीका का लक्ष्य रहस्यात्मक होता है। मनार्थ रहस्यवृत्ति को प्रतीक का एक प्रमुख साधन मानता है।' <sup>2</sup> टी. एस. एलियट का कथन है, 'प्रतीक सम्प्रेषण के साधन हैं। ये प्रतीक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करते हैं। यथार्थ का केवल चिन्तन तथा मस्तिष्क की ग्रहण सीमा से परे है। अतएव, सम्प्रेषण के लिए प्रतीकों का प्रयोग उपयुक्त एवं आवश्यक है।' <sup>3</sup> एच्. वी. योद्स के अनुसार 'हिंदी गहन आस्था या विश्वास के अभाव में उत्कृष्ट कविता की रचना सम्भव नहीं हो सकती। कारण यह कि कवि का लक्ष्य है, जीवन और संस्कृति का पुनर्निर्माण। प्रतीकों द्वारा ज्ञान या बोध को अनुभूति का विषय बनाया जा सकता है। वस्तु प्रतीकों और भाषा की प्रतीकात्मक शक्ति का संयोजन कवि की कला का अन्यतम प्रमाण है। योद्स के लिए प्रतीक अत्यावश्यक है, क्योंकि प्रतीकों के बिना अप्रतिष्ठित ! की व्याख्या नहीं की जा सकती।' <sup>4</sup>

---

1. C. Day Lewis : The poetic image: p. 40

2. Charles Mauron : The poems of Mallarmé. p. 7

3. मैथिलन : द अपीकमेंट ऑफ टी. एस. एलियट : पृष्ठ 67

4. टी. एस. एलियट काव्य : दि हेरिटेज ऑफ सिम्बोलिज्म : पृष्ठ 185-87

भारतीय मनीषी आचार्य रामचन्द्र गुल्म का कथन है, 'प्रतीक काव्य की अच्छी सिद्धि करते हैं।' 1 'अपेय' के अनुसार, 'प्रतीक' स्वरूप के माध्यम से सूक्ष्म की प्रतिष्ठा करता है। 2 'प्रतीकीकरण' मनुष्य का सहज स्वभाव है। 3 श्री सुमित्रा नन्दन पंत का कथन है, 'हमारा मन जिस प्रकार धारों के सहारे आगे बढ़ता है, उसी प्रकार मानव चेतना प्रतीकों के सहारे विकसित होती है।' 4 फ्रायडियन मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्नों को दमित वातनाओं की प्रतीकाभिव्यक्ति माना है। 5 डॉ० कुमार विमल का कथन है, 'काव्य-जगत में अनुभूति के अकथनीय अंशों को प्रतीक विधान के द्वारा कथनीय और प्रेक्षणीय बनाया जाता है।' 6 डॉ० राम कुमार वर्मा का मत है, 'प्रतीक व्यष्टि में सम्मिटि का संश्लेषण है।' 7 हिन्दी साहित्य कोश में प्रतीक के संदर्भ में कहा है, 'प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य ॥ अथवा गोचर ॥ वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य विषय का प्रति-विधान, उसके साथ अपने सादृश्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है।' 8 डॉ० अरवि सिंह काव्य के क्षेत्र में प्रतीक को महत्वपूर्ण बताते हैं, 'काव्य

- 
1. आचार्य रामचन्द्र गुल्म : चिन्तामणि भाग-2: पृ० 121
  2. सं० श्री० वाल्म्यायन, 'अपेय' : ज्ञान बाल : पृ० 96
  3. डॉ० प्र० दीक्षित : हिन्दी साहित्य कोश भाग-1:पृ० 96
  4. सुमित्रा नन्दन पंत : गद्य पद्य : पृ० 145
  5. Floyed L. Ruch : Psychology of life : p.303
  6. डॉ० कुमार विमल : आवावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन:पृ० 233
  7. डॉ० राम कुमार वर्मा : साहित्यशास्त्र : पृ० 118
  8. सं० डॉ० थोरेन्ड्र वर्मा : साहित्य कोश : पृ० 671



में 'प्रतीक' किसी भाव-सम्पदा को लेकर चलते हैं जबकि अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त प्रतीक स्व होते हैं या किसी तार्किक अर्थ के बोधक होते हैं। किन्तु-काव्य-कला के क्षेत्र में प्रतीक का विशेष महत्त्व है।''<sup>1</sup>

युंग ने प्रतीक विवेचन में व्यक्ति के मन की दमित प्रवृत्तियों के साथ मानव मन के जातीय शील-विचार का भी महत्त्व दिया है। यह जातीय शील विचार मानव मन के उन आदि भावों पर निर्भर रहता है, जो सामूहिक अचेतन के प्रतिबिम्ब होते हैं। इस सामूहिक अचेतन से उत्पन्न होने वाले आयबिम्बों को युंग ने 'आर्केटाइप' की आख्या दी है। यह 'आर्केटाइप' जातीय विरासत के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के मन में धिक्कमान रहता है और जीवन की आर्कटिक अनुभूतियों से निर्मित होता है। किन्तु, युंग के आलोचकों का यह आरोप है कि उनके द्वारा प्रस्तुत 'आर्केटाइप' का निष्पन्न मनोवैज्ञानिक से अधिक 'मेटाफिजिकल' हो गया है, क्योंकि उन्होंने इसके उद्गम को सुनिश्चित और वस्तुपरक ढंग से नहीं बतलाया।''<sup>2</sup>

स्वच्छन्दतावादी कवि संवेदनशील अन्तर्मुखी होता है। वह अन्तः-जगत के गूढ़ रहस्यों को अनादृत करना चाहता है जिसके लिए वह प्रतीकात्मकता का सहारा लेता है। यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति रोमांटिक कवि के लिए तुरन्तात्मक प्रयास है। व्यक्तिवाद के अग्रदूत के परिणामस्वरूप स्वच्छन्दतावादी काव्य में वैयक्तिक प्रतीकों के नवीकरण और नवजागरण का सुभारम्भ हुआ। कवि कविता में अति-वैयक्तिक प्रतीकों के स्थान पर नैतिक तथा समाज द्वारा स्वीकृत आसम्भन का आरोप कर दमित काम भावनाओं की अभिव्यक्ति करने लगे। प्रतीक संरचना तथा उसकी व्याख्या दोनों में वैयक्तिक चिन्तन परिष्कार की प्रधानता रहती है। एक ही प्रतीक को भिन्न-भिन्न व्यक्ति

1. डॉ० जयसिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ: पृ० 36

2. डॉ० कुमार विमल : सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व: पृ० 258-936 [ते उद्धृत।

पुण्य-पुण्य अर्थ में मुहूर्त करते हैं।'' वैयक्तिक प्रतीकों का विधान कवि विशिष्ट भाव-बोध की ध्वनना के लिए करता है, जिससे काव्य में नूतनता और वैचित्र्य का समावेश हो जाता है किन्तु, वे कभी-कभी बहुत दुर्बोध भी होते हैं।'' मनुष्य सदैव अपने अस्तित्व को जहाँ कहीं से भी अभिव्यक्त करने की कोशिश करेगा तो प्रतीक उसकी अभिव्यक्ति का साधन बनेगा। क्योंकि उस प्रकार का प्रयास न्यूनाधिकत्व से सतत चलता रहेगा। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावादी चेतना काव्य/साहित्य में जगत् में निरन्तर क्रियाशील रहती है। क्योंकि मनुष्य के सततशील स्वभाव के कारण कवि अपनी अन्तरिकता वैयक्तिकता एवं सामाजिकता की समन्वित-चेतना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता रहता है।'' 2

डॉ० सत्य प्रकाश सिंह ने प्रतीक-योजना के संदर्भ में अपना निष्कर्ष दिया है कि आत्मिककरण के अभाव में प्रतीक-योजना नहीं हो सकती है।'' 3 अर्जुन संदर्भ में डॉ० जय सिंह का कथन है, 'हमारी धिन्धु पर प्रतीकात्मक अभिव्यञ्जना का या साहित्य में स्वच्छन्दतावादी चेतना से जुड़ती है।'' 4

वस्तुतः 'प्रतीक' की भाषा में वाचकता का महत्व अधिक है, जिससे शब्दों में सञ्चितता आ जाती है। सञ्चितता के अन्वय में भाव मूर्तत्व धारण कर लेते हैं, जिससे उनके भावों की ध्वनना कड़ी निपुणता से होती है। 'प्रतीक' एक विशेष चिन्ह है जिसको विशिष्ट परिस्थितियों में विशेष यज्ञित किसी विशेष संदर्भ में ग्रहण करता है।

अतः 'प्रतीक' विषय एवं विषयी के समग्र रूप, गुण, भाव को

1. डॉ० कोन्ट्र : भारतीय साहित्य कोश प्र० सं० : पृ० 731

2. डॉ० जय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 196

3. Dr. Satya Prakash Singh : Upanisadic Symbolism: pp 399-422

4. डॉ० जय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 197

संश्लेषित करता है। वस्तुतः 'प्रतीक' के द्वारा ज्ञान एवं अनुभूति की तीव्रता बढ़ती है। अर्थ की अभिव्यक्ति के साथ-साथ जो शब्द भावनाओं का उद्बोधन करते हैं वही 'प्रतीक' कहलाते हैं। जोर जिन शब्दों के अन्तर्गत विषय एवं विषयी की संवेदना एवं भावपूर्ण अभिव्यक्ति निहित होती है वही वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी 'प्रतीक' कहलाते हैं, जिसमें ऐन्द्रियता एवं वैयक्तिकता सर्वोपरि है।

**मिथक :**

'मिथक' शब्द ग्रीकी के 'मिथ' का हिन्दी स्यान्तर है। 'मिथ' शब्द का उद्भव यूनानी 'मुथसि' से हुआ जिसका अर्थ 'मीथिका कथा' है। इसी से 'मुथालॉजी' या 'मुथालॉजिजो' शब्द बने, जिनका प्रयोग 'मुथसि' के पुनः स्मरण करने के अर्थ में किया जाता था। अरस्तु के 'पोस्टिक्स' में 'मिथ' शब्द का प्रयोग कथानक, कथावस्तु, गल्पकथा के रूप में हुआ है।"

आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'मिथक' का नामकरण आचार्य एचारी प्रताप द्विवेदी ने किया। उन्होंने ही 'मिथक' के स्वल्प का उद्घाटन कर उसकी प्रवृत्ति की ओर आकृष्ट किया। ग्रीकी में सर्वप्रथम एक प्रसिद्ध अज्ञातवी चिंतक 'विको' *Vico* ने मिथक के अध्ययन का एक नई दिशा देने का कार्य किया। विको ने भौतिक विज्ञान के मॉडल पर आधारित मानव-समाज का अध्ययन करने वाले एक नये विज्ञान *New Science* की स्थापना प्रस्तुत की। इस नव-विज्ञान के अन्तर्गत उसने अपने मिथक को एक तरह का आदिम इतिहास *Primitive history* मानने का मत स्थापित किया। इसके अनुसार मिथक ऐतिहासिक सत्य को प्रकट करने का एक प्रकार का वाक्यात्मक माध्यम है। जिस प्रकार कवि की

सुखनात्मक संतुष्टि मानव जीवन के यथार्थ को ही अपने हंग से अभिव्यक्त करती है। उसी तरह मिथक भी ऐतिहासिक सत्य को काव्य : विषय के माध्यम में जानने की चेष्टा का परिणाम समझा जा सकता है। इस अंतर्दृष्टि ने मिथक के प्रकट अतिार्थिक रूप के भीतर छिपी हुई गहरी सार्थिकता को तलाश करने पर धन दिया। इस प्रकार पिछले के मिथक चिन्तन ने उसके अध्ययन को एक महत्वपूर्ण दिशा प्रदान की जिसके परिणाम स्वरूप ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पार्श्व जाने वाली मिथक के प्रति उदासीनता का अन्त हो गया और उसके धस्तुमूलक अध्ययन-विश्लेषण की भूमिका तैयार हो गई।<sup>1</sup>

वस्तुतः 'मिथक' मानव संस्कृति के सांस्कृतिक अध्येतन।

Collective unconscious को बुझा होने के कारण ऐसा घुतान्त है जो मानवीय यथार्थ-बोध को गत्यशील घुतान्त के रूप में उपस्थित करता है।<sup>2</sup> सभ्यताओं और अठारहवीं शताब्दियों में मिथ को वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अस्तित्वरूपी-कल्पना के रूप में समझा जाता था और इस शब्द के एक प्रकार के परिहास का भाव व्यक्त होता था। मनोविज्ञान और विज्ञान के नवीनोद्भव के साथ मिथ के प्रति विचारकों की दृष्टि में परिवर्तन आया और उसका अर्थ बदल गया। जर्मन स्वच्छन्दतावादी क्लिफ़, समर्पन, नीत्शे आदि ने ऐसे नये रूप में ही समझा। इस नये मत के अनुसार मिथ कथिता जैसा ही एक विशिष्ट प्रकार का सत्य या सत्य का समकक्षी है यह ऐतिहासिक अथवा वैज्ञानिक सत्य का प्रतिस्पर्धी न होकर उसका पूरक है।<sup>2</sup>

1. डॉ० जवापुरी विद्याधरसिंह : मिथक साहित्यः विविध संदर्भ : ॥ में डॉ० जगदीश सिंह का लेख : मिथक सिद्धान्त और समीक्षा ॥ पृष्ठ 61

2. Rene Guenon and Austin Warren : Theory of Literature : p.249

डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह जी ने मिथक को चेतना के स्तर पर जोड़ा है, “ अचेतन के धरातल पर हमारा जीवन निजी होता है। चेतना के धरातल पर हम जातीय जीवन के स्रोत-मिथक आदि से जुड़ते हैं। सृजन-प्रक्रिया का रहस्य निजी-जीवन के आवेग का जातीय जीवन के मिथक आदि से जुड़ने में निहित है।”<sup>1</sup> डॉ० सिंह का पुनः कथन है, “ मिथक उस शाब्दिक विश्व शब्द-संसार की मुख्य स्वरूपा और परिधि की रचना में सहयोग देता है जिसमें बाद में साहित्य भी समाहित होता है।”<sup>2</sup> वस्तुतः मिथक सम्पूर्ण मानवीयता की खोज है। दान्ते का कथन है, “ मानव अपने क्रिया कलाप अनेक और अत्यन्त भिन्न भाषाओं में संपादित करते हैं, अतएव शब्दों के माध्यम से एक दूसरे को कभी-कभी और उतने से अधिक नहीं समझ सकते जितना कि शब्दों के बिना।”<sup>3</sup> इलियादे ने मिथक के संदर्भ में कहा है, “ आदिम समाजों का मानव जब इस अति मानवीय मिथकीय लोक के प्राणियों - देवताओं, नायकों, मिथकीय पूर्वजों के आय रचनात्मक क्रिया-कलापों को अपने अनुष्ठानों में दुहराता है तो वह अपने आनुमयिक संसार का नवनिर्माण कहता है इस पर हावी होने का

1. डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह : काव्यालोचन की समस्याएँ :

पृ० 18-19

2. डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह : काव्यालोचन की समस्याएँ : पृ० 29

3.

प्रयत्न करता है। मिथक इस रूप में निरन्तर निर्माण और सुजन के नये-नये आयाम प्रस्तुत करते हैं।<sup>1</sup> मिथक को अवचेतना का ही रूप मानते हुए गिबर्ट मरे का कथन है, "मिथक-कथारें या घटनाएँ जाति की स्मृति में गहरी षड़ जमाते हुए हैं और आपाततः अजनबी लगने के बावजूद इनका सामना होते ही हमारे भीतर से रक्त की एक ऐसी प्रकार उकती है जो हमें बताती है कि हम इन्हें सदा-सदा से जानते रहे हैं।"<sup>2</sup> माडबॉर्डिन का अभिमत है कि कवि मिथक-कथाओं को अपनाकर न केवल अपने अनुभवों का अभिव्यक्ति देता है, वरन् जातीय संवेगों को भी मूर्तित करता है और उस प्रकार वह अपने और अपनी जाति के वैयक्तिक तथा सामूहिक-भावों तथा जिज्ञासों को बाणी देता है।<sup>3</sup> वस्तुतः मिथक आदि मानव की अति मानवीय सुखमात्मक कल्पना है और आधुनिक साहित्य की उपसन्धि है। मिथक को गाथा, प्रागैतिहासिक कथा, पुराण कथा कहा गया है। इस प्रकार प्रत्येक देश की संस्कृति उसके मिथक साहित्य में विद्यमान है। रिचर्ड वेब का कथन है, 'मिथक साहित्यिक है और मानव की सुन्दर अभिव्यक्ति का मनन करता है।'<sup>4</sup>

1. They stimulate man to create, they are constantly opening new perspectives to his inventiveness ... The world reveals itself as language, it speaks to man through its own mode of being, through its structures and its rhythms. *Myth and Reality* : p. 141
- 2- That such stories and situations are deeply implanted in the memory of the race, stamped as it were upon our physical organism' No say that such themes are strange to us. Yet there is that within us which leaps at the sign of them, a cry of the blood which tells us we have known them always : The classical Tradition in poetry. *Cit. in Archetypal patterns in poetry* : p.2
3. *Maud Bodin : Archetypal patterns in poetry* : p. 6
4. 'Myth is literature and must be considered as an aesthetic creation of human imagination : ' *R. Chassey Quest for Myth*. 1949.

हेतीरेर ने मिथक के दो पहलू पता-लार है - एक व्यवहारणात्मक संरचना वाला है और दूसरा जागृत संरचनावाला। उनकी दृष्टि में मिथक विशुद्ध और उसी धारों का पुंन मान नहीं। यह अन्तर्द्वेष की निरिक्त प्रणालियों पर जात होता है।<sup>1</sup> हेतीरेर का पुनः कथन है, 'मिथक धन्य और युक्ति के उस दृष्ट की दृष्टि में पहला कदम है जिसका अनुभव मानव-आत्मा स्वनिर्मित विषय-सृष्टियों के संदर्भ में करता है।<sup>2</sup> वस्तुतः मिथक ऐन्द्रिय और मनोवैज्ञानिक होता है और वह वास्तविकता को मानवीय अनुभूतियों की शब्दावली में प्रस्तुत करता है।

भारतीय विद्वान डॉ नामर सिंह का मिथक के संदर्भ में कथन है, 'मिथक दो काम करते हैं - एक तो प्रकृति के रहस्यों को समझाना और दूसरा इतिहास रहस्यों को समझाना।'<sup>3</sup>

1. Myth has, as it were a double face- on the one hand it shows us a conceptual, on the other hand a perpetual structure. It is not a mere mass of inorganised and confused ideas, it depends upon a definite mode of perception : Ernst Cassirer : An essay on man : p-79

2. Ibid. 219

3. सं० ऊषा पुरी विद्यावाचस्पतिः मिथक साहित्य : विविध सन्दर्भ :  
पृ० 17

मिथक के जन्मदाता आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दोंमें, "मिथक, 'वस्तुतः उस सामूहिक मानव की भाव-निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ मनोविधानी आर्कोटाइपल इमेजें । आद्य विम्व । कहकर संतोष कर लेते हैं।" 1 डॉ० जगदीर सिंह का कथन है, " मिथक मानव जीवन के सांस्कृतिक व्यवहार का एक विशिष्ट तत्त्व विधान है।" 2 डॉ० विद्यानिवास मिश्र का अभिमत है, ' मिथक वस्तुतः देवा और काल के धेरों से पहनाइयों को निगाहकर सनातन में उन्हें स्थापित करने की प्रक्रिया है।" 3 मिथक सहमण्डिता का त्व नहीं बल्कि तुलनात्मक क्रिया है।' मार्क्स के अनुसार मिथक का स्वल्प यह नहीं है जो फ्रायड के अनुसार है, आर्कोटा की उदात्तीकृत अभिव्यक्ति भी नहीं । मार्क्स के मत में मिथक श्रम का एक त्व है।" 4 क्लेरिज मिथक को ऐतिहासिक अथवा वैज्ञानिक तत्त्व मानते हैं क्लेरिज का अभिमत है, ' ऐसा न समझा जाय कि यह [ मिथक] एक प्रकार का ज्ञान है, बल्कि नहीं यह जीवन की एक पद्धति है, अथवा यही एक मात्र ज्ञान जिसका अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है। शेष सभी ज्ञान वहीं

1. आलोचना : अक्टूबर-दिसम्बर 1967 । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबन्ध : लालिता तर्जना और दिव्यपूर्ण भाषा : पृ० 30
2. डॉ० आचार्य विद्यावाचस्पति : मिथक साहित्यः विविध संदर्भ : पृ० 59
3. डॉ० आचार्य विद्यावाचस्पति : मिथक साहित्यः विविध संदर्भ पृ० : 59
4. डॉ० रामचंद्र सिंह : आलोचना : अप्रैल-जून 1970 । में रोजर गारोदी का लेख यथार्थवाद, मिथक और तुलनात्मकता । पृ० 38



तब सत्य है जहाँ तब वे मिथ की प्रतीकात्मक छाया बन पाते हैं।<sup>1</sup> आर्थर रियर्स ने मिथ को 'मनुष्य की सम्पूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति कहा है।<sup>2</sup> डॉ० केदार नाथ सिंह का कथन है, 'साहित्य में आकर 'मिथ' अपने गायिकात्मक रूप को छोड़कर प्रतीकात्मक रूप धारण कर लेता है। 'मिथ' काव्य की अपेक्षा अधिक परिवर्तनशील होता है। इसे कि उसका आधार बिम्बोपमेव है। उसके विपरीत का प वा आधार भावा है। साहित्य में आकर 'मिथ' का बिम्ब-प्रधान क्लेवर भाग की सीमाओं में बद्ध होकर एक निश्चित रूप धारण कर लेता है।<sup>3</sup> वस्तुतः 'मिथ' सिद्धान्त नहीं है। सबसे पहले यह वह वस्तु है जो धटित होती है, जिसका सत्त्व पाठ होता है और चरितार्थ की जाती है।<sup>4</sup> डॉ० नगेन्द्र मिथ को 'पुराण कथा' धर्मगाथा मानते हुए कहते हैं, 'कहाँ ऐसी कथा जो विचारणा एवं आलोचना शक्ति से सर्वथा शून्य आदिम चेतना की स्वयं स्फूर्त उद्भासना हो और जिस में प्रकृति की शक्तियों का देहधारी अथवा अर्धदेहिक रूप में प्रति निधान किया

1. 'But let it not be supposed that it is a sort of knowledge no.1 it is a form of being, or indeed it is the only knowledge that truly is and all other science is real only as far as it is symbolical.' Coleridge
2. on Imagination, p. 167
- Coleridge on Imagination . P. 171

3. डॉ० केदार नाथ सिंह : कल्पना और कथावाद : पृ० 115-16
4. डॉ० जगदीश प्रसाद जीवास्तव : मिथकीय कल्पना आधुनिक काव्य : पृ० 12

गया हो, जो प्राकृतिक एवं अतिमानवीय कार्य संपन्न करते हैं, उसे मिथ कहते हैं।<sup>1</sup> 'डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का कथन है, "जब भी सामाजिक जीवन में दंड उपस्थित होता है तभी मिथक का प्रतीकीकरण नये पक्ष की उद्घाटित कर देता है। इसीलिए कहा जाता है कि मिथक मानवीय चित्ति।<sup>2</sup> की यथार्थता में संस्कार रूप में सुरक्षित रहती है।"<sup>2</sup> मिथक को पवित्र चरित्र मानते हुए डॉ० मेघ का पुनः कथन है 'मिथक का प्रधान चरित्र पावनता है। मिथक की यथार्थता ऐतिहासिक न होकर पुनीत होती है। मिथक की यह पुनीत यथार्थता।<sup>3</sup> उसे तर्क पूर्ण चिंतन में अनुस्यूत करती है। इसीलिए मिथक की अंतर्भूमि चिंतन न होकर अनुभूति है।"<sup>3</sup> महान मिथक कल्पना या मन की मौज नहीं है, वरन् वे सुनुष्य की समग्र आत्मा की अभिव्यक्ति है। \* \* \* महान मिथक आत्मा के गहनतम यथार्थ होते हैं।"<sup>4</sup> मिथक के संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का अभिमत है, 'सामान्यतः मिथक को आर्टिफैक्ट की अभिव्यक्ति कहा गया है। वास्तव में आदि रूप मिथक की पूर्ण स्थिति है। जिसके आधार पर मिथक अस्तित्व ग्रहण करता है। आर्टिफैक्ट के अभाव में मिथक की रचना प्रायः असम्भव है क्योंकि प्रत्येक मिथक का कोई न कोई अस्तित्व हमारे अचेतन में अवश्य विद्यमान रहता है।"<sup>5</sup> डॉ० सिंह का पुनः कथन है, 'मिथक सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति सीधे नहीं करते इसीलिए इसका

1. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : मानविकी परिभाषा कोश : पृ० 175
2. डॉ० रमेश कुन्तल मेघ : मिथक और स्वप्नकामायनी : की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका : पृ० 206-207
3. वही, : पृ० 207
4. डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह : काव्यालोचन की समस्याएँ: पृ० 31
5. डॉ० अजय सिंह : नवतत्त्वज्ञानवाद : पृ० 199

काल्पनिक होना आवश्यक है। जीवन मूल्य जिनकी प्राप्ति अविच्छिन्नता मिथक करते हैं मान मूल्यवान हो सकते हैं। मानवीय हो सकते हैं मिथ्या या सत्य नहीं हो सकते। मिथक जीवन मूल्यों का कल्पनाशीलता के साथ जुड़ने से स्वयंसे प्रकृति का हो जाता है। मूल, तत्मान, एवं मरिच्य की स्थिति। मिथकीय चेतना की स्थिति होती है। देवताओं की प्रणव-व्याप, सृष्टि के विनाश, मनुष्य के जन्म-मरण, प्रकृति की बदलावों आदि की कथा सर्वनाम्न कल्पना या समोक्षा से मिथक रूप में साहित्य प्रतिबलित हुई है। सामाजिक और महाभारत की मूल कथा के सृजक मिथकों में प्राप्त होते हैं। प्रलय और उसके साथ सम्बद्ध मनु तथा उसकी माध का मिथक, पदा और मनु के सहास से सृष्टि की पुनरचना, जिसका संकेत मनुवेद में तथा शास्त्र प्राचमण में विस्तृत रूप में मिलता है, मिथकीय चेतना की व्यक्त करता है। प्राचीन तथा आधुनिक दोनों की प्रकार के साहित्य में मिथकीय चेतना आदिमानव जाति की राग-द्वेष, प्रेम, कामुकता, वासना, ईर्ष्या, अहंकार, प्रतिशोध, भय, घृणा आदि वृत्तियाँ विभिन्न रूपों में व्यक्त हुई हैं। मिथक का वास्तविक धरातल चिन्तन का नहीं बल्कि अनुभूति है। मिथकों को कल्पनात्मक कल्पना के द्वारा एक नवीन रूप में प्रस्तुति करना लेखक या कवि की स्वच्छन्द कल्पना का ही काम है।<sup>1</sup> मिथक में सिर्फ संरचना नहीं होती, एक सांवाधिक अन्तर्बल भी होती है। मिथक की संरचना में परिवर्तन होता रहता है। उसके भीतर से कुछ न कुछ हमेशा निरन्तरता और जुड़ा रहता है।<sup>2</sup> वस्तुतः किसी सिद्धान्त को मिथक नहीं कहा जा सकता 'मिथक' के लिए चरितार्थ की पूर्णभूमि आवश्यक है। इसीलिए 'मिथक' ऐसी ही समस्याओं से जीत-प्रोत होते हैं, जिनका स-पन्थ देखावास के अस्तित्व, अनन्तता से

1. डॉ० अश्व तिले : नवसंस्कृततावाद : पृष्ठ 202

2. डॉ० जैनाथ : मिथक और आधुनिक कविता : पृष्ठ 3

हुआ करता है। 'मिथक' सम्पूर्ण मानवता के शताब्दियों के संस्कारयुक्त अनुभव-सुंघ है, जो अचेतन में रहने के कारण भी, प्रकृति, पुत्र, नवीन चेतना, यौन प्रकृति, वनतंत्र, विज्ञान और मनोविज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में हमारा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से संयोजन करते हैं। यह हमें प्रेरित कर अभिव्यक्ति की नई दिशाएँ देते हैं। अतः 'मिथक' आदिम युगाके वास्तविक सत्यों की अभिव्यक्ति है। सुजनात्मक कल्पना के द्वारा जो आचक्षिप्त बनते हैं मिथक उसके अनुभव और कर्म का पैला-जोड़ा प्रस्तुत करते हैं।

'मिथक' की अभिव्यक्ति सम्पूर्ण मानवता के साथ जुड़ी हुई है। क्योंकि यह सामूहिक अवचेतनाका ही रूप है। सम्पूर्ण मानवता से जुड़ी होने के ही कारण स्वच्छन्दतावादी प्रकृति है, जो नयी कविता में मिलती है। 'मिथक' अपनी सुजनात्मक कल्पना द्वारा विरोधों को सुझाने का कार्य करता है। यदि ऐसा न कर सकने की स्थिति में विरोधों को तनावपूर्ण सन्तुलन में रखकर प्रस्तुत कर देता है। दोनों ही स्थितियों में यह मनुष्य के समस्त समाधान प्रस्तुत करता है। इस प्रकार मिथक एक तरह की छान-विधि है जिसका कार्य चिन्तन अथवा वैज्ञानिक व्याख्या की भाँति है। 'मिथक' की दो विशेषताएँ हैं एक उनका मूल ऐतिहासिक युग में होना तथा दूसरा प्रतीक धर्म होना। वस्तुतः मिथक में लोक साहित्य, मानव-विज्ञान तथा -विज्ञान, मनोविज्ञान तथा ललित कलाएँ सब आ जाते हैं। इसीलिए आधुनिक साहित्य में मिथक का प्रयोग अति महत्वपूर्ण बन गया है।

---

प्रगीत :

' प्रगीत ' वाङ्मय आलोचना की प्रवृत्ति है। जो धीरे-धीरे विकसित हुई स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति बन गई। वाङ्मय आलोचना-शास्त्र में प्रगीत § Lyric § नाम काव्य का कर्ण प्राचीन काल से ही मिलता है। ग्रीकी के ' लिरिक ' शब्द की उत्पत्ति यूनानी ' ल्यूरिकसि ' § Luikos § शब्द से हुई है। यूनानी भाषा में ' ल्यूरिकसि ' शब्द ' ल्यूरा ' नामक तन्त्रीवाद्य पर गाय जाने वाले गीत के लिए प्रयुक्त होता है। प्रारम्भ में ग्रीकी साहित्य में भी ' लिरिक ' शब्द ' नायर ' नामक वाक्यों की संगति में गाय जाने वाली गीति-रचनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ, किन्तु कालान्तर में इसके अर्थ में कुछ परिवर्तन हो गया। अतः आधुनिक काल में ' प्रगीत ' अंतरेण या प्रबल-भाव सविन का गीत रूप में प्रयुक्त हो रहा है।''

ग्रीकी में गीतिकाव्य का आविर्भाव चौदहवीं शती के अन्तिम तथा पन्द्रहवीं शती के प्रारम्भिक चरण में हुआ है।'' 2  
कलिरिख ने कविता को ' ऐच्छतम् ' शब्दों का ऐच्छतम् रूप माना जाता है।'' 3 प्रो० गमर के अनुसार ज्यों-ज्यों समाज व्यक्तिवादी होता जाता है, त्यों-त्यों कविता भी गीतात्मक होती जाती है क्योंकि वैयक्तिकता गीतिकाव्य की एक मात्र लक्ष्य है। गीतिकाव्य सुविश्लिष्ट अवस्था वाले समाज का परिष्कृत काव्य रूप है। विकासशील मानव की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी में हो जाती है, जहाँ इच्छा, आर्का, भय आदि मनोभाव उत्पन्न होते रहते हैं। इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्त करना गीतिकाव्य

1. Judgment in literature . p. 03

2. G. Galsworthy : A first book of English literature  
p. 7

3. Coleridge : Poetry the best words in the best order  
table talk, July, 12, 1927

का प्रमुख लक्ष्य होता है।<sup>1</sup> प्रगीत के संदर्भ में हजसन का अभिमत है, "व्यक्तिगतता की छाव गीतिकाव्य की अन्यतम कसौटी है, किन्तु वह व्यक्ति के चित्र में सीमित न होकर व्यापक मानव भावनाओं तक विस्तृत है, जिसके प्रत्येक पाठक उसमें अभिव्यंजित अनुभूतियों एवं भावनाओं के साथ तदाकार हो जाता है।"<sup>2</sup> जोन केन के अनुसार गीतिकाव्य कवि का स्वभाव है। उसमें कवि को पाठक या श्रोता की अपेक्षा नहीं रहती। कवि को अपने हृदय के आवेश वन्य भावों को अभिव्यंजित करने के लिए वाणी खोजनी पड़ती है किन्तु अपनी शाब्दिक उपलब्धता की उसे कोई पूर्ण क्षारणा नहीं रहती। वह उपयुक्ततम शब्दों को एक आदर्श व्यवस्था में प्रस्तुत करता है। भाव और भाषा का यह निकटतम, अन्तरंग और अर्धमान प्रयोग ही गीतिकाव्य का निर्माण करता है। गीतिकाव्य की स्वरूप प्रक्रिया बाह्य नहीं आन्तरिक होती है।<sup>3</sup> जॉन ड्रिंक वाटर ने प्रगीत को ही वास्तविक कविता माना है, क्योंकि इसमें काव्य-चेतना अति शुद्ध रूप में पाई जाती है।<sup>4</sup>

वस्तुतः प्राचीन काल में मनुष्य ने प्राकृति की सौन्दर्य और सामाजिक घटनाओं का वर्णन प्रधान काव्य में करके संतोष प्राप्त किया, लेकिन जैसे जैसे वह विकसित एवं सभ्य हुआ उसे अपने अन्तरजगत् की आशाओं, आकांक्षाओं, भय आदि ज्ञान हुआ। उसकी अभिव्यंजित उसने 'प्रगीत' में की। अतः 'प्रगीत' में अनर्थक शब्दों की एवं विचारों की भरमार नहीं होती। इनकी शब्द योजना सरल होती है। 'प्रगीत'

1. F.B. Gammore : Hand Book of poetics : P. 40

2. U.M. Hudson : An Introduction to the study of literature . p.127

3. Glotterried Benn : Problem of Lyric : Quoted by T.S. Eliot in on poetry and poets : p.p.97-98

4. John Drink water : The Lyric, P. 64

श्राव्य: तत्पर पढ़ने एवं गाने के लिए ही रचा जाता है। उनमें तीव्र गतिशीलता होती है और संगीत की भाँति भाव भी अनायास विकसित होता जाता है। अकृत्रिमता, प्रयासहीनता तथा सरलता इसकी अनिवार्यता है।

‘प्रगीत’ के संदर्भ में आचार्य नन्द हुतारे वाजपेयी का कथन है, “प्रगीत काव्य में कवि की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसमें किसी प्रकार के विजातीय द्रव्य के लिए स्थान नहीं रहता। प्रगीतों में ही कवि का अस्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है। वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यक्ति होती है। कवि के अन्तस्थ का उद्घाटन प्रगीत में ही सम्भव है। संगीत के स्वरों की भाँति प्रगीत के शब्द ही अपनी भावना - उदाहरणों से कविता का निर्माण करते हैं, उनमें शब्द और अर्थ, तय और छंद अथवा प और निरूप्य की अभिन्नता हो जाती है। प्रबन्ध-काव्य कविता का आवृत्त और आवृत्तहित रूप है प्रगीत काव्य उसका निर्व्याज हुआ स्वल्प है।”<sup>1</sup> आचार्य वाजपेयी का पुनः कथन है, “प्रगीत काव्य में कवि की भावना का परिपूर्ण प्रकाशन होता है और कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है। कवि की अनुभूति बिना व्यवधान के अपने अनुभव कल्पना का धरणा करती है और निर्व्याज आत्माभिव्यक्ति में परिणत होती है।”<sup>2</sup> डॉ० विष्णु नन्दन प्रसाद का कथन है, “गीतिकाव्य में घटना, चरित्र, दृश्य, परिस्थिति आदि की अपेक्षा नहीं होती, उसमें केवल अभिव्यक्ति और रूपरिपाक पर कवि की दृष्टि केन्द्रित हो जाती है। गीतिकाव्य में इसीलिए जीवन का एक क्षण बोलता है। जीवन के घटनात्मक प्रभिक विकास का चित्रण उसमें नहीं होता। पर

1. डॉ० नन्द हुतारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य : दि० सं० पृष्ठ 24

2. डॉ० नन्द हुतारे वाजपेयी : नया साहित्य: नये प्रश्न : पृ० 149

जीवन का वह एक छाया अतिशय महत्त्व का होता है। उस छाया में कवि की समस्त धृतिर्या मनो किसी एक भाव की अनुभूति में केन्द्रित हो जाती है। और उस भाव की अत्यन्त तीव्र एवं मार्मिक अभिव्यक्ति में कवि लीन हो जाता है।<sup>1</sup> डॉ० राम केलावन पाण्डेय का अभिमत है, 'वैयक्तिक अनुभूति की संवेदनशील संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य में है।'<sup>2</sup> डॉ० नगेन्द्र का अभिमत है, 'विश्व के लगभग सभी साहित्यों में गीत परम्परा आदिकाल से ही चली आती है। या यों कहिए कि कविता का मूल रूप ही गीत है।'<sup>3</sup> महादेवी वर्मा का कथन है, 'गीत यदि दूसरे का प्रतिघात न करके वैयक्तिक सुख-दुःख व्यक्त कर सके तो उसकी मार्मिकता चित्तमय की वस्तु बन जाती है, इसमें सन्देह नहीं।'<sup>4</sup> डॉ० शम्भू नाथ सिंह का कथन है, 'गीतिकाव्य संगीतात्मक रूप में प्रयुक्त ऐसे शब्दों की योजना है जो तीव्र वैयक्तिक और संवेदनात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं। दूसरे शब्दों में आत्मगत अनुभूतियों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य है। और प्रणीत मुक्तक, गीत, गायन गीत आदि उसके विधिय रूप हैं। वस्तुतः गीतिकाव्य शब्द, काव्य के रूप से अधिक उसके भाषण की अवलोकनाओं को व्यक्त करता है। वह कवि के व्यक्तिगत विचारों मनःस्थितियों और भावनाओं से सम्बन्धित है।'<sup>5</sup> प्रगीत के संदर्भ में डॉ० जयसिंह का अभिमत है, 'प्रगीत कवि की आंतरिक चेतना है। प्रगीत की इस परिभाषा में आत्मपरवता वैयक्तिकता की स्वीकृति दी गई है। प्रगीत की मूल ध्वनि आन्तरिक जगत् की उद्घाषणा है और इसकी रेशाएँ कवि

1. डॉ० शिवनन्दन प्रसाद : साहित्य के रूप और तत्त्व : पृ० 85-86
2. डॉ० रामकेलावन पाण्डेय : गीतिकाव्य : पृ० 36
3. डॉ० नगेन्द्र : विचार और अनुभूति : पृ० 121
4. महादेवी वर्मा : महादेवी का विवेचनात्मक गद्य : पृ० 142
5. डॉ० शम्भूनाथ सिंह : छायावाद युग : पृ० 184



कवि की आन्तरिक अनुभूति से उभरती है। 'इसमें कवि की घेतना आन्तरिकता एवं वैयक्तिकता की निर होती है।'\*

वस्तुतः गीति विधा का महत्त्व बीसवीं शताब्दी में सर्व प्रथम ही सोचन-प्रसाद पाण्डेय ने बताया। किन्तु छायावादी कलाशिल्पी आचार्य नन्द कुमार बाजपेयी ने इसका तात्त्विक विश्लेषण सर्व प्रथम विस्तार पूर्वक करते गीतिशास्त्र को यथोचित महत्त्व प्रदान किया।

प्रगीत में आन्तरिकता की भावात्मक अभिव्यक्ति होती है, जिसमें संगीत प्राण की भाँति लिप्यमान रहता है। अतः काव्य का सर्वोत्तम प्रगीत ही है क्योंकि उसमें भावावेश और अन्तर्गत की परम अभिव्यक्ति करने की अपार क्षमता होती है। वस्तुतः 'प्रगीत' काव्य की वह विशेष विधा है जिसमें रसः आन्तरिक भावावेश को आर्द्र, तरल और निराल अभिव्यञ्जना होती है। जब कवि हृदयउद्वेलित विचारों की समता निर होता है, तब उसके अन्तस्सतन से स्वयं उमड़ते-धुमड़ते विचारों को वह लयात्मक, छन्दमयी, सौन्दर्ययुक्त पदावली में, तथा सामाजिक परिदेहा से जुड़ी हुई घटनाओं का वर्णन करता है, तब उस काव्य को प्रगीत की संज्ञा दी जाती है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों की ऐसी नूतन है। सुख और दुःख दोनों प्रसंगों को संगीतमयी भाषा में लिख कर स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रगीतों में वृद्धि की। वस्तुतः नयी कविता के कवियों ने मजदूर वर्ग, समाज से शोषित वर्ग, उपेक्षित वर्ग, बेरोजगारी की समस्या एवं गाँवों की ओर धृष्टि डाली। उन्होंने सम्पूर्ण मानवता की ओर देखा और उसका दर्द अपने प्रगीतों के माध्यम से कविता में उतारा। वस्तुतः संगीत मनुष्य के अन्दर की अभिव्यक्तियों का उजागर करता है। इसीप्रकार काव्य के अन्दर कवि अपनी संवेदना की परम सीमा को उरुहता है जो

जो पाठक या श्रोता के अन्दर एक प्रकार की उत्तेजना पैदा करता है।

स्तुतः 'प्रगीत' में दीयवित्तता श्रद्धा होती है। तथा इसमें मानव-जीवन के रागात्मक स्तरों का चित्रण होता है। स्वच्छन्दतावादी प्रगीत काव्य में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का महत्त्व अधिक मिलता है। 'प्रगीत' के माध्यम से मानव अपनी अनुभूतियाँ जैसे सुख-दुःख, आशा-निराशा, शोष-आश्रय आदि भावों की अभिव्यक्ति अधिक सहजता से व्यक्त कर पाता है। अतः सामाजिक अनुभूतियों का माध्यम काव्य, मानवीय आशय वाणी है। साहित्य में काव्य ही वह विधा है जो मन की अनुभूतियों को कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक व्यक्त करती है। 'प्रगीत' में मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ कार्यरत रहती हैं। अतः जिस परिस्थिति विशेष से कवि गुजरता है उसको अभिव्यक्ति भी उसी तरह उसके प्रगीतों द्वारा व्यक्त होती है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य में 'प्रगीत' के विगुण एवं समूह रूप का विकास हुआ। अब इस काव्य की मूल प्रेरणा भी प्रगीत के अनुकूल बनीं। वस्तुतः प्रगीत के अन्तर्गत व्यक्तित्व-तत्त्व, भाव-प्रवृत्ति, प्रभावप्रति, सहज अन्तः प्रेरणा एवं संगीतात्मकता के मुख्य तत्त्व निहित होते हैं। अतः 'प्रगीत' में दीयवित्तता का महत्त्व सर्वोपरि है। प्रगीत सदा कवि भावात्मक अनुभूति से जुड़े होते हैं।

**चतुर्थ अध्याय :**

**स्वच्छन्दतावाद का नवीन्येय :**

**नवस्वच्छन्दतावाद**

**क- नवस्वच्छन्दतावाद की चिंतन रेखाएँ**

**ख- पथार्थवाद का स्वच्छन्दतावादी संदर्भ**

## चतुर्थ अध्याय

### स्वच्छन्दतावाद का नवोन्मेष : नवस्वच्छन्दतावाद

#### नवस्वच्छन्दतावाद की चिंतन रेखाएँ

“ कायायनी ” को अन्तिम रूप देकर जब प्रसाद जी इस दुनिया से चले गये, उसी के आस-पास स्वयं छायावादी काव्य-संतार बदलने लगा था। पंत, युगान्त, युगवाणी एवं ग्राम्या की दौर में थे तथा निराला अपनी एक मात्र बेटी सरोज के 1935 ई० में खो देने के बाद आक्रोश भरी मुद्रा में आ गये थे। 1938 में प्रकाशित द्वितीय अनामिका में ‘ सरोज-स्मृति ’ जैसा शोक-गीत है जिसमें कल्याण के साथ निराला ने सामाजिक विद्रोह की अभिव्यंजना दी है। इसके साथ ही 1937 में ‘ वह तोड़ती पत्थर ’ जैसी सामाजिक यथार्थ की कविता की रचना हुई। इस प्रकार 1935-36 के आस-पास हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य भी स्वच्छन्दतावादी परिवेश से हटकर यथार्थ की नयी भूमिका में प्रवेश करने लगा था। ”

देश में राजनीतिक आन्दोलन और आर्थिक संघर्ष इतने उग्र हो गये थे कि सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं से अपने को अलग करना असम्भव था। महायुद्धों की छपेट से आर्थिक विषम्य ने देश के प्रत्येक वर्ग की जनता के मन में आमूल परिवर्तन की आकांक्षा पैदा की। साहित्य भी सामाजिक उत्पादन की एक कोटि है, अतः साहित्यकार का सामाजिक विषमताओं और नवीन राजनीतिक चेतना के लिए प्रवृत्त होना एक मुख्य अन्तर्विरोध बन कर सामने आया। एक तरफ युद्धों और अकाल की भयावहता ने जीवन की विषमताओं को गंभीर बनाया और व्यक्ति के अस्तित्व को चोट पहुँचायी—सतही जीवन मूल्यों, भोग, कुंठा, अहं, काम की तरफ दूसरी ओर व्यापक सामाजिक चेतना ने मुक्ति की चेतना प्रकट की।

आर्थिक धुरी ने भोग, कुंठा, नियतिवाद को बढ़ावा दिया। इसे विरोध कर कविता में गम्भीर प्रणय प्राप्त हुआ और वचन, अंकन, नवीन, भावतोषणा, रस, दिनकर तथा नरेन्द्र शर्मा आदि प्रतिनिधि कवि के रूप में सामने आये।

इस समय मध्यवर्गीय युवक के सामने आर्थिक समस्या अत्यन्त उग्र तथा विकराल रूप में नृत्य कर रही थी। शिक्षा की बढ़ती हुई हविषाओं के फलस्वरूप साधारण युवा-वर्ग अपने जीवन-यापन के लिए नीकरी की ओर पड़ी तेजी से दौड़ रहा था। लेकिन शिक्षित युवक-समाज की संख्या को देखते हुए, उसका निराकरण कठिन था। क्योंकि विदेशी सरकार को केवल व्यवस्था बनाये रखने से मतलब था। उससे आगे वह कुछ भी करने को तैयार नहीं थी। देश की इन वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकास-योजनाएँ आवश्यक थीं, परन्तु उस पर न तो सरकार और न उसके उपजीवी पूँजीपतियों का इसकी चिन्ता थी। इस भयंकर वैयर्थ्य से हमारा शिक्षित युवक-वर्ग जूझ रहा था। विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में आत्म सम्मान की भावना बढ़ रही थी, उसमें संदेहजनकता का उन्नयन हो रहा था। उस युग में छोटे अराजकतावादी प्रलय के आध्वानों से जलन, सर्जना की सज्ज भावना से उदबुद्ध होकर काव्य-रचना होने लगी। इस तरह की काव्य सर्जना में विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह तथा सामाजिक लड़ियों को तोड़ फेंकने की धेतना थी, किन्तु उसमें भावी समय का रूप भी दिखार्ह पड़ा। सामाजिक वैयर्थ्य और पहुँचनहिताय के समाज की हीनदशा का समाकालीन कवियों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उनकी कल्पना के रंगीन पंख जल गये और उन्हें चिन्ता होकर जन-जीवन की भूमि पर पैर रखना पड़ा। इस तरह कवि आदर्शवाद से हटकर सामाजिक यथार्थ की ओर बढ़े वे वर्तमान युग की अज्ञान्ति और असंतोष के मूल में आर्थिक वैयर्थ्य देखते हैं। अतः आज की कविता इस शोषित-पीड़ित पहुँचन समाज का एक सेक्टर लिखी जा रही है। सामाजिक और आर्थिक विषमता का बहुत ही संश्लिष्ट अंकन भावतोषणा रस की कविताओं में सामाजिक विषमता का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इस युग के कवियों ने सामाजिक और राजनीतिक चिन्तनों को लेकर बहुत ही

होने लगता है। वहाँ पर संपर्कित मानव के साथ समाजवादी यथार्थवादी भी कविता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हैं। जिसकी परिणतिना कवि सर्वद्वारा वर्ग के जीवन एवं संस्कृति के रूप में करता है जिसमें नवस्वच्छन्दतावाद के साथ - साथ स्वच्छन्दतावादी दृष्टि भी अभिव्यंजित होती है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में डा० अजय सिंह का कथन है, "नवस्वच्छन्दतावादी चेतना में स्वच्छन्दतावाद / यथार्थवाद एक समन्वित दृष्टांत के रूप में परिवर्तित दिखाई पड़ता है। यह बदलाव वस्तुतः दोनों की सहजता से प्रसूत है। उस मिलन प्रक्रिया में स्वच्छन्दतावाद / यथार्थवाद अपने सहज एवं विशुद्ध रूप में दिखाई नहीं पड़ते। सहजता से दोनों के आपसी मिलाप की प्रक्रिया नवस्वच्छन्दतावादी चेतना उभारती है।" 1 डा० शिवकुमार मिश्र का अभिमत है, "सन् 1936 के बाद के यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हिन्दी काव्य छायावाद ही नहीं, पूर्ववर्ती समस्त साहित्यिक परम्परा के संदर्भ, समर्थ और जीवन-तत्त्वों की विरासत को संभावित हुए वह नये युग के साहित्य की ऐसी आवश्यकता बनकर हिन्दी के रंग-मंच पर अवतरित होकर उसने व्यक्ति के स्थान पर समाज और जन-जीवन के उत्थापन की निराशा, पराजय, पतनी और क्षीय रोमांस के स्थान पर आशा, उत्साह और स्वस्थ प्रेम की रहस्य, अध्यात्म के स्थान पर नैतिक जीवन की संधारण की ओर हमारे साहित्य को गतिशील किया।" 2

हिन्दी कविता में 1937 से ही युग-सापेक्षता के दबाव के कारण स्वच्छन्दतावाद में 'नव' शब्द जोड़ना पड़ा, उसी तरह जिस तरह कविता को नयी कविता, कहानी को नयी कहानी, गीत को नवगीत कहा गया। स्वच्छन्दतावादी हिन्दी-कविता सामाजिक परिवेश से टकराकर नये रूप में उदभूत होती है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में लक्ष्मि निर्मित हो रही थी और वह परम्परागत होता जा रहा था। भाव-बोध की स्वतंत्रता के नाम पर भावुकता की अधिकता होने लगी थी। इसी तरह कलात्मक नियम भी

---

1. डा० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 51

2. डा० शिव कुमार मिश्र : प्रगतिवाद : पृष्ठ 21

अधिकाधिक बढ़ होते जा रहे थे। और साहित्य की सद्दिशादिता के कारण स्वच्छन्दतावादी चेतना यहाँ धीरे-धीरे दिखाने लगती है। स्वच्छन्दतावादी चेतना यहाँ पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाती किन्तु पुनःसापेक्षा के संस्पर्श से अपना रूप संवारती है बदलती है। नवस्वच्छन्दतावादी चेतना ने स्वच्छन्दतावाद का विरोध किया और नये रूप में अपनी अभिव्यक्ति की विज्ञान की उपलब्धियों के फलस्वरूप तथा सामाजिक दायित्वपूर्णता से प्रेरित हिन्दी-कविता इस विन्दु पर आकर यथार्थवादी चेतना से मिलती है। फलतः स्वच्छन्दतावादी / यथार्थवादी-बोध के सम्बन्ध से स्वच्छन्दतावाद नये रूप में उभरता है। इस बदलाव की व्याख्या के लिए 'नवस्वच्छन्दतावाद' नाम देना पड़ा।<sup>1</sup> अंग्रेजी कविता में 1830 की क्रांति के आस-पास एक युग का अन्त हो गया था। साहित्य में नये युग का उदय था। संक्षेप में यह एक व्यापक भावना थी कि स्वच्छन्दतावाद का अन्त हो गया है। नये युग का उदय हो गया है, जिसका सम्बन्ध वास्तविकता, विज्ञान और प्रगति के है। इसी प्रकार विगत अष्टम और नवम दशकों में होने वाली अनुभूति के सम्बन्ध में यह लगता है कि यथार्थवाद और प्रकृतवाद अपनी दो, पूरी तरह जुड़े थे और उनका स्थान नई कला लेने लगी थी, जो प्रतीकात्मक, नवस्वच्छन्दतावादी थी या जिसे किसी नाम से पुकारा जा सकता है।<sup>2</sup> वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद कोई अलग से नयी प्रवृत्ति नहीं है बल्कि यह स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का संयुक्त रूप है। जिसमें यथार्थवाद की दोनों प्रवृत्तियाँ सम्मिलित हैं। जैसा कि फेडो ने कहा, 'समाजवादी यथार्थवादी अपने में क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद के लिए हुए हैं। समाजवादी यथार्थवाद साहित्य के स्रोत की शक्तियाँ और उपयोगिताएँ सोचियत छवियों का जीवन है। ऐसी स्थिति में स्वच्छन्दतावाद हमारे साहित्य का विरोधी नहीं बनता, बल्कि 'Affinity with the people' के आधार पर इससे मिल जाता है। इस तरह बिना स्वच्छन्दतावाद के जो मानव की अनुभूतियों पर विश्वास करता है, यह

1. डा० अमर सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 54

2. Remy de la Harpe : Concepts of criticism : p. 240

असम्भव है कि हम उसके बोधन को चिन्तित कर सकें। सर्वद्वारा संस्कृति के चित्रण में कवि को अपनी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि लेनी पड़ती है।<sup>1</sup>

स्वच्छन्दतावाद में समाज को प्रतिबिम्बित करने के लिए यथार्थवाद की जरूरत होती है, लेकिन यह यथार्थवाद सही किस्म का होना चाहिए। फोटोग्राफी वाला यथार्थवाद या प्रकृतवाद अपने ढंग से उतना ही सही है जितना आदर्शवाद स्वच्छन्दतावाद। इनकी सबसे बड़ी कमी यह है कि वह पटनाएँ और वस्तुतः जिज्ञा दिला में गतिमान होती है न तो उस गति को ठीक से देख सकता है, जिस रूप में वे हैं, और न ही यह कि वे क्या लेने जा रही है। वह केवल तात्कालिक वस्तुओं से सम्बन्ध रखता है और अतीत तथा भविष्य को छोड़ दिया है। सामाजिक यथार्थ की दिव्यत्वा भी वर्तमान में होती है, लेकिन चिन्तक अलग ढंग से।<sup>2</sup> साहित्यकार सामाजिक बोधन से छटकर नहीं चल सकता। मार्क्सवादियों के अनुसार स्वच्छन्दतावाद का प्रान्तिकारी रूप भी होता है। गौर्की ने एच० जी० वेल्स को लिखे पत्र में सामाजिक स्वच्छन्दतावाद (Social Romanticism) की चर्चा की है।<sup>3</sup> स्वच्छन्दतावादी / नवस्वच्छन्दतावादी चिन्तन की अभिव्यक्ति के लिए 'प्रतीक' आवायण है। आज का कवि अपनी अभिव्यंजना प्रतीकों के द्वारा करता है। प्रसिद्ध प्रतीकवादी आन्दोलन ने स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के तत्त्व को फिर से ग्रहण किया।<sup>4</sup>

सामंतवादी, निराशावादी, पलायनवादी और तर्कान्वय तत्त्वमयता के बावजूद भी नवस्वच्छन्दतावाद को पूर्णवाद-विरोधी नवस्वच्छन्दतावादी समझना चाहिए। पूर्णवाद-विरोधी नवस्वच्छन्दतावादी पद को सर्व प्रथम जार्ज सुकाप ने (New Romantic anti-idealism) प्रस्तावित किया था। माइकेल मोर्रे ने अपनी पुस्तक में तथा अस्ट्रेलियन

1. Yuri Borabosh : Aesthetics and Poetics : p. 132

2. Gokey on Literature : p. 260

3. श्री हुवर पाल सिंह : मार्क्सवादी साहित्य शास्त्र और हिन्दी तथा साहित्यः पृ०

4. Renne Wellek : A History of modern criticism-1750-1950 p.340



मार्क्सवादी प्रेसर ने अपने तयः प्रकाशित निबन्ध में इसे विमर्शित किया है।<sup>1</sup> उदाहरण स्वयं लोर्ड उस समय अपने लक्ष्य पर है जब वह नवस्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को संस्कृति के नाम पर विनिमय मूल्य द्वारा विजित होने की घटना के प्रतिरोध के रूप में चित्रित करता है। अन्ततः जार्ज लुकाथ का मार्क्सवाद नवस्वच्छन्दतावादी पूँजीवाद- विरोधी प्रवृत्ति से आविर्भूत हुआ है।<sup>2</sup> 'मार्क्सवाद' में स्वच्छन्दतावाद के प्रगतिशील पक्ष को जो समर्थन मिलता है, वह समाजवादी यथार्थवाद के अन्तर्गत आता ही है। संसार और मानव के विषय में समाजवादी आदर्श एक नई अवधारणा है जो यथार्थवाद का मूल रूप है और संसार के साहित्य में मानव-कल्याण की कलात्मक उपलब्धि है और साहित्य के विकास में पूँजीवाद से समाजवाद और साम्यवाद को और संक्रमण है, परिवर्तन है। यथार्थता का सम्यक् मनुष्य के व्यक्तित्व एवं अस्तित्व दोनों से है। यथार्थवाद यथार्थता का यथार्थतः चित्रण नहीं है, बल्कि कला की एक प्रवृत्ति है जो यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ अनुभव करने वाले कृति के मस्तिष्क की भी एक छलक देती है। यथार्थवाद ऐसी मानवीय क्रिया है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण मनुष्य द्वारा अपने सर्वांगीण अस्तित्व का सर्वांगीण ढंग से ग्रहण होता है।<sup>3</sup> एक सच्चा मार्क्सवादी स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को एकदम अस्वीकृत नहीं करता है, बल्कि वह यह देखता है कि स्वच्छन्दतावाद सक्रिय और क्रांतिकारी भी है या बौरा आदर्शवादी और कल्पनाशील ही है। क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद क्रांति और उसके उद्देश्यों के प्रति मनुष्य की उत्तिर्ग भावना, उत्कंठा और मायबन्ध कैमल को व्यक्त करता है।<sup>4</sup>

1.

Lowy : Pour une sociologie : p.17-105

2.

Finally. The new Romantic anti-capitalism was the chrysalis from which George Lukacs' Marxism sprang " studies in Romanticism, Vol.16, No.4, Fall 1977 p.479

3. डॉ० रमेश कुन्तल मेघ : साधी है सौन्दर्य प्राचिनक : पृ० 350

4. डॉ० कुंवर पाल सिंह : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी कथा-साहित्यः

वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद- स्वच्छन्दतावाद के प्रति प्रतिक्रिया है। जो आपुनिकता को पुनर्जाती को स्वीकारती है। जिससे कविता के क्षेत्र में नया विस्तार होता है। डार्विन के विकासवाद ने जब रोमांटिक वृत्तियों पर कड़ा प्रहार किया तब मार्क्सवादी यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास हुआ। इस समय स्वच्छन्दतावाद की भावुकता, कल्पना-शीलता एवं आध्यात्मिकता का रूप कीड़ा पड़ गया। नवस्वच्छन्दतावाद में यथार्थवाद अपनी दृष्टि को वर्तमान अनुभूतियों पर केन्द्रित करता है। अतः नवस्वच्छन्दतावाद- स्वच्छन्दतावाद से इस प्रकार भिन्न है कि इसमें प्रकृति और सौन्दर्य-बोध काल्पनिक और सामान्य नहीं बल्कि यथार्थ और विरोध है। नवस्वच्छन्दतावादी प्रकृति आन्तरिक एवं सुनिश्चित अभिव्यक्ति देती है। इसकी चेतना कल्पना और यथार्थ के विरोध का एक नया संगम है। डॉ० अजय सिंह का कथन है, " श्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद में यथार्थ और स्वच्छन्द वृत्ति दोनों के मिलाप से स्वस्थ, संतुलन एवं जीवन्तता आ जाती है। यह नवीन सर्वत्र किसी काल्पनिक दृष्टि, भावावेग एवं स्वप्नशीलता का परिणाम न होकर वैज्ञानिक दृष्टि से सम्प्रति गतिशील यथार्थ की तर्क-सम्मत परिणति होती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद अपनी प्रकृति में भिन्नता के बावजूद भी अनेक बिन्दुओं पर मिलते रहते हैं। ऐसी स्थिति में यथार्थवाद, स्वच्छन्दतावाद का विरोधी न होकर एक नवीन विकास है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद के मूल में वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी दृष्टि अन्तर्निहित है। अतः इसका सम्बन्ध कोरी भावुकता, स्वप्नशीलता एवं वायवीय कल्पना लोक से नहीं, बल्कि इसका सम्बन्ध ऐतिहासिक संदर्भ इहलौकिक समाजवादी दृष्टि और समकालीन स्थितियों से है।" डॉ० अजय सिंह का पुनः कथन है, " यथार्थवाद के दोनों रूपों आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद में स्वच्छन्दतावाद की स्थिति रहती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी कवि या लेखक यथार्थवादी होता है तथा यथार्थवादी कवि या लेखक स्वच्छन्दतावादी प्रकृति का होता है। इन दोनों

के समन्वित कलात्मक साधना से ज्यों कला उभरती है और इसी बिन्दु पर आकर कलाकार व साहित्यकार नवस्वच्छन्दतावादी हो जाता है।'' 1

स्वच्छन्दतावादी कवि जब अतीतकालीन अनुभूतियों की अभिव्यञ्जना में अथवा सुदूर भविष्य की कल्पना में अपने को लगाता है तो वहाँ विरुद्ध स्वच्छन्दतावादी कविता का जन्म होता है। परन्तु इससे पृथक् जब वह समाजवादी यथार्थवाद से सामंजस्य स्थापित करता है, जब उसकी चेतना यथार्थवाद से टकराती है, तो उसी बिन्दु पर नवस्वच्छन्दतावादी कहलाता है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावादी कवि की निराशा भी आध्यात्मिक न होकर पार्थिव है। वह हर दृष्टिकोण को यथार्थवादी दृष्टि से देखता-परखता है। आधुनिक युग के बदलाव के साथ नवस्वच्छन्दतावादी कवियों का चिन्तन, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों के दबाव के कारण नया स्वल्प बनाता है। स्वच्छन्दतावाद में वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता थी, अतः उसे 'व्यक्तिवादी' भी कहा गया। लेकिन नवस्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण आन्तरिकता के साथ समष्टिगत अनुभवों को भी समेटता है। वस्तुतः 'कवि यहाँ समाजवादी यथार्थवाद से प्रभावित होकर शोषितों के जीवन और उसकी समस्याओं के लिए प्रान्ति करना चाहता है। कवि यहाँ पर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रुढ़ियों से जुड़ता है और परिणाम में नव-चिन्तन निकाल आता है।'' 2

नवस्वच्छन्दतावादी कवि अपनी कविता गीतिकाव्य के माध्यम से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों से विद्रोह तो करता ही है साथ ही अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को भी अभिव्यक्ति देता है। इस विद्रोह युक्त अभिव्यक्ति में यथार्थवादी चेतना, लोक-जीवन, संस्कृति- लोक संस्कृति अपनी स्वच्छन्द उड़ान भरती है। इस प्रकार कल्पना और समाजवादी यथार्थ के सम्मिश्रण से नवस्वच्छन्दतावादी चेतना उभरती है। इसमें आन्तरिक एवं बाह्य स्थिति-परिस्थितियों के आकसन से कविता में स्वाभाविकता आती है।

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 82

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद पृ० 56

वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद न तो सम्पूर्ण रूप से यथार्थवाद पर अधिकार करता है और न उसका विरोध करता। वह अपने में यथार्थवाद को समाहित कर एक नये यथार्थवाद को उभारता है।

नवस्वच्छन्दतावाद-स्वच्छन्दतावाद को परिधर्तित दृष्टि है। इसके कहने एवं अनुभव की अपनी ही शैली है। स्वच्छन्दतावादी आशय के रूप में यथार्थ एक शैली के रूप में उभरता है। नवस्वच्छन्दतावादी कवि जीवन से समापन की प्रवृत्ति को दूर करता है वह अपनी दृष्टि वर्तमान अनुभूतियों पर केन्द्रित करता है। जिसे वह रोमांटिक आयरनी § Romantic Irony § द्वारा अभिव्यक्त करता है। वस्तुतः यथार्थवाद में स्वच्छन्द प्रवृत्ति मूलतः रहती ही है, किन्तु उसे स्वच्छन्दतावाद-विरोधी कहा जाता है। यथार्थ की यह मूल स्वच्छन्द-प्रवृत्ति नवस्वच्छन्दतावाद में 'व्यंग्य' के द्वारा अभिव्यक्त होती है और जिसकी पहचान आधुनिकता है। नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य यथार्थवादी होने के फलस्वरूप संस्कृति, लोक संस्कृति एवं लोक चेतना की प्रस्तुति लोक गीतात्मक शैली में करता है।<sup>1</sup>

हिन्दी साहित्य की बीसवीं सदी की प्रमुख उपलब्धि समाजवादी यथार्थवाद मानव के लिए क्रांतिकारी चेतना जागृत करती है। सोवियत कला में गोर्की ने सर्व प्रथम 1934 में समाजवादी यथार्थवाद नाम दिया।<sup>2</sup> वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद को क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद या समाजवादी स्वच्छन्दतावाद भी कहते हैं। जो इसी साहित्य में आजकल खूब प्रचलित है। यह स्वच्छन्दतावाद मानवीय अनुभूतियों से पृथक् नहीं है। बल्कि इसकी दृष्टि जीवन और जगत में कलात्मक अभिव्यक्ति देती है।<sup>3</sup> नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार वैचारिकता को अपनी चेतना में अभिव्यक्ति देता है। वैचारिक सजगता या प्रतिपक्षता की स्वच्छन्दतावाद और नवस्वच्छन्दतावाद के बीच विभाजक रेखा है।

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 88

2. Gorky : on Literature : p. 264

3. A Ovcharenko : Socialist Realism and modern literary process. p. 204

विषय के साथ-साथ सम्बन्ध ने वैचारिकता को पुष्ट किया और फलतः कवि या साहित्यकार विषय के प्रति ज्यादा भौतिकवादी हो उठा । भौतिकवादी होने के साथ-साथ यथार्थवादी एवं क्रान्तिकारी भी । नवस्वच्छन्दतावादी चेतना ने स्वच्छन्दतावाद का विरोध किया और इस नये रूप में अपनी अभिव्यक्ति की । वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप तथा सामाजिक वातावरण से प्रसूत हिन्दी कविता इस बिन्दु पर आकर यथार्थवादी चेतना से मिलती है । फलतः स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी बोध के समन्वय से स्वच्छन्दतावाद नये रूप में उभरता है । इस बदलाव की व्याख्या के लिए 'नवस्वच्छन्दतावाद' नाम देना पड़ा ।<sup>१</sup> स्वच्छन्दतावादी कवि जब अतीत अथवा भविष्य की अभिव्यञ्जनात्मक प्रस्तुति देता है तथा वहाँ वह स्वच्छन्दतावादी चेतना से तिरक्त होता है । किन्तु जब वह अतीत, भविष्य को छोड़कर वर्तमान का आकलन करता है वहाँ वह नवस्वच्छन्दतावाद से जुड़ता है ।

नवस्वच्छन्दतावादी कवि वैयक्तिक अनुभूतियों के फलस्वरूप गीतिकाव्य को प्रयुक्ता है । इसके माध्यम से आन्तरिक अनुभूतियों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, स्थितियों से चिद्रोह भी करता है । इस चिद्रोह में सामाजिक यथार्थवादी चेतना संस्कृति, लोक-संस्कृति लोक जीवन में विचरणा करती है । कवि अपनी आन्तरिक भावनाओं एवं सामाजिक चिन्मताओं को मिथुन, चिम्बू, प्रतीक एवं रोमांटिक जायरनी के द्वारा समाज के सामने प्रस्तुत करता है । शिल्प-वैशिष्ट्य में कवि यहाँ उल्लेख पाए जाते हैं । डॉ० केदार नाथ सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, डॉ० धर्मवीर भारती, केदार नाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, नागार्जुन, सर्वेश्वर दयाल तल्लेना, श्रीमती अर्जुन माथुर, डॉ० रवीन्द्र मगर<sup>२</sup> अद्वैत आदि ऐसे ही कवि हैं ।<sup>३</sup> सामाजिक चेतना से आक्रान्त कवि सुमन, त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ सिंह, केदार नाथ अग्रवाल, आदि की कविताओं में यह वैयक्तिक आन्तरिकता व चिद्रोही भाव नवस्वच्छन्दतावादी चेतना से युक्त हैं । इसके अतिरिक्त संस्कृति, लोक-संस्कृति, लोक-जीवन एवं लोक-परिष्कार की अभिव्यञ्जना इतनी बारीकी से करते हैं जितने

लगता है कि वे आन्तरिकता को अभिव्यक्तिता से बाध रहे हैं। निराश्रय ही सामाजिक चेतना की ये प्रवृत्तियाँ आधुनिक हिन्दी-कविता में सन् 1937 ई० से उभरने लगती हैं। नवस्वच्छन्दतावादी विचारधारा को बल प्रदान करने वाला साप्ताहिक पत्र 'जनता' ॥ 1937 ई० ॥ था। 'जनता' कमिनिस्त समाजवादी पार्टी का पत्र था, जिस पर जय प्रकाश नारायण से प्रभावित 'कमिनिस्त समाजवादी पार्टी' के एक गुट का नियंत्रण था। इस पत्र के द्वारा किसानों में नव-जागृति की भावना को बल मिलता है। सितम्बर 1938 ई० में जब द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ा तो 'जनता' ने पूरी तैयारी के साथ अन्तर्राष्ट्रीय अंक निकाला। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से 'ल्याम' के प्रकाशन, राज्यों में कमिनिस्त सरकार की आँखों में स्थापना के फलस्वरूप कवियों में एक नयी चेतना जागृत होती है और यहीं से स्वच्छन्दतावाद परिवेश से टकराकर एक नया रूप लेता है। अनुभूतिपरक कविता ॥ वैयक्तिक कविता ॥ प्रगतिवादी कविता, प्रयोगवादी कविता, नई कविता, नवगीत एवं अव्यक्तिता में अपना रूप सँवारता चलता है। सामाजिक चेतनाको कवि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आन्तरिकता से युक्त करके व्यंग्यों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस अवधि में प्रकाशित अनेक कविता-संग्रहों के नाम भी स्वच्छन्दतावादी चेतना से जुड़ा हुआ है। अश्व की 'हरी घास पर लामर' 'बावरा अहेरी' 'उन्द्र धनुष' 'राँदे हुए' गिरिजा कुमार माथुर के 'धूम के धान' केदासाय अग्रवाल के 'फूल नहीं, रंग घोलते हैं' नागार्जुन के 'सतरंगी पंछीवासी' 'तालाब की मछलियाँ' बिलोचन के 'दिगन्त' 'धरती' नरेश मेहता के 'घन पारधी तुनो' धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' श्रीकान्त वर्मा की 'भटका हुआ मैघ' रघुवीर तहाय की 'सोड़ियों पर धूम में' रामचिलास शर्मा की 'ल्य-तरंग' एत्यादि। नवस्वच्छन्दतावादी चेतना के फलस्वरूप इस बीच बौद्धिक प्रयोगशील कवि ही नहीं, सामाजिक चेतना से आक्रांत कवि भी अपने संग्रहों के तिर लय रंग से स्वच्छन्दतावादी नाम का ध्वन कर रहे थे। इस प्रकार कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जीवन-मार्थ की रोमांटिक भावनाएँ

नवस्वच्छन्दतावाद में स्वल्प ग्रहण करती है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद कल्पना/यथार्थ, अनुमति/परिघोष, धेयणितकता/ सामाजिकता, विद्रोह/प्रति, इत्यादि दो विरोधी चिन्तनचिन्तुओं की समन्वित साधना है। इस संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का कथन है, “ नवस्वच्छन्दतावाद न तो यह दावा ही करता है कि वह अपनी परिधि में सम्पूर्ण आदर्शवाद को घेर रहा है और न वह यथार्थवाद का समग्र रूप में विरोध ही करता है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावाद यथार्थवाद को अपने में समाहित कर लेता है। या एक विशेष प्रकार के यथार्थवाद को जन्म दे देता है।” 1

### यथार्थवाद का स्वच्छन्दतावादी संदर्भ

यथार्थवादी कला में मानव ही सर्वोपरि है। यह मानव स्वन्दनशील ही है, जो अपनी अनुमृतियों की कथा रूप में चित्रित करता है। अतः मानव के पूर्ण व्यक्तित्व का उन्मेष यथार्थवाद में समा जाता है। यह उन्मेष अंतरंग एवं बाह्य दोनों रूपों में मिलता है। इस प्रकार यथार्थवाद में जीवन्त और प्रास्य परिधों के चित्रण के निर कलात्मक उद्गम अपेक्षित है।

‘ जो चित्र अथवा चित्र्य एव स्मृति से प्राप्त करते हैं उनके पीछे भी यथार्थ अनुभव पदार्थों की स्थिति होती है। यथार्थवादी चिन्तन इस तथ्य को स्वीकृति देता है कि मन और बाह्य जगत् के पदार्थों को व्यवस्थित करके उन्हें कलात्मक रूप देने का कार्य कल्पना शक्ति के माध्यम से ही सम्पन्न है। कल्पना यदि सच्ची कल्पना है, यथार्थ अनुभवों से असंपूर्ण नहीं रह सकती और यथार्थवादी रचना यदि वह वास्तव में यथार्थवादी रचना है, कल्पनातत्त्व को अस्वीकार कर अपना साहित्यिक और कलात्मक रूप स्थिर नहीं रह सकती।” 2

वस्तुतः यथार्थवाद के संदर्भ में डॉ० अजयसिंह का कथन है,  
“ यथार्थवाद यूरोप में स्वच्छन्दतावाद के विरोध में आया था, इसलिये

1. डॉ० अजयसिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 63

2. डॉ० शिवकुमार भिल्ल : यथार्थवाद : पृष्ठ 145-146

इसलिए वास्तविक जीवन से एतका गहरा सम्बन्ध है। यथार्थवादी साहित्यकार मानवीय जीवन के अंकन से अपनी कलात्मक यात्रा प्रारम्भ करता है। उसके लिए नायक की परिकल्पना, चयन, समकालीन जीवित मानवीय परित्र से करता है, जिसकी चेतना सामाजिक चेतना होती है। अपने युग का संतान जो संघर्षरत है, जो प्रगति की ओर प्रयाण करने वाला है वही यथार्थवादी साहित्य में नायकतात्व ग्रहण करता है। सबसे पहले इस परित्र को प्रात्य दीपिकत बनाया जाता है। इसकी चेतना सामाजिक चेतना से सिक्त होती है। वस्तुतः इसकी चेतना दृष्टात्मक एवं ऐतिहासिक, भौतिकवाद को लिए होती है। इसके अतिरिक्त इसकी चेतना में लोक चेतना निहित होती है। लोक-परिचय, लोक-संस्कृति की अभिव्यंजना के लिए वह लोकगीतात्मक शैली को अपनाता है। लोक कला यथार्थवादी कला की अवतन उपलब्धि है।<sup>1</sup>

यथार्थवादी विचारधारा के अग्रदूत की पृष्ठभूमि में दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि कई प्रकार के कारण रहे हैं। विज्ञान ने मानव समाज की पुरातन रुढ़ियों को तोड़कर मनुष्य का दृष्टिकोण तथ्यवादी बनाया। धार्मिक के विकासवादी सिद्धान्त ने मनुष्य जीवन का विकास ही अन्य जीव-जन्तुओं की भाँति मानकर मानव जीवन सम्बन्धी धार्मिक मान्यताओं को पक्षोर डाला। परिणामतः 19वीं शती के मनुष्य का दृष्टिकोण आदर्शवादी आवरण को भेदकर जीवन के स्थूल तथ्यों की ओर उन्मुख हुआ।

कला और साहित्य जगत में इस आन्दोलन का प्रादुर्भाव सर्व प्रथम फ्राँस में 19 वीं शताब्दी में हुआ। 1926 में मर्क्युरि ने 'यथार्थवाद' की परिभाषा अपने निबन्ध में की। तदुपरान्त 1855 में फ्राँस के प्रसिद्ध चित्रकार डूबे ने अपने चित्रों में यथातथ्य शैली का व्यवहार किया तथा अपनी चित्र प्रदर्शनी के प्रवेश द्वार पर 'यथार्थवाद' शब्द अंकित किया। चित्रकला में यथार्थवाद के अग्रदूत के बाद 1957 में फ्राँसीसी उपन्यासकार 'फ्लावेर' का प्रथम यथार्थवादी उपन्यास 'मदाम' बोवारी', प्रकाशित हुआ। कुल मिलाकर



कहना यह है कि 1855 तक फ्रांसीसी कला साहित्य जगत में यथार्थवाद का प्रवेश हो चुका था।<sup>1</sup> यथार्थवादी आन्दोलन सर्व प्रथम फ्रांस में आरम्भ हुआ और तन् 1850-65 के बीच अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया। जब 1857 पहली बार फ्लोबेर का उपन्यास 'मदाम बोवारी' निकला तो उस यथार्थवाद की ओर आगे चलकर उतनी ही प्रकृतवाद की विजय माना गया।

x x x x एक और अधिक यथार्थवादी उपन्यास गोनकूर-बन्धुओं का 'यर्मिनी नासंती' 1856 में था।<sup>2</sup> प्रस्तुत सन्दर्भ में डॉ. अजय सिंह का कथन है, "यथार्थवाद शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग फ्रांस कोरबेदस की चित्रकला में तन् 1850 ई० में हुआ था। इसके अनन्तर गीर्ष ही साहित्य में प्रयुक्त हुआ यथार्थवादी स्कूल का नेता कोरबेदस जो एक किसान का लड़का था। वह किसान जीवन और धरती का प्रेमी था। यथार्थवाद शब्द की अवधारणा की उत्पत्ति <sup>Realie</sup> शब्द से हुई जिसका अर्थ है ठीक <sup>Real</sup> वास्तविक <sup>Actual</sup> पदार्थ <sup>Matter</sup> यथार्थ का उद्भव 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। इसके पहले इसकी स्थिति एक 'वाद' के रूप में न होकर चित्रण के रूप में परिधेया को अधिक जोधन्त और कला को सार्थक और सहज बनाने की एक स्थान के रूप में थी। यथार्थवाद समकालीन यथार्थता को चित्रित करता है। 19 वीं शताब्दी में यथार्थ अंकन एक सक्रिय आन्दोलन का आधार पाकर यथार्थवाद के रूप में अपना नूतन रूप निर्मित करता है।<sup>3</sup> साहित्य में यथार्थवाद का जन्म वैज्ञानिक आविष्कारों और वैज्ञानिक चिन्तन के साथ चिह्नित हुआ।<sup>4</sup> जार्ज लुकास मानव और समाज के सभी रूपों का विन्दान वास्तविक यथार्थवाद के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं। उन्हें परस्पर सम्बन्धित ठहराते हैं। इस कड़ी पर व्यक्तिवादी तथा प्राकृतवादी दृष्टिकोण रकांगी सिद्ध हो जाता है। यथार्थवाद रकांगी को अस्वीकार करके सत्यता का पक्षपाती है। जहाँ पात्र जीवन तथा मानवीय सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं - वहीं वे यथार्थवादी सीमाओं

1- डॉ० अजय सिंह : नवसंस्कृतवाद : पृ० 125

2- डॉ० कुँवर पाल सिंह : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी कथा-साहित्य  
पृ० 27

में जाते हैं।<sup>1</sup> वस्तुतः यथार्थवाद एक विचार-धारा है। जार्ज लुकास का यथार्थवाद के सम्बन्ध में मत है कि यथार्थवादी लेखक को चाहिए कि वह निर्भीक एवं निष्पक्ष रूप से सच्चाई अथवा ईमानदारी के साथ समाज का या वास्तु चित्रण करे। जबकि 'कलोथेर' फ्रांसीसी उपन्यासकार ने वस्तुगत दृष्टिबोध और जीवन के सामान्य पक्षों के महत्वपूर्ण उद्घाटन को यथार्थवाद की प्रमुख विशेषता कहा है। अनुभववादी विचारधारा के प्रणेता जान लॉक अनुभववादी दर्शन अनुसूति तथ्यों पर अधिक जोर देते हैं। उनके अनुसार यह एक आत्मनिष्ठ यथार्थ दर्शन है। यथार्थ और यथार्थवाद एक दूसरे के पूरक हैं। जीवन को सच्ची अनुसूति यथार्थ पर उसका आत्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है।<sup>2</sup>

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार यथार्थवाद कला और साहित्य में जादिया की निमित्तता और उपदेशात्मकता का विरोधी है।<sup>3</sup>

18वीं शताब्दी में जैसाकि डेरिड सुबोध का कथन है, यथार्थवाद महत्वपूर्ण उपलब्धिकरता है, अर्थात् अब वह देनादिन जीवन व्यवहारों को चित्रण मात्र से आगे बढ़ता हुआ सामाजिक अस्तित्व को चित्रण के क्षेत्र में प्रकट होता है। 18वीं शताब्दी में ही फ्रांस की प्रतिष्ठित शक्ति 1989 ई० १ सम्पन्न होती है, जिसके परिणाम स्वल्प सामन्ती समाज व्यवस्था का वैचारिक और आर्थिक ढाँचा पूरी तरह चरमराकर धाराशाही हो जाता है। किन्तु यह 18वीं शती यथार्थवाद के उत्कर्ष के सन्दर्भ में उसनी महत्वपूर्ण नहीं, जितनी इसलिय कि इसी शताब्दी में फ्रांस की राज क्रान्ति के परिणाम से न केवल सामन्ती व्यवस्था का ढाँचा चरमराकर टूटा, बरन् उसके स्थान पर एक नये बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ। पूँजीवाद समाज व्यवस्था की नींव डालते हुए इस बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ। पूँजीवाद समाज व्यवस्था की नींव डालते हुए इस बुर्जुआ वर्ग ने जिन आदर्शों का उद्घोष किया उन्होंने प्रजातंत्र की स्थापना के साथ

1. C. L. Lucas: *Studies in european realism*, p. 6

2. जॉर्ज डी लुकास : वास्तविकता का वैचारिक सिद्धान्त और बाद : पृ 272

3. *Encyclopaedia Britannica* : Vol. 19, p. 10

स्वच्छन्दतावाद के एक नये आन्दोलन को भी जन्म दिया। इंग्लैण्ड में जिनकी अभिव्यक्ति वायरन, मैनी, कीदस वर्डस्वर्थ तथा कोलरिज जैसे कवियों में हुई।<sup>1</sup> इन्हीं कवियों का प्रभाव हिन्दी के यथार्थवादी कवियों पर पड़ा।

हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान यथार्थवाद को आधुनिक काव्य की प्रधान प्रवृत्ति मानते हैं और इस युग को यथार्थवाद का युग कहते हैं। यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन पद्धति है, जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ त्व का अंकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण वस्तुतः आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है। पर वस्तुतः तो आदर्श उतना ही यथार्थ है, जितनी कि कोई भी यथार्थवादी परिस्थिति। जीवन में अयथार्थवादी कल्पना दुष्कर है। किन्तु अपने पारिभाषिक अर्थ में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं तथा कृत्पताओं का चित्रण करता है। यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुन्दर अंश को छोड़कर असुन्दर अंश का अंकन करना चाहता है। यह एक प्रकार से उसका पूर्वाग्रह है।<sup>2</sup>

यथार्थवाद के विद्वान जार्ज लुकास ने यथार्थवाद को दो रूपों में विभाजित किया है। आलोचनात्मक यथार्थवाद 2= समाजवादी यथार्थवाद।

### आलोचनात्मक यथार्थवाद

यथार्थवाद के उद्भव के साथ 19 वीं और 20वीं शताब्दी में प्रकृतिवादी दृष्टिकोण से भिन्न वास्तविक चिन्दगी को उसकी वस्तु परकता में और सच्चाई के साथ देखने, परखने और चित्रित करने वाले जिस साहित्य का अन्य और विकास हुआ मार्क्सवादी आलोचकों ने उसे आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य तथा उसमें निहित यथार्थ दृष्टि को आलोचनात्मक यथार्थदृष्टि के नाम से सम्बोधित किया है।<sup>3</sup> मार्क्सवादी साहित्य चिंतक इस 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' को 'सुशुद्ध यथार्थवाद' के नाम से पुकारते हैं।<sup>4</sup>

1. डा० गिाव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ 0 23-24

2. सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश : पृ 0 660-661

3. डा० गिाव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ 0 38

4. डा० गिाव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ 0 100

साहित्य-समीक्षा में आलोचनात्मक यथार्थवाद जैसे पारिभाषिक शब्द का प्रयोग, जहाँ तक अनुमान है मार्क्सवादी साहित्य चिन्तकों ने ही किया है, यह दूसरी बात है कि अब एक पारिभाषिक शब्द प्रचलन में आ जाए, तो दूसरे भी उसे अपना लें। साहित्य के पारिभाषिक शब्दों के कोशों में 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' का अन्त में उल्लेख उदाचित् नहीं है। वस्तुतः समाजवाद की स्थापना के साथ तोषित स्तर में जिस नई वास्तविकता का उदय हुआ उसके चित्रण के लिए तथा दुनिया के दूसरे देशों में समाजवादी पूँजीवाद के बीच चल रही निर्णायक लड़ाई में प्रगतिशील जाट्या वाले लेखकों के संदर्भ में यथार्थ को नई समाजवादी दृष्टि से देखने और व्यापित करने की आवश्यकता को महसूस करके तोषित लेखकों की तन् 1934 में हुई पहली कांग्रेस में मैक्सिम गोर्की ने समाजवादी यथार्थवाद के नाम से यथार्थवादी कला आन्दोलन में जिस नये यथार्थ का उद्घोष किया, जरूरी समझा गया कि उसे समाजवादी दृष्टिकोण से रहित प्रचलित यथार्थवाद से । प्रकृतिवाद से भिन्न । अलगाने के लिए, उसकी अपनी विशिष्ट पहचान के लिए, कोई आधार ढूँढते हुए उस प्रचलित यथार्थवाद को किसी नये नाम से पुकारा जाय और उसे 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' यह नाम दे दिया गया।'' 1

अन्तर्द्विष्टार के अनुसार 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ ऐसी उठेले अड़ के रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों के प्रति एक ऐसे विनम्र अस्वीकार का प्रतिफल है, जिसमें अस्मिता तथा गंवार या सामान्य दोनों प्रकार की मानसिकता धुनी मिलती है।'' 2 आलोचनात्मक यथार्थवाद में उसके जन्म से ही रोमानी प्रतिक्रियाएँ निहित हैं, और ऐसी स्थिति में रोमांटिसिज्म तथा रियलिज्म को कोरमकार एक दूसरे का विरोधी और एक दूसरे के विपरीत नहीं माना जा सकता। उनका कहना तो यहाँ तक है कि 'स्वच्छन्दतावाद' को वस्तुतः आलोचनात्मक प्रारम्भिक दौर मानना चाहिए। आलोचनात्मक यथार्थवाद में दृष्टिकोण के

1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ० 99-100

2. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ० 104-105

स्तर पर उससे कोई मौलिक भिन्नता नहीं दिखायी पड़ती है यद्यपि में अन्तर आ गया है। वह पहले से अधिक वस्तुपरक, अधिक तटस्थ और अधिक दूरदर्शी हो गई है।<sup>1</sup> वस्तुतः आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि मधिमय की ओर न जाकर वर्तमान में ही देखती है। किन्तु समाजवादी यथार्थवादी दृष्टि वर्तमान को देखकर भागी मधिमय की कल्पना कर करती है। इस संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का मत है, "साहित्यकार की रचना को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद का सहज मिलाप अपेक्षित है। वस्तुतः यथार्थवादी साहित्यकार अपने अंदर में तथा अंदर के द्वारा एक भावी समाज की तस्वीर छींटना चाहता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद में इस दृष्टि का अभाव है। समाजवादी यथार्थवाद एक भावी समाज की तस्वीर का निर्माण करता है।"<sup>2</sup>

### समाजवादी यथार्थवाद

'समाजवादी यथार्थवाद बीसवीं शताब्दी का ध्येय है। इसमें मानव-कल्याण की भावना निहित है। इसी विद्वान गीर्डी ने 1934 में इसका नाम प्रयोजित किया। इसकी धेतना में समाज की वास्तविक स्थिति के अलावा यथार्थ जीवन का समाजवादी दृष्टि से मूल्यांकन भी है।

समाजवादी यथार्थवाद एक नये प्रकार का कलात्मक विचार है।

वस्तुतः इसे विगत यथार्थपरक कला से अलग नहीं किया जा सकता जिससे यह जन्मा है। समाजवादी यथार्थवाद नये विचार का प्रतिनिधित्व करता है, यह कला समूह के संबंध से जन्म लेती है, जिससे समाज समाजवादी विचारधारा को प्राप्त करता है। इस कला में सर्वद्वारा वर्ग की समस्याओं का चित्रण मिलता है। इसमें शोषित वर्ग के ऐतिहासिक धेतना की कलात्मक स्वीकृति की अभिव्यंजना मिलती है। समाजवादी यथार्थवाद मानव कल्याण के लिए एक प्रौत्तिकारी धिकात है। यथार्थतः इस कला में नव मानव के जोषत एवं जीधिका, जो मुलितकारी जीवन में संप्ररित है, उसके धरित्र, उसकी

1. Ernest Fisher : The Necessity of Art. p. 103

2. डॉ० अजय सिंह : नवतत्वधन्धतावाद : पृ० 130

प्रकृति एवं नैतिक सिद्धान्तों के बदलाव के तरीकों की जाँचियाँ मिलती हैं।  
 वस्तुतः इहलोक और संधर्ष मानव के विषय में समाजवादी कला एक नई  
 अवधारणा है जो यथार्थवाद का मूल रूप है। संसार के साहित्य में मानव-  
 कल्याण की कलात्मक उपलब्धियाँ हैं और साहित्य के विकास में पूँजीवाद से  
 समाजवाद की और साम्यवाद की ओर संक्रमण है। यथार्थता का सम्बन्ध  
 मनुष्य के व्यक्तित्व एवं अस्तित्व दोनों से है।<sup>१</sup> गोर्की ने भी इस अवधारणा  
 की देय करने की क्षमता के समाजवादी यथार्थवाद की विशेषता कहा है।  
 इनके अनुसार भविष्य का दिशा निर्देशन ही साम्यवाद और 19 वीं शताब्दी  
 के ज्ञातिमूल यथार्थ से समाजवादी यथार्थ की विशिष्टता प्रदान करता है।  
 समाजवादी यथार्थवाद श्रमी और चित्रण के परातल पर आलोचनात्मक  
 यथार्थवाद की उपलब्धियों को स्वीकार करता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद  
 से उसकी भिन्नता वस्तुतः दृष्टिकोण के स्तर पर मनुष्य समाज तथा जीवन  
 को देखने पहचानने तथा समझने की दृष्टि के स्तर पर है। समाजवादी  
 यथार्थवाद के मूल में मार्क्स एंगेल्स तथा लेनिन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक  
 समाजवाद तथा दृष्टात्मक भौतिकवाद की वह विकासमूलक धारणा है जो  
 विरोधी तत्वों के बीच चलने वाले विरन्तन संघर्ष की भूमि पर प्रतिष्ठा  
 एक नये परिवर्तन की सृष्टि बनती है और यह परिवर्तन यथार्थ  
 भौतिकवादियों के मन के विपरीत सदा ही एक गुणात्मक की योजना करता  
 है।<sup>२</sup>

समाजवादी यथार्थवाद के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्धों की भूमिका  
 तैयार करती है। समाजवाद के लिए बाहरी व्यक्ति होने के नाते जो सीमा  
 आलोचनात्मक यथार्थवाद के साथ सम्बद्ध थी, अपनी इस उपलब्धि के चल पर  
 उसने उसे काफी कुछ अतिश्रान्त कर लिया है। अतएव आवश्यक हो जाता है कि  
 समाजवादी यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद के बीच संधि कायम  
 होकर दोनों एक दूसरे की उपलब्धियों से सामान्वित होकर अपने की सम्पन्न

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 130

2. डॉ० सिद्धकुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ० 115

बनारें। यथार्थवाद की आधार भूमि सत्य का ग्रहण और चिन्ना है, तथा समाजवाद भी सत्य की प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य स्वीकार करता है। सत्य तथा यथार्थ के प्रति यही निष्ठा हमें मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन में भी देख पड़ती है। सत्य तथा यथार्थ ही उसका केन्द्रीय विषय हैं। ऐसी स्थिति में आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद के बीच कुछ और पविष्ठ सम्बन्धों के सुदृढ़ सूत्र हमें मिल पाते हैं।'' 1

इस बिन्दु पर आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद एक ही सिक्के के दो पहलु दिखाई पड़ते हैं। अतः किसी एक के अभाव में दूसरे की पूर्ति नहीं है। दोनों की स्थिति में ही यथार्थवाद की स्थिति स्पष्ट होती है। जिसे अच्छा लगे वह वास्तव में दृष्टिपूर्णा स्थिति है। दोनों के संयोग एवं सामंजस्य से ही यथार्थवादी चेतना अपना स्वल्प ग्रहण करती है। समाजवादी यथार्थवाद के व्याख्याता पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के इस युग में आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपस्थिति को परिलक्षित करते हैं। वे उसे समाजवादी यथार्थवाद का सहयोगी स्वीकार करते हैं और उन यथार्थवादी कलाओं का आदर करते हैं जो पूंजीवाद की विकृतियों की निंदा करते हैं। सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को समर्थित करते हैं और पूंजीवाद से प्रस्तुत समजोशी जनता को आशाओं को अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन वे आलोचनात्मक यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद से अभिन्न नहीं मानते। दोनों को कला की ऐतिहासिक प्रगतियों की विभिन्न देन मानते हैं। समाजवादी यथार्थवाद आलोचनात्मक यथार्थवाद की अगली मंजिल है।'' 2

कार्लमार्क्स का उद्देश्य है कि साहित्यकार की चेतना समाज सापेक्ष होती है। समाजवादी यथार्थवाद को यथार्थवादों का आंदोलन के विकास की नव्यतम मंजिल कहा गया है।'' पूंजीवाद समाज व्यवस्था की विस्मयता से आक्रान्त, उसका निर्मम उद्घाटन करने तथा उसे अन्तर्मम

1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ० 115

2. डॉ० शिवदान सिंह चौहान : आलोचना-अक्टूबर-दिसम्बर 1964:पृ० 14

ले धिक्कारने के बावजूद भविष्य की उन रचनात्मक शक्तियों को देखवाने की आलोचनात्मक यथार्थवादियों की दृष्टि असमर्थता के कारण ही, जो पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए एक नये और मंगल भविष्य को उजागर कर सकें। समाजवादी समाज की स्थापना के साथ ही एक नये प्रकार की यथार्थ दृष्टि के उपस्थापन की आवश्यकता महसूस की गई। इस नई यथार्थ दृष्टि को प्रस्तुत करते हुए उसके पुरस्कर्ताओं ने दावा किया कि यह न केवल आलोचनात्मक यथार्थवादियों की स्वांगी तथा अपूर्ण यथार्थ दृष्टि की तुलना में मनुष्य, समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को उनकी सम्पूर्णता में देखने और प्रस्तुत करने वाला है, बरन यह एक रचनात्मक दृष्टि भी है जिसमें भविष्य के नये यथार्थवादी कलासृजन की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ भी संलग्न हैं।<sup>1</sup> सन् 1934 में हुई सोवियत लेखकों के प्रथम कांग्रेस में अभिभाषणा करते हुए मैक्सिम गोर्की ने सर्व प्रथम समाजवादी यथार्थवाद<sup>2</sup> शब्द प्रयोग किया तथा उसके स्वल्प की चर्चा की।<sup>3</sup> अतः गोर्की की समाजवादी यथार्थवाद -यथार्थवाद की समग्र दृष्टि है। जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वस्तुगत पदार्थ को पुरी समग्रता में देखने के साथ उस भविष्य का रूप भी उद्घाटित करती है, जिसका वर्तमान वर्तमान के पीछे ले ही होना है, जिसके वर्तमान व्यवस्था में ही छिपे हैं। समाजवादी यथार्थवाद जहाँ वस्तुगत यथार्थ को उसकी सारी सजीवता, सघर्ष तथा तीव्रता के साथ चित्रित करने का आग्रह करता है, वहाँ इस बात पर भी जोर देता है कि यथार्थ का चित्र उस यथार्थ के पीछे सक्रिय मनुष्य का चित्र, उसकी सम्पूर्ण भूमिका उभारे। लेख केवल सतह पर उतराती हुई वास्तविकता का ही चित्रण करके न रह जाय सतह के भीतर की अधिक गहरी भूमिकाओं को प्रत्यक्ष करे। केवल समाज की गन्दगी, भ्रष्टाचार, शोषण, अराजकता और अन्धकार के दस्तकित होकर न उभारे, इस वास्तविकता से संघर्ष करती हुई नई प्रगतिशील शक्ति को भी उतना ही तीव्रता से मूर्त करे, वस्तु उस पर अधिक जोर दे और इस प्रकार भविष्य के उस विजय

1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ० 116

2.

3. Ernst Fisher : The Necessity of Art : p. 104

Gorky : On literature : p. 264



को सामने लाये जो विरोधी शक्तियाँ के इस संघर्ष की एक आवश्यक और सुजन की नई भूमिकाओं से हो जो कृति में चित्रित समस्त प्रकार की वास्तविकता से अधिक प्रखर तथा भास्वर हो उसकी अपेक्षा अधिक जीवित सत्य हों।'' 1

समाजवादी यथार्थवाद के संदर्भ में डॉ० जवाब सिंह का अभिमत है,

'' समाजवादी यथार्थवाद समाजवादी कला की सर्वनात्मक शैली है। सर्वद्वारा के साथ बना सम्बन्ध एवं उसकी समस्याएँ उसके जीवन, उसकी संस्कृति की अभिव्यंजना क्रान्तिकारी मानववाद पूँजीवादी वैचारिकता के विरोध में उन सभी विरोध लक्ष्य हैं। इसके अतिरिक्त अर्थ व्यवस्था, सामाजिक सम्बन्ध, सांस्कृतिक जीवन में आमूल परिवर्तनों के आधार पर समाजवाद पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रमुख जन में पैदा हुए मानवीय गुणों को विकसित करता है। समाजवादी यथार्थवाद की एक महती समस्या क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद या समाजवादी यथार्थवाद है।'' 2

माओत्सेतुंग तथा चाउयांग आदि चीनी सोनदर्यशास्त्री समाजवादी यथार्थवाद को क्रान्तिकारी यथार्थवाद तथा क्रान्तिकारी रोमांटिसिज्म का समन्वय स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार यही पद्धति आज के युग की प्रभावशाली दंग से प्रदर्शित करने तथा क्रमिक जनता की सेवा के साथ समाजवादी और आगे कम्युनिस्ट व्यवस्था को लाने में सहायक हो सकती है।'' 3

स्वच्छन्दतावाद का समाजवादी यथार्थवाद से सम्बन्ध स्थापित करते हुए यहाँ तक कहा गया है कि स्वच्छन्दतावाद समाजवादी यथार्थवाद का एक हिस्सा है। एतना ही नहीं एक सीमा तक स्वच्छन्दतावाद के पीछे से सत्त्व के बिना समाजवादी यथार्थवाद को उत्पना संभव नहीं है।

1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ० 117

2. डॉ० जवाब सिंह : नवस्वच्छन्दता : पृ० 130-131

3- Chou Yang : The path of socialist literature and art of china-p.35

कुन भिन्नकर यह कहा जा सकता है कि समाजवादी यथार्थवाद  
 ने अपने कई रूप विकसित किए हैं, जिसमें श्रौतिकारी स्वच्छन्दतावाद  
 भी उत्पन्न हो गया है। समाजवादी यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावादी  
 दृष्टि में किंचित भेद है। स्वच्छन्दतावाद की धैर्यवृत्तता, धातुवीर्य  
 उत्पत्ति, और अतिशय स्वप्नशीलता के विरोध में समाजवादी यथार्थवाद  
 की चेतना कुतूहल है। लेकिन उसके अन्य तत्वों को श्रौतिकारी मान्यताओं  
 में सहायक है उन्हें स्वीकारा भी गया है। श्रौतिकारी स्वच्छन्दतावाद  
 में यथार्थ और स्वच्छन्द धृति दोनों के मिश्रण से स्वस्थ प्रकृति प्राप्त  
 करता है। इस दृष्टि के फलस्वरूप वह ही दृष्टि वैज्ञानिक होकर उभरती  
 है। अतः धृतिधर्म के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावाद यथार्थवाद भिन्न होते हुए  
 भी अनेक पिन्धुओं से सांबन्धन स्थापित करते हैं। इस दृष्टिकोण से यथार्थ  
 स्वच्छन्दतावाद का पूरक घन नवीन चेतना उभरता है। अतः  
 नवस्वच्छन्दतावाद के मूल में वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी दृष्टि अन्तर्निहित है।  
 अतः इसका सम्बन्ध छोटी भावुकता, स्वप्नशीलता एवं धातुवीर्य उत्पत्ति-  
 लोक से नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध ऐतिहासिक संदर्भ, प्रत्यक्ष  
 समाजवादी दृष्टि और समाजकीन स्थितियों से है।

पंचम अध्याय :

नयी कविता का स्वयं विश्लेषण

प्रयोगवाद : नयी कविता

नठेन और नयी कविता

प्रयोगवाद : नठेन और नयी कविता : साम्य वैज्ञान्य

प्रयोगवाद : नयी कविता

स्वतंत्रता से पूर्व की आधुनिक कविता में पराधीनता की वेदना, निराशा और नियति के कल्या-स्वर हैं, मुक्ति की अदम्य आकांक्षा और ललकार भी है किन्तु सब मिमाकर वह पराधीन मानस की अभिव्यक्ति है। स्वतंत्रता के बाद की कविता, समकालीन हिन्दी कविता, स्वाधीन भारत की कविता है। उसमें एक नये स्वाधीन हुए देश की आशायें-आकांक्षायें प्रतिबिम्बित हुई हैं। नये मानव-व्यक्तित्व की खोज और नर मनुष्य की प्रतिष्ठा का प्रयत्न उसमें तन्निहित है।<sup>1</sup>

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् समाज में नई मान्यताओं, पद्धतियों एवं नये व्यक्तित्व की कल्पना की जाने लगी। यह कार्य संयुक्त रूप से बुद्धिजीवी वर्ग ने स्थापित किया। वस्तुतः नयी कविता का आन्दोलन पूर्व योजनात्मक नहीं है। यह विकास की सहज, तत्काल एवं अनिवार्य झुंझना के रूप में विकसित है।

छायावाद समाप्त होने से पहले ही कवियों की विचारधाराओं ने एक नया मोड़ लिया। सन् 40-41 के मजदीक अछेय, केदारनाथ सिंह, नेमियन्द्र जैन, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, हुंवर नारायण, सर्वेस्वर दयाल सक्सेना आदि के विचारों में परिवर्तन हुआ। इसी समय यथार्थवाद की एक लहर उभरी। इसी क्रम में 'तार-सप्तक' का प्रकाशन हुआ। 'तार-सप्तक' के कवियों ने यौन वर्जनाओं एवं झुंठाओं को यथार्थवादी ढंग से लिखा। 'तार-सप्तक' के कवियों ने कुछ समस्याएँ अपने लिए छुद गढ़ ली थी, लेकिन कुछ समस्याएँ उनकी सामाजिक स्थिति मध्यवर्ग के साधारणावित लोगों की थी, आकांक्षा जनक्रान्ति द्वारा सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन करने की थी।<sup>2</sup> वस्तुतः 'नयी कविता' ने अपने प्रकाशन वर्ष-1954 ई० से वर्तमान समय तक यानी लगभग दो- टाई दशक में, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के सार्थक तत्त्वों को अपने में समाहित करके भी वाद-मुक्त धरातल का निर्माण किया जो निश्चय ही एक कठिन कार्य था। प्राचीन

---

1. डॉ० रवीन्द्र भ्रमर : समकालीन हिन्दी कविता : पृ० 21

2. डॉ० रामविलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृ० 18

कवियों एवं निर्जोष मान्यताओं से काव्य को मुक्ति दिलाने के, निराला आदि द्वारा चलाये गये अभियान को एक आन्दोलन का रूप देकर मुक्त-उन्द को व्यापक मान्यता दिलायी तथा उसे नयी अभिव्यक्ति के स्वाभाविक माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया।<sup>1</sup>

(नयी कविता में केवल मानव के रूप में ग्रहण का आग्रह है। इसमें मानव के सभी कार्यों के यथार्थ सामान्य जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। अन्तराष्ट्रीय दृष्टि-कोण का विकास इसी आन्दोलन के साथ विकसित हुआ। पालीतर्वे दशक में कवियों की विचारधारा में व्यक्तिवादी सीमाएँ कुंठाओं को व्यक्त करने के लिए रूप-गठन का चमत्कार ही अधिक रहा। इस युग में कायावादी काल्पनिकता का भ्रम टूट चुका था। इसलिये समस्त काव्यधारा भौतिक यथार्थ की ओर उन्मुख हो गयी। किन्तु इसके साथ-साथ कुंठाएँ भी विकसित हो रही थी। ये कुंठाएँ काव्य में विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त हुईं। कायावाद में जो रोमांटिक अनुभूति थी वह शिथिल होकर छटपटाने लगी। इसी पुच्छभूमि में नयी कविता का विकास हुआ। इसके कवि सजग नागरिक थे, राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय विचारधारा से जुड़े हुए थे। अपना एक दृष्टिकोण चाहते थे। वह पुरानी परम्पराओं से विमुख हो चुके थे। इस नयी अभिव्यक्ति की गुस्सात 'निराला' ने कुरुरमुत्ता में सर्वप्रथम दर्शायी। इसमें वस्तु का नयापन, शिल्प का प्रयोग और सर्वथा नयी परम्परा का सूत्र उद्घाटित होता है। वस्तुतः नयी कविता के विकास-क्रम में नये आयामों का विकास और उसकी सौन्दर्यानुभूति की बौद्धिक चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है, जो नवव्यक्ततावादी आयाम भी है।

(नयी कविता के सन्दर्भ में डॉ० नामवर सिंह का कथन है, "नयी कविता 'छिन्न' या 'स्फटिक' की तथ्य संरचना के समान है। \* \* \* इसलिये नयी कविता 'अभिव्यक्ति' नहीं 'वस्तु' निर्मित' मानी जाती है।"<sup>2</sup>

1. डॉ० जगदीश गुप्त : नयी कविता स्वल्प और समस्यार्ये : पृ० ।

2. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 26

आचार्य विनय मोहन शर्मा का अभिमत है, "प्रयोगवादी काव्य की अग्रिम धारा या उसके अगले चरण को नयी कविता कहा जाने लगा, जिसे हम आज की कविता कहेंगे। 'नयी कविता' आज की कविता की चिरिछट वस्तु एवं शिल्पगत रचना का नाम है।" 1 "हिन्दी नवलेखन का सम्बन्ध प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद से रहा है। विषय-वस्तु चयन में नवलेखन मुख्यतः प्रगतिवाद के निकट है और शिल्प-विधान के क्षेत्र में उसने प्रयोगवाद से अधिक प्रेरणा ग्रहण की है।" 2 मुक्तिबोध का कथन है, "नयी कविता वैचित्र्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतन व्यक्त की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। ...." नयी कविता' का स्वर ही इविध है।" 3 मुक्तिबोध का पुनः कथन है, "नयी कविता का कवि जगत और जीवन से वस्तुवादी यथार्थानुसृत दृष्टि लेकर जन्मा है, चाहे वह अपने मन के निगूढ़तम भावों की सूक्ष्म से सूक्ष्म छटाओं को प्रकृतित्यात्मक उपादानों के द्वारा चित्रित करता हो अथवा अपने मन की भाव-स्थिति को आधुनिक सभ्यता के उपकरणों के प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता हो। उसकी कविता में सामाजिक यथार्थ, प्राकृतिक सौन्दर्य और भव्यता से लेकर निगूढ़ भाव-स्थितियों के विश्लेषण और चित्रण व्यंग्य और विद्रोह सभी सम्मिलित है।" 4 (वस्तुतः नयी कविता में एक ओर समाज के प्रति विद्रोह था तो दूसरी ओर कल्याणकारी उत्थान भी था।) अतः नयी कविता व्यक्तिमन की प्रतिक्रिया बन गयी। फलतः उसमें अनेक विचारों का, दृष्टियों का वैफल्य मिलता है। "नयी कविता वस्तुतः एक नयी तर्क है, नया काव्य प्रकार है, और उसमें विभिन्न विचित्र दृष्टियों या विचारधाराओं को स्थान प्राप्त है।" 5 डॉ० लक्ष्मी कान्त शर्मा ने नयी कविता के संदर्भ में

- 
1. आचार्य विनय मोहन शर्मा : साहित्य : नया और पुराना : पृ० 26
  2. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी नवलेखन : पृ० 30
  3. मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध : पृ० 12
  4. मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्मसंघर्ष : पृ० 127
  5. मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्मसंघर्ष : पृ० 135

कहा है, " यह नयी इसलिये है क्योंकि मूल्यों की निरपेक्षा में भी इसका विश्वास नहीं है। वस्तुतः यह नया स्वर उस वास्तविक सत्य की रक्षा के लिए है जो हर विघटन में भी जीवित रहता है। साथ ही नयी कविता सामूहिक चेतना में ठोस मौलिक अन्तर नहीं मानती, इसीलिए उसका सन्दर्भ वह ऐतिहासिक सत्य है जिसमें मानवात्मा बहुम आडम्बर और पराजय के बीच अपनी आस्था को जीवित रखने में प्रयत्नशील है।" <sup>1</sup> वस्तुतः नयी कविता जीवन सत्य के अनुभवों को स्वीकार कर देश और जाल से सम्बद्ध होकर अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त होती है। डॉ० वर्मा का पुनः कथन है " नयी कविता " मिथ्या साहसवाद और अनावश्यक आदर्शवाद की विपरीत ध्याता है। प्रत्येक भावना जो नैसर्गिक आस्था के अन्तर्गत मानव जीवन के उपकरणों से पृथक् अपना जाल रचने का प्रयास कर रही थी, उस घने कुहासे को मेदकर एक नए आलोक की स्वीकृति दिये नयी कविता में मिलती है जो हमारे जीवन से स्थूल, यथार्थ एवं सापेक्ष सौन्दर्यानुभूति से द्रवित है।" <sup>2</sup> नयी कविता प्रत्येक अनुभव को देशकाल, मानसिक स्थिति तथा निवृत्ति के आधार पर स्वीकार करती है। नयी कविता का कवि जीवन के प्रत्येक धरातल पर सचेत क्रियाओं को एकत्र करने में प्रयासरत है। वस्तुतः इसी लिए इसमें पीड़ा, कुंठा, विद्रोह जैसी भावनाओं को मानव मर्यादा के साथ सम्बद्ध किया गया है। डॉ० जगदीश गुप्ता का कथन है, " नयी कविता बोद्धिकता की छाया में चिह्नित रही है अतः उसमें एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता मिलती है यथार्थ चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म ध्वन्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एवं नये-नये अर्थों को ध्वनित करने वाला अभिन्न प्रतीक विधान आदि जिन्हें नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ कहा जा सकता है, सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है। आनन्द की परिभाषा <sup>3</sup> यदि कहीं सर्वाधिक परिचित होती है तो कदाचित नयी कविता पर ही।" <sup>4</sup>

1. डॉ० लक्ष्मी कान्त वर्मा; नये प्रतिमान : पुराने निरूप : पृ 174

2. डॉ० लक्ष्मी कान्त वर्मा; नयी कविता के प्रतिमान : पृ 40

3. 4. डॉ० जगदीश गुप्त : नयी कविता स्वल्प एवं समस्यायें : पृ 102

‘प्रगतिवाद तथा’ प्रयोगवाद’ ने जिस चेतना को त्वेदनीय बनाकर साहित्य के अनुबन्ध में लाने का उपक्रम किया था, नयी कविता ने उसे समग्रता प्रदान की है। ‘प्रयोगवाद’ और नयी कविता’ एक ही अध्याय के दो छन्द हैं और उन्हें पूर्णतः : पृथक्-पृथक् करके नहीं देखा जा सकता।’<sup>1</sup> आचार्य नन्द हुनारे बाजपेयी के अनुसार, ‘‘ नयी कविता छायावादी उत्पन्ना प्रवृत्तता के स्थान पर यथार्थवादी पद्धति को अपना रही है।’’<sup>2</sup> डॉ० छन्दनाथ मदान का कथन है, ‘‘ नयी कविता आधुनिकता की देन है और एक प्रक्रिया है।’’<sup>3</sup> नयी कविता ‘‘...की पहली विशेषता है - - जीवन के आस्वादन में विश्वास’’... नयी कविता का दूसरा लक्ष्य पार्थिव जगत की समग्रता का ग्रहण।’’... नयी कविता की तीसरी विशेषता उसकी प्रसन्नता।’’... नयी कविता की चौथी विशेषता अपनी भाषा संकुलता के अनुस्यूत तथा भाषा का अन्वेषण।’’<sup>4</sup> श्री लुंवर नारायण के शब्दों में, ‘‘ नयी कविता में ऐसी चीज नहीं जो किसी एक व्यक्ति की पूरी चीज कही जा सकती है। इसका विकास ऐतिहासिक उपलब्धि है। उसमें कई और कई प्रतिभाओं का योग है।’’<sup>5</sup> नयी कविता प्रगतिवादी यथार्थ के आघात से उत्पन्न छायावाद के स्वप्न भंग के बाद की कविता है, जिसमें व्यक्त भावनाएँ कुहासे के बीच पनपते वाले तन्द्रालस के युक्त न होकर दिन की तेज रोशनी के बीच विस्पृताओं से धिरे जागृत मनुष्य की भावनाएँ हैं।’’<sup>6</sup> वस्तुतः नयी कविता छायावादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थानुसृत व्यक्तिवादी प्रतिक्रिया थी। छायावादी आदर्शाकरण से व्यक्ति छलपटा रहा था, इस छलपटाहट में व्यक्ति को चेतना बाँटिक हो उठी फलतः यह बाँटिकता

1. डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय : छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : पृ० 266
2. आचार्य नन्द हुनारे बाजपेयी : आधुनिक साहित्य : पृ० 68
3. डॉ० छन्द नाथ मदान : कविता और कविता : पृ० 45
4. डॉ० पिशा निवास मिश्र : ग्रन्थ : पृ० 22-30
5. लुंवर नारायण का निबन्ध : उत्पन्ना : मार्च 1959 : पृ० 49
6. डॉ० जगदीश गुप्त : नयी कविता : स्वल्प और समस्यारें : पृ० 193



उसके दृष्टिकोण तक ही सीमित न रह कर काव्य रचना का एक प्रमुख तर्जनात्मक रूप बनकर उभरी। इस प्रकार नयी कविता में भाव-बोध के प्रतीकार्य मूल्यों की नयी धारणाएँ विकसित होती हैं। परम्परावादी भावनाओं को नकार कर, उनकी प्रतिवादी विवृत्तियों से मुक्त होकर वास्तविक संदर्भ को स्वीकार करना, नयी कविता का मुख्य स्वर है।

‘जब हम’ नयी कविता’ को स्थापित करते हैं तो उसके पीछे विभिन्न सामाजिक, दार्शनिक एवं ऐतिहासिक स्थितियों का संकलित रूप भी हमारे सामने होता है जो आज के व्यापक जीवन का अंग बन चुका है। अस्तु, नयी कविता का मूल वृत्त उन बिन्दुओं का समूह है जिसमें वे सभी तत्त्व सम्मिलित हैं जो नये सौन्दर्य-बोध से विकसित होते हैं। यही धारणा है कि ‘नयी कविता’ से हमारा आशय होता है, उसी नयी परिप्रेक्ष्यता, अनुभूतियों के नये त्याग और उनके नये अनुभव-क्षेत्र, सौन्दर्य-बोध के नये धरातल, परम्परागत विकृत मूल्यों के परिष्करण, मतवादी भ्रान्तियों से मुक्ति पाने की कामना, तदात्म्य सत्य की वे परिधियाँ जिनमें हमारा रागात्मक रसबोध नये आयामों का अन्वेषण करने की सामर्थ्य पाता है।<sup>1</sup> जहाँ तक नये भावबोध का सम्बन्ध है वह निश्चय है कि वह अपनी मूल प्रकृति में परम्परागत और छायावादी भाव-बोध से भिन्न है। भिन्नता का सबसे महत्वपूर्ण कारण है कि वह आधुनिक है। आधुनिक केवल आत्मगत भाव में नहीं बरन् चिन्तन विधि में दृष्टिकोण में विवेक में, जीवन की व्याख्या में और ऐतिहासिक दायित्व में, आधुनिक इसलिए है कि वह आज के जीवन सत्य को आज के ही संदर्भ में देखने का प्रयास करता है। उसके लिए न तो परम्परा ही रुढ़ि है और न ही छायावाद का मित्र। उसकी दृष्टि अन्वेषण की है, परीक्षा की है। तर्कगत अवलोकन और उसके आधार पर परीक्षा और अन्ततः एक निष्कर्ष तक पहुँचने की है। इससे भी आगे वह दृष्टि अपने निष्कर्षों को अन्तिम सत्यनहीं मानती। वह इससे भी आगे सत्य के रूप की सम्भावना को स्वीकार करती है। इसीलिए उसकी आधुनिकता में रुढ़ि नहीं है, अर्थात् उत्तरोत्तर विज्ञान की सम्भावना ही अधिक है।<sup>2</sup>

1. डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान : पृ० 32

2. डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान : पृ० 64

“ वस्तुतः नयी उचिता का उचित हृदय और संसार की सापेक्षता को मानता है। काव्य के लिए दोनों का सादृश्य सम्पर्क आवश्यक है क्योंकि दोनों ही यथार्थपरक हैं। छायावाद में जिस लज्जा का आवरण था वह नयी उचिता में मर्यादित सत्य है।”<sup>1</sup> नयी उचिता का भाव-बोध शुद्धि सच को नहीं स्वीकारता। अतः अनुभूति की ईमानदारी मूल्यों की मर्यादा को निगारती है।

डॉ० नामवर सिंह का कथन है, “ छायावादी काव्य रचना की प्रक्रिया बाहर से भीतर की ओर है। वह में स्व पर भाव का आरोपण है तो दूसरी में स्व का भाव में स्वाप्तरण है। ये विपरीत प्रक्रियाएँ अनुभूति और विचार के सम्बन्ध में भी दृष्टिगोचर होती हैं।”<sup>2</sup> डॉ० रामबिलास शर्मा का कथन है, “ छायावादी और नयी उचिता की रचना-प्रक्रिया में जो भेद किया गया है, उसके पीछे एक दर्शन है। वह दर्शन नामवरसिंह को अक्षेप से, सार्थ से, सार्थ को ठीकें गार्ड से ठीकें गार्ड को घूरने के अनेक भाववादी दार्शनिकों से प्राप्त हुआ है। उन सबके चिंतन की विशेषता यह है कि मनुष्य की चेतना से स्वतंत्र किसी भी वस्तु की सत्ता स्वीकार नहीं करते। \* \* \* अक्षेप के सूत्र को पहले सिद्ध किया, विजयदेव नारायण साहू ने। निष्ठा, ‘ छायायनी ’ में जो अनुभूति दर्शन में परिवर्तित हो जाती है, उसे अक्षेप फिर दर्शन से अनुभूति में परिवर्तित करते हैं।”<sup>3</sup> और साहू के सूत्र को सिद्ध किया डॉ० नामवर सिंह ने और कहा “ स्पष्ट है कि प्रसाद और अक्षेप का यह अन्तर छायावाद और नयी उचिता का अन्तर है।”<sup>4</sup>

आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्वतंत्रता के पश्चात् स्वाभाविक रूप से ही नयी उचिता का विकास प्रारम्भ हुआ। परन्तु सद्भिन्न परम्पराओं के अन्वीकरण करने तथा नये जीवन-मूल्यों की स्थापना हेतु इसे एक आन्दोलन का रूप धारण करना पड़ा। फलतः इसका विकास स्वाभाविक परिस्थितियों के

1. डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी उचिता के प्रतिमान : पृ० 65
2. डॉ० नामवर सिंह : उचिता के नये प्रतिमान : पृ० 25
3. डॉ० रामबिलास शर्मा : नयी उचिता और अस्तित्ववाद : पृ० 51
4. डॉ० नामवर सिंह : उचिता के नये प्रतिमान : पृ० 25

अनुस्यू हो हुआ। " ईसवी सन् के छठे दशक के प्रारम्भ में, ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाधीनता प्राप्ति के 4-5 वर्ष बाद, हमारे समाज में मनुष्य के जिस नये व्यक्तित्व की कल्पना की जाने लगी, हमारे साहित्य में जिन नई मान्यताओं एवं पद्धतियों की कभी महसूस की गई, वह किसी एक गुट अथवा सम्प्रदाय-मात्र की प्रतीति नहीं रही है। वह हमारी पूरी पीढ़ी का प्रश्न रहा है।

आधुनिकता के वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा नये सामाजिक यथार्थ बोध से संयुक्त बुद्धिजीवी वर्ग ने समग्र रूप से उस संक्रान्ति का दर्शन किया है। नयी कविता की स्थिति कुछ इन्हीं परिस्थितियों के बीच सम्भव हुई। × × × वस्तुतः नयी कविता न तो आन्दोलन रही है और न ही अनुकृति। उसे हिन्दी कविता के आधुनिक विकास की सहज, सशक्त एवं अनिवार्य शृंखला के रूप में ग्रहण करना चाहिए।" <sup>1</sup> वस्तुतः जब किसी कारणावस्था नयी चेतना विकसित होती है, तो अपने समय की फैलान बन जाती है। काव्य की पारम्परिक जड़ लदियों को छटक देने के कारण, प्राचीन साहित्यकारों को पीड़ा अवश्य पहुँचती है। इसी पीड़ावशा वह नये साहित्य या काव्य को स्वीकारने में कुछ असमर्थता पाते हैं। अतः पहले पहले नयी पद्धति या आन्दोलन की आलोचना की। किन्तु जैसे-जैसे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती गयी, वैसे-वैसे आलोचकों की स्वीकृति भी मिलती रही। प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया छायावाद में रहस्यवाद, पलायनवाद, रंगीन कल्पना-चित्रास के फलस्वरूप हुई। प्रयोगवाद की प्रतिक्रिया प्रगतिवाद की एकांगी जीवन-दृष्टि के फलस्वरूप हुई। और इन्हीं विद्रोहों को नकारती हुई अपना निखरा, एवं विकसित रूप उजागर करती हुई नयी कविता विकसित हुई।

" आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास क्रम में 'नयी कविता' प्रयोगवाद के अनन्तर दूसरी परिपुष्ट शृंखला है। प्रयोगवाद और नयी कविता के बीच की मेटक रेखा बड़ी सूक्ष्म रही है। स्थूल रूप से नयी कविता को प्रयोगवाद का अधिक विकसित तथा परिपुष्ट रूप मानना चाहिए। सैद्धान्तिक रूप से नयी कविता प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक उदार तथा व्यापक दृष्टिकोण लेकर आई।" <sup>2</sup>

1. सं० कुमार विमल : आधुनिक हिन्दी साहित्य : डॉ० रवीन्द्र : स्मर  
का लेख : नई कविता : पृ० 51

2. डॉ० रवीन्द्र : स्मर : समकालीन हिन्दी कविता : पृ० 48

अस्तुतः नयी कविता के स्वल्प के विषय में यह कहा जा सकता है कि 'दुसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ अर्थात् 1951 ई० से नयी कविता का प्रादुर्भाव होता है। 'अक्षय के सम्पादन में ही 1951 ई० में 'दुसरा-सप्तक' प्रकाशित हुआ जिसके द्वारा प्रयोगवाद पूर्ण रूप से स्थापित हो गया। उसने जो एक 'तीसरा-सप्तक' भी प्रकाशित हुआ, 1959 ई० में, लेकिन यह 'नयी कविता' की कृति है क्योंकि इसमें संकलित प्रायः सभी कवियों की चेतना 'नयी कविता' से सम्पूर्ण है।<sup>1</sup> इसके साथ ही 'नयी कविता' डा० जगदीश गुप्त तथा रामस्वल्प चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले संकलन में नयी कविता के सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आयीं। इसके कवि विषय-वस्तु एवं विचार की दृष्टि से अपने आपको एक नये प्रयोग की तरफ प्रवाहित कर रहे थे। जिसका मूल श्रोत आज के युग-सत्य और युग यथार्थ में निहित है। इसीलिए इसमें नव का यथार्थ और काव्य की संवेदनशील अभिरुचि, दोनों एक साथ नयी भाव-भूमि पर अनुभूति को अभिव्यक्त करती है। नयी कविता उस लघु मानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है, जो एक ओर आज की समस्त तिक्तता, विमुक्तता, विषमता को तो दैत रहा है साथ ही उन समस्त तिक्तताओं के बीच घट अपने व्यक्ति को सुरक्षित भी रखना चाहता है।<sup>2</sup> 'नयी कविता' को प्रयोगवाद का परवर्ती विकास अथवा परिपुष्ट रूप कहा जाता है। नयी कविता में नये मनुष्य की प्रतिष्ठा, अहंवाद, लघुमानववाद एवं क्षाधा की प्रवृत्तियाँ तीव्र प्रयोगवाद से आई हैं। नये अस्तुतों और प्रतीकों की खोज एवं नयी भाषा और नवोन लय छन्द के संस्कार उसे प्रयोगवाद से विरासत में प्राप्त हुए हैं।<sup>2</sup>

नयी कविता की विशेषता यथार्थवादी अहंवाद की व्यपत्ति, अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता की, आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंग्यात्मक दृष्टि की आधुनिकता और समतामयिकता की और उस चिन्मयता और अनुशासित विचार की भी है, जो आधुनिकता के संदर्भ में होते हुए भी समस्त यथार्थ को केवल विमर्शात्मक रूप में ग्रहण करने की है। )

1. डा० रवीन्द्र भ्रमर : समकालीन हिन्दी कविता : पृ० 23

2. डा० रवीन्द्र भ्रमर : समकालीन हिन्दी कविता : पृ० 27

नयी कविता में मनोवैज्ञानिकता का अधिक प्रभाव है। उसमें संतर्प, स्मृति, विचार अनुभव आदि इस प्रकार एक दूसरे से गुंथे हुए उभरते हैं कि बिना इन समस्त स्थितियों को ग्रहण किये किसी भी भाषानुभूति को समझना कठिन लगने लगता है। नयी कविता का कवि अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण सद्विगत प्राचीन मूल्यों को नकारता है। उसने समाज से साक्षात्कार करने के लिए एक ऐसे मानववाद का निर्माण किया है, जहाँ ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावना न होकर सर्वत्र हर एक आत्म प्रतिष्ठा स्वाभिमान तथा आत्म-निर्णय की रक्षा करने के लिए स्वतंत्र है। वस्तुतः नयी कविता के कवि का व्यक्तित्व उस सामाजिक घेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके माध्यम से आधुनिकता के बोध से आन्दोलित और उदीप्त हमारी पूरी पीढ़ी का व्यक्तित्व साकार हुआ है।)

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् आर्थिक त्रय से भारत में उसका सर्वाधिक अंतर मध्यमवर्ग पर पड़ा। फलतः बेकारी, बेरोजगारी, अभावों की विभीषिका से व्यक्ति पीड़ित हो उठा। वैयक्तिक स्वतंत्रता की भावना ने नये शोषण को जन्म दिया। पूँजीवादियों की रोमानी प्रभुत्ति अस्सीसता का धिनीना भोगवादी त्रय प्रकट करने लगी। यथार्थ की कठोर भाव-भूमि ने सभी आस्थाओं को एकछोर दिया। विज्ञान की उन्नति ने व्यक्ति की घेतना को विकास दिया। फलतः एक बौद्धिक मानव का आधिभाष हुआ। इस प्रकार नयी कविता के लिए नूतन मार्ग खुला।

[ नयी कविता में नये युग की अभिव्यक्ति, नये शिल्प के कारण उसका स्वल्प भी कुछ नया है। उसमें प्रयोगवादी परिपाटी का परित्याग है तथा रचना की विवेक पूर्ण नूतन पद्धतियों का विकास करते हुए काव्य के अनाहत अर्थार्थित स्वल्प की अभिव्यक्ति मिलती है। नयी कविता ने अपने चारों तरफ के सामाजिक, समसामयिक युग-जीवन से सामंजस्य स्थापित किया है। शिल्प की दृष्टि से जीर्ण, जर्जर उपादानों का परित्याग किया है। भाव-भूमि की दृष्टि से नवमानववाद तथा एक समग्र जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा को उन्नत बनाया है।

✓ नयी कविता में कवि पहले स्व का वर्णन करता है, उसके बाद स्व को भाव में परिधर्तित कर देता है। अतः स्व गायक हो जाता है केवल भाव ही दिक्ताई पड़ता है। वस्तुतः नयी कविता नये भाव-बोध, नये स्तर और दृष्टि के साथ नये मूल्यों को लेकर विकसित हुई है। इसमें विवेक द्वारा स्थापित सापेक्ष सत्य की तीव्रता एवं सरलता दोनों ही हैं। उसमें वर्तमान के प्रति आत्मवेदना की गहराई है और एक ऐसी धियार शक्ति है जो समस्त काव्य-परिष्कार को अन्वेष्टा की ओर अग्रसर करती है। अतः इसमें निवेदन के साथ-साथ सत्यान्वेष्टा का महत्त्व है, जो आधुनिक सामाजिकता और व्यक्ति-निष्ठा की प्रतिष्ठा में अग्रसर है। नयी कविता परम्परा और रीति के विरोध में वास्तविक - सत्य के उन आयामों और धरातलों को छूती है जो प्रत्येक जीवन में आत्म-सत्य और आत्म-अनुभूति के माध्यम से व्यक्त होते हैं। यही अभिव्यक्ति नयी अभिव्यञ्जना को अभिव्यक्त करती है। इस नये पन में मानसिक स्थिति, संघर्ष और संवेदनशील तथ्यों की अभिव्यक्ति मिलती है जो रस-बोध, भावनाओं की संवेदना, सौन्दर्यानुभूति को सार्थकता एवं यथार्थ की स्वीकृति मिलती है। नयी कविता में कवि को कलाकृति निष्प्राणा, चेतनाहीन, जोर्ण-शीर्ण, कलेवरों के साथ जीवन में स्वारोपित है, जो उसकी अभिव्यक्ति का चरम बिन्दु है।

✓ नयी कविता को कल्पना और विम्व अभिव्यक्ति में, दृष्टे चिह्नात्मक भाव, अस्त-व्यस्त रंग, अधूरे चित्र और सौन्दर्य को खीट्टिक स्तर पर लाते हैं। अतः नयी कविता मिथ्याधर्म, शब्दाधर्म और अनावश्यक उद्गतीकरण का विरोध करती है। आज की नयी कविता उन भाव-स्तरों का अन्वेष्टा है, जहाँ समग्र जीवन में व्याप्त वेदना और पीड़ा को यथार्थ के भाव-स्तर पर अनुभव किया जा सके। वस्तुतः नयी कविता लौक मंगल की भावना तक पहुँचना चाहती है। युग के संदर्भ में वह एक उत्तरदायित्व के साथ सार्थक संवेदनीयता से व्यक्ति की रिक्तता को भर देना चाहती है। इस प्रकार वह व्यक्ति-मन के आन्तरिक एवं बाह्य जीवन में पुसकर उसके, उपेक्षित से उपेक्षित पक्ष को उजागर करती है। उसकी सुंघनाहट, खीझ, कठोरता, च्यंग्य और नीरसता भी उसकी उत्तमता है।

अतः नयी कविता एक ऐसा महासागर है जिसमें अनेकानेक विषुध्य-तरंगें समाहित हैं। नयी कविता में जहाँ-जहाँ रोमांटिकता है, वहाँ व्यक्ति-स्थिति परिस्थिति का दबाव है। अतः कवि उसे व्यक्त करने के लिए अपनी एक निजी अभिव्यक्ति अनेक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है। ]

वस्तुतः नयी कविता आधुनिक यथार्थ को समकालीन भूमि में प्रस्तुत करती है। इसीलिए कि व्यक्ति कुछ ऐसी परिस्थिति में जीता है। यूरोप में साहित्य के क्षेत्र में ऐसी वस्तुगत नवीनता और परिवर्तित जीवन की छाँट मिलती है, नयी कविता पर भी उसका प्रभाव है। यूरोपीय साहित्य में सभी कवि और लेखक सामान्यवर्ग के थे। इसीलिए इनकी साध्यानुभूति भी मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग में व्यक्त हुई। वस्तुतः नयी कविता में यथार्थपरक जो लघु मानव का चित्रण है वह बहुत कुछ इससे प्रेरित है। आडेन, स्पेन्डर और लुईस के प्रभाव के अन्तर्गत नयी कविता भी प्रभावित है। वस्तुतः नयी कविता में जो सामाजिक यथार्थ की भावना है वह आडेन का ही प्रभाव है। पतित और व्यासोन्मुख की प्रवृत्ति डी०एच० लारेन्स से प्रभावित है। इसी विन्दु पर नयी कविता नवस्वच्छन्दतावादी चेतना से जुड़ती है।)

जब गतिशील काव्य में प्रवृत्ति रुढ़ हो जाती है तब उसमें रुढ़ियाँ स्थिर हो जाती हैं, जिससे कवि एक ही, छंद, लय, वस्तु, प्रतीक, चिह्न के आस-पास ही चक्कर काटता रहता है। इस स्थिति से क्रान्ति का प्रादुर्भाव होता है। नवीनता मौलिकता एवं परिवर्तन की धियाता नए काव्य की प्रेरक शक्ति है। पुरानी प्रवृत्ति से अचर कवि-चेतना नए रूप, नये रंग तथा नये अनुसंधान में प्रवृत्त होने लगती है। नये-नये प्रयोग इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।)

छायावाद की सूक्ष्म कल्पनाशीलता एवं वैयक्तिकता की प्रतिष्ठित के फलस्वरूप प्रगतिवादी चेतना का विकास हुआ। परन्तु उसमें राजनीतिक दमनान्दियों के कारण इस आन्दोलन में मार्क्सवादी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति छ रही थी। और मानव समस्याओं को सामाजिक सामाजिक समस्याओं के रूप में चित्रित किया जा रहा था। अतः कुछ ही समय में कविता के अन्दर स्फुरतता आ गई। वस्तुतः परिवर्तन आवश्यक था। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सामाजिक मूल्यों

में विघटन शुरू हो गया । फलतः कविता के क्षेत्र में कवि ने नये-नये प्रयोग करने प्रारम्भ किए । 'तार-सप्तक' इसी का प्रारम्भ है ।

सन् 1937 के बाद छायावाद का उत्कर्ष अति वैयक्तिकता, अंतर्मूर्छी प्रवृत्ति के कारण हुआ । इसके फलस्वरूप एक प्रतिष्ठिता विकसित हुई । जो मार्क्सवादी दर्शन को अपनाकर चला वह प्रगतिवादी काव्य कहलाया, जिसने किसी भी दर्शन को मूलधार के रूप में नहीं माना, वही प्रयोगशील कविता कहलाई । यही प्रवृत्ति प्रयोगशील कविता की महत्वपूर्ण विशेषता है । प्रयोगशील कवि अपने काव्य को भी जीवन की भाँति गतिशील देखना चाहता है । इसी कारण वह 'वस्तु' और 'विरास' दोनों के क्षेत्र में नये-नये अन्वेषण करता है । इसमें वह अनुभूति की ओर अभिव्यंजना पर अधिक धन देता है । वह जीवन के प्रत्येक परिप्रेक्ष्य को एक पुद्गिजीवी के धैर्यानिष्ठ की तरह परखता है । वह सत्य और आदर्श को सापेक्षिक महत्व देता हुआ उन्हें देना-काल से सम्बद्ध करता है । इस दृष्टि से वह जीवन के कठोर से कठोर विद्रुत से विद्रुत रूप को भी ध्वन करता है ।

प्रयोग के संदर्भ में डॉ० गिरिजा कुमार माथुर का कथन है, "प्रयोग" सभी कालों में होते आए हैं यह कहकर ही आधुनिक प्रयोगों की सार्थकता सिद्ध नहीं की जा सकती । उसके सम्बद्ध में आज हमें यह देखना भी जरूरी है कि किस संदर्भ में ये किया जा रहे हैं और उनका लक्ष्य क्या है, फिर पहले जो प्रयोग हुए थे उनमें और आज के इन प्रयोगों में परिस्थिति, प्रयोजन, दिशा और आग्रह का अन्तर है । इसके अलावा कवि या लेखक विशेष का शैली विशिष्टता की सीमा में हो जाता है लेकिन आज हम सामूहिक रूप से प्रयोग इसी लिए चाहते हैं कि वर्तमान जीवन की परिस्थितियाँ बदल गई हैं, उनका प्रसार हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के हर कोने को छूता है उनकी जटिलता के कारण नई मानसिक प्रतिक्रियाएँ हुई हैं, नए सम्बन्ध स्थापित हुए हैं । नवीन समस्याएँ पैदा हुई हैं, और उनके समाधान के लिए संघर्ष । इसलिए पहली बात तो इस नए सत्य, नई विश्व वस्तु की है । दूसरी चीज यह है कि अभिव्यक्ति के पुराने माध्यम छंद, उपमान, छंदनि, रंग प्रकारादि सभी मिट चुके हैं, उनके रंग



उड़ चुके हैं, निरपेक्ष ही उनके द्वारा नवीन वास्तविकता से उत्प्रेरित भावों की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। तीसरी ओर भाषा की भी बात है जो प्रेरणा और सुवीकरण का माध्यम है। प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा की शब्द रचना और पद चिन्धासों का अर्थ संकेत तथा छवि संकेत भी सीमित हो गया है उसके भी पुनः संस्कार की आवश्यकता है। इन तीनों के सामंजस्य से ही आगे बढ़ना प्रयोगों का लक्ष्य है।<sup>1</sup> डा० प्रेमशंकर का कथन है, "नयी हिन्दी काव्य की कर्प दिशाएँ हैं, सुविधा के लिए उसके आरंभिक दौर को प्रयोगवाद नाम दे दिया गया और इसकी शुरुआत 1943 में 'तार-सप्तक' के प्रकाशन से मान ली गयी। आगे चलकर जब अक्षेय ने 1947 से 'प्रतीक' पत्र का संपादन आरम्भ किया, तब उन्होंने इस नये काव्यादीशन को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। 'तार-सप्तक' की भूमिका : 'विभूति और पुरावृत्ति' में अक्षेय के इस वाक्य से प्रयोगवाद शब्द निर्मित करने की सुविधा मिल गयी कि 'संगृहीत कवि सभी ऐसे ठोंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं।' अग्रेसरी मतमेंदों को स्वीकारते हुए भी उन्होंने इन कवियों को 'राहों का अन्वेषी' कहा। उस बीच जब आचार्य सन्द दुलारे वाज्वेयी आदि के द्वारा प्रयोगवाद शब्द चल निकला तब 1951 में प्रकाशित 'दुतरा-सप्तक' का लंबी भूमिका में संपादक अक्षेय ने प्रयोगवाद शब्द को न स्वीकारते हुए भी लिखा कि 'प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है। वस्तु और शिवाय दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रसू होता है।'<sup>2</sup> डा० लक्ष्मीकान्त वर्मा का अभिमत है, "इसकी प्रकृति में यह तथ्य निहित है कि किसी भी वस्तु की मान्य का ज्ञान प्रयोग द्वारा पुनः अनुभव किया जा सकता है और नई उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। प्रयोगकी प्रक्रिया द्वारा मान्य एवं निर्धारित तथ्यों के अतिरिक्त नये तथ्य भी प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही प्रयोग यह मान कर किया जाता है कि प्रयोगकर्ता की उपलब्धियाँ सही ध्ये ही न हों, किन्तु महत्वपूर्ण हो सकती हैं। इसलिये प्रत्येक प्रयोग का महत्त्व है

---

95

1. गिरिजा कुमार माथुर : आलोचना अंक 2 : 'काव्य में प्रयोगशीलता'
2. डा० प्रेम शंकर : नयी कविता की भूमिका : पृ० 23

और प्रयोगवादी की स्थापनाओं का उपयोग है। दूसरे शब्दों में प्रयोग का उद्देश्य है मान्य सत्य का परीक्षा और फिर परीक्षा द्वारा सत्य के नये आयामों का अन्वेषण।<sup>1</sup> वस्तुतः प्रयोगवादी कवि किसी निश्चित तथ्य को लेकर उसे विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसका परीक्षा करता है। प्रयोग कृति वैज्ञानिक दृष्टिकोण है अतः वह किसी भी मान्यता को अन्तिम सत्य के रूप में नहीं स्वीकार करता है। अतः वैज्ञानिक की बदलती मान्यताओं के अनुसार ही वह निरीक्षा करता रहता है। इस प्रकार उसके द्वारा नयी मान्यताओं की स्थापना होती रहती है। 'प्रयोगवादी केवल' अज्ञात' की खोज ही नहीं करना चाहते थे वह 'जात' में भी 'अज्ञात' खोजते थे। इस तरह प्रयोगवाद को जात से अज्ञात की ओर बढ़ने की चोखी जागरूकता भी कहा जा सकता है।<sup>2</sup> प्रयोग के सन्दर्भ में 'अज्ञेय' का अर्थ है, 'प्रयोग अपने-आप में छुपे नहीं है, वह साधन है। और दोहरा साधन है क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उसे प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।'<sup>3</sup> 'अज्ञेय' का पुनः अर्थ है, 'जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समझित तक जैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाये-यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को जनधारती है।'<sup>4</sup> डा० नामधर सिंह का अभिमत है, 'प्रयोगशील कवि की धारणा यह है कि भाषा के ही माध्यम से नये सत्य का अन्वेषण भी किया जाता है और भाषा के ही माध्यम से उसे व्यक्त का रूप भी दिया जाता है - इस प्रकार वाच्य-विात्य जानने और व्यक्त करने दोनों का ही माध्यम है। प्रयोगशीलता इस अर्थ में वाच्य के वस्तु और विात्य दोनों ही का प्रयोग है।'<sup>5</sup>

1. सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी साहित्य कोश; पृ० 528

2. सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी साहित्य कोश : पृ० 7

3. 'अज्ञेय' : दूसरा सप्तक : [भूमिका] पृ० 7

4. 'अज्ञेय' : तार-सप्तक : पृ० 277

5. डा० नामधर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : पृ० 135

वस्तुतः प्रयोगवादी कविता उस मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया को अपना सम्बन्ध मानती है, जिसमें अनुभूति उदात्त रूप में प्रेक्षणीय होकर एक व्यापक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हो सके और मानव-चेतना के सभी धरातलों को छू सके।'' 1

जब गतिशील काव्य में प्रवृत्ति पुरानी हो जाती है तब उसमें रुढ़ियाँ स्थिर हो जाती हैं। जिससे कवि रूढ़ हो छंद, लय, वस्तु, प्रतीक, चिह्न के आस-पास ही चक्कर काटता रहता है। प्रयोगवादी कवि की मान्यताएँ एकदम भिन्न हैं। प्रयोगशील कवि पद्य, छंद और तुक को रुढ़िवाद रूप में ग्रहण न करके आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग करना चाहता है। उसका सुभाव अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी पर ही है। वस्तुतः प्रयोगवादी कवि अपने प्रयोगों के द्वारा केवल अज्ञात को ही नहीं खोजते बल्कि वह ज्ञात से अज्ञात की बौद्धिक जागृकता की ओर बढ़ता है। प्रयोगवादी धारा परम्पराओं से मुक्त होकर प्रवाहित है। इस काव्यधारा में जीवन की पथार्थता प्रवाहित होने लगी थी। अतः इसमें केवल प्रगति न होकर प्रयोगशीलता भी थी। प्रयोगवाद आत्मसत्य की अभिव्यक्ति का प्रयास है। इसकी प्रवृत्ति साहित्य की प्रेरक-शक्ति को साहित्यकार की आन्तरिक ध्येयता का स्वयंभूत फल मानती है। यह कविता के ऐसे स्वस्व की आकांक्षिणी है जिसमें जीवन प्रतिबिम्ब हो। प्रयोगवाद कर्म संघर्ष में अपनी अभिरूचि नहीं रखता। बल्कि वह व्यक्ति की चेतना को अपनी वस्तु-स्थिति से अलग करके देखने का प्रयत्न करता है।

'अमेरिका की' प्रो. हण्टर प्राइस' या स्वरुद्र उत्पादन और उपयोग का सिद्धान्त इन्हें अधिक पसन्द है। फलतः उस और चीन आदि साम्यवादी देशों की प्रत्येक बात से ये लोग घुमा करते हैं। साहित्य में यही प्रवृत्ति 'प्रयोगवाद' के रूप में प्रचलित हुई जो प्रगतिवादी मान्यताओं के विरुद्ध 'मान्यताओं' और मानक मूल्यों का प्रचार कर रही है।'' 2

छायावाद की अतिरिक्त कलात्मकता के विरुद्ध वास्तविकता का आधार लेकर प्रगतिवादी कविता का जन्म हुआ, लेकिन वह सिर्फ समाजवादी कविता ही

1. जलीन्ध ब्रूक्स : मॉडर्न पायट्री एण्ड द ड्रेडोसन : पृ 0 79

2. डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कविता और सिद्धान्त और समीक्षा : पृ० 496

बनकर रह गयी। वह जिस सामाजिक चेतना पर तबहार हुई थी वह आगे चलकर साम्प्रदायिकता में बदल गई। तब कवि के अन्दर एक नयी चेतना कादिकार हुआ कि उन सब क्षेत्रों से हटकर नये प्रयोगों की आवश्यकता है। इस नयी धारा में कवि ने स्वयं को सामाजिक परिवेश के अन्दर ही देखा। वस्तुतः प्रयोगवाद यूरोपीय-काव्य धारा से भी प्रभावित हुआ है। इसीलिए अभिव्यक्ति की कलात्मक परिणति इसमें मिलती है। व्यक्तित्व की अपरिमित शक्ति में उसका पूर्ण विश्वास है। उन्होंने हिन्दुओं पर प्रयोगवादी नये-नये अन्वेषण करते हुए अपनी सफलता प्राप्त करते हैं।

प्रयोगवादी कवि प्रकृति के दुर्लभ चिह्न को कल्पना करता है जिससे नये रूप का स्मरण हो सके। उन्हीं में वह नये आयामों की दृष्टता है। वस्तुतः प्रयोगवादी कवि की प्रवृत्ति शब्दों को गद्य के रूप में रखने की है। वह प्रत्येक नये छंद का प्रयोग करता है। इसीलिए यह प्रयोगवादी कविता में पूर्ण रूप से सादात्म्य नहीं स्थापित कर सका तो यह 'नयी कविता' के नये नामकरण में बदल गया।

प्रयोगवाद में व्यक्तिवादी यथार्थ का आग्रह है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व को ज्ञानी महत्ता प्रदान की है कि उसे नैतिकता के मूल-स्रोत के रूप में इस प्रकार स्वीकार किया गया है कि साधारण दुर्बल व्यक्ति उसके इस उद्धार प्रतिदान के लिए स्वयं को योग्य भी नहीं सिद्ध कर पाता। वस्तुतः प्रयोगवादी व्यक्तिवाद युग के धार्मिक और भौतिक प्रमाचों से उत्पन्न हुआ है। जिसका स्रोत सहज चिन्तन और मानवीय जिजीविषा है। उसमें यथार्थ जीवन और सामाजिक दायित्व के बीच सामंजस्य है। जो व्यक्तित्व की कर्म-जिज्ञासा की अभिव्यक्ति है वह सम्पूर्ण जीवन के सम्बन्ध की ओर से जाती है। अतः 'प्रयोगवादी कवि अधिनायकवाद और यांत्रिकता के उदय द्वारा उपस्थित संकट के निरसन के लिए एक रचनात्मक दृष्टिकोण की खोज करते हुए देखा गया है। जिसका आधार मानव व्यक्तित्व और मनुष्य के स्वातंत्र्य एवं आत्म-निर्माण की क्षमता था।'।

प्रयोगवाद में फ्रायड के यौनवाद को विकसित प्रवृत्ति है। जिसकी अनुगूँज 'अधेय' की कविताओं में प्रचुर भावा में मिलती है। उनका कथन है, 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन-वर्जनाओं का पुंज है। \* \* \* आज के मानव का मन-यौन-परिउत्पन्नाओं से लदा हुआ है और वे उत्पन्नाएँ सब दमित और कुंठित हैं। जिसकी सौन्दर्य-चेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके अपमान सब यौन प्रतीकार्य रखते हैं।' 'अधेय' केरी-गुरु के स्वच्छन्द काम के उद्गाता हैं। सामाजिक न्यायादाओं ने व्यक्ति की चेतना को कुंठित कर उसे पोंछल और तनावयुक्त बना दिया। लेकिन प्रयोगवाद में इसका स्वच्छन्द वर्णन किया गया। 'अधेय' ने इस 'सेक्स' की प्रवृत्ति को मुखरित करके फ्रायड के यौनवाद को जीवन्त बनाया। इसकी प्रवृत्ति नयी कविता में क्लिप्त हुई है।

वस्तुतः प्रयोगवादी कवि यथार्थता को उसकी सम्पूर्णता में ही पाठकों के समक्ष रखता है। अतः समाज के अभिधा पूर्व स्वल्प से विरक्त हो जाने के कारण उसके पुनः संस्कार की तीव्र अभिव्यक्ति प्रकट करता है। आधुनिकता की दाँड़ में पितृता-विराहता निम्न वर्ग एवं अभिजात्य वर्ग के मध्य में लटकता मध्यम वर्ग के व्यक्ति ही प्रयोगवादी 'सत्य' है। प्रयोगवादी कवि ने नये अन्वेषणा के लिए परम्परा का पूरी तरह खंडन कर निर्बोध तत्त्वों के स्थान पर नये जीवन्त तत्त्वों को उजागर किया। अभिधापूर्ण भावा का नया संस्कार किया। शब्दों में नये रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर नये-नये अर्थों की अभिव्यञ्जना की।

वस्तुतः प्रयोगवाद का मूल तत्त्व व्यक्तिवाद है। क्योंकि व्यक्ति की स्वतन्त्र चिन्तन पद्धति को विशेष महत्त्व देने के कारण ही प्रयोगवाद में व्यक्ति की प्रतिष्ठा अनिवार्य थी। इसीकारण इसमें नवीनता का समावेश हुआ। यही मौलिकता इसकी विशेष गुण बनी। 'सत्य' भी वही स्वीकारते हैं जो अपनी दृष्टि से देखते हैं। स्थापित सत्य का अन्वेषण प्रयोगवादी कवि नहीं करते। परम्परा के प्रति उनके स्वर में विद्रोह है। अतः प्रयोगवादी कविता परम्परागत मूल्यों को अभिव्यक्त न करके जीवन-मूल्यों को ही अभिव्यक्त करती है।

समग्र मूल्यों के कारण ही वह 'लघु-मानव' की प्रतिष्ठा करता है। वस्तुतः प्रयोगवादी कवि अत्यंत संवेदनशील है। इसी संवेदनशीलता के कारण उसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु एवं व्यक्ति का अन्वेषण करती है। इसी कारण वह व्यक्तिगत सत्य को उसकी समग्रता में चित्रित करता है। यह अनुभूति वह बड़ी भारीकी एवं ईमानदारी से अभिव्यक्त करता है। प्रयोगशील कवि वस्तु और शिवात्त्व दोनों को प्रयोगों की कसौटी पर कस के उनमें नवीनता खोजता है। इसीलिए इसमें वीर्यवृत्तता का विकास स्वतः ही विकसित हुआ। वाद्य जीवन के साथ-साथ वह मनुष्य के आन्तरिक मनोवैधानिक तथ्यों को भी चित्रित करता है। अतः विशिष्ट कवियों की मनः स्थिति की अभिव्यंजना पर ही तारा ध्यान केन्द्रित करने के कारण प्रयोगवादी कवि को क्वावाद भी स्वीकारना पड़ा। सूक्ष्मता के कारण ही प्रयोगवादी कवि 'टेल्सग्राफिक मैग्नेट' का पक्षपाती है। जिसमें वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भरते हैं।

प्रयोगशील कवि अपने अंदर निराशा के माध्यम से ही आशा का संघार करते हैं। व्यक्ति की जो चिन्ता, कुंठाएँ हैं उसे सफलतापूर्वक जीने का संघार करता है। वह जीवन को सत्यता से जीने का प्रयत्न है। अतः प्रयोगवादी कवि का यह वर्तमान रूप इस बात का प्रमाण है कि वास्तविक जीवन को गन्दगी और तनाव के मध्य भी एक आदर्श साधना की ओर प्रतिष्ठा बढ़ता रहा है।

वास्तव में प्रयोग वाद्य-हृजन का एक विरोध। दृष्टिकोण। प्रयोगवादी कवि व्यक्ति के उन परातलों का स्पर्श करता है जो जीवन में आत्मबोध एवं आत्मानुभूति के आधार पर व्यक्त होती है। विद्रोही दृष्टिकोण की संवेदनीयता उसे भावना, यथार्थ और सौन्दर्य की नवीन युगानुगुल आयामों की दृष्टि देती है। अतः व्यक्तिवाद में सत्य, सौन्दर्य और यथार्थ मूल्यवान हैं। इन्हीं तत्त्वों की अभिव्यक्ति नयी कविता का दायित्व है। इसी नये दृष्टिकोण के फलस्वरूप नयी कविता में कला और मूल्यों का आधार है।

प्रयोगवादी कविता के आदर्श रूप में नये सौन्दर्य-बोध, नये भाव-बोध के यथार्थ को प्रतिबिम्बित किया है जो आधुनिकता, विवेक और यथार्थ से संपृक्त है। जिसमें नए मूल्यों को विकसित करने की प्रवृत्ति तथा दृष्टि है। कवि की चेतना को अन्वेषण के नये आयामों की ओर प्रेरित करने वाली अन्तर्दृष्टि भी है।

प्रयोगशील कवि यथार्थवादी धरातल पर जुड़े होने के कारण सौन्दर्य-बोध में सुन्दरता और कुसुमता दोनों पर समान दृष्टि डालता है। सौन्दर्य-बोध के स्तर पर यथार्थ की स्वीकृति अमूर्त की अपेक्षा मूर्त सौन्दर्य के आकर्षण में लक्षित होती है। इस सौन्दर्य को प्रगतिशील कवि ने मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय समाज के परिप्रेक्ष्य में देखा है, जिसकी अभिव्यक्ति अनेक लय भेदों में हुई है। निराशा, कुंठा एवं संघर्षों की व्यक्तिगत अनुभूतियों के कारण ही प्रयोगशील कविता में फ्रायडवादी यौन भावनाओं की प्रधानता है। सामाजिक संघर्ष की अनास्थायी और भयाकुल अभिव्यक्तियाँ हैं।

“ प्रयोगवादी काव्य यथार्थ से जितना सम्बन्धित है उती अनुपात में उसके सौन्दर्य-बोध में सुन्दरता और कुसुमता है। प्रयोगवादी सौन्दर्य-बोध और विस्मयता को पृथक् मानकर अनिवार्य मानता है। क्योंकि ये दोनों ही अनुभव में समाहित होते हैं तथा इसके समग्र ग्रहण के अभाव में वह अपूर्ण रहेगा। प्रयोगवादी समीक्षक 'अनाम' की रचनाओं से इस सौन्दर्य-बोध के साथ प्रयोगवादी यथार्थ की भी सबल अभिव्यक्ति पाते हैं।”<sup>1</sup> वस्तुतः प्रयोगशील काव्य यथार्थवादी चेतना के काफी निकट है। और इसमें यथार्थवादी व्यक्तिवाद ही प्रमुख है।<sup>2</sup> यथार्थ का मूलगुण है जीवन की स्वीकृति। उसकी विशेषता है वर्तमान संदर्भ का समीकरण। उसकी मूल प्रवृत्ति है मानव-विशिष्टता द्वारा मानव-मूल्यों की निष्ठा। उसका विस्तार है समस्त - मानव-जीवन में विकसित मान-मर्यादाओं का नवीन परिप्रेक्ष्य। उसकी सीमा है जीवन और उसका परिधेरा। और तब इन समस्त आत्मविश्वास देने में समर्थ हो पाता है किन्तु इससे भी बड़ा मानव सत्य है जिसकी सापेक्षता में यथार्थ विकसित होता है।<sup>3</sup>

वस्तुतः सारतया हम कह सकते हैं कि जब प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ प्रयोगवाद में नहीं समायी तो कवियों ने उसकी प्रवृत्तियों और विकसित कर नये नामकरण 'नयी कविता' में परिधर्तित कर दिया। क्योंकि प्रयोगवाद का नामकरण भी 'छायावाद' की तरह ध्वंग्यपरकता में हुआ। परन्तु कवियों की

1. सं० जगदीश गुप्त : नयी कविता : अंक 3

2. डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान : पृ० 131

विकसित योजना भावनाएँ एवं प्रवृत्तियाँ तो समयानुसार ही परिवर्तित हो रही थी। जिसका प्रतिफलन एवं विकास 'नई कविता' में अभिव्यक्त हुआ। जो अपने सम्पूर्ण आधुनिक युग की प्रवृत्तियाँ समेटे हुए है। 'नयी कविता' अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, मनोविलक्षणवाद, विद्रोह, क्रांति, रोमांटिक, आयरनी, तनाव, क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद, नव-मानववाद आदि प्रवृत्तियों के फलस्वरूप नवस्वच्छन्दतावादी चेतना की अभिव्यक्ति भी पाती है।

### नकेन और नयी कविता

नकेनवादी धारा प्रयोगवाद से घिलग नहीं है, वरन् प्रयोगशीलता का ही घड़ता हुआ स्रोत है। एक 'साधन' तो दूसरा 'साध्य'। वस्तुतः दोनों ही धाराएँ अपने काव्य में नये-नये प्रयोगों का अन्वेषण करती हैं। 'प्रपञ्च का अर्थ उत्कृष्ट है। लेकिन यह हमारी आँखों से छुटती है, हमने तो प्रयोगवाद ही कहा, लेकिन गलत धारणाएँ पैदा की जाने लगीं। प्रगति और प्रयोग शब्द जब पिटगये तो उसकी जगह 'प्रपञ्चवाद' आया।'।

'नकेन' नमिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेगा के प्रथम अवर्गों का रूप है। यह धारा 'प्रयोगशील' और 'प्रयोगवाद' के स्वतन्त्र को स्पष्ट करने के लिए आभासित हुई। इसी को स्पष्ट करने के लिए नकेनवादियों ने इस काव्य-धारा का नाम 'प्रपञ्चवाद' रखा। नकेनवादियों के 'प्रपञ्चवाद' को 'दृष्टिकोण' 'पाटल', 'प्रकाश' नामक पत्रिकाओं से काफी ध्यान मिला। इसी के फलस्वरूप इन कवियों ने अपनी संयुक्त पुस्तक नकेन एक, नकेन दो को प्रकाशित किया, जो 'प्रपञ्चवाद' का घोषणा-पत्र है।

प्रयोगशील अथवा प्रयोगवादी आन्दोलन की चेतना मार्क्सवादी चिन्तन के विस्तार में हुई। द्वितीय महायुद्ध की मासदी ने व्यक्ति के व्यक्तित्व को छण्ड-छण्ड कर दिया। वह अपनी संवेदना को कुचल कर बौद्धिक हो गया। समाज ने बौद्धिकता को जन्म दिया, वैयक्तिक चेतना उमरी, विज्ञान, मनोविज्ञान ने प्रगति की। परन्तु व्यक्ति के जीवन की कुंठार, अतृप्तताएँ,



जानती है जो नये प्रयोगों का पुनर्निर्माण करती है। 'प्रपञ्चवाद' तरह-तरह से वस्तु-संग्रह को देखता है और उसे नई संगतियों में देख सकने के कारण ही प्रपञ्चवादी कवि अपने आधार के निर नैतिक स्वीकृति पाता है। स्वीकृत संगतियाँ, व्यवहार में पित्त-पिट जाने के कारण व्यंजक नहीं होती। योंकि वे स्वीकृत और नित्य अनुभूति होती है, इसलिये नई संगतियों की जटिलताओं को शब्दों में निर्णीत करते चलना प्रपञ्चवाद का दृष्टिकोण होता है।<sup>१</sup>

'प्रयोगशील' और 'प्रपञ्चवाद' में सैद्धान्तिक भिन्नता है। प्रयोगशील समुदाय ने प्रयोग को 'साधन' माना और 'प्रपञ्चवादी' ने प्रयोग को 'साध्य' माना। जिसको प्रपञ्चवादियों ने 'प्रयोगदादा-सूजी' में स्पष्ट किया। डा० धीरेन्द्र वर्मा प्रपञ्चवादियों को अतिथयार्थवाद से प्रभावित करते हैं। उनका कथन है, "अतिथयार्थवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रपञ्चवाद पर अवश्य देखा जा सकता है। चिह्न के तीन कवियों नमिन चित्तोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेन्द्र [नरेन्द्र] द्वारा प्रचलित इस काव्य आन्दोलन के वास्तव तथा अन्तर दोनों पर ही अतिथयार्थवाद की छाया स्पष्ट है। प्रपञ्चवाद के कवियों ने अपना पोषण-पत्र भी प्रकाशित किया। उनकी रचना-पद्धति उस अव्यवस्था को ही प्रधान मानकर चलती है जो अतिथयार्थवाद का प्रधान उपजीव्य थी।<sup>२</sup> परन्तु वास्तव में प्रपञ्चवाद अतिथयार्थवाद नहीं है क्योंकि अतिथयार्थवाद में पौर नग्नता का चित्रण मिलता है, लेकिन प्रपञ्चवादियों ने अपनी रचनाओं में इतना कुलकर वर्णन नहीं किया। प्रयोगवाद का मन्तव्य समस्त परम्पराओं का खंडन करना नहीं है, बल्कि उसके निर्बोध तत्त्वों के स्थान पर नये जीवन्त तत्त्वों का अन्वेषण करना है। देश और काल के अनुसार प्रत्येक परम्परा मूलतः प्रयोगात्मक त्व में ही विकसित होती है। जब वह देश और काल की प्रगति के साथ आगे विकसित होना पन्द कर देती है तो उसका त्व लुप्त हो जाता है जिसका कोई भी बौद्धिक ज्ञाता परम्परा की लुप्ति को स्वीकार करके नये माध्यमों को अपनाने की प्रवृत्ति अपनाती है, वह प्रयोगशीलता की ओर

१. नरेन्द्र [ ] : पक्षपक्षा : पृ० ११६

२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ११

अज्ञात होती है।<sup>1</sup> वस्तुतः प्रपञ्चवाद की काव्य सम्बन्धी मान्यता फ्रांस के प्रतीकवादियों तथा पिम्पवादियों और इंग्लैंड के टी.एस. एलियट जैसे अधिष्ठितावादियों से प्रभावित है और प्रयोगवादी भी एलियट, स्वररा पाउण्ड और सार्त जैसे दार्शनिकों से प्रभावित है। अतः ये कवि एक साथ प्रगतिवादी, अस्तित्ववादी, व्यक्तित्ववादी है और नवस्वच्छन्दतावादी भी है। डॉ० रघुवीर का कथन है, "प्रपञ्चवादी एक विशिष्ट घोषणा-पत्र को, अपनी मान्यताओं को स्पष्ट रूप में सामने रखने के लिए प्रस्तुत है। जबकि प्रयोगशील तथा नयी कविता के अन्तर्गत स्वीकार किए जाने वाले कवियों को अपने-अपने अनुभवों, विचारों तथा व्योम हररणा-प्रक्रिया के आधार पर कविता सम्बन्धी मान्यताओं पर विचार करने की छूट रही है।"<sup>2</sup> वस्तुतः प्रपञ्चवाद मानता है कि कविता की वास्तविक प्रेरणा वस्तु-स्थिति से मिलती है। वस्तु-द्रष्टा के भीतर भाव-छवियाँ उत्पन्न करती हैं। उन छवियों के साथ द्रष्टा की असंगतियाँ मिलकर एक दृष्टिबिन्दु उत्पन्न करती हैं और जब उस दृष्टिबिन्दु से कवि वस्तु को देखता है तब वह शक्ति के एक नये संगमेल के रूप में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार कविता में सदा ही पुनर्निर्माण हुआ करता है। प्रपञ्चवाद तरह-तरह से वस्तु-संगमेल को देखता है और उसे नई संगतियों में देख रखने के कारण ही प्रपञ्चवादी कवि अपने आधार के लिए नैतिक स्वीकृति पाता है। स्वीकृत संगतियाँ, व्यवहार में फिसल-पिट जाने के कारण, प्यंजक नहीं होती बूँछि वे स्वीकृत और नित्य अनुभूत होती हैं, इसलिये नई संगतियों की खोजताओं को शब्दों में निर्मित करते चलना प्रपञ्चवाद का दृष्टिकोण होता है।<sup>3</sup> आचार्य नन्द दुबारे पाखण्डी का कथन है, "नवेनवाद जिसे उसके विमायतियों ने प्रपञ्चवाद भी कहा है वास्तव में प्रयोगशीलता का एक अतिवाद था। प्रयोगवाद के प्रवक्ताओं ने जो कुछ नया कहा था, उससे संतुष्ट न होकर उसे एक तार्किक अतिवाद तक पहुँचाने का कार्य 'नवेन' की संग्रह पुस्तक की

1. सं० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश : पृ० 486

2. डॉ० रघुवीर : साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य : पृ० 214

3. सं० लक्ष्मीनारायण सिंह सुधीरु : अवन्तिता जनवरी 1954 : पृ० 252-53

भूमिका' पररक्षा' में दिखाई पड़ा था।'' 1 वस्तुतः प्रयोगवाद के नाम को स्पष्ट करने के लिए ही, उसके नाम की व्याख्या करने के लिए ही नबेनवादियों ने यह आन्दोलन घलाया। और नाम समता को दूर करने के लिए अपने आन्दोलन का नाम 'प्रपञ्चवाद' रखा। जिसमें उन्होंने बताया कि 'प्रयोगवाद' और 'प्रयोगशील' शब्द का तात्पर्य एवं उसका अर्थ क्या है। अतः व्याख्यापित संदर्भ में 'नबेनवाद' एक ऐसी अंतर्वर्ती विचार मुद्रि थी जैसी यूरोप में विम्बवादियों की हो गई है जिसके प्रतिनिधि खरा पाउन्ड थे।'' 2

प्रपञ्चवाद काव्य को चिन्तना मानता है। उसके लिए कविता प्रथम से अन्तिम शब्द तक जाते हुए आकाशस्थ अभिव्यक्तियों का तारतम्य मात्र नहीं है बल्कि एक वस्तु है जो पाठक को एक साथ अपने समस्त गुणों से, एक-एक-पदीय प्रणाली से, संस्पर्शित करती है, अपनी सम्पूर्णता से उसे अभिभूत करती है। प्रपञ्च का अभिप्रेत इसलिए अलग-अलग शब्दों तथा उनके अग्रिम माध्यम से चित्रों का समुच्चय उत्कीर्ण करना नहीं बल्कि एक सम्पूर्ण चित्र का पुनर्निर्माण करना होता है। इतर पद्य सायान्यतः छंदोबद्ध, सुगति और अनुकान्त, यहाँ तक कि दृढ़हीन, होते हुए भी कवि के विचारों अथवा आवेशों अथवा अनुभूतियों और किसी-किसी मामले में उन तीनों के समन्वित रूप का प्रतिवेदन मात्र होता है जबकि प्रपञ्च काव्यवस्तु - चिन्तना ही पाठक को दे देता है, उसकी रपट या चित्रण नहीं करता।'' 3.

प्रपञ्च उस काव्य से भिन्न है जो निजी अनुभूतियों अथवा पसंद-नापसंद का काव्य रहा है, जो कवि का निजी काव्य बना रहा है और जो पाठक को काव्य के रसास्वादन में भाग लेने को आमंत्रित तो करता है किन्तु उसे काव्य की भागदारी में नहीं, अपने काव्य-धरा के व्यक्तित्व में शामिल करता है। प्रपञ्चवादी के शब्द चिन्तन निजी, व्यक्तिगत होते हैं लेकिन पथार्थ या काव्यधरा का परिग्रहण चिन्तन वस्तुमरु होता है। काव्य-धरा निजी भोगा हुआ धरा

1. आचार्य नन्द हुनारे वाजपेयी : नई कविता : पृष्ठ 59

2. आचार्य नन्द हुनारे वाजपेयी : नई कविता : पृष्ठ 60

3. नबेन [2] पृष्ठ 57

नहीं होता, वह वस्तुगत होता है। इस दृष्टि से प्रपञ्चवादी व्यक्तित्व रहित होता है और उसका काव्य निर्व्ययितक। उसके शब्द उसके निजी व्यक्तित्व के विस्तार नहीं होते, वे वस्तु-व्यर्थ के विस्तार होते हैं।''<sup>1</sup>

वस्तुतः प्रपञ्चवादी निरन्तर गतिशील स्थिति को स्वीकार करते हैं। इस स्थिति में ठोस भी रचना न, पनकर नहीं रह पाती, वह निरन्तर बनती रहती है। जिसको प्रपञ्चवादी कालज्य न कहकर कालसातत्व कहते हैं। जिससे जीवन्तता आती है और रचना निरन्तर सँत लेती रहती है। जिस प्रकार नदी एक होते हुए भी उसका जल निरन्तरगतिशील होते रहने के कारण एक नहीं रहता। उसी प्रकार प्रपञ्चवादी दृष्टि की रचना के एक पठन के बाद दूसरे पठन के क्रम में नहीं जा पाते। इसी क्रम में प्रपञ्चवादी अपने शब्दों से भी अतिक्रमण करता जाना अपना कवि कर्म मानता है। अतः प्रपञ्चवादी जानता है कि वह क्या प्रयोग करता है और वैज्ञानिक के नियतत्व या सूक्ष्मता के साथ ही। इस तरह वह पूरा वैज्ञानिक है। प्रपञ्च विज्ञान और ज्ञान की दृष्टि नहीं, दोनों का संकलन है। यह कहना कठिन है कि उसमें कहाँ वैज्ञानिक विचार छिपे होता है और कहाँ से ज्ञान शुरू होती है। इस अर्थ में प्रपञ्चवादी कविता बनाने वाले गुणों की तलाश करता है और इस क्रम में कवि गुणानुसारी कविता को शुद्ध कविता मानता है।''<sup>2</sup> जीवन की गतिशीलता या अर्थवादी चेतना है। जिससे अनुभूतियों में, वास्तु में, पीडितता में नये स्तर ग्रहण करने की अभिव्यक्ति मिलती है। अभिव्यक्ति को अनुभूतियों के अनुकूल नये माध्यमों का प्रयोग करने का अधिकार है। वस्तुतः प्रयोगवाद व्यर्थ के संदर्भ में जीवन की सापेक्षता को अधिक व्यापक स्तर पर देखने की चेष्टा करता है। डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, '' वास्तव में इस कविता का मुख्य उपादान-साधन-वैज्ञानिक धारणाएँ हैं जो प्रायः विज्ञान, राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषणशास्त्र आदि की उपजीवी हैं।''<sup>3</sup>

1. नडेन [2] : पृष्ठ 57

2. नडेन [2] : पृष्ठ 63

3. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : पृष्ठ 117-118

वस्तुतः 'तार-सप्तक' के प्रकाशन काल से जो प्रवृत्तियाँ उभरी, उन्हीं को कभी प्रयोगवाद, कभी प्रपञ्चवाद, न केनवाद, और कभी नयी कविता के नाम से अभिहित किया गया है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान का कथन है, "।

उत्तरछायावाद युग की दूसरी काव्यधारा वैयक्तिक कविता का विकास है जिसका अभी तक अन्तिम रूप से नामकरण नहीं हो पाया है। इसलिए इसे प्रयोगवाद, प्रतीकवाद, रूपवाद, प्रपञ्चवाद अथवा न केनवाद आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। शिवदान सिंह चौहान ने नयी कविता को भी इस काव्य-प्रवृत्ति के अन्तर्गत किया है।" 1 अन्ततः यह सभी काव्य - धाराओं की काव्यगत मूलगत चेतना, आदर्श एवं उद्देश्य में किसी प्रकार का विरोध न होकर, एक ही विचार एवं प्रवृत्ति से सम्बन्धित है। जिसे नयी कविता के नाम से अभिहित किया गया। नयी कविता में तब मानव एक ओर तो युग की समस्त विषमता को भोग रहा है, दूसरी ओर इन विषमताओं के बीच वह अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है।

प्रपञ्चवाद के सम्बन्ध में न केनवादियों का कथन है, 'सप्तकों में जिस काव्य की सैद्धान्तिक व्याख्या हुई वह प्रयोगशील की थी, प्रयोगवाद की नहीं, और अगर हिन्दी के सुधी समीक्षक अंग्रेज की उपर्युक्त व्याख्या को प्रयोगवाद की व्याख्या न मान लेते तो 'प्रयोग-दान-सूत्री' के प्रकाशन की आवश्यकता न होती।' 2 'प्रयोगवादी' प्रयोग को महत्त्व न देकर उस सत्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं जो प्रयोग क्रम में मिलता है। उन्हीं विन्दुओं पर न केनवादी यह स्पष्ट करते हैं कि प्रपञ्चवाद ही असली प्रयोगवाद है। 'तार-सप्तक' के कवि तो प्रयोगशील हैं। जैसा कि उन्होंने अपने 'दादा-सूत्री घोषणा' सूत्र 6 में स्पष्ट कहा है।

प्रपञ्चवाद का प्रास्य आचार्य नमिन विलोचन शर्मा की 'विभाषान' कविता है :

1. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : आधुनिक कविता का मूल्यांकन : पृष्ठ 65

2. न केन [1] : पृष्ठ 114

सड़क का यकृत जराब था,  
उसे सुखंडी हो गई थी :  
रूँठ ।

x x x x

किसी रास्ते के मंथार में  
रिश्ते पर संतरणा करते हुए  
पहुँच अफसोस हुआ :  
जिन और बुद्धि और रंग और केनवत  
नहीं थे पास में  
नहीं तो कर्ष सँकटों बनाता  
पलते - पलते रास्ते ।'' ।

जिसकी परिपुष्टि रणधीर सिन्हा करते हैं, '' राजपथ के डोलाहन हीन  
वातावरण और सन्नाटे का चित्र आधुनिकता से कितना प्रभावित है यह चित्र  
की मार्मिकता से व्यंजित है। इस चित्र के माध्यम से जिस प्रकार की क्लृप्त  
उदासीनता और एक दर्दनाक अवस्था का स्म उभर कर सामने आता है, वह नये ढंग  
से सोचने के लिए आस्वादक को बाध्य कर देता है।''<sup>2</sup> वास्तुतः इस कविता  
का शिल्प नूतन है। नये- नये शब्दों का भी प्रयोग है। किन्तु कुछ शब्द  
उखरते हैं, परन्तु शब्द शिल्प के लिए नकेनवादियों का चयन है, '' नकेनवादी  
प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छंद का स्वयं निर्माता है।''<sup>3</sup> इसीलिए प्रपञ्चवादी  
कविता साधारण जन के लिए दुर्गम है। शिष्ट-वर्ग के लिए स्फूर्तिदायक है।  
' साधारण पाठकों को देखकर साहित्य बने तो संकट आ जाए। उच्च संगीत के  
साधारणीकरण का जर्द सिनेमा गीत होगा। उच्च चित्र के साधारणीकरण का  
अर्थ फोटोग्राफी होगा। कविता के साधारणीकरण का परिणाम तब कुछ ऐसा ही  
होगा।''<sup>4</sup>

1. नकेन §18 : पृष्ठ 15-16

2. सं० श्रीकान्त वर्मा तथा कविता : कृति-सितम्बर-अक्टूबर 1961: पृष्ठ 95

3. नकेन §18 : पृष्ठ 115

4. नकेन §18 : पृष्ठ 139

नयेनवादी लेखित की इस बात पर विश्वास करते हैं कि कविता समझना उतना ही कठिन होना चाहिए जितना कविता लिखना। अतः कविता समझने के लिए बौद्धिकता अनिवार्य है जो एक परम्परा से मिलती है। परम्परा के अभाव में कविता को समझना असंभव कार्य है। वस्तुतः प्रपञ्चवादी प्रयोग को इसीलिए 'साध्य' कहते हैं। जबकि प्रयोगवादी प्रयोग को 'साधन' ही मान कर चलते हैं। अतः 'साधन' होने के कारण कविता मुक्त होती है, स्वच्छन्द नहीं। दूसरा विमर्श प्रपञ्चवादी और प्रयोगवादी कवियों में यह है कि प्रयोगवादी साधारणीकरण की क्रिया को महत्व नहीं देते। उनके अनुसार पाठक को भी कविता समझने में उतनी ही मेहनत करनी चाहिए जितनी कि कवि कविता रचने में करता है। इसीलिए प्रपञ्चवादी काव्य-सृजना को एक विशिष्ट दृष्टिकोण देते हैं। 'प्रयोग' को समस्त काव्य चेतना का लक्ष्य मानते हैं।

मुक्त-आत्म प्रपञ्चवादियों की दी हुई एक प्रवृत्ति है। इसमें नयेनवादी उल्टी हुई संवेदनाओं को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत करते हैं। यह धारा टी०एस० इलियट से प्रभावित होते हुए आधुनिक जीवन की प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करती है। इसमें कवि अतीत और वर्तमान को एक ही संदर्भ में प्रेषित करता है। आचार्य नलिन विजोचन शर्मा ने मुक्त-आत्म का प्रयोग वैचित्र्य उपमानों के लिए किया। नयेनवादियों ने हृष्याव्यपदीय प्रणाली की खोज की। प्रयोगवादियों की तरह प्रपञ्चवादियों ने व्यक्तित्ववाद को महत्वपूर्ण माना है। कवि समाज के प्रति एक अलग अपनी अस्मिता बनाना चाहता है।

सारतया यह कहा जा सकता है कि 'प्रपञ्चवादियों ने 'प्रयोग' के द्वारा अपनी धारा विकसित की। जैसे कि प्रयोगवाद ने की। परन्तु इस धारा को एक ने 'साध्य' माना और दूसरे ने 'साधन'। अतः नयी कविता के घेरे में तो यह धारा सिमट ही जाती है। क्योंकि 'नयी कविता' किसी एक धारा का नाम नहीं है, वह तो प्रयोगवाद एवं उसके बाद से विकसित सभी धाराओं का नाम ही 'नयी कविता' है। इस प्रकार 'प्रयोगवाद' या 'प्रपञ्चवाद' और नयी कविता में समयानुसार नामों का ही अन्तर है। और इनकी जो प्रवृत्तियाँ हैं,

उसका विकसित रूप 'नयी कविता' में मिलता है। 'तार-सप्तक' में जो दबी हुई प्रवृत्तियाँ थी, वह 'नयी कविता' में स्वाभाविक रूप से उभरीं। 'नयी कविता' का शिल्प पक्ष कुछ कमजोर है परन्तु वस्तु पक्ष उतना ही विकसित एवं मजबूत है।

'व्यक्ति की खोज के नये आधुनिक मानवतावादी आन्दोलन की प्रयोगवाद का नाम कुछ दैसे व्यंग्यात्मक भाव से दिया गया जिससे छायावाद को वह नाम दिया गया था। स्वयं इस प्रवृत्ति के कवि अपनी कविता 'नयी कविता' को अभिधा देना पसंद करते हैं।''<sup>1</sup>

### प्रयोगवाद, नूतन और नयी कविता : साम्य वैजय

'तार-सप्तक' प्रयोगवाद की स्थापना करता है। वस्तुतः अज्ञेय' जी प्रयोगवाद की स्थापना नहीं करना चाहते थे। जिस प्रकार मजाक-मजाक में छायावाद नाम पड़ा उसी प्रकार 'तार-सप्तक' में 'अज्ञेय' जी के वक्तव्य में प्रयोगवाद का उद्गार फहराया। 'तार-सप्तक' के प्रकाशन के लिए 'अज्ञेय' जी का मकसद सिर्फ गुप्तनाम कवियों को प्रकाशन में लाना था, परन्तु सिर्फ एक वाक्य ने एक वाद ने एक वाद का रूप ले लिया। 'अज्ञेय' जी ने अपनी पुस्तक 'कन्टेम्पोरेरी इण्डियन लिटरेचर' में 'प्रयोग' शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी है, 'एक नये मानवीय आधुनिक आंदोलन के शोध का नाम प्रयोगवाद है। यह नाम बहुत प्रिय और आंदोलनकारी नहीं था। यह नाम छायावाद के तुरन्तवाद आया।''<sup>2</sup> वस्तुतः नयी दिशाओं का अन्वेषण करने वाली कविता का नाम ही 'प्रयोगवाद' पड़ा। वे तथ्य जो केवल संस्कारवाद छुके थे उनसे हटकर यथार्थ और जीवन के महत्व को ध्येय स्तर पर समझने की चेष्टा प्रयोगवाद की प्रवृत्ति है। अतः इसमें विषय के साथ-साथ इसका शिल्प स्वयं ही विकसित होता है।

'प्रयोगवाद' के संक्षेप में 'अज्ञेय' जी का कथन है, '' जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं, वे यह भूल

1. अज्ञेय : कन्टेम्पोरेरी इण्डियन लिटरेचर : पृष्ठ 95

2. अज्ञेय : आज का भारतीय साहित्य : पृष्ठ 403



जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिए, कोई ऐसी पोटली बाँधकर  
 अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर तिर पर साद से और चल निकले।<sup>1</sup>  
 प्रयोग की व्याख्या करते हुए 'अधेय' जी का पुनः कथन है 'प्रयोग' अपने आपमें  
 छूट नहीं दे, वह साधन है। और दोहरा साधन है क्योंकि एक तो वह उस सत्य  
 को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेरणा की क्रिया  
 को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि  
 अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त  
 कर सकता है।<sup>2</sup> डा० नगेन्द्र का कथन, 'प्रगतिवाद के सामाजिक यथार्थ के  
 विपरीत वैयक्तिक यथार्थ को आत्मसात् करके यह काव्य-धारा अग्रसर हुई है। जिसका  
 प्रथम प्रमाण तो मात्र शिल्प के रूप में प्रयोग स्तर पर हुआ। और प्रयोगवादी  
 कवियों ने काव्य की धरतु और शैली शिल्प को नवीन प्रयोगों द्वारा आज के अनेक  
 रूप, अधिक, फिर प्रयोगशील जीवन के उपयुक्त बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया।<sup>3</sup>  
 डा० अजय सिंह का अभिमत है, "प्रयोगवादी कविता में नूतन सौन्दर्य की व्याख्या  
 की गई है। पद्यवाच्य सौन्दर्य-मूल्य और जीवन दृष्टियाँ इस काव्यधारा में  
 समाहित हैं। इस काव्यधारा में नये मूल्यों के अन्वेषण के साथ ही नये सौन्दर्य  
 बोध के स्तरों की सृष्टि भी की गयी है। अतएव प्रयोगवादी काव्य सौन्दर्य  
 बोध के नये धरातलों की स्पर्श तो करता ही है, साथ ही उनकी सृष्टि भी  
 करता है। 'तार-सप्तक' का प्रकाशन जिस काल में हुआ उस काल की काव्य  
 मान्यताएँ परम्परागत थीं। लेकिन 'तार-सप्तक' में जिन कवियों की कविताओं  
 को संकलित किया गया है उनकी कृतियों में सम्पूर्णतः जीवन-दृष्टि और यथार्थ  
 सौन्दर्य-दृष्टि के समन्वय का आभास भी होता है। अतएव यथार्थ सत्य को अनाद्युत  
 करते हुए नये सौन्दर्य मूल्यों की व्याख्याही प्रयोगशील कविता में की गयी है।<sup>4</sup>

1. 1.2. सं० 'अधेय' : दूसरा सप्तक : पृ० 6-7

3. डा० नगेन्द्र : आस्था के घरण पृ० 273

4. डा० अजय सिंह : आधुनिक काव्य की स्पष्टतावादी प्रवृत्तियाँ : पृ० 182

वस्तुतः प्रयोगवादी कवि जो दूसरों को कुछ देना चाहता है वह कवि के व्यक्तित्व का, मानव मन का है जिसे अपनी अद्वितीयता की मुहर से वेदागिरि बिना अखण्डित-भुरखित भाव से समष्टि तक पहुँचाना चाहता है। इस प्रकार वह हर सुक्ष्म से सुक्ष्म वस्तु का वर्णन उतनी ही सहजता से करता है जितनी किसी बड़ी महत्वपूर्ण वस्तु का करता है। डा० नामवर सिंह का मत है, " प्रयोगवादी कवि छायावादी कविता के उदात्त स्थान पर साधारण एवं छोटे-छोटे चीजों को भी अंकित करता है जैसे 'चाय की प्याली' 'मकड़ी का जाला,' 'घाँस की दूली हुई टली,' 'रिरियाता कुत्ता,' 'बाँदनी में तीन टर्नियों पर खड़ा गदहा' आदि कविताएँ ली जा सकती हैं।" १

अनेक दिशाओं का अन्वेषण परम्परागत भाषा, रूपों, उपमाओं को नये अर्थ देने वाला समय ही प्रयोगवाद है। अतः इस युग के कवि ने विज्ञान द्वारा उद्घाटित सृष्टि के स्पन्दनहीन क्षेत्रों से प्राप्त वच्चों से रागात्मक परिचायक स्थापित किया। प्रयोगवादी कविता में यथार्थ जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि व्यक्तित्व को कर्म-बिहारीता का षेग है जो सम्पूर्ण व्यक्ति के सम्बन्ध की ओर ले जाती है। वस्तुतः प्रयोगवादी कवि अधिनायकवाद और वांछितता के उदय द्वारा उपस्थित संकट के निरसन के लिए एक रचनात्मक दृष्टिकोण की खोज करते हुए देखा गया है, जिसका आधार मानव व्यक्तित्व और मनुष्य के स्वातन्त्र्य एवं आत्मनिर्माण की क्षमता था।

' प्रयोगवाद मूलतः व्यक्तिवादी चेतना का विद्रोह था। जिसकी प्रमुख सामयिक और दार्शनिक नहीं, अपितु भाषागत अभिव्यक्ति अथवा नूतन शैली स्थापन की थी, जिसका कारण व्यक्तिवाद था। प्रयोगवादी कविता के मूलोद्गम में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का ज्वार था, इसलिये जीवन और उसी के अनुबन्ध को प्रायः व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से देखा गया है।' २

वस्तुतः प्रयोगवादी कविता का अर्थ यह नहीं कि वह शिथिल संबंधी

1. डा० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : पृ० 148

2. डा० अजय सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ : पृ० 188

बाध्य देखा-

रुनेह से आनिप्त

बीज के मधितव्य से उत्पुल्ल

बद्ध

वासना के पंछ-सी फेली हुई थी

धारयिनी सत्य - सी निर्बन्ध, नंगी

औं समर्थित।'' ।

इस संदर्भ में डा० अजयसिंह का कथन है, '' काम-कुंठाओं की ग्रंथियों का चित्रण करने और प्रेमान की विकृतियों को चेतन आधार देने का सबसे अधिक श्रेय 'अधेय' को है। आगे के कवियों ने तो यौन-भावना का घोर नग्न और निरावरण चित्रण प्रारम्भ कर दिया। आत्मन, बुद्धन का मांसित प्रयोग हुआ तथा सुख और सौन्दर्य का प्रतीक जघिों के बीच का सौन्दर्य माना गया। यौन-प्रतीकों में यौन की सुख-समृद्धि का केन्द्र खोज पाने वाले अन्तर चेतन के कवियों ने 'सेव स' को मुखरित किया और इस तरह कविता में फ्रायड के यौनवाद को जीवन्त बनाया। '' 2

प्रयोगवाद के घोषणा-पत्र के प्रारम्भ में नरेंद्र वादियों ने कहा :

1. प्रयोगवाद भाव और व्यंजन का स्थापत्य है।
2. प्रयोगवाद सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है, उसके लिए शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं।
3. वह महान पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को निष्प्राण मानता है।
4. वह दुरारों से भी अपना अनुकरण वर्जित समझता है।
5. उसे मुक्त काव्य नहीं स्वच्छन्द काव्य की स्थिति अभीष्ट है।
6. प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवाद को साध्य।
7. प्रयोगवाद को इच्छाव्यपदीय प्रणाली है।
8. उसके लिए जीवन और लोण उच्चे माल की खान हैं।

\*सं सं० 'अधेय' : तार-सप्तक । दि० सं० । : पृ० 282-88

2. डा० अजय सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ : पृ० 187

10. प्रपञ्चवाद दृष्टिकोण का अनुसंधान है।
11. प्रपञ्चवाद मानता है कि पद्य में उत्कृष्ट केन्द्रव होता है और यही गद्य और पद्य में अन्तर है।
12. प्रपञ्चवाद मानता है कि चीजों का एक मात्र सही नाम होता है।<sup>1</sup>

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद के विभिन्न कवि मूलतः प्रगतिशील और प्रच्छन्न छायावादी थे। वह 'वादी' नहीं थे। तिका खंडन उन्होंने स्वयं कई बार किया। लेकिन कुछ आलोचकों ने बिना कुछ-कुछ के उन्हें 'प्रयोगवादी' करार दे दिया। इस प्रकार जब जयदंस्ती 'प्रयोगवाद' उन कवियों के ऊपर थोपा गया तो उन्होंने निर्धारित रूप से उसे अपनी सहमति दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि जो वास्तविक रूप में 'प्रयोगवादी' थे उन्होंने अपने 'वाद' का नाम 'प्रपञ्चवाद' रख लिया। 'नकेन'<sup>2</sup> 'स्पशा'<sup>3</sup> में यह व्यक्त किया गया कि, 'प्रयोगवाद का वास्तविक आरम्भ सन् 1936-38 ई० में मिली गयी। नकिन जी की कविताओं से ज्ञात होता है, जिसमें से कुछ ही पत्र-सम्पादकों के हलक के नीचे उतर सकीं थी।'<sup>2</sup> इस प्रकार प्रयोगवादियों और नकेनवादियों में सैद्धान्तिक भिन्नता थी। मूल तत्त्व दोनों के एक ही थे। अन्तर सिर्फ इतना था कि नकेनवादी 'प्रयोग' को 'साध्य' मान रहे थे और प्रयोगवादी 'प्रयोग' को 'साधन'।

'प्रयोगवादी' कवि मानता है कि कविता की सच्ची प्रेरणा वस्तुस्थिति से मिलती है, जबकि वस्तु-स्थिति के संश्लेषण।

अथवा साहित्यकार एक नये दृष्टि-विन्दु से देखता है। x x x ऐसा देखना अनिवार्यतः निस्संग देखना है।'<sup>3</sup> प्रपञ्चवाद के संदर्भ में प्रो० केसरी कुमार का कथन है, 'प्रपञ्चवाद मानता है कि कविता की वास्तविक प्रेरणा-वस्तु-स्थिति से मिलती है। वस्तु द्रष्टा के भीतर भाव-छवियाँ उत्पन्न करती हैं।

उन छवियों के साथ द्रष्टा की असंगतियाँ मिलकर एक दृष्टि विन्दु उत्पन्न करती हैं और जब उस दृष्टि-विन्दु से कवि वस्तु को देखता है तब वह शक्ति

1. सं० लक्ष्मी नारायण सिंह सुधांशु : अवन्तिका-जनवरी 1954 । में प्रो० केसरी कुमार का लेख : प्रपञ्चवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि । पृ० 252
2. नकेन [1] : पृ० 113
3. सं० शिवचन्द्र शर्मा : पाटल - अप्रैल 1953 : पृ० 11

के एक नये संग्रहेण के रूप में दिखाई पड़ती है। उस प्रकार उचितता में सदा ही पुनर्निर्माण हुआ करता है। प्रपञ्चाद तरह-तरह से वस्तु-संग्रहेण की देवता है और उसे नई संगतियों में देव तन्त्र के कारण ही प्रपञ्चादी कवि अपने आधार के लिए नैतिक स्वीकृति पाता है। स्वीकृत संगतियाँ, व्यवहार में धिक्-पिट जाने के कारण, ध्वंश नहीं होतीं बल्कि वे स्वीकृत और निरपेक्ष अनुभूत होती हैं, इसलिए नई संगतियों की उचितताओं को शब्दों में निर्मित करते चलना प्रपञ्चाद का दृष्टिकोण होता है।<sup>1</sup> प्रपञ्चाद के तन्त्र में प्रो० केतरी कुमार का पुनः ध्यान है, 'न केन के प्रयोगवाद के चरित्र की परिभाषा क्या है ? प्रयोग का वाद होता है कि नहीं ? हमारा ? न केन ? कदना या प्रयोग के लिये कवि का कोई कर्म नहीं है। प्रयोग का कोई दर्शन नहीं होगा तो उसकी क्या क्या होगी ? वो कहते हैं ? प्रयोगवादी ? प्रयोग साध्य है साध्य नहीं। हमारा ? न केनवादियों का ? सत्य एक दृष्टिकोण है उस दृष्टिकोण का संधान हम करते हैं। अगर हम किसी वस्तु की ओर लें तो सत्य की ओर नहीं होगी। वो गुरु है, ग्रन्थ है परम्परा है लोच में सदायक नहीं है। यही एक मौलिक अन्तर है। प्रपञ्चाद का अर्थ उत्कृष्ट है। लेकिन यह हमारी आकांक्षा हो सकती है। लेकिन हमने तो प्रयोगवादी ही कहा लेकिन गलत धारणाएँ पैदा की जाने लगीं। लेकिन प्रगति और प्रयोग शब्द जब पिट गये तो उसकी जगह प्रपञ्चाद आया।<sup>2</sup> वस्तुतः 'प्रपञ्चाद' की काव्य सम्बन्धी धारणा प्रांस के प्रतीकवादियों तथा विम्ववादियों और हंगेरी के एमिल्ले जैसे अत्यन्तिकावादिशों से प्रभावित है। और प्रयोगवादी भी एमिल्ले, स्वररा पाउण्ड और सार्स जैसे दार्शनिकों से प्रभावित है। अतः ये कवि एक साथ प्रगतिवादी हैं, अन्तिमवादी हैं, अत्यन्तिकावादी हैं और नवसम्यकन्दतावादी भी हैं। प्रपञ्चादी एक विशिष्ट-योग्यता-वादी हैं, अपनी मान्यताओं को स्पष्ट रूप से सामने रखने के लिए प्रस्तुत हैं। जबकि प्रयोगवादी तथा नवी उचितता के अन्तर्गत स्वीकार किए जाने वाले कवियों को अपने-अपने अनुभवों, विचारों तथा विशेषकर रचना प्रक्रिया के आधार पर उचितता सम्बन्धी मान्यताओं पर विचार करने की छूट रही है।<sup>3</sup>

1. सं० लक्ष्मी नारायण सिंह दुप्राणु : अवन्तिता, : जनवरी 1954 : पृ० 292-93

2. प्रो० केतरी कुमार से वार्ता : दिनांक 1.9.87

3. प्रो० रघुंका साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य : पृ० 214

जब कविता के समीक्षक विद्वान् 'प्रयोगवाद' शब्द को लेकर आलाचनाएँ कर रहे थे, तब 'अधेय' ने उस निरर्थक शब्द को छोड़ी चतुराई से अपनी पुस्तक 'कन्टेम्पोरेरी इण्डियन लिटरेचर' में 'नयी कविता' के रूप में बदल दिया।<sup>1</sup>

वस्तुतः जब विशिष्ट काव्य परिस्थितियाँ लुप्त और निष्प्राणा हो जाती हैं तब कवि उन लक्ष्यों का परिष्कार करता है। हिन्दी कविता में उत्तरकायावादी काल में यही नव-निर्माण की स्थिति उत्पन्न हुई। किन्तु उस काल के कवियों के पास कोई आशय नहीं था, और न कोई परम्परापुक्त संस्कार ही थे, क्योंकि परम्पराओं से विद्रोह करके वह उनके छट छुके थे। अतः उनके सम्मुख एक ही विकल्प था कि वह नये प्रयोगों के एक नये साहित्य का सूजन करें। इस प्रकार उन्होंने पाश्चात्य साहित्यकारों का रास्ता अपनाया। परन्तु वह अनुकूलि वाली प्रवृत्ति शीघ्र ही आलोचकों के समक्ष प्रकट हो गयी। तब इन नये साहित्यकारों ने अपनी रवार्थ हेतु इस प्रयोगवादी धारा का नाम परिवर्तन करना उचित समझा और इस तरह 'प्रयोगवाद' 'नयी कविता' में परिवर्तित हो गया। 'अधेय' का कथन है, 'नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयास माना है सम्बन्ध रहता है। निस्तन्देह जिसे अब 'नयी कविता' की संज्ञा दी जाती है वह भाषा - सम्बन्धी प्रयोगशीलता की वाद की सीमा तक नहीं ले गयी है - बल्कि ऐसा करने से अनुचित भी मानती रही है।'<sup>2</sup>

वस्तुतः 'नयी कविता' प्रयोगवाद की विकसित, परिष्कृत अग्रिम काव्य प्रवृत्ति है। अतः 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' में दूर तक साम्य है। सज्जमानव की प्रतिष्ठा, अनास्था, निराशा, वेदना, कुंठा, घृण, क्षमा, पीड़ावाद आदि प्रवृत्तियाँ 'प्रयोगवाद' में परिलक्षित होती हैं, उसी प्रकार 'नयी कविता' में भी द्रष्टव्य हैं। प्रयोगवाद, में 'टेक्नीक' पर विशेष जोर दिया गया। 'नयी-कविता' नितांत आधुनिक है। आधुनिकता उसकी पहचान है, परच है। सामान्य जन-जीवन के प्रति विशेष आसक्ति है। मुर्तियों की संस्कृति के प्रति आक्रोश है। नयी कविता बौद्धिक है। तथा वह 'नव कविता' है। इसमें

1. अधेय : कन्टेम्पोरेरी इण्डियन लिटरेचर : पृष्ठ 96

2. सं० अधेय तीसरा सप्तक । पृष्ठ सं० : पृष्ठ 7

जीवन की स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ है।" नयी कविता उस प्रकार की आधुनिक और की, रीतिरिक्त स्वप्नशीलता की, शान्त-प्रिय आत्म-रसमय आध्यात्मिकता की, कविता नहीं है, बल्कि कि पुराने योमैण्टिक युग की हुआ करती थी। वह मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की, परमम तिर्यकता की कविता है। इसीलिए उसमें कहीं आत्मालोचन है, तो कहीं वाहन स्थिति - परिस्थिति और समाज पर व्यंग्य है, तो कहीं आर्थिक विषयवाची से उत्पन्न कल्याण-भाव है, तो कहीं ग्लानि है, कहीं वैकल्पिक नित्य विधोम है, तो कहीं जीवन-आलोचना।" <sup>1</sup> नयी कविता के संदर्भ में डा० अजय सिंह का कथन है, " नयी कविता में शिल्पगत वैशिष्ट्य एवं अस्तित्ववादी दर्शन को गहरी अभिव्यंजना के फलस्वरूप प्रयोगवाद से भिन्न इसका नामकरण होता है।" <sup>2</sup> अस्तित्ववादी दर्शन में भी स्वः का बोध है यह भी नयी कविता की पहचान है। नयी कविता आधुनिक जीवन मूल्यों का प्रकाश करती है। जिसमें अस्तित्ववाद मनोविज्ञानवाद की तरह है, जो नयी कविता में दिखायी पड़ती है। नयी कविता आधुनिक भावबोध की कविता इसलिए है कि नयी कविता के कवि उन प्रतीकों, चिह्नों, एवं मिथकों के प्रयोग करते हैं जो यथार्थ जीवन की उपज है और जिनका सम्बन्ध उस वैयक्तिक भाव-बोध से मनोविज्ञानिक व यथार्थवादी धेतना से सिद्ध है

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद यदि प्रयोगों की प्रारम्भिक अवस्था है तो नयी कविता उसकी विकसित स्थिति है। दोनों का लक्ष्य एवं प्रवृत्तियाँ भी अभिन्न हैं। जो प्रयोगवाद के प्रमुख कवि हैं वे ही नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर भी हैं। प्रयोगवाद की विकसित रूप ही नयी कविता है।

1. ग्लानन माधव मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्मसंघर्ष : पृ 0137

2. डा० अजयसिंह : नवसंस्कृततावाद : पृ 120

**ଷष्ठः अध्यायः :**

**नयी उचिता जी प्रमुख प्रवृत्तियाँ**

**आधुनिकता की**

**मनोविश्लेषणावाद**

**पथार्थवाद**

**सामाजिक चेतना**

**नवमानववाद**

**अस्तित्ववाद**

**नवसंस्कृतवाद**

**उत्थापन**



## बौद्ध अध्याय

### नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

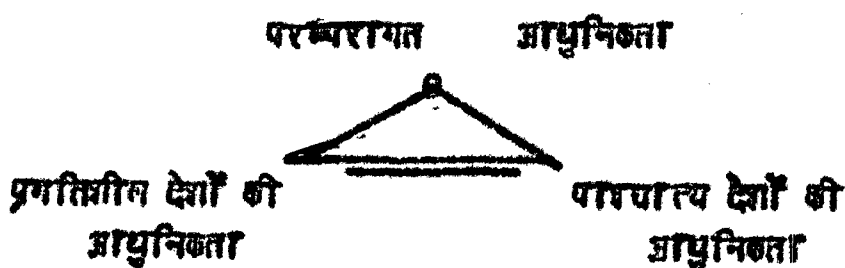
#### आधुनिकता बोध :

आधुनिकता नयी कविता की पहचान है। इसी अवधारणा के द्वारा नयी कविता अपनी अलग पहचान बनाती है। वस्तुतः आधुनिकता की अस्मिता मनुष्य की चेतना से है। यही चेतना मनुष्य में छहलौकिकता को उकसाती है। फलतः मानव मूल्यों के हन्द की प्रक्रिया में कीड़े हुए बिम्ब उभरते हैं। इन हन्दों की प्रक्रियायें ही आधुनिकता उपजती है। मानव को मानव रूप में स्वीकार करने की दृष्टि एवं उसका स्वाभिमान, आधुनिकता का ही दायित्व है। इसी से समतामयिकता का बोध उत्पन्न होता है। अतः आधुनिकता के संदर्भ में प्रगतिशीलता आवश्यक है। और प्रगतिशीलता में भी मानव अपने विचारों को जड़पत् न करके उत्तरोत्तर विकासशील रहे। इसी प्रकार आधुनिकता का व्यापक अर्थ विकसित होता है।

वस्तुतः आधुनिकता मानव सापेक्षता के उन सभी स्थलों को स्वीकारती है जहाँ ऐतिकता, मर्यादा और आचरण को एक नया आयाम मिलता है। यह नया आयाम वैज्ञानिक दृष्टि को विकसित करता है। आधुनिकता एक सत्य परिप्रेक्ष्य है, जो विकसित मानव-मूल्यों को विवेक-शीलता भी प्रदान करता है। आज का मानव वस्तुजगत एवं माध्यमगत को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से नहीं देखता बल्कि वह इन दोनों को वर्तमान और समतामयिकता से सम्बद्ध मानता है। फलतः आधुनिकता अतीत की लदियों के विरुद्ध प्रस्तुत होकर, वर्तमान को समतामयिकता को नयी अभिव्यक्ति देती है। आधुनिकता का कार्य

केवल बौद्धिकता एवं वैज्ञानिक-परस्ती या वैज्ञानिक उपलब्धि मात्र नहीं है। वरन् इसका दायित्व यह भी है कि मानव अपने देश-काल की प्रतिष्ठिताओं को ग्रहण करके उसका दायित्व-निर्वाह भी करे।

वस्तुतः आधुनिकता परम्परागत दृष्टिकोण प्रगतिशीलता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लेकर चलती है। 'रूम के औचित्य को आधुनिकता स्वीकार करती है। छिती भी स्थिति में रूम और व्यवस्था को देखना चाहिए और उनके अनुस्यू पर आगे बढ़ने का प्रयास करना, आधुनिकता को वैज्ञानिक दृष्टि देना विशेष महत्त्व का है।' आधुनिकता की सबसे बड़ी पहचान है कि वह समस्त विकास और गति का केन्द्र बिन्दु और उससे मिलने वाली उसकी सफलता को मानव को ही देती है। मानवीय क्रिया-कलाप से परे वह छिती भी उपलब्धि को नहीं मानती। वैज्ञानिक उपलब्धि के सुनहरे त्व के साथ-साथ आधुनिकता ने चिस्कोट में धूम-धूसरित मानवता की पैंगुता का अहसास भी अवगत कराया। कायड ने मानव की आन्तरिकता को उजागर किया है तो मार्क्स ने बाह्य जगत के यथार्थ से अवगत कराया है। इन सबने आधुनिकता का समन्वित त्व प्रस्तुत किया है। मानवी दृष्टि को विकसित आयामों के परिप्रेक्ष्य में उभारा है। जब इन परिस्थितियों में मनुज का आत्मविश्वास जाग्रत होता है तभी आधुनिकता का जन्म होता है। आधुनिकता के संदर्भ में डॉ० अब्ब सिंह का कथन है, 'आधुनिकता के दो विरोधी आदर्श हमारे यहाँ अपनाये गये हैं। ये आदर्श प्रगतिशील एवं पारंपार्य देशों के आदर्श कहे जा सकते हैं। इन दोनों आदर्शों अथवा दृष्टिकोणों का इन्द ही आधुनिक हिन्दी कविता में त्रिकोणात्मक त्व नेता है :



पुनरन्वेषण की समस्त प्रक्रिया, मौक्तिक-यथार्थ को भोगने की क्षमता और वर्तमान और भविष्य के बीच निष्कासित जैसी मनः स्थिति आधुनिकता के अर्थ-सन्दर्भ है।'' 1

आधुनिकता मूलतः पुनर्निर्माण-युग है। नितान्त समतामयिकता का बोध, छात्र के यथार्थ के प्रति दायित्व, व्यक्ति की पारस्परिक आत्मनिष्ठा के प्रति आस्था, विवेक की संगति और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के सह-सम्बन्ध को विकसित करने की क्रियाशीलता में ही आधुनिकता परिलक्षित होती है।'' 2

वस्तुतः आधुनिकता पूरे युग को आत्मसात् करती है जबकि समतामयिकता देश-काल की परिस्थिति के साथ-साथ, छात्र-छात्रा की परिस्थितिनुकूल बिना किसी पूर्वाग्रह के सहज-भाव से व्यक्त होती है। लक्ष्मीकांत वर्मा का कथन है, '' आधुनिकता युग विशेष का गुण है। समतामयिकता स्थिति विशेष का आयाम है। आधुनिकता एक ऐतिहासिक विशिष्टता है जो हमें देश-काल को बोध देती है, समतामयिकता देश-काल के बोध के साथ सक्रियता की भी पुष्टि करती है। जिस भी देश-काल में हम हैं उसकी सीमारें और विस्तार को हम समतामयिकता के यथार्थ द्वारा अनुभव करते हैं। जीवन के इन्हीं संदर्भों में आधुनिकता के परिवेश और समतामयिकता के आयाम में हमें अपनी छुट्टि और अपने दायित्व का बोध होता है।'' 3 अतः समतामयिकता तो स्थिति विशेष को ही प्रतिबिम्बित करती है। स्थिति-विशेष में उपजने के कारण समतामयिकता का सम्बन्ध यथार्थ से जुड़ जाता है। यथार्थता से जुड़ पाने के कारण मानवीय संवेदना भी उसमें परिलक्षित होती है।

वस्तुतः नयी कविता में जो संवेदना, अनुभूति है वह समतामयिकता को भी दर्शाती है। समतामयिक स्तर पर नयी कविता का कवि उस चेतना के साथ जुड़ता है जहाँ मानव व्यक्तित्व उन्मिषित होकर टुकड़े-टुकड़े बिखरा

1. लक्ष्मीकांत वर्मा : नये प्रतिमान : पुराने निष्पन्न : पृष्ठ 41

2. लक्ष्मीकांत वर्मा : नये प्रतिमान : पुराने निष्पन्न : पृष्ठ 60

3. लक्ष्मीकांत वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान : पृष्ठ 265

विचारणा और तीसरी इन दोनों को मिलाकर भारतीय चिंतन की गतिशीलता । वस्तुतः यही विचारणा नयी समीक्षा कहलाती है। अमेरिकी विचारणा में साहित्यकारों ने आलोचनात्मक यथार्थवाद को अपनाया है उसको प्रमुखता दी है। और रूसी आलोचकों ने समाजवादी यथार्थवाद [सर्वहारा वर्ग] को प्रमुखता दी है। अतः भारतीय मनीषियों ने इन दोनों के चिंतन अर्थात् तनाव, कुंठा, संघर्ष, आस्था, अनास्था, आयरनी, मजदूर वर्ग, सर्वहारा वर्ग शोषित वर्ग एवं पीड़ित वर्ग, दोनों को मिलाकर चिंतन दिया है जिसे वर्तमान में नयी कविता और नयी आलोचना की संज्ञा मिलती है। वस्तुतः नयी कविता में भी इन्हीं तत्वों की प्रधानता है। अतः यही नयी कविता में आपुनिकता एवं समतामयिकता को परिलक्षित करता है।

नयी कविता दूसरा - सप्तक' तन् 1951 के प्रकारान के साथ शुरू होती है। 'नये पत्ते' तथा जगदीश गुप्त एवं रामस्वल्प चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले संकलन 'नयी कविता' में सर्व प्रथम अपनी प्रवृत्तियों के साथ उद्भव हुई। राजनैतिक क्षेत्र की क्रान्ति ही कविता में विद्यमान रहती है। आजादी से पहले जो क्रान्तिकारी विचारधारा गान्धी-नेहरू की थी, वही विचारधारा उस युग के कवियों एवं लेखकों में आयी। जब गान्धी जी के और नेहरू जी के आपसी मतभेद हो गये। वस्तुतः नयी कविता युग परिवर्तन की उपलब्धि है, समय के बदलाव के कारण जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं उन्हें एक विशेष प्रकार के ठहराव की जरूरत पड़ती है, उन्ही ठहराव में 'नयी कविता' विकसित हुई है।

'नयी कविता' की प्रवृत्ति में चार तत्व मुख्य हैं। प्रथम में नयी कविता का विश्वास आपुनिकता में है। दूसरे, नयी कविता जिस आपुनिकता को स्वीकार करती है, उसमें वर्जनाओं और कुण्ठाओं की अपेक्षा मुक्त यथार्थ का समर्थन है। तीसरे इस मुक्त यथार्थ का सामना वह विवेक के आधार पर करती है। चौथा यह कि, इन तीनों के साथ-साथ वह क्षण के दायित्व और नितान्त समतामयिकता के दायित्व को स्वीकार करती है। आपुनिकता का अर्थ विकृतियों से न होकर उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण से है जो विवेक के बल पर, प्रत्येक वस्तु के प्रति एक मानवीय दृष्टि, यथार्थ की दृष्टि

देती है। 'नयी कविता' की प्रक्रिया सांस्कृतिक अवसान, व्यक्तिवाद, ऐन्द्रिय मानसिकता है। यह संस्कृति भोग प्रधान होती है और उसके लिए अक्सर भौतिकवादी, संशयवादी, समोक्षात्मक, वैज्ञानिक और उपयोगितावादी ध्वनि प्रयुक्त होते हैं। इसमें विश्वास पर तर्क की विजय होती है। अतः नयी कविता के कवि का मूल उद्देश्य नई दुनिया की शक्तियों और आकृतियों की अभिव्यक्ति और एक नई संवेदना के आधुनिक आयाम को सम्प्रेषित करना था। नयी कविता का कवि अव्यवस्था, उद्वेग, अराजक और विद्रोह से सतर्क, कुंठित और आत्मनिक सत्य मानकर उसे समर्पित कवि और काव्य आधुनिकता का आदर्श नहीं है वरन् इस पुष्कलूमि में, इसे नकारते हुए नहीं, बल्कि इस पुष्कलूमि में, इसे ऐलते हुए भी इसका अतिश्रमण करने वाले चित्तगति में संगति अव्यवस्था में व्यवस्था और निरर्थकता में सार्थकता की छीज करते हुए नयी मानवता के उदयोपगम कवियों का काव्य आधुनिकता से परिपूर्ण है। अतः मानवतावादी सध्यों को प्राप्त करने वाली विवेकीय प्रवृत्तियों का समर्थन ही आधुनिकता है। वस्तुतः नयी कविता आधुनिक युग के सम्पूर्ण मनुष्य की समग्र अभिव्यक्ति की कोशिका है और यही आधुनिकता का लक्ष्य माना जा सकता है।'' सन् 37 के पश्चात विकास का द्वितीय चरण आरम्भ हुआ, जिसमें प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता को विभिन्न प्रक्रियाओं के मार्ग से आधुनिकता का भाव-बोध तथा अन्तर्मूल्यों का समावेश होना आरम्भ हुआ।''<sup>1</sup> इतिहास की आधुनिकता का सम्बन्ध वर्तमान-बोध से है, जबकि आज के साहित्य की आधुनिकता का सम्बन्ध कुछ विशेष प्रवृत्तियों और चेतना-सरणियों के संघात से है।''<sup>2</sup> मुक्तिबोध का कथन है, '' नयी कविता की आत्मा है आधुनिक भाव-बोध। आज का सुनिश्चित मनुष्य अपने परिवेश-परिस्थितियों से जो संवेदनात्मक प्रतिक्रियाये करता है,

1. गिरिजा कुमार माथुर : नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ: पृष्ठ 104

2. संतो डाँठो कुमार चिमल : आधुनिक हिन्दी साहित्य : पृष्ठ 209

के संवेदनात्मक प्रतिक्रियायें वा उनका सामान्यीकरण नयी कविता में प्रकट होता है। ऐसे सुविशिक्षित मनुष्य का दृष्टिकोण मध्ययुगीन धार्मिक दृष्टि से अनुप्राणित अथवा छायावादो मातृकता से परिपूर्ण कल्पना-प्रधान दृष्टिकोण नहीं होता। विज्ञान के इस युग में उसकी दृष्टि यथार्थोन्मुख तथा संवेदनात्मक होती है। यह यथार्थ सम्बन्धों को ग्रहण कर यथार्थ बोध द्वारा संवेदनात्मक प्रतिक्रियायें करता है।<sup>1</sup> नयी कविता और आधुनिकता के संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का कथन है, “नयी कवितामें आधुनिकता समग्र यथार्थवादो षट्सुओं के साथ अभिव्यंजित हुई है। आधुनिकता को एक नयी चेतना यहाँ गद्यात्मक अभिव्यंजना के रूप में दिखाई पड़ती है।<sup>2</sup> डॉ० इन्द्रनाथ मदान नयी कविता के कवियों में आधुनिकता पहचानते हुए कहते हैं, “उनकी कविताओं में धारतव को पहचान अस्मंगति, विसंगति, अवेनापन, वेगानापन, अनिश्चितता, नग्नता, भ्रष्ट, अजातीयता में उजागर होकर आधुनिकता का बोध कराती है। इस पहचान में कभी खीर का स्वर है तो कभी चिड़ का, कभी घोष का है तो कभी विस्फाता का, कभी छटपटाहट का है तो कभी अस्मंगति का, कभी योरिषत काहूँ तो कभी दृष्टत का, कभी पालाकी का है तो कभी मसखरेपन का, कभी प्राप्त का है तो कभी आछोश का, कभी अस्मंगति का है तो कभी विसंगति का, कभी व्यर्थता काहूँ तो कभी ध्यंग्य-आयरनी का, कभी अवनवीपन का है तो कभी वेगानेपन का। यह विविधता जीवान्त की कविता तक सीमित न होकर समकालीन कविता का मुद्रावरा बन गयी है जिसे अनेक रचनाओं में अँका जा सकता है और जिसके मूल में आधुनिकता का बोध है।<sup>3</sup>

“नयी कविता पौष्टिकता की छाया में विकसित रही है अतः उसमें एक अन्तरनिहित आलोचनात्मकता मिलती है : यथार्थ का आग्रह, सूक्ष्म ध्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एवं नये-नये अर्थों को प्दनितकरने वाला अभिनव

1. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : नयी कविता का आत्मसंदर्भ : पृ० 119

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्यच्चन्दतावाद : पृ० 119

3. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : आधुनिकता और कल्पनात्मक साहित्य : पृ० 44-45

प्रतीक-विधान, आदि जिन्हें नयी कविता को प्रमुख विशेषताएँ कहा जा सकता है, सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट प्रकट होता है। आनन्द की परिभाषा "१" यदि कहीं सर्वाधिक चरितार्थ होती है तो कदाचित् नयी कविता पर ही।" २ आधुनिकता के संदर्भ में लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथन है, "आधुनिक केवल कालगत § Chronological § भाव में ही नहीं, परन्तु चिंतन-विधि में, दृष्टिकोण में, विवेक में, जीवन की व्याख्या § Interpretation § में और ऐतिहासिक दायित्व में, आधुनिक इसलिए है कि वह आज के जीवन-सत्य को साथ के ही संदर्भ में देखने का प्रयास करता है। उससे तब न परम्परा की रूढ़ि है और न छायावाद का मिशन। उसकी दृष्टि अन्वेषण की है, परीक्षा की है तर्कगत अवलोकन § observation § और उसके आधार पर स्थापन (verification § और एक निष्कर्ष तक पहुँचने की है।" ३

वस्तुतः 'नयी कविता' की अधिकांश विषय-वस्तु, संवेदना और शिल्प आधुनिकता की पहचान है। आधुनिक भाव-बोध के संदर्भ में नयी कविता का कवि समतामयिकता को ही देख रहा है और अनुभव कर रहा है। नयी कविता को जो चेतना है वह जीवन-दृष्टि तन्त्र-बोध और मनु-मानव के जिस बोध को प्रस्तुत कर रही है, वह आधुनिकता की ही स्थिति है। यथार्थ की भाव भूमि और अज्ञानभूमि की संवेदना में नये कवियों ने जनमानस का प्रयोग करते आधुनिक बोध का परिचय दिया है। अतः क्या बोध की महत्ता को स्वीकार करते हुए नयी कविता के कवि इस बात को स्वीकारते हैं कि हम लोटे क्या ही भी मूल्यवान् पनाकर अपने जीवन को उद्देश्य पूर्ण बनाते हैं।

आधुनिकता के संदर्भ में युग का कथन है "आधुनिकता का मुख्य ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ ही है। पुरातन युग और ऐतिहासिक बोध

1.-2. डॉ० जगदीश गुप्त : नयी कविता : स्वल्प और समस्याएँ : से  
उद्धृत, पृ० 102

3. लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान : पृ० 64

को मानसिक स्तर पर भोगकर ही आधुनिकता को प्राप्त किया जा सकता है।<sup>1</sup> अतः आधुनिकता के लिए मानव सापेक्षता तथा नैतिक और आचरणिक क्षेत्र में परिवर्तित नवीन बिन्दुओं के प्रति सजगता आवश्यक है। इसी बिन्दु पर आधुनिकता नयी कविता में परिलक्षित होती है। जो नयी कविता की मूल चेतना है। आधुनिकता वर्तमान और समसामयिकता को लेकर चलती है। अतः आधुनिकता संक्रान्तिकालीन चेतना है। नयी कविता में दार्शनिक विचारधारा का रूप काफी उभरा है। भारत के मध्यवर्गीय जीवन में जो खेदपूर्ण अवसन दुःखमय स्थिति है, उसकी प्रधान मनोदशाओं का वर्णन है। वस्तुतः इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर नयी कविता में आधुनिक भाव-बोध परिलक्षित होता है।

नयी कविता में कविता का आकर्षण ही नहीं वरन् विकर्षण भी है। तनाव, संत्रास, आयरनी आदि प्रवृत्तियाँ इसमें विद्यमान हैं। अचेत व्यक्ति को चेतन करना उसको कुछ सोचने के लिए मजबूर कर देना इसका स्वभाव है। इस प्रकार नयी कविता रिझाती कम सताती अधिक है। इसी बिन्दु पर नयी कविता आधुनिक भाव-बोध लिए हुए है।

#### मनोविश्लेषणवाद :

मनोवैज्ञानिकता व्यक्ति के अन्तर्मन को उजागर करने का अधिकार है। जब किसी कलाकृति को समझने के लिए रुचि और बोध के साथ-साथ उसकी संदर्भ-ग्राह्यता भी समझना-जानना अनिवार्य है, वहीं उन मनोवैज्ञानिक आधारों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना भी अनिवार्य है। मनोवैज्ञानिकता आधुनिक युग में जीवन का विशिष्ट अंश बन गया है। जिससे व्यक्ति की मानसिकता का आभास सहजता से हो जाता है। प्रत्येक कलाकृति एवं काव्यानुभूति अधिकांश रूप में संवेदनात्मक स्मृति सम्पर्कित्मक अनुभूति और चेतन-अचेतन में व्याप्त अनुभव की परिणति होती है। अतः कलाकार की चेतन-अचेतन प्रवृत्ति जिस संदर्भ से अधिक प्रभावित होती है, वही उसकी कलाकृति

---

1. C.G. Jung : *Modern man in search of soul* : p.p. 289-89



एवं सौन्दर्यानुभूति काव्य में उभरती है, जो प्रवृत्ति उभरती है यही सत्य मनोवैज्ञानिकता उद्घाटित करती है। संसार के सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं। व्यक्तियों की इस भिन्नता को वैयक्तिक भिन्नता कहते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में ज़ाल्टन, कैटल ने व्यक्तित्व के इस तथ्य को उजागर किया, वहीं फ्रायड, एल्फ्रेड, एडलर, युंग ने भी इसका परीक्षण किया। फ्रायड ने व्यक्तित्व को तीन स्तरों में विभाजित किया, इड, ईगो एवं सुपर ईगो। इन तीनों क्रियाओं के अन्दर ही व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित रहता है। इन तीनों प्रवृत्तियों के अन्दर व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के अस्वस्थ कलाकार या साहित्यकार अंतः एवं बाह्य अन्तरविरोधों को समन्वित करके प्रस्तुति देता है।

कविता भी व्यक्ति मन के अचेतन, अन्तर्द्वन्द्व, तनाव की क्रिया है। कवि का अन्तः मन जब बाह्य-क्रिया से आक्रान्त हो उठता है तो रचना-क्रिया की तरफ मुखरित होता है। इस रचना प्रक्रिया में कलाकार या साहित्यकार की पूरी मानसिकता उभरती है। अतः रचना-प्रक्रिया में वैयक्तिक भूमिका का रहस्य कवि की सामाजिक चेतना में निहित होता है। कलाकार या साहित्यकार की यह रचना प्रस्तुति वैयक्तिक एवं सामूहिक अचेतन की प्रस्तुति होती है। मुक्तिबोध का कथन है, "साहित्यकार के मन में जब तक कि चेतन के किसी भाग का अवचेतन से आवश्यक सम्बन्ध न हो तब तक उस चेतन-शक्ति की साहित्यिक अभिव्यक्ति असंभव है। इसी अर्थ में यह ठीक है कि चेतन मन की जो सुखशील धारा होगी, उसके अनुकूल ही अवचेतन शक्तियाँ भी होंगी। चेतन मन की सुखशीलता अवचेतन शक्ति की प्राकृत-धारा के पिना असंभव है।" <sup>1</sup> मुक्तिबोध का पुनः कथन है, "आज की नयी कविता के भीतर जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया लक्षित होती है, वह निःसन्देह जायावादी या प्रगतिवादी अथवा उसके पूर्व की काव्य-प्रक्रिया से बिल्कुल भिन्न है। रोमांटिक कवियों की भाँति

आवेष्टायुक्त होकर आज का कवि भावों के अनायास, स्वच्छन्द अभिव्यक्ति प्रवाह में नहीं बहता। इसके विपरीत, वह किन्हीं अनुभव मानसिक प्रतिक्रियाओं को ही व्यक्त करता है। कभी वह इन प्रतिक्रियाओं की मानसिक स्पष्टता प्रस्तुत करता है। कभी वह उस स्पष्टता में रंग भर देता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह व्याकुलता या आवेश का अनुभव नहीं करता। होता यह है कि वह अपने आवेश या व्याकुलता को बाँधकर, नियंत्रित कर, ऊपर उठाकर, उसे ज्ञानात्मक संवेदन के स्तर में या संवेदनात्मक ज्ञान के स्तर में प्रस्तुत कर देता है।'' ।

‘पर्सनेलिटी’ व्यक्तित्व का अंग्रेजी अनुवाद है, जो लैटिन भाषा के ‘पर्सोना’ से किया गया है। प्रारम्भ में ‘पर्सोना’ का तात्पर्य वेध बदलने के वाह्य आवरण से किया जाता था। परन्तु रोमन काल में विशेष गुणयुक्त पात्र को ही ‘पर्सोना’ कहा जाने लगा। यही अर्थ मनोविज्ञान में प्रयुक्त होता है। जो व्यक्ति के स्व-गुणों की समग्रता में प्रयुक्त होता है। धस्तुतः व्यक्तित्व न तो केवल वाह्य आवरण से बनता है, और न केवल आन्तरिक गुणों से, यह तो वाह्य और आन्तरिक दोनों की समग्रता में निहित है। जो व्यक्ति परिवेश के अनुकूल व्यवहार करता है, वही उसका व्यक्तित्व है। अतः व्यक्तित्व व्यक्ति के समस्त स्व गुणों का संघनन है। वह व्यक्ति और परिवेश की परस्पर-क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है। व्यक्तित्व के आधार पर ही व्यक्ति के व्यवहार का पता चलता है। मनोविज्ञान अपने परीक्षण से वाह्य स्तर में ही व्यक्ति के समग्र गुणों-दोषों का पता लगा देता है। कवित्व में भी रचनाकार की रचना के शब्दों द्वारा उसके व्यक्तित्व एवं मनोवृत्ति का उद्घाटन सहजता से होता है।।

क्रायड ने मस्तिष्क को दो वर्गों में विभाजित किया है, चेतन और अचेतन। चेतन वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति जागृत रहकर कार्य करता है। अचेतन वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अतृप्त, दमित उच्छास बैठी हुई है। जब व्यक्ति की कोई उच्छा-पूर्ति नहीं हो पाती है तब यह उच्छास, आकांक्षाएँ

अचेतन मस्तिष्क में चली जाती है, और वहाँ से किसी न किसी कारण निकलने का मार्ग खोजती है। इसमें अधिकतर इच्छाएँ कामुक होती हैं। परन्तु ये काम-इच्छाएँ ही च्यवित के अनेक कार्यों का कारण बनती हैं। इस काम-भावना को फ्रायड ने लिबिडो (Libido) कहा है। एडलर का विचार है कि यही काम-भावना च्यवित के अन्दर स्फूर्ति एवं प्रेरणा देती है। युंग इसे जीवनेच्छा कहता है।

फ्रायड के अनुसार च्यवित्व हैं इदम, अहं और अति अहं की स्थिति सन्निहित रहती हैं। 'इदम' § 14 § की 'स्थिति जीवन' और 'मृत्यु' दोनों की मूलवृत्तियों का केन्द्र स्थल है। ये दोनों मूल-वृत्तियाँ शक्ति की मूल स्रोत हैं, जिनके आधार पर समस्त रचनात्मक तथा विध्वंसात्मक कार्य का निर्माण होना निर्भर है। इसकी उत्पत्ति जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है। इसलिये इसका स्वल्प अस्पष्ट अगम्य तथा अव्यवस्थित है। 'इदम' की स्थिति बुद्धि एवं तर्क के नियमों में बंधी होती है और न मूल्य नैतिकता या व्यवहार कुशलता से युक्त होती है। इसमें अधिकतर भाविकता तथा समाज के प्रभावों से युक्त केवल सुख-प्राप्ति आश्रयकता की अभिव्यक्ति और कामुक § Sexual § इच्छाएँ सन्निहित रहती हैं। 'इह' की विषय सामग्री अनन्तर § Immortal § है क्योंकि यह काल-गत प्रभावों से मुक्त है। इसके लिए कुछ भी न तो भूतकालीन है और न ही चित्समृत।<sup>1</sup> वस्तुतः 'इदम' केवल इच्छा-पूर्ति से सम्बन्धित मानसिक प्रतिमाओं से परिचित होती है। अतएव 'इदम' एक एक मात्र मनोवैज्ञानिक कार्य इच्छा उत्पन्न करना है।<sup>2</sup>

इस प्रकार 'फ्रायड § Libido § शक्ति पर बल देते हैं। जो केवल सुख के नियम से नियन्त्रित होती है। परन्तु एडलर ने इसका विरोध

<sup>1</sup>• Hall and Lindzey : Handbook social psychology : p. 149

2.

वही पृष्ठ 150

3.

करते हुए सामाजिक प्रेरकों पर बल दिया है। एडलर का कथन है, "मनुष्य सामाजिक प्राणी है न कि एक कामुक जीव"। वस्तुतः 'इदम' मूलतः आत्मगत अनुभव है। जो व्यक्ति को तनाव, कुंठा के क्षणों में आनन्द प्रदान करता है। इसीलिए 'इदम' जीवन पर्यन्त शिरागु स्वभाव धारण किए रहता है। यह आग्रहशील, आवेगशील, अबोधिक, असामाजिक, स्वार्थी, सुवापेक्षी तथा सर्वशक्तिशाली होता है। क्योंकि इसके पास अपनी इच्छाओं की कल्पना, निर्मल म्रम तथा स्वप्न द्वारा तुष्ट करने की मायावी शक्ति होती है जो कि प्राथमिक प्रक्रिया के माध्यम से समर्थ नहीं होती, जिसके कारण शेष कार्य गौण हो जाता है। इसी के साथ व्यक्तित्व के अहं

॥ Ego ॥ नामक उपांश का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है।

जब इदम परिवेश के सम्पर्क में आता है तब अहं ॥ Ego ॥ का विकास उत्पन्न होता है। अहं पाद्य संसार का ज्ञान अर्जित करता है। इसका मुख्य कार्य 'इदम' की इच्छाओं की पूर्ति करना और प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन, निर्णय, सोचना आदि मानसिक प्रक्रियाओं का उपयोग करना है। 'अहं' समय, स्थान कठिनाइयों का सामना करता है। अहं तर्क करता है, वह इदम का विरोध न करके उचित अवसर पर इसकी इच्छा पूर्ति भी करता है। और शरीर को सुरक्षा तथा उन्नति करता है। अहं, इदम तथा वातावरण के मध्य सामंजस्यता स्थापित करता है। इदम के माध्यम से ही वंशानुक्रम अहं को प्रभावित करता है। अतः अहं की उत्पत्ति केवल अनुभव द्वारा नहीं होती, बरन् प्राणी में पहले से तैयार इस मूल पदार्थ पर अनुभव द्वारा डाले जाने वाले प्रभाव के परिणाम स्वल्प अहं का उद्भव होता है।

व्यक्तित्व का तीसरा उपांश अति अहं ॥ Supor Ego ॥ होता है। यह व्यक्ति में नैतिकता का पथ उजागर करता है। इसे व्यक्ति की अन्तरात्मा भी कहा जा सकता है। यह मुख्य त्व से अचेतन है परन्तु आंशिक

1.

"Man is primarily a social and not a sexual creature"

: Hall and Lindzey : Theories of personality :p-118

स्व से चेतन भी है। अति अहं का विकास अहं से ही होता है। आदर्शवादी भावना अति अहं से ही व्यक्त होती है। अति अहं, इदम की अनैतिक छछाओं पर नियन्त्रण रखता है। अहं को नैतिकता की ओर ले जाता है। जब अहं, अति अहं के अनुसार कार्य नहीं करता, तब अति अहं, अहं को दंडित करता है, जिससे व्यक्ति में अपराध की भावना उत्पन्न हो जाती है। वस्तुतः इदम, अहं और अति अहं गतिशील उपांश हैं। गतिशीलता के कारण ही इनमें आपस में संबंध बना रहता है। अहं एक ओर तो 'इदम' के आवेशों की संतुष्टि का प्रयास करता है तो दूसरी ओर अति अहं को भी संतुष्ट रखना चाहता है। सारांशतः अहं एक ओर तो इदम की नैतिक-अनैतिक छछा की पूर्ति करता है परन्तु तभी अति अहं अनैतिकता का आभास देकर अहं को तथेष्ट कर देता है। इसी कारण इन तीनों के मध्य एक सतत संबंध रहता है।

'इदम' की स्थिति रोमांटिक है। अतः ऐसे क्षणों में जब कलाकार रचना की सर्जना करता है वह रोमांटिकता के भरपूर होती है। इसमें जब वह चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है तब उसके मन-मण्डितक पर अहं का अंकुश लगना प्रारम्भ हो जाता है। इसी बिन्दु पर कलाकार के मन में प्लासिक छवित्तियाँ उभरने लगती हैं, तभी कलात्मक सर्जना होती है। इसके चरमोत्कर्ष पर ही अति अहं का अंकुश प्रारम्भ हो जाता है। जिसमें कलाकार की रचना में यथार्थवादी चेतना परिलक्षित होने लगती है।

वस्तुतः काव्य की रचना प्रक्रिया मानसिक क्रिया है। इस मानसिक क्रिया को फ्रायड ने तीन भागों में विभक्त किया है— चेतन

|             |                                               |              |
|-------------|-----------------------------------------------|--------------|
|             | ॥ अद्वैतन ॥                                   | ॥ सर्व अचेतन |
| Conscious   | Sub-conscious                                 |              |
| ॥ चेतन      | ॥ चेतन स्तर पर वह मानसिक एवं शारीरिक क्रियाएँ |              |
| unconscious |                                               |              |

आती हैं जिनके प्रति हम जागृत होते हैं तथा जिनका तरलता से पुनर्स्मरण किया जा सकता है। चेतना को ज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसका वर्तमान में हमें अनुभव होता है। वर्तमान समय में हम जो कार्य कर रहे होते हैं उसका हमें ज्ञान रहता है। चेतना मन का वह स्वल्प है जो मन

की अवस्था को भौतिक पदार्थों के अस्तित्व से अलग करती है। वस्तुतः चेतना मन की चैतन्य अवस्था है। अतः चेतना निरन्तर परिवर्तनशील रहती है। हम एक क्षण एक वस्तु अथवा घटना के सम्बन्ध में चेतन होते हैं तो दूसरे क्षण किसी अन्य वस्तु अथवा घटना के सम्बन्ध में। चेतना की विशेषता है कि वह कभी लुप्त नहीं होती।

**अचेतन** । Sub-conscious । यह है जिसके विषय में हम चैतन्य नहीं हैं, किन्तु वह हमारी चेतना में है। जैसे कमरे में पंखा चलते रहना और स्वयं सोते रहना, लेकिन बिजली चले जाने के कारण या पंखा को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बन्द कर दिये जाने पर नींद से जाग जाना। यही अचेतन स्थिति है। अचेतन, मस्तिष्क का सबसे गहरा एवं बड़ा हिस्सा है। मनुष्य के दैनिक जीवन के सभी कार्य चेतन तथा अचेतन से ही सम्पन्न नहीं होते बल्कि व्यक्तित्व के बहुत से कार्य अचेतन मन के आधार पर क्रियान्वित होते हैं। यह अचेतन मन, वह कार्य पूर्ण करता है जो चेतन स्तर पर नहीं हो पाते हैं। अचेतन तर्क, समय एवं स्थान के प्रभाव से दूर रहता है। सम्मोहन, स्वप्न, दिन-प्रतिदिन की झूलें, नींद की स्थिति का प्रमाण आदि अचेतन के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। अचेतन मन व्यक्ति का  $7/8$  भाग है। जिस प्रकार समुद्र के अन्दर वर्ष के अन्दर छिपा रहता है वही दशा व्यक्ति मन के अचेतन अवस्था की है। व्यक्ति के जीवन में दुःख तथा अमान्य विचार जो पहले चेतन होते हैं, अवदमन की प्रक्रिया के द्वारा अचेतन मन का अंश बन जाते हैं। साथ में 'इदम' की अनेक इच्छाएँ तथा आवेग जो कभी भी चेतन नहीं थे उनकी भी स्थिति अचेतन में होती है। अचेतन मन में स्थित अनेक अमान्य अवदमित इच्छाएँ सदा के लिए ही अचेतन मन में नहीं पड़ी रहती वरन् वे वेष बदलकर, स्वप्न, दिवास्वप्न आदि के रूप में व्यक्त होती हैं। 'इदम' अहं तथा अति अहं, इन विभिन्न स्तरों को अपना कार्य क्षेत्र बनाते हैं। 'इदम' प्रधानतः अचेतन है, अहं चेतन स्तर पर कार्य करता है। इसमें अहं की अपेक्षा चेतना कम अचेतना अधिक होती है।

मन चंचलता से परिपूर्ण है अतः मन परिवर्तनशील है। परिवेश

के बदलाव के साथ-साथ ही मानसिक शक्तियाँ और क्रियाओं में परिवर्तन एवं विकास होता रहता है। फलतः कलाकार या साहित्यकार भी सर्जन करते समय पूर्ण रूप से चेतन-अचेतन की गत्यात्मकता से पूर्ण रूप से साधनारत रहते हैं।

फ्रायड ने निम्नलिखित की कल्पना की है। किन्तु एन्ड्रेज का विचार इसके विपरीत है। एडनर का मत है मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है न कि वानस्पतिक प्राणी। अतः मनुष्य की काम-शक्ति की अपेक्षा सामाजिक सम्मान की अधिक आवश्यकता रहती है। इसी तरह एडनर अचेतन की अपेक्षा चेतन की अधिक शक्तिशाली मानते हैं। क्योंकि मनुष्य के सभी कार्य चेतन स्तर पर होते हैं। चाहे अचेतन स्तर पर कठिन समस्या का हल मिल जाए, परन्तु पूर्ण वह चेतन स्तर पर ही होता है। वस्तुतः मानव जीवन के लिए काम-भावना, सामाजिक उच्छा, चेतन-अचेतन सभी का महत्त्व स्थान है, इनके बिना वह अपूर्ण है। युंग के अचेतन की दो वर्गों में बाँटा है। वैयक्तिक अचेतन और सामूहिक अचेतन।<sup>1</sup> युंग सामाजिक परिस्थितियों से प्राप्त ज्ञान को 'पर्सोना' या 'इगो' कहता है। अर्थात् चेतन स्थितियों के लिए उसने 'पर्सोना' का इगो का प्रयोग किया है। युंग यह भी मानता है कि आत्मा के विषय में दो तत्त्व अनिवार्य हैं। मानव-व्यक्तित्व इन तत्त्वों के संगठन से निर्मित हुआ है। इसकी चेतना अचेतन में होती है। ये मूलतः वानस्पतिक होती है। हर पुरुष की चेतना में स्त्रीमा होती है तथा नारी की चेतना में स्त्रीमत्त होती है, जो परस्पर एक-दूसरे के आकर्षण में बाँधी है।<sup>2</sup>

1. Ruth L. Munroe : *Schools of psychoanalytic thought*: p. 963

2. "The soul- image ( Anima and animus ). The soul- image lies deeper in the unconscious .It's determinates are sexual, or rather contra-sexual in origin. Every man bears within his psycho an anima which represents the feminine aspects of his being. Every woman has her animus the male component. " Ruth L . Munroe : *Schools of psychoanalytic thought* : p 960

रीछो । छाया । अचेतन का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार रीछो  
 । छाया । उच्चतम व्यक्तिगत सर्वना है। ये सांसारिक मानव अनुभूतियों  
 को भी अभिव्यंजित करती है। इस प्रकार पुंश्र अचेतन के द्वारा देयजितकता  
 और सामाजिकता दोनों तत्त्वों की उपस्थिति मानव व्यक्तित्व में स्वीकार  
 करता है। फलतः सर्वन के छाया कोई भी कवि इन तत्त्वों का अपनी चेतना  
 में लक्ष्म बिना नहीं रह सकता। यह उसकी स्वाभाविकता है, सहजता है।

सारख्या यह कहा जा सकता है कि कलाकार या साहित्यकार जो  
 अपनी रचना की सृजना करता है उसमें उसके व्यक्तित्व, चेतन, अचेतन, अर्द्ध  
 चेतन मन, सम्पूर्ण स्व से कार्य करता है। अतः उसकी रचना की सहजता  
 से उसकी रचनाकार की । मानसिक स्थिति का पता चल जाता है।  
 इसलिए महान रचनाकार सृजना के छा में इन्हीं प्रमाणत वृत्तियों के अनुसार  
 अपनी रचना की प्रस्तुति करता है। इस कला में जो रचनाकार जितना ही  
 कुशल होगा उसकी रचना उतनी ही उत्कृष्ट होगी।

- 
1. The soul-image ( anima and animus ). The Soul-image
  1. lies deeper in the unconscious. Its determinates are sexual, or rather contro-sexual in origin. Every man bears within his psyche an anima which represents the feminine aspects of his being. Every woman has her animus the male component. " Ruth L. Munroe : Schools of psychoanalytic thought : p. 560-562



### यथार्थवाद :

यथार्थवाद का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इसके पूर्व साहित्य में यह वाद अथवा आंदोलन के रूप में न होकर चित्रण का अधिक पूर्ण, वातावरण का अधिक सजीव तथा रचनाशीलता को अधिक सार्थक और स्वाभाविक बनाने वाली एक सहज नैसर्गिक स्थान के रूप में थी।<sup>1</sup> आदिमानव ने यथार्थ के चित्र गुफाओं में उकेरे। कालांतर में रचनाकारों ने समाज के निम्न वर्गों का चित्रण करते हुए यथार्थवाद का परिचय दिया। इसके साथ ही इसका प्रयोग प्रचलित हुआ। शक्सपियर सरपेंतीय एवं रेबेलेज के काव्य में यथार्थ की छान्की मिलती है। फ्रांस साहित्य में यथार्थवादी चेतना सर्व प्रथम कोरेक्ट्स की चित्रकला में मिलती है। वस्तुतः यथार्थवादी दृष्टि वस्तुगत ही होती है। यथार्थवादी साहित्यकार सत्य को व्यरिचार प्रस्तुत तो करता है किन्तु ज्यों का त्यों वर्णन नहीं कर पाता। जबकि सारी घटनाओं एवं पात्रों को सामाजिक जीवन से प्राप्त अपने यथार्थ अनुभवों की तराशकर, नुकीला बनाकर, अपनी कृति के अंदर कलात्मक संयोजना करता है। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक विद्रोह का युग है। इस युग में सांस्कृतिक रूपों का खंडन करके नयी विचार धाराओं ने नया मोड़ लिया। इसमें यूरोपीय विचारधारा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यूरोपीय विचारधारा के कारण ही नयी चेतना और गतिशील पनी। अतः पश्चिमी जीवन की जो नवीन विकास धाराएँ विकसित हुई भारतीयों ने उनके प्रति दृष्टि-कोण तथा दायित्वों को नए आयाम दिए।

हिन्दी साहित्य में ही नहीं, समूचे भारतीय साहित्य तथा कला-जगत में यथार्थवादी चेतना के प्रवेश के लिए बीसवीं शताब्दी में उभरने वाली नई राष्ट्रीय चेतना तथा मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों का महत्वपूर्ण योगदान है। मार्क्सवादी-समाजवाद ने भारतीय बुद्धिजीवियों

एवं राष्ट्रीय नेताओं को भीतर तक आंदोलित किया। उसने अब तक के दार्शनिक सामाजिक चिंतन को अपर्याप्त ठहराते हुए विचारों का एक नया संसार ही उद्घाटित किया। सन् 1930-31 तक आते-आते मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों ने भारतीय जीवन में इतनी गहराई तक प्रवेश पा लिया था कि नई वैचारिक, बौद्धिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। अब तक के चिंतन में आधारभूत परिवर्तन हुए और एक ऐसी नई दुनिया तथा नए भारत का नक्शा उभरा, जिसे अब तक कोई भी विचारक भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत न कर सका।<sup>1</sup> वस्तुतः हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि समूचे देश में यथार्थवादी दृष्टि कोण को उत्पन्न करने का श्रेय मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा को है। डार्विन के विकासवाद ने यथार्थवादी चेतना को ठोस और वैज्ञानिक आधार दिया।

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग में जितना पैना व्यंग्य एवं यथार्थवादी चेतना को प्रखरबोध मिलता है, इतना पैनापन द्विवेदीयुगीन कवियों में नहीं मिलता। छायावाद तो सिर्फ रोमांटिक कल्पना का युग था। हाँ, इसमें निराला ने छायावाद स्वच्छन्दतावाद युग की समाप्ति पर यथार्थ की सशक्त छवियाँ बिल्लेसुब धरिहा, पतुरी चमार, कुल्मीभाट एवं देवी जैसे उपन्यासों में यथार्थ की अभिव्यक्ति दी। इसके साथ ही 'कुकुरमुत्ता' निराला की आधुनिकता एवं यथार्थबोध की अपने समय की प्रथम अभिव्यक्ति देती है। प्रताप के उपन्यासों में ही यथार्थबोध परिलक्षित होता है। पंत ने प्रगतिवाद युग में युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या जैसी छवियों में सामाजिक यथार्थ के कतिपय मार्मिक चित्र उकेरे हैं। इसी प्रकार महादेवी वर्मा के रेखाश्रितों में यथार्थबोध परिलक्षित होता है। उसके बाद की कविता एवं साहित्य में सम्पूर्णतः से यथार्थबोध दिखलाई पड़ता है।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में इस यथार्थवादी चेतना का विकास 1930-31 के आस पास दिखाई पड़ता है। और 35-36 तक इसके बीच सम्पूर्ण रूप से साहित्य में अंकुरित हो गये। समाजवादी क्रांति सन् 1917 के अक्टूबर के

अक्टूबर के उसी प्रांति के साथ विकसित हुई। जिसकी प्रक्रिया सम्पूर्ण विश्व में बहुत तेजी से फैली। उसी चेतना ने सभी वर्गों को, बुद्धिजीवियों को समाज चेतना कवियों को नये परिप्रेक्ष्य में सोचने को विवश किया। फलतः प्रगतिशील और प्रयोगवाद युग में धीरोदात्त नायकों के स्थान पर पहली बार सामान्य को अपनी कविता का नायक बनाया एवं उसी के सुख-दुःख, आशाओं-आकांक्षाओं को अपनी विषयवस्तु के रूप में स्वीकार लिया लोक-जीवन की अनेक नार्मिक और यथार्थ कवियाँ इस युग में पहली बार देखने को मिली। जो व्यंग्य की विधा भारतेन्दु युग में परिलक्षित हुई वैसी ही इस युग में पुनः जीवित हुई। नागार्जुन, मुक्तिबोध, अज्ञेय, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह आदि कवियों ने इस यथार्थवाद को अपना मूल्यवान प्रदेम दिया। डॉ० रवीन्द्र भूषर का कथन है, “नयी कविता ने सभी प्रकार के प्राचीन एवं जबर जादूओं को अस्वीकार कर दिया है। उसका विश्वास यथार्थवादिता के प्रति है, चिन्तु, नयी कविता में यथार्थ की प्रतिष्ठा सभी प्रकार से पूर्वग्रहों से मुक्त होकर की जा रही है और नये कवि निजी विवेक के आधार पर उसका साक्षात्कार करने में तत्पर हैं।”<sup>1</sup> नयी कविता हमें यथार्थपूर्ण जीवन के चिरपरिचित आयामों के सौंदर्य के सन्निकट ले जाकर हमारे विवेक को रस सिक्त करती है और इस दशा में नयी कविता में मानव मर्म का स्पर्श करने वाले उन सत्त्वों की उपलब्धि की जा सकती है, जिनके अभाव में उसका अस्तित्व एक क्षण को भी टिक न पाता।”<sup>2</sup> यथार्थवाद को हंगरीयन विद्वान जार्ज लुकाच ने दो वर्गों में विभक्त किया है। आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद। इन्हीं चिन्तुओं में यथार्थवाद का मूल्य विनिश्चित होता है।

### आलोचनात्मक यथार्थवाद :

आलोचनात्मक यथार्थवाद, प्रकृतवादी यथार्थवाद से भिन्न है। इसमें वास्तविक जीवन और वस्तुपरकता में ईमानदार जोधन को चित्रित

1. डॉ० रवीन्द्र भूषर : समकालीन हिन्दी कविता : पृ० 34

2. डॉ० रवीन्द्र भूषर : समकालीन हिन्दी कविता : पृ० 35

करने वाला साहित्य मिलता है। डॉ० अजय सिंह का कथन है, "आलोचनात्मक यथार्थवाद की व्याप्तियों तो साहित्य के सभी स्तरों में दिखाई देती हैं। समाजवादी यथार्थवाद के नाम से यथार्थवाद का नया नामकरण हुआ। इसी क्रम में यह भी आवश्यक समझा गया उसे समाजवादी दृष्टिकोण से प्रकृतवाद से विभेद करने के लिए, अलगाने के लिए, उसकी विशिष्ट पहचान के लिए उस प्रस्तावित यथार्थवाद को किसी नूतन नाम से सम्योचित किया जाय। उसे ही आलोचनात्मक यथार्थवाद का नाम दिया गया।" <sup>1</sup> वस्तुतः आलोचनात्मक यथार्थवाद में समाजवादी दृष्टि की सक्रियता का अभाव है। अतः यह जीवन, समाज और परिवेश को विकृत मान्यताओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि रखता है। किसी रचनाशील क्रिया को अपने संतर्ग में नहीं लाता। मार्क्सवादियों ने इसे छुर्जुआ यथार्थवाद के नाम से अभिहित किया है। मैक्सिम गोर्की ने इसे छुर्जुआ यथार्थवाद के नाम से अभिहित किया है। मैक्सिम गोर्की ने छुर्जुआ यथार्थवाद के अन्तर्गत दो प्रकार के लेखक माने हैं : एक वह जो अपने धर्म-चरित्र को न छोड़ सकने के कारण अपने धर्म हितों से जुड़े हुए हैं और जिन्होंने अपनी रचना में अपने धर्म को मान्यता दी है। दूसरे वह जो अपने धर्म-स्वार्थ या, धर्म-उत्पन्ना की उपेक्षा करते हुए अपने धर्म की कटु आलोचना करते हैं। इस प्रकार के साहित्यकारों को गोर्की ने आलोचनात्मक यथार्थवाद, क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद का झण्डा कहा है। <sup>2</sup> और उनकी असाधारण प्रतिभा को सराहा है। गोर्की का कथन है, "इन लेखकों की रचनाएँ न तो समाजवादी वैयक्तिकता के निर्माण में सहायक रहें और न उसके कोर्स नयी संभावनाएँ की जा सकती हैं, क्योंकि इन लेखकों ने जहाँ प्रत्येक वस्तु की आलोचना की है वहाँ किसी वस्तु की प्रतिष्ठा नहीं कर सके हैं। यहाँ तक कहा जा सकता है कि ये लेखक जिन तथ्यों का समर्थन दे रहे थे उन्हें वे अस्वीकृत भी कर चुके थे। गोर्की का यह झण्डा उन लेखकों में सृजनात्मक दृष्टि के अभाव से है।" <sup>3</sup> आज़ेरे ब्रूंस का अभिमत है,

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 127

2. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृ० 40

3. Gorky : on literature : p.242

“ आलोचनात्मक यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद देती ज़्यादा तब नहीं पहुँचता, किन्तु आब के वैचारिक संघर्ष में वे एक-दूसरे के विरोधी तथा प्रतिपक्षस्थ भी नहीं हैं। धीरे-धीरे आलोचनात्मक यथार्थवाद का सामाजिक सार धीरे-धीरे है जो कि समाजवादी यथार्थवाद का है, किन्तु आलोचनात्मक यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद के विरोध में भी नहीं उड़ा हो सकता, क्योंकि सुसंगत, जीवन के सत्यपरक चित्रण में पीछे न हटने वाला यथार्थवाद और उसके विकास का तर्क बना जो अनिवार्यतः समाजवादी कला-विचारधारा से सम्मिलित हो दिया में ही ले जाते हैं।”<sup>1</sup> डॉ० जयसिंह का उक्त है, “ समाजवादी यथार्थवाद को आलोचनात्मक यथार्थवाद से जो बात भ्रूतः भिन्न करती है, वह समाजवादी यथार्थवाद में निहित समाजवादी दृष्टि है, जिसका आलोचनात्मक यथार्थवाद में उभाव है। इस विवेक का पार्थक्य करने पर आलोचनात्मक यथार्थवाद की कलात्मक उपलब्धियों एवं मूल्यवैतना से समाजवादी यथार्थवाद का कोई अलगव नहीं है।”<sup>2</sup> इस प्रकार आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत है। सत्य के प्रति निष्ठा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, सम्पूर्ण आकलन, घटुगत यथार्थ का मार्मिक अंकन, अन्तर्भूत का यथार्थतः अंकन व्यवस्था की धिक्तियों का सही प्रस्तुतीकरण, गहरी सामाजिक निष्ठा तथा अकृत्रिम मानवीय संवेदना, सजीव और जीवन्त मानव-चित्रण के अन्तर्गत ‘टाइप’ की दृष्टि और उसे दृष्टी भूमिका पर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक इतिहास के साथ मूर्त करना महाकाव्यात्मक औदात्य-दृष्टिकोण तथा चित्रण दोनों धरातलों पर निष्क्रिय तटस्थता से हटकर पुनर्जीवन की गतिविधियों का सज्ज और सचेत ‘एन्वाल्मेंट’, ये कुछ ऐसी बातें पाते हैं जो आलोचनात्मक यथार्थवाद को महनीयता प्रदान करती है तथा इसे यथार्थवादी कला की धरोहर सिद्ध करती है।”<sup>3</sup>

1. आल्नेर जोस : कला के वैचारिक और सौन्दर्यात्मक पहलू : पृ० 191-92

2. डॉ० जयसिंह : नवसंस्कृततावाद : पृ० 128

3. George Lukacs : The meaning of Contemporary Realism, 100

प्रस्तुत: समाजवादी यथार्थवाद, सामाजिक दृष्टि निहित है। किन्तु आलोचनात्मक यथार्थवाद में उसका अभाव है। अतः भविष्य के प्रति आलोचनात्मक यथार्थवाद संवेदनाहीन है। फलतः इसकी कोई वैचारिक भूमिका नहीं है। वैचारिकता के अभाव में ही आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकार भविष्य के प्रति कोई अभिमत नहीं दे पाता, बल्कि यह दर्शमान में ही झुमका करता रहता है।

### समाजवादी यथार्थवाद :

समाजवादी यथार्थवाद एक जीवंत यथार्थ दृष्टि है। समाजवादी यथार्थवाद, यथार्थवादी अनादीसन का नवीन विकास है। समाजवादी यथार्थवाद मनुष्य, समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता में देखता एवं प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही इसमें रचनात्मक दृष्टि एवं भविष्य के प्रति नये और कलासृजन की योजनाएँ भी हैं। 1934 में सर्व प्रथम सोवियत साहित्यकारों की प्रथम कांग्रेस में मैक्सिम गोर्की ने इसका नाम लिया एवं इसके विस्तृत रूप पर प्रकाश डाला।<sup>1</sup> समाजवादी यथार्थवाद की मूल चेतना में मार्क्स, एंगेल्स एवं लेनिन द्वारा विचारणीय यह वैज्ञानिक समाजवाद तथा दृष्टात्मक नीतिवाद है जो विरोधी शक्तों के मध्य में संघर्ष के द्वारा निरन्तर नवीनता प्रदान करती है। समाजवादी यथार्थवाद का साहित्यकार वास्तव यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करता है। विरोधी शक्तियों के दण्ड को भी वह कुशल चित्ते को भाँति दर्शाता है। यह स्वीचता जितनी विशद एवं तीव्र होगी, उतनी ही उसकी कलाशक्ति सम्पन्न होगी। समाजवादी यथार्थवाद का कार्य, प्रतिकारी विकास की भूमिका में बढ़ते हुए यथार्थ को इस प्रकार मूर्त करना है कि यह शक्ति जो प्रगति की विधायिका शक्ति है, अपनी सारी क्षमताओं, आकांक्षाओं के साथ उभर कर आ सके। समाजवादी यथार्थवादी चेतना के पीछे वर्तमान में ही छिपे हुए

<sup>1</sup> Gorky : on literature : p. 264

हैं, जो दृष्टि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को पूरी तरह सन्तुलित रखकर उसे अभिव्यक्त के रूप में उद्घाटित करे, यही समाजवादी यथार्थवादी दृष्टि है। इस दृष्टि में साहित्यकार केवल बाहरी यथार्थ को अपना लक्ष्य नहीं बनाता, वरन् यह वास्तविकता से संघर्ष करती हुई नई प्रगतिशील शक्ति को भी उसनी ही तीव्रता से सामने लाये, जो विरोधी शक्तियों के संघर्ष को आवश्यक अनिवार्य प्रस्तुति हो।

समाजवादी यथार्थवाद में सर्वहारा-वर्ग की समस्याओं का अंकन मिलता है। इसमें शोषित पीड़ित लोगों की ऐतिहासिक चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। अतः समाजवादी यथार्थवाद मानव-कल्याण का एक पहलू है। समाजवादी यथार्थवाद पूँजीवाद से समाजवाद और साम्यवाद की ओर संक्रमण है। इसीलिए इसमें दुहलोक एवं संघर्षशील मानव के विषय में नयी अधधारणा मिलती है। वस्तुतः समाजवादी यथार्थवाद की चेतना अन्तराष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान हो चुकी है। आज इसे प्रत्येक देश मानता है। गोर्की इस सर्वहारा चेतना का सबसे महान साहित्यकार है। 'माँ' उपन्यास में इसका चिह्नित उल्लेख मिलता है। लेनिन का कहना है कि यह समाजवादी यथार्थवादो कला की पहली कृति है। अतः गोर्की समाजवादी यथार्थवाद का जनक है।<sup>1</sup>

अनातोली सुनायास्की का कथन है, 'समाजवादी यथार्थवाद एक प्रवृत्ति है जो वर्तमान युग में एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति बन जायगा और समाजवादी मानवता की कलात्मक विधाओं का विशेष गुण तब भी बन सकता है। अर्थात् वास्तविक मानवीय कला की अन्तिम और सर्वोच्च विधायें हैं।'<sup>2</sup> पाव्लो विन्स का अभिमत है, 'समाजवादी यथार्थवाद सैविकात्मक सत्य की यथार्थः अभिव्यक्ति है।'<sup>3</sup> समाजवादी यथार्थवाद के संदर्भ में

1. Lenin : collected works : Vol-16.p.207

2. A.Ovcharenko : Socialist Realism and the modern literary process.p. 69

3. Ibid : p. 130

मैक्सिम गोर्की का कथन है, " समाजवादी यथार्थवाद एक विचार है, जो यथार्थवादी और कल्पनाशील है तथा सामाजिक अनुभव के ऊपर है और आधारित है।" <sup>1</sup>

" समाजवादी यथार्थवाद मानव-जाति की कला-संस्कृति के विकास में एक महान् प्रगतिशील कदम की ओर इशारा है कि वह जीवन के क्रांतिकारी रूपान्तरण के पथ पर अग्रसर जनता के ' कार्यों और दिनों ' का चित्रण करता है, उसके चारनमों की महत्ता, सौन्दर्य तथा उदात्तता का पखान करता है तथा नये मानव के चरित्र, मानसिकता तथा नैतिकता के निर्माण को प्रतिबिम्बित करता है।" <sup>2</sup> डॉ० शिव कुमार मिश्र का कथन है, " समाजवादी यथार्थवाद, यथार्थवादी चिंतन तथा यथार्थवादी कला की वह जीवन्त धारणा है, जो एक ओर उस प्रकृतिवाद से भिन्न है जो मनुष्य को मूलतः प्रादिमवृत्तियों से अनुगमित तथा परिचालित मानते हुए उसके अग्र तल के समूचे पौरुष और भावात्मक विकास की अवमानना करता है, उसकी एक दम स्वांगी तत्त्वों पर पेश करता है, दूसरी ओर उस आलोचनात्मक यथार्थवाद से भी विशिष्ट है, जो अपनी जीवन्त कला, पस्तुगत यथार्थ के ईमानदार चित्रण, उसकी अमानवीय भूमिका के प्रति कड़ा आलोचनात्मक रुख अपनाते एवं जनसामान्य के प्रति संवेदनशील होने के बावजूद, ' समाजवादी यथार्थ ' की उस क्रांतिकारी रचनात्मक समझ से शून्य है, जो वर्तमान के विकृत यथार्थ को बदलने का न केवल रास्ता सुझाती है, उस परिवर्तन को, उसकी सारी संभावनाओं के साथ मूर्त भी करती है।" <sup>3</sup> डॉ० अजय सिंह का अभिमत है, " समाजवादी

1.

A. Ovcharenko : Socialist Realism and the modern literary process : p. 86

2. आधुनिक जीवन : कला के वैचारिक और सौन्दर्यात्मक पहलू : पृष्ठ 191

3. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद : पृष्ठ 66



यथार्थवाद समाजवादी कला की सर्वनात्मक शिनी है। सर्वहारा के साथ बना सम्बन्ध एवं उसकी समस्याएँ उसके जीवन, उसकी संस्कृति की अभिव्यञ्जना, क्रांतिकारी मानववाद पूँजीवाद के वैचारिकता के विरोध जैसा उसके विशेष लक्ष्य है। इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था, सामाजिक सम्बन्ध, सांस्कृतिक जीवन में आमूल परिवर्तनों के आधार पर समाजवाद पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रमिक्त जन में पैदा हुए मानवीय गुणों को विकसित करता है। समाजवादी यथार्थवाद नये समाजवादी मानव को दावता है। नवमानव के सृजन के फलस्वरूप इस विचारधारा का सम्बन्ध नवतत्त्वच्छन्दतावादी दृष्टि से भी गुड़ जाता है।<sup>1</sup>

“ समाजवादी यथार्थवाद जिस भौतिकवादी दर्शन पर जोर देता है, यह दर्शन बुद्धितत्त्व, योजना कला और विज्ञान पर जोर देता है। यह दर्शन आत्मिक मूल्यों, बौद्धिक और कलात्मक आनन्द का तिरस्कार नहीं करता, पर यह परलोकवाद का विरोधी है, क्योंकि परलोकवादी दार्शनिक धाराएँ निराशावादी होती हैं।”<sup>2</sup>

सारतः यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में यथार्थवादी प्रवृत्ति मुख्य रूप से विद्यमान है। क्योंकि छायावादी कल्पनाशीलता को छोड़कर प्रगतिशील एवं प्रयोगशील युग ने यथार्थवाद की शुरुआत की। यही शुरुआत नयी कविता में आकर चिह्नित हुई। अतः नयी कविता के कवि ने हर दिग्घ एवं क्षेत्र में यथार्थवादी चित्रांकन किया है। जिसमें मन की गहराई और स्वयं की अनुभूति घोलती हुई प्रतीत होती है। इस सन्दर्भ में डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा का उक्त है, “ नयी कविता जीवन के सँघर्ष के साथ यथार्थ को स्वीकार करती है जिसके कारण अनुभव के नये स्तरों का परिचय देता और काल से सम्बन्ध जोकर अधिक क्षेत्र और स्पष्ट रूप में व्यक्त होने लगता है।”<sup>3</sup> अतः नये सामाजिक परिवेश की अभिव्यक्ति, नये मानव

1. डॉ० अजय सिंह : नवतत्त्वच्छन्दतावाद : 130-31

2. डॉ० कृष्ण पाल सिंह : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी कथा साहित्य : पृष्ठ 23

3. डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा : नये प्रतिमान : पुराने निबन्ध : पृष्ठ 176

व्यक्तित्व की खोज और उसकी प्रतिष्ठा आदि आदर्शों से प्रेरित नयी कविता की मूल भंगिमा यथार्थवादी है। नयी कविता का यथार्थ बोधन जो उसके समग्र त्व में देखने में निहित है। मनुष्य जैसा है, सुख-दुःख, जय-पराजय, हास-विहास, कृषन और संधर्ष आदि समस्त क्रिया व्यापारों में उसकी जो मूर्ति उभरती है, नयी कविता उस सम्पूर्ण सम्भावित मानव-मूर्ति को चित्रित करना चाहती है।'' ।

### प्रगतिशील / सामाजिक चेतना :

नयी कविता की काव्य-चेतना प्रगतिशील आन्दोलन से प्रभावित रही है। इसी आन्दोलन के फलस्वरूप नयी कविता में सामाजिक चेतना उपजी थी। अतः नयी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति के त्व में प्रगतिशील धारा भी है जिसमें सामाजिक चेतना को प्रमुख अभिव्यक्ति मिलती है।

छायावादोत्तर हिन्दी कविता की विकास-प्रक्रिया एक साथ तीन धाराओं में प्रवाहित होती दिखलाई पड़ती है। उत्तरछायावादी, प्रगतिशील और प्रयोगशील। इन धाराओं में सबसे अधिक प्रगतिशील धारा ने आकर्षित किया। किन्तु इसके साथ-साथ चिह्नित होने वाली प्रयोगशील धारा भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी, परन्तु उस समय प्रगतिशील की तेजस्विता के आगे कुछ क्षीण अवश्य पड़ गयी थी। आगे चलकर इन दोनों धाराओं में एक दूसरे से आगे बढ़ने का संधर्ष काफी तेज रहा। इस संधर्ष के फलस्वरूप उत्तरछायावादी कवियों ने अपनी रुचिनुसार अपना-अपना पथ चुना। प्रगतिवाद ने सामाजिकता को जीवंत बनाया तो प्रयोगशील कवियों ने फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद को उजागर कर उसका छंटा फहराया। सन् 1945 में 'परिमल' के प्रकाशन के साथ यह संधर्ष एक तरफा हो गया। क्योंकि इसी समय प्रयोगशील आन्दोलन प्रगतिशील आन्दोलन पर हावी हो गया। और 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवाद का धिगुल सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में खल गया। वस्तुतः प्रयोगवाद और

प्रगतिवाद के बीच संबंधी जोधन, समाज और कला सम्बन्धी विचारधाराओं के मध्य था। प्रगतिवादी चेतना समाज और जोधन के मार्ग, मार्क्सवाद से प्रभावित था जबकि प्रयोगवाद की मूल चेतना समाज दर्शन के रूप में व्यक्तिवाद का आग्रह था। यथार्थता के रूप में मनोविश्लेषणवाद और कला के रूप में स्ववादी स्थान की प्रधानता थी।

स्वाधीनता प्राप्ति के आस-पास हिन्दी कविता का संघर्ष गहरा हो गया। एक ओर काव्य में अन्तर्मुखता, कुंठा, पुटन, अनास्था, निराशा बढ़ रही थी, तो कलावादी रूप में सौन्दर्य-बोध और नवीनता के स्थान पर अनाकर्षण में सौन्दर्य खोजने की कोशिश हो रही थी। इस प्रकार कविता सामाजिक परातन से कटकर व्यक्तिमन की सीमा में सिमट गई। घोरिकता के पावबूदभी फिजलता बढ़ती जा रही थी। दूसरी ओर प्रगतिशील काव्य सामाजिकता, मार्क्सवादी चेतना और कलात्मक चित्रण की जगह सिद्धान्त कथन और नारेवाजी को उठाकर ले रहा था। जोधन की वास्तविक निराशा और पीड़ा के बदले प्रगति के नाम का स्टाइल लगा हुआ था। उस काल की संकीर्णता के संदर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा का कथन है, "उन स्थानों का एक पक्ष यह था कि कला की अवहेलना करके केवल सामाजिक विषय वस्तु पर धन दिया जाए। सिद्धान्त के अलावा व्यवहार में बहुत सी प्रगतिशील कवितारें ऐसी लिखी जाती थी जिनमें वीरवार, फुत्कार के अलावा न यथार्थवादी चित्रण होता था, न कलात्मक सौन्दर्य।" <sup>1</sup> इन्हीं प्रगतिशील और प्रयोगशील संबंधों के बीच 'नयी कविता' का उद्भव हुआ। इन दोनों धाराओं के सामंजस्य के पावबूद भी नयी कविता का संघर्ष कम न हुआ। इसी को 'मुक्तिबोध' नयी कविता का आत्मसंदर्भ कहते हैं। अतः 'नयी कविता' के प्रेरणाओं में प्रगतिशील धारा में मुक्तिबोध और प्रयोगशील धारा में 'अधेय' का स्थान सर्वोपरि है। 'नयी कविता' के विकास-काल को नेहरू-युग भी कहा जाता है। जो निराशा-कुंठा समयों के लूटे मोह का काल भी था

राजनैतिक दायित्व जनता की वेहद कुंठा ग्रस्त कर रहे थे। जिसका स्व कुछ लोगों ने तो लगा लिया और कुछ अनजान थे और कुछ मौन थे। वे अपनी रचनाओं में स्वप्न और मोह का संसार रच रहे थे। और व्यक्ति और समाज की दूरी बढ़ा रहे थे। इस प्रकार मध्यम वर्ग में बुद्ध को जग उठाने की चेतना जाग्रत हुई। वस्तुतः नयी कविता के अधिकांश कवि मध्य वर्ग की ही उपज हैं जिसे मुक्तिबोध ने भी स्वीकारा है। लेकिन यह मध्य वर्ग भी दो धाराओं में विभाजित है। जिसकी एक धारा 'वैभव' सम्पन्न उच्च वर्गीय-प्रवृत्ति अपनाना चाहता है तो दूसरी धारा समाजवादी आदर्श का समर्थन करने वाली शक्ति। 'सर्वहारा वर्ग' की ओर झुकता है।<sup>1</sup>

मुक्तिबोध ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा है 'उच्च मध्यवर्गीय अभिव्यक्ति मानवतावादी आध्यात्मिकता व्यपित स्वातन्त्र्यवादी प्रणाली के नाम पर साहित्य क्षेत्र में समाजवादी प्रभाव का उन्मूलन करना चाहती है। उसका मूल सामाजिक आधार-उच्च मध्यवर्गीय लोग और उनकी सौन्दर्याभिरुचिपूर्ण जगमगाहट से मोह मुग्ध, वे निम्नमध्यवर्गीय लेखक को लाभान्वित और पिपासु होकर उनके आस-पास मंडराते हैं या व्यक्तिगत आधार पर उनसे जुड़ा करते हुए भी उनके पद चिन्हों पर चलने में अपनी कलात्मक प्रवृत्ति की सार्थकता समझते हैं।'<sup>2</sup> वस्तुतः वर्गीय अभिव्यक्ति से प्रभावित होकर जो काव्य-रचना हुई उसकी अभिव्यक्ति उनकी कविता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुई। जो धारा सर्वहारा वर्ग से जुड़ी वह अपने भाव-बोध और साहित्य विवेक को सर्वहारा वर्ग के सामाजिक, राजनैतिक उद्देश्यों को विकसित करने लगी।

'कविता की रचना करते समय कवि अपनी चेतना का उपयोग करता है। रचना प्रक्रिया में कवि की पूरी मानसिकता उभरती है। वस्तुतः कविता में वैयक्तिक भूमिका का रहस्य कवि की सामाजिक चेतना में निहित होता है। इस काव्यनिक पुनर्जन्म के अन्तर्गत वैयक्तिक अनुभूतियाँ एवं सामाजिक परिदृश से प्रसूत प्रवृत्तियाँ अपना रूप निर्मित करती हैं। काव्य-प्रक्रिया में

1. मुक्तिबोध नये साहित्य का सौन्दर्याशास्त्र : पृष्ठ 23

2. वही

कवि काल्पनिक पात्रों तथा घटनाओं को ऐतिहासिक यथार्थ को लपेट में अपनी प्रतिभा से प्रसूत करता है। इस प्रवृत्ति में कवि का अन्तः एवं बाह्य का घड़ा सुन्दर धिलघन हो जाता है। कवि अपनी सर्वना में अपने निजी और सामाजिक चेतना को अभिव्यंजित करता है। इस तरह कविता के निर्माण में कवि आत्मिक एवं सामाजिक आवेकन को वाणी देता है।'' ।

वस्तुतः नयी कविता राजनीतिक एवं सामाजिक संक्रान्ति के मध्य में विकसित हुई। भारत में उद्योगीकरण के फलस्वरूप परम्परित अर्थ व्यवस्था का ढाँचा चरमरा गया था। वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद भी सामाजिक एवं नैतिक मानदण्ड खण्डित हो रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों के कारण कवियों में मानसिक परिवर्तन हुआ जिसमें प्रगतिशील सामाजिकता और प्रयोगशील व्यक्तिवाद को लाया गया। अतः कविता व्यक्ति-मन की अनुभूतियों के साथ-साथ बाह्य स्थितियों, परिवेश एवं रोजी-रोटी की समस्याओं का जंकन भी करने लगी। वस्तुतः नयी कविता का कवि सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अद्वियों से जुड़ा है और परिणाम में नवीन चिन्तन का सूत्रन करता है। इस प्रकार नयी कविता का चिन्तन समाजवादी यथार्थवाद से ठहराता है, जो स्वच्छन्दतावाद की भी मुख्य प्रवृत्ति है। अतः नयी कविता नवस्वच्छन्दतावादी चेतना से बुड़ी हुई है। प्रस्तुत संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का कथन है, '' हिन्दी की नवस्वच्छन्दतावादी कविता में लोकतांत्रिक चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है, साथ ही नागरिक अधिकारों, मानव-मूल्यों एवं दायित्व-बोध की नवीन चेतना की अच्छी प्रस्तुति भी हुई है। स्वच्छन्दतावादी स्वतंत्रता में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा एवं न्याय के लिए संघर्ष करता है, लेकिन नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार समानता को मानव-जीवन का सबसे उच्च एवं महत्वपूर्ण उद्देश्य स्वीकारता है। इस प्रकार समाजवादी

आदर्श व्यक्ति एवं दुनिया के संदर्भ में एक नयी अवधारणा है जो नवयथार्थवादी विचारधारा के साथ मानव-कल्याण के लिए कलात्मक अभिव्यंजना है जो पूँजीवाद से समाजवाद एवं साम्यवाद की ओर प्रयाण है। आज का साहित्यकार इसी उद्देश्य के लिए निरन्तर संघर्षशील है।<sup>1</sup>

डॉ० नामधर सिंह मुक्तिबोध को गोर्की के शब्दों में श्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावादी कवि बताते हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि 'अंधे में' जो रोमांटिक स्वप्न है उसका आधार अपने पुन में दिखातमान उत्थानशील शक्तियों का बोध है। कविता के अन्तिम भाग में यही उत्थानशील शक्तियों का बोध है। कविता के अन्तिम भाग में यही उत्थानशील शक्तियों श्रान्ति के लिए सम्मन दिया जाता है। धस्तुतः मुक्तिबोध की कविताओं में प्रयुक्त स्वच्छन्दतावाद सामाजिक यथार्थ-बोध से सम्पृक्त है।<sup>2</sup> इसी प्रकार नयी कविता के अन्य कवियों में जैसे, 'अक्षय', शमशेर पहाड़र सिंह, केदारनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयान सक्सेना आदि कवियों में सामाजिक-यथार्थ-बोध दिया जाता है। इसी सामाजिक यथार्थ-बोध को श्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद अथवा नवस्वच्छन्दतावाद कहा जाता है।

डॉ० प्रेमशंकर का श्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में कथन है, "हिन्दी स्वच्छन्दतावाद अथवा उपायावाद की वर्ण नये काव्य के संदर्भ में कई दृष्टियों में एक विद्यमान है। प्रायः कहा जाता है कि नये काव्य की विभिन्न धाराएँ स्वच्छन्दतावादी काव्य की स्थानी प्रवृत्तियों का विरोध करती हुई सामाजिक यथार्थ अथवा गैर-स्थानी बौद्धिक दृष्टि वाले काव्य का आग्रह करती है। पर समीक्षकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो यह मानता है कि हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के भीतर ऐसे तंतु मौजूद रहे हैं जो आगे चलकर सामाजिक चेतना से अपनी संयुक्त स्थापित करते हुए प्रगतिवादी भूमिका का परिचय देते हैं और

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 103

2. डॉ० उदयराज सिंह : नई धारा । अप्रैल, 1988।:पृ० 6-7

और उसके लिए वे मैक्सिम गोर्की के 'क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद'  
 'रिवोल्यूशनरी रोमांटिसिज्म' का विशेष उल्लेख करते हैं।''<sup>1</sup>

'प्रगतिशील लेखक संघ' के अध्यक्षीय भाषणा के फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य का रचना-संगार जो आदर्शवाद की सीमाओं के अन्दर यथार्थ का जो रूप विकसित हो रहा था वह जब छलांग लगाकर सामाजिक यथार्थवाद की विचार धारा के रूप में उभर कर सामने आया। साहित्यिक लड़वादिता, ध्वनिवादिता परम्परागत सौन्दर्य चेतना आदि पर प्रहार और साहित्यकारों से क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद एवं समाजवादी यथार्थवाद की तरफ बढ़ने वाले साहित्यिक स्थान की माँग ने प्रेमचन्द्र के अध्यक्षीय भाषणा के बाद हिन्दी के साहित्यकारों के मार्गदर्शन का कार्य किया। कामायनी की रचना पूरी करने के कुछ ही दिनों बाद प्रसाद की स्वर्णवासी हुए। उसी के आस-पास स्वच्छन्दतावादी काव्य का भावबोध बदलाव की प्रक्रिया में था। पन्त 'युगान्त' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना-प्रक्रिया में थे। 'निराला' अपनी पेटली सरोज के निधन के बाद आश्रम में आ गये थे। 'निराला' सरोज-स्मृति' में कल्याण के साथ सामाजिक विद्रोह की अभिव्यक्ति दे रहे थे। सन् 1937 में निराला की 'घर तोड़ती पत्थर' जैसी सामाजिक चेतना की कविता लिखी गयी जिससे सामाजिकता की भावना को जल मिला। सन् 1938 में 'स्वप्न' का प्रकाशन हुआ। पन्त ने स्वप्न की मनोभूमि को स्पष्ट करते हुए लिखा कि 'इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों की अपनी पोखरा-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।''<sup>2</sup> फलस्वरूप हिन्दी कविता की वैयक्तिकता की प्रवृत्ति जो स्वच्छन्दतावाद में सशक्त अभिव्यक्ति पा रही थी, उसका रूप थोड़ा हवातोन्मुख होने लगा। और यहाँ से कविता सामाजिक अनुभूतियों से सज्ज होने लगी। परिक्षा के परिवर्तन के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावाद एक नयी करवट लेता है और इस

1. डॉ० प्रेमशंकर : नयी कविता की भूमिका : पृ० 11

2. स्वप्न : अंक 1 : 1938

कविता-प्रवाह में वैयक्तिकता और सामाजिकता का सुन्दर समन्वित रूप देखने का मिलता है। कविता यहां यथार्थवादी चेतना को लेकर आगे बढ़ती है। यथार्थवाद का नवीन विकास तथा समाजवादी यथार्थवादी दृष्टि भी इस धारा के आयाम को बढ़ाने में सहायक बनती है। इस कविता के नवीन संसार में नव-मानव की समस्याओं का आकलन होने के फलस्वरूप कविता सामाजिक धरातल को स्पर्श करती है।<sup>1</sup>

वस्तुतः समाजवादी चेतना मानव में एक संप्रगामीन रूप उत्पन्न करती है। अतः यथार्थता का सम्बन्ध मानव के बाहरी एवं आन्तरिक दोनों स्तरों से जुड़ता है। प्रगतिशील साहित्यकार अपनी कला में क्रांतिकारी समाजवादी चेतना विकसित करता है। प्रसिद्ध चीनी कवि पेचला नेल्सा की कविताओं में इसी स्वर की प्रधानता है। इसी विन्दु पर विमर्शों, चरित्रों, संघर्षों, संघातों में समाजवादी कला नये रूपों में दिखार्ह पड़ती है। अतः सामाजिक चेतना ऐसे सम्पूर्ण साहित्य के विकास की कड़ी है जो साहित्य मानव का दर्शन स्थित रूप में नहीं करता, बल्कि उसके गतिशील, द्विआयामी, वर्ग संघर्ष, पारस्परिक संघर्ष और आन्तरिक स्तरों में करता है। इसी प्रक्रिया में समाजवादी यथार्थवाद अथवा क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद की चेतना विकसित होती है। इसी विन्दु पर नवस्वच्छन्दतावादी चेतना भी पल्लवित होती है। अतः नयी कविता में सामाजिक चेतना के साथ-साथ क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति मिलती है। यह क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद नवस्वच्छन्दतावाद से जुड़ जाता है। सामाजिक चेतना अपनी कलात्मक अभिव्यंजना के रूप में नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को विस्तार देने में सक्रिय भूमिका का काम करती है। अतः नयी कविता का कवि जब सर्वद्वारा धर्म, वर्ग संघर्षों, क्रांति, बदलाव की जगह पर्याप्त करता है वहाँ यह समाजवादी यथार्थवाद का सहारा लेकर प्रगतिशीलता की यात्रा करता है।

श्री गिरिजा कुमार माथुर, डा० केदारनाथ सिंह, श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,



की गजानन माधव मुक्तिमोह, आदि कवियों के काव्यों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

### नवमानववाद :

मानव संसार की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। संस्कृति, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म के चिंतन से इसके व्यक्तित्व में और भी निखार आया है। मानव की स्वयं की श्रेष्ठतम उपलब्धियों के कारण साहित्य में भी मानव के नये प्रतिमान स्थापित किए हैं। जीवन के प्रति नयी निष्ठाओं ने, मधीन सामाजिक मान्यताओं में, तथा अन्य क्षेत्रों में सभी जगह परिवर्तन आया है। साहित्य के क्षेत्र में मानव की इसी प्रवृत्ति को मानववाद की संज्ञा मिली। ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप नयी कविता में मानव चिंचित अपने नये रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। यहाँ उसकी अपनी एक अलग ही पहचान पनी है। जिसे नवमानववाद कहा गया है।

वस्तुतः मानववाद का विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ है। अतः विज्ञान की प्रगति भी मानव के द्वारा ही विकसित हुई है। फलतः आधुनिक युग में मानव ही प्रमुख है। समाजवाद भी मानववादी विचारधारा है क्योंकि समाजवाद का लक्ष्य मानव-कल्याण है। वह मनुष्य को ही अपने भाग्य का नियामक मानता है। वह विज्ञान में आस्था रखता है जो मानव अस्तित्व की निरन्तर प्रगति की ओर ले जा रहा है।

नवमानववाद, मानव के भोजन, शान्ति स्वतन्त्रता की रक्षा में कृत संकल्प है। उसकी स्थिति आज मनुष्य की गरिमा से साक्षात्कार करने की है, जिससे एक नयी महान मानव संस्कृति प्रकाशमान हो उठी है। डॉ० नवल किशोर के अनुसार "मानववाद जीवन के प्रति ऐसा दार्शनिक अभिज्ञान है, जो मनुष्य के इस लोक में आधुनिक कल्याण की ओर जीवन के समुन्नत चरान्तर की दिशा देता है।" (वस्तुतः मानववाद मनुष्य के महत्त्व के समक्ष किसी विराद रहस्यमय सत्ता का विरोध करता है। यह सामान्य

जन को ही सर्वोपरि मानता है।

मध्यकाल में धार्मिक भावना को अधिकता के कारण मानव का मत था कि सृष्टि का नियामक कोई न कोई देवता या दिव्य शक्ति के पराभूत है। मनुष्य तो इस देवता या दिव्यशक्ति की कठपुतली था, जो भी कार्य सम्पन्न होता था वह ऊपर ही करता था, उसी की कृपा से होता था, किन्तु आधुनिक काल में ऐतिहासिक बदलाव के कारण यह मान्यता खण्डित हो चुकी है। आज सर्वत्र मानव ही सामर्थ्य एवं उसकी उपसब्धियाँ दिखानाई पड़ती हैं। स्वच्छन्दतावादी साहित्य में मानव का व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप में उभरा है। यहाँ मानव ही सर्वोपरि माना गया है। अतः यही मानव यहाँ नव मानव हो गया है। उसने अपनी अलग अस्मिता बना ली है। नव मानव के रूप में संघर्षरत मानव, समाज द्वारा पराङ्कित, शोषित मजदूर, किसान सभी का चिन्ता साहित्य में मिलता है। यह नवमानव अपनी कार्य कुशलता से अपनी विचारधारा को व्यक्तित्व रूप देना चाहता है। समाज को नये रूप में बदलना चाहता है। जिसमें समाजवादी यथार्थवादी चेतना भी सम्मिलित है। इसी समाजवादी यथार्थवादी चेतना से नवमानव का स्वल्प और अधिक स्पष्ट अभिव्यंजित होता है।)

मानवेन्द्रनाथ राय के कथनानुसार, 'उन्नीसवीं शताब्दी के क्रांतिकारी विचारकों ने व्यक्तिवाद के मानववादी सिद्धान्त से प्रेरित होकर एक धर्म निरपेक्ष पुद्गलवादी नैतिकता की सम्भावना महसूस की। अतः उन्होंने मनुष्य और समाज के अध्ययन में भौतिक विज्ञानों के सिद्धान्तों और प्रणालियों का व्यवहार किया था। चेतन और अचेतन प्रकृति का ज्ञान तो वही पहले की तुलना में आज इतना अधिक है कि मानव-जीवन अन्तर-सम्बन्धों के प्रति सहज वैज्ञानिक दृष्टि निरूप्य ही लाम्बघट सिद्ध होगी।' मानवेन्द्र नाथ राय की इसी विचारधारा का नाम

नवमानववाद पढ़ा। डॉ० अजय सिंह का उक्त है, “नवमानववाद समाजवादी विचारधारा में विश्वास करने वाला है। तथा मानववादी, मानव-प्रेम एवं नए-मानव का प्रेमी है। नवमानव ऐतिहासिकता को महसूस करता है, मनुष्य की प्रतिष्ठा की समझ उसमें है। नव-मानव की वैचारिकता में मार्क्स, लेनिन की विचारधारा की प्रस्तुति है। नव-मानव समाजवादी क्रांति का प्रेमी है। समाजवादी क्रांति के द्वारा यह जनवादी आन्दोलन को अतिशील करता है।”<sup>1</sup>

नवमानववाद के संदर्भ में एम०एन० राय का मत है, “नवमानववाद यहाँ एक सावनीति दर्शन के रूप में प्रस्तुत है। नव-मानववाद का अभिप्राय एक पूर्ण व्यवस्था उत्पन्न करना है। सतत विद्यमान, वैज्ञानिक ज्ञान के ऊपर आश्रित होने के कारण यह जहाँ भी विराम लेने वाली व्यवस्था नहीं होगी, यह एक ऐसी परम्परावादी व्यवस्था भी नहीं होगी जो आत्यन्तिकता और एकान्त बुद्धि साहित्य का अभिमत रहेगी। यह अस्तित्व के विविध पक्षों से सम्यक् ज्ञान का तर्क कर एकीकरण होगा, जो यह प्रदर्शित करेगा कि आदमी की विवेकपरकता और भेदिकता मनुष्य का स्वभाव है। अतएव यह एक स्वतंत्र, समन्वित और व्यापक सामाजिक व्यवस्था देने में समर्थ होगा।”<sup>2</sup> ऐतिहासिक बदलाव एवं सामाजिक परिवर्तन के कारण हिन्दी के नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में मानववाद किंचित् अपने नये रूप में परिणत दिखाई पड़ता है। यहाँ मानव ही नव-मानव हो गया है और उसकी अपनी रात पहचान भी है। नव-मानव के रूप में किसान, मजदूर, पीड़ित, शोषित एवं संघर्षरत मानव हिन्दी-साहित्य-जगत में चित्रित, अभिव्यक्त दिखाई पड़ते हैं।”<sup>3</sup>

वस्तुतः नयी कविता मानव की शिखरता में विश्वास करती है। नयी कविता का उद्दिष्ट मानव के स्वाभिमान की रक्षा करना है। उसका मत

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 136

2. M.R.Roy. New Humanism : preface, 2nd edition

3. M.R.Roy. New Humanism : preface, 2nd edition.

3. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 135

है कि मानव प्रबुद्ध चेतनाशील प्राणी पनवर जीवन को भोग, उसके विविध संदर्भों को समझे। यह स्व-चेतना ही मानव को नव-मानव के रूप में ढालती है। क्योंकि उसके बिना मानव विशिष्टता का कोई मूल्य नहीं है। यह मानव की स्व-चेतना उस बात का संकेत है कि यह दृष्टि सामान्य मानव वर्ग को भी सम्मान देती है और समान मानती है। नयी कविता ने रस रोमांस की भूमि में नये सन्दर्भों में संवरण किया है और इस प्रकार उसने मानव व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान की है, यह प्रवृत्ति गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, केदारनाथ अग्रवाल, राम दर्श मिश्र, रघुन्द्र म्हर और रामनरेश पाठक की कविताओं में विशेष रूप से मुखरित हुई है।<sup>1</sup>

नयी कविता का कवि विशिष्ट मानव का विरोध करके, मानव की विशिष्टता को परित्यक्त करता है। उसका अभिमत है कि आज व्यक्ति को व्यक्ति के संदर्भ में समझने की विशेष आवश्यकता है। यदि नयी कविता इस अधिकार का, इस स्वतंत्रता का घोष नहीं कराती तो निश्चय ही इस नयी अनुभूति का अर्थात् नव-मानववाद का कोई महत्व नहीं था। यह नया भाव-घोष उस बात का प्रतीक है कि नयी कविता में उन संकीर्णताओं के विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता है। डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथन है, "लघुता का परिवेश और उसका सन्दर्भ उस जागृत क्षण में पूर्ण है जो उसे संवेदना देता है और उस संवेदना के साथ-साथ उसे उस संदर्भ के प्रति गतिशील बनाता है जो उसकी अनुभूति को प्रभावित करके जीवन का सक्रिय अस्तित्व प्रस्तुत करता है।"<sup>2</sup> नयी कविता में नवमानव ने 'लघु' रूप को इसलिये अपनाया है कि वह समझता है कि क्या बनने के अभिनय में केवल वह प्रतिमा बनकर न रह जाए, परन्तु उसका अपना भी कोई अस्तित्व हो। इसीलिए अपने लघु रूप की स्वीकारा है। लघु मानव क्षण के महत्व को मानता है क्योंकि क्षण में भी उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को ध्वन कराने की क्षमता है। क्षण का दायित्व ही उसमें विश्व, ईमानदारी और स्वतंत्रता को विकसित करता

1. डॉ० रघुन्द्र म्हर : समकालीन हिन्दी कविता : पृष्ठ 66

2. डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान : पृष्ठ 163

है।'' नयी कविता आद्य की मानव विशिष्टता से उत्पन्न उसे नए मानव के नए परिवेश की अभिव्यक्ति है।'' ।

सारतः यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में व्यक्ति को स्वयं और सतत विकासोन्मुख मनुष्य मानकर उसकी प्रकृति को यथार्थवादी दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। यही यथार्थवादी दृष्टि नए मानव का स्व धारणा करती है। यह नए मानव, मानव अनुभूति और मानव सार्थकता को मानता है। नए मानव आधुनिक-युक्त विश्वबंधुत्व से अधिक समसामयिक दायित्व को महत्वपूर्ण मानता है। '' नयी कविता में नये मनुष्य की प्रतिष्ठा, अहंवाद, स्वमानववाद एवं उग्रवाद की प्रवृत्तियाँ सीधे प्रयोगवाद से आई हैं। नये अस्तुतों और तरीकों की खोज एवं नयी भाषा और नवीन नए छन्द के संस्कार उसे प्रयोगवाद से विरासत में प्राप्त हुए हैं।'' 2

### अस्तित्ववाद :

नयी कविता को प्रभावित करने वाली कई प्रवृत्तियाँ हैं, इनमें एक अस्तित्ववादी दर्शन भी शामिल है। इस अस्तित्ववादी अभिव्यंजना के फलस्वरूप नयी कविता प्रयोगवाद से अलग होती है। अस्तित्ववादी दर्शन में व्यक्ति ही सर्वोपरि है। इसमें कवि किसी दर्शन को न मानकर अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति करता है। उस दर्शन का मूल भाव घोर दीयप्रतिष्ठा है। इसमें ईश्वर की सत्ता का स्वीकार-अस्वीकार दोनों ही हैं। अस्तित्ववादी दर्शन मानता है कि यह संसार कम से कम ज्ञान के सत्य से भरी हुई है। वस्तुतः नयी कविता की आन्तरिकता, भाषावादी भाषना, व्यक्तिवाद, सभी के स्वातन्त्र्य और निर्णय सभी ने अस्तित्ववादी दर्शन के विचार उठे हैं। यह दर्शन ईश्वर और धर्म की अवमानना नहीं करता। फलतः उसके समस्त चिंतन का केन्द्र-विन्दु मानव है।

1. सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 : पृ० 401

2. डॉ० रवीन्द्र प्रसाद : समकालीन हिन्दी कविता : पृ० 27

हेगल ने पहली बार, प्राकृतिक, ऐतिहासिक और वैचारिक जगत् को एक गतिशील एवं विजातमान अवस्था से परिचित कराया। अर्थात् हिंसात्मक कृत्यों का त्याग करके मानवता के विकास क्रम में सहयोग दिया। हेगल ने सर्वप्रथम मानव-अधिकारों के प्रति आवाज बुलंद की। किन्तु किर्केगार्ड की विचारधारा इसके विपरीत थी। उसका चिन्तन था कि मानव-इतिहास और उसका चिन्तन प्राकृतिक, ऐतिहासिक और वैचारिक जगत् के ऊपर आधारित नहीं है बल्कि यह व्यक्तिगत स्वयं के अनुभवों से सीखता है। केवल व्यक्ति की सत्य है। व्यक्ति जो संघर्ष एवं वेदना सहता है, उसके अन्दर जो अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के द्वारा यह निर्णयों तक पहुँचता है। समय और संक्रांत से व्यक्ति को अस्तित्व का बोध होता है। वह समझने लगता है कि मृत्यु और अस्तित्व क्या है। अमराप्य और परचाताप की भावना से ज्ञान और नैतिक आधार प्राप्त करता है। अनिश्चय की स्थिति में ईश्वर का महत्त्व प्राप्त करता है। अतः किर्केगार्ड ने माना है कि हमें अपने अस्तित्व की यथार्थता का बोध स्वयं की आन्तरिक अनुभूति से होता है, अतः सत्य हमेशा आत्मनिष्ठ होता है, वस्तुनिष्ठ नहीं। वस्तुतः किर्केगार्ड ने वस्तुगत सत्ता को नकारा। उन्हें वास्तव ज्ञान श्रुति और सामाजिक परिवर्तनों से सरोकार न रहा। यहां तक कि किर्केगार्ड भौतिकवाद की छाया से भी दूर रहे। किर्केगार्ड और यात्परस ईश्वरीय शक्ति को मानते थे, किन्तु प्रो० हेडिगर ने ईश्वर से अस्तित्व को नकारा। हेडिगर का मत था कि हम जो कुछ भी करते हैं वह वस्तुगत ज्ञान से प्रेरित न होकर आत्मगत ज्ञान होता है। वस्तुतः किर्केगार्ड, यात्परस और हेडिगर में यह एक मत था कि तीनों ने वस्तुगत ज्ञान को अस्वीकार करके केवल आत्मगत ज्ञान को माना। किर्केगार्ड के बाद यात्परस ने अस्तित्ववादी दर्शन को और अधिक उभारा और वर्तनी में लोकप्रिय बनाया।

वस्तुतः 'अस्तित्ववाद' दो प्रकार के होते हैं - आस्तिक और नास्तिक। किर्केगार्ड, कार्ल यात्परस, ग्रेगोर मार्स आस्तिक अस्तित्ववादियों की कौटि में आते हैं, जबकि प्रो० हेडिगर, के साथ ज्यों पाल मात्र नास्तिक

अस्तित्ववादियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अस्तित्व अस्तित्ववादी अंतर की सत्ता पर विश्वास करते हैं, जबकि नास्तिकों का विश्वास उस पर नहीं है। जैसा कि सार्त्र ने कहा है, दृष्टिकोण के इस अंतर के बावजूद दोनों में आधारभूत एकता इस मान्यता को लेकर है कि 'अस्तित्व सार से पूर्ववर्ती है।' १

“ हित्जर ने जब फ्रांस पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की, सब वहाँ का मध्यम वर्ग जिस मानसिक पीड़ा से गुजर रहा था, उसका एक रूप अस्तित्ववाद था। धर्म की वस्तुगत उत्पीड़ा को अस्वीकार करने के अलावा सार्त्र ने मानव-सम्बन्धों को केवल परस्पर संबंध के सम्बन्ध माना। वस्तुतः युद्ध फ्रांस में अस्तित्ववादी विचारधारा ने अपना अधिक प्रभाव फैलाया। पुश्तैनी विधियों का एक दल पूँजीवादी संघट से उबरने के लिए एक ही रास्ता देखा था - व्यापक सामाजिक परिवर्तन द्वारा एक नयी व्यवस्था कायम हो। दूसरा दल कहता था - उस तरह के परिवर्तन से कुछ न होगा, अपनी जीज है, निरर्थक संसार में अपना उद्देश्य स्वयं निश्चित करना। 1946 में सार्त्र ने एक भाषणा दिया जो पुस्तक रूप में दिया ‘‘ अस्तित्ववाद मानववाद है।’’ इसमें उन्होंने उन लोगों को उत्तर दिया जो अस्तित्ववाद को मानवता का विरोधी मानते थे। २

डॉ० रामचिलास शर्मा ने अस्तित्ववाद पर प्रिट्ज़ा जर्मन भाषावाद का प्रभाव माना है। उनका कथन है, ‘‘ वह धेतना जो वस्तुगत भीतिवृत्ता से जैसे ही अलग रहता है जैसे प्रिट्ज़ा दार्शनिक दर्शन। यहाँ वह रोमांटिक साहित्य की उस विचारधारा से मिल जाता है जो भाषावाद से प्रभावित थी। रोलिंग के धेतना-सम्बन्धी विचारों को साहित्य में लागू करते हुए ऑनिरिज ने ‘‘ बायोग्राफिया लिटरारिया ‘ में लिखा था कि वस्तुएँ बड़ और मृत हैं, साहित्य में मनुष्य की धेतना ही उन्हें जीवन प्रदान करती है। ‘ डिजेनान ‘ कविता में ऑनिरिज ने लिखा था :

- 
1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा सिद्धान्त : पृ० 144
  2. डॉ० रामचिलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृ० 94

wordworth, We receive but what we give,

And in our life alone doth nature live

अस्तित्ववादी लेख प्रकृति को जिस तरह आत्मसात् करते हैं- उसकी वस्तुमत्ता हटाकर उसे आत्मगत करते हैं- उस तरह की प्रिया रोमांटिक कवि बहुत पहले कर चुके थे।<sup>1</sup> डॉ० जयच सिंह का कथन है, "अस्तित्ववाद मानवीय वैयक्तिक दर्शन। इसकी धारणा का विषय मानव-व्यक्तिगत है। अतः अस्तित्ववाद शक्ति की विशेषता की परख करता है, उसमें निहित उन विशेषताओं को परखना चाहता है जो उसकी विशेषता है। अस्तित्ववादी मानववादी दर्शन है। अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार यह दुनिया कम से कम इंसान के सत्य से भरी हुई है। और व्यवस्था इसका मूल भाव है। मानव से जुड़े रहने के कारण अस्तित्ववादी दर्शन नवस्थच्छन्दतावादी चेतना से जुड़ा है। उसमें ईश्वर की सत्ता के स्वीकार-अस्वीकार के फलस्वरूप हिन्दी कविता में आपुनिकता नवीन रूप में प्रकट करती है। इसके अतिरिक्त किसी भी दर्शन या सिद्धान्त को अस्वीकारना तथा मन में जो आये उसे ही मानना उसकी एक विशेषता है। वस्तुतः अस्तित्ववादी दर्शन से प्रयोगवाद से नयी कविता जन्म ही जाती है। इस दर्शन में मानवीय अनुभूतियाँ ही सर्वोपरि हैं। इस दर्शन के फलस्वरूप कवि या साहित्यकार किसी दर्शन या सिद्धान्त को अस्वीकृत कर अपनी छद्माओं की अभिव्यक्ति करता है। इस स्वीय अनुभूति की अभिव्यक्ति में स्वच्छन्दतावादी चेतना एक नवीन रूप लेती है। वस्तुतः 'नयी कविता' की आत्मोन्मुखता, व्यक्तिवादिता, क्षणवादी भावना एवं मानववाद के आवरण में मनुष्य के स्वातंत्र्य तथा उसके अपने निर्णय, चिन्तन की महिमा के अंकन में इसी दर्शन की प्रेरणा



घोसती है। अस्तित्ववादी दर्शन धर्म और ईश्वर को नहीं मानता है, किन्तु उसके समस्त चिंतन का केन्द्र मानव है।<sup>1</sup>

वस्तुतः अस्तित्ववादी दर्शन का मूल तत्त्व व्यक्ति का अस्तित्व है। सार्त्र की विचारधारा है कि यदि ईश्वर की सत्ता नहीं है तो कम से कम एक सत्ता अवश्य ऐसी है जिसमें अस्तित्व सार से पूर्ववर्ती है। यह सत्ता ऐसी है कि किसी अवधारणा द्वारा उसकी परिभाषा की जा सके। उससे पहले ही उसका अस्तित्व होता है और यह सत्ता है मानव।<sup>2</sup>

अस्तित्ववादी धारा की विचारणा है व्यक्ति अपनी स्वच्छा के विरुद्ध इस संसार में लाया गया है, अतः उसका कोई शुभाशिक्ष नहीं है, इसीलिए वह अकेले जीने के लिए विवश है। उसे ही अपना भविष्य देखना है, और अपने अस्तित्व की रक्षा करना है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में जो पीड़ा, संशय, खिन्नता, संकट, आत्महत्या की चाह, अन्वेषण, उषाकाई, भीड़ में अजनबीपन का रहस्यमय सदा सत्य अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित है। 'अशेष' गिरिजा कुमार नाथुर, सहमीरान्त धर्मा, विजयदेव नारायण ताहो, भारत भूषण अग्रवाल, सूर्येश्वर दयाल सक्सेना, जगदीश गुप्त आदि अनेकों कवि इस अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित हैं। डा० रामचिलास शर्मा ने तो कहा है, 'यह दर्शन नामधर सिंह को अशेष से, अशेष को सार्त्र से, सार्त्र को डिरेक्ट से, डिरेक्ट को यूरप के अनेक भाषवादी दार्शनिकों से प्राप्त हुआ है।'<sup>3</sup> वस्तुतः यह दर्शन अस्तित्ववादी दर्शन ही है। इन सबों का मूल भाव है कि मनुष्य की चेतना से स्वतन्त्र किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं है। 'जैसे जैसे धुँवर भाव मान रह जाता है, वैसे ही नयी कविता में विचार धुँवर अनुभूति हो जाती है।'<sup>4</sup> इसकी पुष्टि में

1. डॉ० अशेष सिंह : नवतत्त्वचिन्तावाद : पृ० 120-21

2. डॉ० शिव कुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा सिद्धान्तः पृ० 144

3. डॉ० राम चिलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृ० 51

4. वही:

विजयदेव नारायण साहू ने लिखा, " छायायनी में जो अनुभूति दर्शन में परिवर्तित हो जाती है, उसे अक्षेय फिर दर्शन से अनुभूति में परिवर्तित करते हैं। साहू के तून को सिद्ध किया नामवर सिंह ने और कहा, " स्पष्ट है कि प्रसाद और अक्षेय का यह अन्तर छायावाद और नयी कविता का अन्तर है।" 1

### नवरहस्यवाद :

नयी कविता में अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर छायावाद से अलग होने की चेष्टा की। परन्तु इस अलग होने के बावजूद भी नयी कविता में रोमांटिक प्रवृत्ति एवं रहस्यवाद मौजूद है। यह रहस्यवाद निचरीय शक्ति से सम्पन्न न होकर मानव व्यक्तित्व से परिपूरित है। अतः यही नवरहस्यवादी चेतना है। यह रहस्यवादी चेतना मध्ययुगीन संतों की रहस्यमायना से प्रेरित है। यह प्रवृत्ति 'अक्षेय' के काव्य में यम-तम देखी जा सकती है। नयी कविता को रहस्य भाषना का एक स्रोत प्राचीन ग्रंथनिबद्धित और बौद्ध दर्शन भी है। दूसरा स्रोत पश्चिम के अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव है। 'अक्षेय' का आलोचनात्मक चिंतन जिस प्रकार टी०ए०० अभिव्यक्ति से प्रभावित है वैसे ही उनकी कविता पर अभिव्यक्ति की ईसाई धर्म भाषना का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अतः नयी कविता में आध्यात्मिकता एवं रहस्यवाद नवीन रूप लिए हुए नवरहस्यवाद के रूप में प्रकट हुआ है।

नयी कविता में नवरहस्यवाद को सभी आलोचकों ने स्वीकार दिया है। डॉ० नामवर सिंह ने इसे 'नूतन रहस्यवाद' नाम दिया है। डॉ० सिंह का कथन है, " नयी कविता का नूतन रहस्यवाद राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षकालीन छायावादी रहस्यवाद से कम तेजस्वी और अधिक सांप्रदायिक है।" 2 डॉ० रामधिलास शर्मा का अभिमत है, " नयी कविता के नवरहस्यवाद का कौटुंबिक, दार्शनिक या सामाजिक पक्ष नहीं है जबकि छायावादी रहस्यवाद में सामाजिक पक्ष मौजूद था।" 3 उन विद्वानों के अतिरिक्त

1. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृष्ठ 25

2. डॉ० नामवर सिंह : आलोचना - 28 : पृष्ठ 69

3. डॉ० रामधिलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृष्ठ 77

डॉ० जगदीश गुप्त, 'अधेय' लक्ष्मीकान्त शर्मा, आदि नयी कविता के प्रवर्तकों ने भी नयी कविता में नवरहस्यवाद को माना है।<sup>1</sup> 'अधेय' तो नवरहस्यवाद के प्रवर्तक हैं। इन्हीं ने प्रेरणा पाकर नयी कविता के अन्य कवि नवरहस्यवाद के क्षेत्र में आगे आये। नयी कविता का नवरहस्यवाद आत्म अनुभूति और आध्यात्मिक भावना से भरपूर है। वस्तुतः ईश्वर को साक्षात् न मानकर व्यक्ति के 'मैं' रूप में अदृश्य शक्ति रूप में माना है।

नयी कविता में नवरहस्यवादी भावना पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव है। अस्तित्ववादी दर्शन में आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकार के साहित्यकार मिलते हैं। नास्तिक रूप में अस्तित्व ईश्वरीय रूप और आस्तिक रूप में व्यक्ति 'मैं' को अनांतर नवरहस्यवादी भावना को प्रकट किया है। क्योंकि नयी कविता के वि. अध्यात्म रूप को परोक्ष में न मानकर अपरोक्ष रूप में, व्यक्ति संदर्भ में मानते हैं।

वस्तुतः अधेय की रचनाओं में जो नवरहस्यवादी दर्शन होते हैं वह कीर्तिकांत और वात्सवी के अस्तित्ववादी विचार धारा के साथ-साथ उन पर ईसाई मत के मूल सिद्धान्तों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।<sup>2</sup> आंगन के बार-बार की कविताओं में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। 'अधेय' ने अपने नवरहस्यवाद में विज्ञान द्वारा पीड़ित मनुष्य के जीवन का चित्रण किया है। अतः यह नवरहस्यवाद सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट नहीं पहुँच पाता। डॉ० रामचिलास शर्मा का कथन है, "'अधेय' का रहस्यवाद बहुत ही सुरक्षित हिस्सा का रहस्यवाद है।"<sup>3</sup> डॉ० शर्मा ने इसे नयी कविता से मिलाते हुए कहा है, "'हिन्दी कविता अर्थात् नयी कविता को अधेय ने सम्भल पनाया है सत्य के साक्षात्कार से, अपने नवरहस्यवाद से।"<sup>4</sup> 2 कायावादी कवियों के रहस्यवाद में यथार्थवाद से पलायन था, 'ले चल मुझे भूला-पा देकर' किन्तु उसमें चिह्नोद का स्वर भी मौजूद था अतः राष्ट्रीय भावना को विकसित किया और लड़ियों को तोड़ने

1. डॉ० रामचिलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृ० 77

2. वही

:

: पृ० 72

का आवाहन किया। परन्तु यह रहस्यवादी दर्शन अश्वेय के काव्य में दुर्लभ है। इसीलिए विजयदेव नारायण ताही ने कहा कि प्रसाद ने कानायनी में जो अनुभूति दर्शन की तरफ मोड़ी है उसे अश्वेय नहीं उचितता में दर्शन से अनुभूति में वारंवारित कर देते हैं। यह हुंकर कार्य 'अश्वेय' ने संभव कर दिखाया। 'अश्वेय' के अतिरिक्त हुंकर नारायण की 'आत्मजयी' में नवरहस्यवादी चेतना मिलती है। उन्होंने वस्तुवादी दृष्टिकोण और भीतिव जीवन को नकार कर आत्मवादी दर्शन प्रतिपादित किया है। काल, मृत्यु, शरीर आदि से परे देखा है। हुंकर नारायण ने वैदिक और उपनिषद् कालीन संस्कृति को प्रतीक रूप में अपनाकर साँझ जीवन की समस्या को उठाया है। वस्तुतः यह नवरहस्यवादी चेतना ही है। इनके अलावा धर्मवीर भारती, वीरेन्द्र कुमार जैन एवं गिरिजा कुमार माथुर में भी नवरहस्यवादी चेतना दिखाई पड़ती है। 'अंधा युग' में जो अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था प्रकट की है वह नवरहस्यवादी चेतना ही है।

वस्तुतः सामाजिक तिरस्कार, अपमान, पीड़ा से व्यक्ति संसार से मोह त्यागना शुरू कर देता है। इससे निमुख होकर जितनी रहस्यमय, अलौकिक शक्ति का चुम्बकीय आकर्षण अपनी ओर पाता है। उसके प्रति उत्सुकता, विश्वास, लालसा, मिलनानुभव व्यक्त करने लगता है। इसी अनुभव की अवस्था को रहस्यवाद कहते हैं। किन्तु नहीं उचितता में इस अलौकिक सत्ता को व्यक्त के 'मैं' द्वारा व्यक्त किया गया है। अतः यही 'मैं' अलौकिकता का प्रतिनिधित्व करके नवरहस्यवादी अनुभूति परिलक्षित होता है। कभी-कभी सहृदय भावुक यदि इस सर्वव्यापिनी, अश्वेय, अप्रत्यक्ष शक्ति के प्रति समर्पित होकर उसके लिए प्रतिफल व्याकुल रहता है। वस्तुतः रहस्यानुभूति रहस्यवादवादी चेतना की आत्मगत प्रवृत्ति है। जो देहा-काल और सत्ता से परे अनन्त शक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करती है।

'चाहे प्रकृति-प्रेम हो, चाहे नवरहस्यवाद- उसकी सीमित सार्थकता है बड़ाऊ कविता के रूप में। अनुभूति सच्ची होगी तो कविता अपने आप रच जायेगी-यह स्वामी भावना अधिकांश नहीं उचितता के लेखकों

समीक्षा आकलन करती है। इस प्रकार नयी समीक्षा का विस्तार नयी कविता का मूल्यांकन है। जैसा कि बुद्ध ने आलोचना के व्यावहारिक पक्ष को मजबूत किया। उन्होंने नयी समीक्षा के पाँच तथ्यों को उजागर किया :

1. आयरनी || Irony || विरोधाभास || Paradox ||
3. तनाव || Tension || 4. शब्द विधान || Texture ||
- और 5. अर्थ विधान || Structure || उनमें व्यंग्य, विरोधाभास एवं तनाव प्रवृत्तियाँ नयी कविता में परिलक्षित होती हैं।

आयरनी का सम्बन्ध व्यंग्य से है। इसका उद्भव यूनानी कामेदी से माना गया है। जिसका नामक पत्र ऐसा हाव-भाव प्रदर्शित करता था कि उसे कुछ भी नहीं आता, किन्तु वास्तव में वह मोखीखोर लोगों को नीचा दिखाता था। अतः आयरनी का मूल भाषार्थ वह हुआ जो अगर से कुछ न दिखे परन्तु अन्दर में वह सत्य हो। इस प्रकार आयरनी आत्मानुभूति की अभिव्यञ्जना की एक प्रक्रिया है। इसके द्वारा कवि, दार्शनिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से हटकर ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य भी करता है।

इस व्यंग्य परक विडम्बना का उद्भव 1800 में रूसी कवि अलेक्जेंडर ब्लोक ने किया। उसने कहा कि हमारी पीढ़ी के लोग एक ऐसी विमारी से ग्रस्त हैं जो पूँजीपतियों की देन है। इसका सम्बन्ध आत्मा की अज्ञानता से है, और इसे विडम्बना कहा जा सकता है। इस पूँजीवाद की विसंगतियों का प्रभाव संवेदनशील, कवि, लेखकों और कलाकारों में अधिक पाया जाता है। इसी व्यंग्य, विडम्बना का बोध नयी कविता में परिलक्षित होता है।।

आयरनी के संदर्भ में डॉ० अजय सिंह का कथन है, “रोमांटिक आयरनी स्वीय अनुभूति की अभिव्यञ्जना की एक प्रक्रिया है। इसके द्वारा कवि, दार्शनिक एवं सौन्दर्यशास्त्री दृष्टि से हटकर ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से अनुभूतियों को चित्रित करता है।

सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य करता है।\* ।

वस्तुतः नयी कविता का विकास स्वाधीनता के पश्चात् हुआ । अतः उसमें भारतीय समाज और जीवन की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति मिलती है । स्वाधीनता के बाद सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में विसंगति एवं विरोधाभास को अधिक अभिव्यक्ति मिलती है । ये स्थितियाँ उत्पन्न होने के कारण सामन्ती एवं पूँजीवादी व्यवस्था में टकराव उत्पन्न हुआ । व्यापक समाज से कवियों, कलाकारों का तनाव होने के कारण भी विरोधाभास की स्थिति बन गई । इस विसंगतियों और विरोधाभास की वास्तविकता के प्रति नयी कविता के कवियों में बौद्धिक चेतना जाग्रत हुई । अतः नयी कविता के कवियों ने इनके प्रति संवेदनशील प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की । इसमें भी दो दृष्टिकोण हैं, एक समाजवादी यथार्थवादी दूसरा रोमांटिक । जिन कवियों में समाजवादी यथार्थवादी चेतना है उनमें समाज में व्याप्त विसंगति और विरोधाभास के साथ आत्म-स्वीकृति का बोध है । जिन कवियों में रोमांटिक बोध है, उन्होंने सामाजिक विरोधाभास को छोड़कर अपनी विडम्बनापूर्ण स्थिति का विवेचन किया है । इस विडम्बना के सामने असहाय समर्पण का भाव भी है । इस विसंगति और विरोधाभास में व्यंग्य की अपरिमित शक्ति होती है । सामाजिक तिरस्कार की स्थिति में व्याप्त विसंगति और विरोधाभास, संवेदनशील अग्रजित के मन में तीव्र आक्रोश उत्पन्न करता है अथवा गहरी पीड़ा । अतः नयी कविता के कवियों में जो व्यंग्यपरकता दिखलाई पड़ती है, उसके मूल में आक्रोश और गहरी पीड़ा का भाव निहित है ।

तनाव मानसिक क्रिया है । वस्तुतः नयी कविता के प्रत्येक कवि के अन्दर इसका प्रभाव मौजूद है । वह प्रत्येक क्रिया-कलाप में तनाव महसूस करता है, क्योंकि उसकी उच्छास, कामनाएँ अतृप्त रहती हैं । वह किसी

भी कार्य से पूर्ण में सन्तुष्ट नहीं है । अतः उसके अन्तर मनोवेष्टानि क दबाव बना रहता है, जिसकी परिणति तनाव के रूप में होती है । कभी उसे, सामाजिक परेशानियाँ घेरे रहती हैं, कभी, वह व्यक्तिगत रूप से तनाव ग्रस्त है, जो कभी परिणम करने पर भी उसे, उसका श्रेय प्राप्त नहीं होता । फलतः उसके मस्तिष्क में तनाव जो पीड़ा घरावर बनी रहती है । 'नयी समीक्षा' के तनाव सिद्धान्त के समीक्षक सन. एन. टेंट की मान्यता है कि साहित्यकार इसका प्रयोग सांकेतिक अर्थ में करता है । अन्तर्मुख और बहिर्मुख शब्द प्रयोग में आयरनी भी परिलक्षित होती है ।

वस्तुतः नयी कविता में जो आयरनी, विरोधाभास एवं तनाव दिखनायी पड़ता है वह कवि को आत्मपेचना और समकालीन जीवन के प्रति चिन्ता की देन है । आयरनी, विरोधाभास एवं तनाव की प्रक्रिया यह सिद्ध करती है कि कवि अब पूर्णतः से आत्मगत घेरे में कैद न रहकर वस्तुगत जगत से भी आत्मोपता रखता है । सामाजिक यथार्थ की तरफ स्थान रखता है । नयी कविता में समाजवादी यथार्थवादी आयरनी सबसे अधिक गुणितबोध के काव्य में परिलक्षित होती है । गुणितबोध ने राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सभी पक्षों पर व्यंग्य किया है । 'चौद का मुँह देढ़ा है' कविता संग्रह में इसे परिलक्षित किया जा सकता है । इसमें दमनकारी शासन-व्यवस्था और उसके सहयोगी तत्त्वों पर प्रकाश डाला है । यह व्यंग्यवादी चेतना जीवितता का परिणाम है । जीवितता के कारण कवि विरोधाभास और मनाव के मध्य सत्य की खोज करता है । इसी सत्य की अभिव्यक्ति के लिए यह आयरनी का सहारा लेता है ।

नयी समीक्षा में शिल्प पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है । शिल्प के द्वारा कविता को समझा गया है । जिसमें भाषा संरचना, बिम्ब, प्रतीक एवं प्रगीत मुख्य हैं । भाषा के द्वारा ही काव्य का पूर्ण अनुभव प्राप्त होता है । भाषा द्वारा ही काव्य के मर्म तक पहुँचा जा सकता है । नयी समीक्षा का समीक्षक भी भाषा संरचना में शब्दों के अन्तर ही महत्व देता है । वह सोचता है कि शब्दों के माध्यम से ही हम समीक्षा करेंगे किसी कवि के

व्यक्तित्व के माध्यम से नहीं। भाषा ही परिवर्तनशील एवं गतिशील है, व्यक्तित्व नहीं। भाषा की यह कसौटी नयी कविता में भी व्यक्त हुई है। ऐसे आशय का अभिमत डॉ० शिव प्रसाद सिंह ने भी व्यक्त किया है कि यदि नयी कविता को परवा जाए तो हमें निराश नहीं होना पड़ेगा क्योंकि सामान्य भाषा पर सर्वाधिक जोर नयी कविता में दिया गया है। भाषा का परम्परागत-अभिधात्य स्व नये कवियों ने स्वीकार नहीं किया, परन्तु उसने भाषागत आवरणों को हटाने का कार्य किया।<sup>1</sup>

वस्तुतः : इसीलिए नयी कविता के कवियों ने भाषाशास्त्र में समतुल्यता न होकर, विद्रोही मुद्रा में, बोल-चाल की भाषा ही है। जिसमें लगातार अभिव्यक्ति की चेतना है। नयी कविता की भाषा में सभी प्रकार की भाषाओं के शब्द मिलते हैं।

मनोविज्ञान पर आधारित आलोचना में विषय भी मनोवेज्ञानिक यौनपरक ही मिलते हैं। वस्तुतः नयी समीक्षा में जिस प्रकार के विषयों को चर्चा हुई है, वह प्रायः सिद्धान्त पर ही आधारित है। इसी सिद्धान्त की लेकर नयी कविता भी उदय हुई है। फलतः इस प्रकार के अधिकांश विषय नये कवियों की मौलिक सुबनात्मक कल्पना से पगे हुए हैं। अव्यवस्था की उजागर करने वाले वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करने वाले, मुक्त आसंग और यौन छंटाओं की अभिव्यक्ति करने वाले तथा कुछ विदेशी आन्दोलनों से प्रभावित नयी कविता के विषय प्राचीन परम्परा से हटकर ही उभर कर आये हैं।

नयी कविता में 'प्रतीकों' के तीन रूप उपस्थित हुए हैं। एक में वे प्रतीक हैं जिनका सम्बन्ध भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा से है, जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, स्पष्टमूलक और बिना युक्त प्रतीक है। दूसरे में वे प्रतीक हैं, जिनका काव्यशास्त्र की

1. कल्पना : § में डॉ० शिव प्रसाद सिंह, संपादकीय में नमोस्तेन :

स्थिति और समस्याएँ § अग्रस्त - सितम्बर, 1969 : पृ० 18



प्रमुखता पर धन दिया है : " शैलीगत, प्रयोगशील, शैली के मार्जन और उन्नयन और अंत में " एक शब्द में उसे प्रयोग शैली कहा जा सकता है । " ।

वस्तुतः नयी समीक्षा में शिल्प-पक्ष पर अधिक धन दिया गया । यही प्रवृत्ति भारतीयों ने भी अपनायी । आतः चित्र, प्रतीक, प्रगीत के अन्दर जो छायावादी स्थान था, वह नयी कविता में आकर पूर्ण रूप से पक्षित गया । जो चित्र एवं प्रतीकों में छायावादी कवियों ने छलसुरत सौन्दर्य को निहारता था वहीं नयी कविता के कवि ने चित्र और प्रतीकों में सर्वद्वारा न, मजदूर वर्ग के नारी सौन्दर्य पर दृष्टिपात किया । अतः नयी कविता के कवि ने वर्तमान सौन्दर्य में चित्र उभारा, तथा उसके लिए नये उपमान एवं प्रतीकों का अधिकतम प्रयोग किया । उसके साथ ही नयी कविता के कवि ने शिल्प-पक्ष पर जोर देना प्रारम्भ किया । अतः नयी समीक्षा से इन्हीं दिग्दर्शकों पर नयी कविता का प्रभाव होता है ।

1. डॉ० रामेश्वर नाथ कटेलवाल : 'संभावना' शोध-तंत्र विशेषांक  
 वर्ष 1977 'नयी कविता' • आचार्य नन्द हुलारे पाण्डेयी-समीक्षा  
 डॉ० अजय सिंह । मुख्य विषयविशालय : हिन्दी विभागीय  
 पत्रिका : पृ० 276

**सप्तमः अध्यायः :**

नयी कविता की भावगत स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ

सर्जनात्मक कल्पना

अनुभूति

व्यक्तिवाद

मानववाद

विद्रोह, प्रीति और नवीनता

प्रेम

प्रकृति प्रेम - देवा प्रेम

सौन्दर्य

संस्कृति - लोक संस्कृति

विस्मय एवं रहस्यानुभूति

अवज्ञाद-विवाद- वेदना भाव

**सप्तम अध्याय**

नमः कविता ही भावगत स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ

### सर्जनात्मक उत्पत्ति :

“ स्वच्छन्दतावादी कविता सर्वनात्मक कल्पना से अपना  
स्व निर्मित करती है। ” । कविता भी काव्य का निर्माण सूचनात्मक  
कल्पना द्वारा ही संभव है। कल्पना के अभाव में कोई भी साहित्यकार  
सफल नहीं हो सकता। छायावादी, स्वच्छन्दतावादी काव्य में अतिशय  
कल्पनाशीलता के कारण विद्रोह की लहरें उठने लगी। तत्पश्चात्  
कविगण अपने काव्य में यथार्थ का पुट कल्पना के माध्यम से देने लगे।  
जैसे प्रगतिवादी युग में यथार्थवादी चेतना मार्क्सवादी स्व में मिलती है  
और प्रयोगवाद में फ्रायडिज मनो विश्लेषण के स्व में परिलक्षित होती  
है। किन्तु नयी कविता में इन दोनों के अतिरिक्त सर्वद्वारा वर्ग की  
क्रान्तिकारी, यथार्थवादी सूचनात्मक कल्पना भी परिलक्षित होती है।  
जिसकी चेतना समाजवादी यथार्थवाद से स्वतः जुड़ जाती है। फलतः  
क्रान्तिकारी सर्वद्वारा वर्ग एवं समाजवादी चेतना से विकसित हुई धारा  
स्वच्छन्दतावादी प्र वृत्ति बन जाती है, जो नयी कविता में प्रस्फुटित  
हुई है।

वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी चेतना नयी कविता के कवियों में भी परिलक्षित होती है। चित्ता जापान भिन्न-भिन्न रूपों में दिया है। नयी कविता का कवि जीवन सत्यों को मूर्त करने के लिए सृजनात्मक कल्पना का अग्रगण्य साधन है। उन सत्यों को अनुभव में उतारता है। वर्तमान जीवन सत्य, चेतन प्रिया से अचेतन में पहुँचकर सुँटा प्रसिद्ध होते हैं और अवकाश पाते ही मानव-व्यवहार में परिणत हो जाते हैं।

सामाजिक परिदृश्यों के क्लृप्त मनुष्य की कुंठारें भी उतनी ही महान और ठोस होती जाती हैं। फलतः आज का कवि सामाजिक चेतना से भी आक्रान्त है, जिससे उसकी कविता का मुख्य स्वर प्रतिकारी हो उठा है।

नयी कविता में प्रगति चेतना की शुद्धतात स्वातंत्र्योत्तर तामीन है। अतः नयी कविता में जहाँ विजित महानगरीय सभ्यता एवं यंत्र संपन्न यथार्थवादी कल्पना का प्रयोग है। वहीं ग्रामीण कलाओं की नग्नता से लेकर बड़े-बड़े पूँजीपतियों द्वारा संचालित पत्र-पत्रिकाओं उपयोगों एवं विद्यालयों में परिष्कृत शोका और अनीति से कुंठित युवा पीढ़ी के भयंकर आक्रोश की भी कल्पना है। आज की सज्ज अनुभूति की सज्ज कल्पना कवि ने की है :

छूटे सा हमको तजकर तट के पास  
यंधर गति से धड़ बायगा इतिहास  
सामुद्रिका भी कैवल  
साधित होगी जिस दिन हम  
अपनी वैयक्तिकता हार,  
क्या पायेंगे।

प्रश्न

हम क्या पायेंगे।'' ।

नयी कविता में अभिव्यक्त कल्पना का अभिप्राय यह है कि इन कविताओं में यथार्थ अनुभवों के प्रति कवि की अटूट निष्ठा। मुक्तिबोध की रात की कल्पना धीरे-धीरे व्यक्त होने के कारण, सितारों को उल्लासना बताते हैं।<sup>2</sup> दुनिया से संलग्न, कुंठित, कवि की आधाज जब कोई नहीं सुनता तो कवि कल्पना करता है।

मुझे पुकारती हुई पुकार ली गयी वहीं .....३

1. डॉ० धर्मवीर भारती : सातमीत वर्ष : पृ० 32

2. गजानन माधव मुक्तिबोध : प्रतिनिधि कविताएँ : पृ० 10

3. गजानन माधव मुक्तिबोध : प्रतिनिधि कविताएँ : पृ० 12, 13

वह स्वयं अपनी आवाज को गुमनामी के अंधारे में खो देता है। यह अभिव्यक्ति सीधे मन पर अपना प्रभाव डालती है इसके आगे कवि कल्पना करता है कि उसकी उस पुकार ने सचो<sup>की</sup> छिपी हुई प्रवचना की घोषा है, जो छुपे के समान शुद्ध और अन्धकारपूर्ण है। जिसमें न तो जल है, न दर्द है, और न मत्तीन है यह तो तदा विगुन्य शुद्ध ही रहा है।<sup>१</sup> कवि ने वेदना पूर्ण शक्ति की कल्पना की है :

सज्जन की आत्मा तब

विधवा बन जाती है

विधवा के प्राणों से

या विधवा की

छोड़ से अवैध समझा गया जन्म

जब सत्यों का होता है <sup>2</sup>

डॉ० केदार नाथ सिंह ने इस विभिन्न, विकृत दुनिया की कल्पना एक मन की तरह की है जो आत्मी बानवर की तरह जोत और छुसूरत है।<sup>3</sup> मजदूर, सर्वहारा वर्ग की, संघर्षात्मक मानव की मजदूरी रीटी है, जो उसे तरस डर मिलती है, उसी की कल्पना कवि करता है :

एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ

समूची आग को गंध में बदलती हुई

दुनिया की सच्चे आश्चर्य जनक चीख

वह पक रही है <sup>4</sup>

डॉ० केदार नाथ सिंह ने प्यार के महत्त्वहीन तमझते हुए उसकी अभिव्यक्ति 'संजुं' <sup>5</sup> के रूप में करते हैं। वह कल्पना करते हैं कि किस प्रकार

1. गजानन माधव मुक्ति बोध : प्रतिनिधि कविताएँ : पृष्ठ 13

2. गजानन माधव मुक्ति बोध : प्रतिनिधि कविताएँ : पृष्ठ 25

3. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ 12

4. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ 23

5. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ 46

संस्कृत से अनेक लोग गुजरते हैं उसी प्रकार आज के संदर्भ में प्यार का अर्थ हो गया है। डॉ० धर्मवीर भारती कृत 'अंधा युग' कुछ नाट्य काव्य की कल्पना मानवीय चिकित्सियों वृत्तियों के आधार पर है। अतः सभी पात्रों के अन्दर मानवीय दुर्बलताएँ कहीं न कहीं अवश्य विद्यमान हैं। नाट्यकृति के पात्रों का चरित्र भी उज्ज्वल या निरुत्कलक नहीं है। सबसे सब एक दूसरे से असन्तुष्ट विषया तथा दूटे हुए हैं। फिर भी उनके अन्दर आस्था का स्वर विद्यमान है, यह विकास प्रक्रिया के नये आयाम हैं। इस नाट्यकृति की एक विशेषता है कि प्रहरियों का वार्तालाप सारी पीड़ाओं को मन के उद्गारों को पाठकों एवं दर्शकों के समक्ष व्यक्त करने में सफल होता है। जिसमें अनिरन्तरता की समस्या का समाधान ढोने में आधुनिकता की प्रक्रिया का पहला दौर प्रकट होता है। वस्तुतः यह कल्पना स्वच्छन्दतावादी चेतना से अभिभूत हो उठती है। दोनों बड़े प्रहरियों के वार्तालाप में निरर्थकता, व्यर्थता, अर्थहीनता प्रकट होती है—'मैहनत हमारी निरर्थक थी, आस्था का, साहस का, प्रेम का, अस्तित्व का हमारे, कुछ अर्थ नहीं था।'। उनके वार्तालाप में युगोन संज्ञा के साथ आधुनिक युग की अर्थहीनता, टूटी हुई आस्था, खरब होती आस्था नजर आती है। अर्थात् उनकी मैहनत, आस्था, साहस, प्रेम, अस्तित्व, का आधुनिक युग में महत्त्वहीन होकर रह गये हैं। वस्तुतः द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिकाएँ हो 'अंधा युग' में परिष्कृत होकर उद्भूत हुई हैं। अर्थात् 'अंधा युग' की मूल चेतना, वैयक्तिक चेतना, रोमांटिक युगोन हलचलों, जीवन की समस्याओं, की जटिलताओं को निर दूर है, जिसकी निजी और व्यापक सीमाएँ मिली-जुली हैं।

प्रहरियों के कथन अन्तर्मन की संवेदना व्यक्त करते हैं'' जैसे हम पहले थे, वैसे ही अब भी हैं।' 2 डॉ० छन्दनाथ मदान का कथन है, 'इस धुंधला और उदासीनता की स्थिति में आधुनिकता मींगने की गवाही देती है।' 3

1. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 15

2. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 120

3. डॉ० छन्दनाथ मदान : आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य : पृ० 26

इन प्रहरियों का कथन इस बात को भी उजागर करता है, “ कोई नृप होय हमें का हानि । जातक बदल जाते हैं, परन्तु स्थितियाँ वैसी ही बड़ रहती हैं । वस्तुतः ‘ अंधा-युग ’ में स्वच्छन्दतावादी स्वर है मानव-मनोविषय में, जो कृष्ण के माध्यम से अभिव्यक्त है । जिसका आशय है कि अभी तक दूसरों का दायित्व कृष्ण ने अपने ऊपर लिया था, मानव मनोविषय को सुरक्षित रखा था, लेकिन अब उनके अस्तित्व का एक अंग, निष्क्रियता, हिंसा आत्मघात और अनास्था के रूप में मटेकेगा । दूसरा अंग मानवतावादी मूल्यों पर जियेगा, जो अपने दायित्व का या तो सम्भव प्रयास करेगा । इस स्थिति के बिन्दु पर छोटे से छोटा मनुष्य भी कर्मशील धनुर जीवन की सार्थकता खोजेगा । यही स्वतंत्र सृजनात्मकता ‘ अंधों के माध्यम से ज्योति ’ लाने की है । जिसके दायित्वपूर्ण अर्थादित कुशल व्यवहार के अंकुर उसके अनागत की सारी पिकृतियों से प्यारोंमें । इन्हीं प्राणतत्त्वों के कारण मनुजता बुद्ध संस्कृति और आत्मघाती मनोवृत्ति से ऊपर उठती रहेगी । वस्तुतः इसीलिए आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी कहते हैं, “ नयी कविता में नकारात्मक और अनास्था की प्रवृत्तियों का मूल स्रोत धर्मवीर भारती के काव्य में मिलता है । ”<sup>1</sup> इस तरह नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ ‘ अंधा युग ’ में मौजूद है । “ काव्य नाटक के रूप में अंधा युग सफल कृति है, क्योंकि नाटककार ने नाटकीय परिस्थितियों, पात्रों की मनः स्थितियों तथा अर्थव्यवस्थाओं और प्रतीकार्यों को अभिव्यक्त करने के लिए जहाँ जैसी उपलब्ध थी वहाँ वैसी संयोजन की है । ”<sup>2</sup>

‘ सात गीत वर्ष ’ में डॉ० धर्मवीर भारती ने यथार्थ स्वर को रोमानी भाव-भूमि में देखा है, जिसकी कल्पना उन्होंने वहीं दलितो दुपहरी में की है तो वहीं रोते हुए प्यार में, छातीपन तथा विश्वास का स्वर उसमें निहित है । फलतः इसी विश्वास के सहारे वह निर्माण योजना की

1. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी : नयी कविता : पृ० 51

2. डॉ० रघुवीर : भारती का काव्य ॥ आयुष ॥ : पृ० 24

महत्त्व देते हैं। 'निर्माणा योचना' <sup>1</sup> में वह हर किसी को सदेखा देते हैं, जिसके फलस्वरूप स्वतंत्र होकर घूमना चाहते हैं, बहलना चाहते हैं। स्वतंत्रता समय सापेक्ष है जिसको डॉ० धर्मवीर भारती माना चाहते हैं।

सुखन चाहे कैसा भी हो परन्तु वह कभी पूर्ण नहीं होता, जहाँ न कहीं उसमें अपूर्णता रहती ही है। यह एक दर्शन है। क्योंकि यदि सुखन पूर्ण होता तो यह सृष्टि का निर्माणा भी रुक जाता, संसार नष्ट हो जाता। इसी सुखनात्मक ज्ञान को महत्त्व देते हुए डॉ० धर्मवीर भारती ने कहा है :

‘सुखन की धुन भूल जा देवता।

जमी तो पड़ी है धरा अधवनी, <sup>2</sup>

ज्योंकि कल्पना प्रत्येक मनुष्य की अलग-अलग क्षुत्तियों की होती है और प्रत्येक मनुष्य की तर्जना कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य करती है, किन्तु सृष्टि के समस्त रंगों से तरावीर नहीं कर पाती। अतः सुखन का नियम अनन्त काल से, अनन्त काल तक चलने के लिए बना आ रहा है। थके हुए जनमने, जीवन से निराशा जलाहार को सदेखा देते हुए डॉ० धर्मवीर भारती उनमें साहस का संवार करते हैं। क्योंकि वह ‘सर्द हवा में थके कदमों से अपने दर्द को छिपाता हुआ बिन्दगी से छुटकारा पाना चाहता है।’ <sup>3</sup> वस्तुतः जीवन कोई संकुचित विचार या कार्य नहीं है, बल्कि वह ‘कुछ इतना विराट् इतना व्यापक है, उसमें सबके लिए जगह है, सबका उसमें महत्त्व है।’ <sup>4</sup>

नयी कविता के उच्चियों में कल्पना के साथ पार्थिव्यवादी दृष्टिकोण भी परिलक्षित होता है। अतः उनकी जो सुखनात्मक कल्पना है उनमें पदार्थ का पुट भी स्पष्ट लक्ष्यता है। ‘कनुप्रिया’ में गुरु से अन्त

1. डॉ० धर्मवीर भारती : सात गीत वर्ग : पृष्ठ 45

2. डॉ० धर्मवीर भारती : छण्डा लोहा : पृष्ठ 43

3. डॉ० धर्मवीर भारती : छण्डा लोहा : पृष्ठ 71

4. डॉ० धर्मवीर भारती : छण्डा लोहा : पृष्ठ 87



तक शीर्षक भी कल्पना के गहरे रंगों में रंगे हुए हैं। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य सृजन के लिए यथार्थवाद की भाव-भूमि भी आवश्यक है। इसी यथार्थता को डॉ० धर्मवीर भारती लेकर चले हैं। जिसमें यथार्थ और कल्पना का घुट भी मिलता है। फलतः यथार्थ राधा और कृष्ण है, जिनको कल्पना की भाव भूमि पर उतार दिया है। 'पूर्व राग' की स्थिति प्रणय की सर्व प्रथम स्थिति है। प्रणय से पहले आभासित अनुभूतियों की है। 'पूर्वराग' के पश्चात् जो स्थिति बनती है वह 'मंजरी-परिणय' की है। राधा और कृष्ण पूर्वराग की स्थिति से गुजरने के बाद मंजरी-परिणय पर आते हैं। अतः यथार्थ प्रेम की परिणति भी यही होती है। परिणय के पश्चात् सृजन की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं। अतः ये स्थितियाँ कल्पनात्मक होने के साथ-साथ यथार्थता का बोध भी देती है। अतः परिणय में भी 'मंजरी परिणय' की सुषोमल कल्पना सर्वथा नवीन, अद्भुत है। यह सृजनात्मक कल्पना अपने आप में एक दम अद्भुत है। प्रतीतिभारत पूर्ण अनजाने ही एक ढाल पर खिना हुआ बीर तोड़ कर मतल कर घूर-घूर धिरेर देते हैं।''<sup>1</sup> जिसका अर्थ राधा परिणय से लगाती है। क्योंकि 'श्यामल वनछातों में बिछी उस माँग ली उजली पगडण्डी को'<sup>2</sup> वह अपनी माँग की कल्पना करती है। अतः यह प्रणय संकेत प्रेम की क्षतितुल्य अभिव्यञ्जना है। इसी प्रणय प्रतीति में परम्परा का भी निर्वहण हुआ है।

‘और जब तुमने कहा कि ‘माथे पर पत्ला डालो’।

तो क्या तुम चिता रो थे

कि अपने इसी निजता को, अपने आन्तरिक अर्थ को

में सदा मर्यादित रखें, रसमय और

पवित्र रखें

नखवण की भाँति।’<sup>3</sup>

1. डॉ० धर्मवीर भारती : कृष्णिया : पृ० 22

2. डॉ० धर्मवीर भारती : कृष्णिया : पृ० 23

3. डॉ० धर्मवीर भारती : कृष्णिया : पृ० 31

यहाँ पर कल्पना के द्वारा कथार्थ के संयोग का डॉ० धर्मवीर भारती ने मणि कविन के की प्रस्तुति की है।

कल्पना के रूप विभिन्न प्रकार के हैं। जी सर्वप्रथम दयानन्द सत्तेना की कल्पना प्रचलित होती है :

‘ कानन के कोयल कोरे/पूछों-सा कुन रहा यह जोवन- / मैं उत पर  
 . पत पुँए की / परछाई बन, कुछ उन तहराया / दोष भना एतवें पया मेरा १/  
 तेरी नजरों का कसूर है / तुने चित्त-मिला उन रेखाओं को/ जो हो चित्त  
 बनाया ।’

उषि की कल्पना सामान्य चेतना से आक्रान्ति होकर शक्ति बाने के लिए तितली का आश्रय लेती है। यह सुनकर तयनों की तितली की तरह मानता है।<sup>१</sup>

कतः एत चेतना के द्वारा स्वच्छन्दतावादी प्रकृति परिलक्षित होती है। नरेण मैहता की उषिाई कल्पनामिश्रुती है। एत कारण कथार्थवादी वातावरण के चिन्ता में ये शब्द अच्छे वातावरण की सृष्टि करती है। प्रकृति और मानव के में उनके उपमान कड़ी भाषा में लिए गए है, यद्यपि ये उपमान विजड्येयित नहीं है। उषि ने उन्हें अपनी वैयक्तिक भावना से अनुरंजित किया है।<sup>२</sup> जी नरेण मैहता का ‘महाप्रस्थान’ मिथकोय चेतना से तित्त कल्पना है। जो पाँचों वाण्डवों अनन्त शक्ति प्राप्त करने हेतु हिमालय पर जाते हैं, और अन्त में महाप्रस्थान करते हैं। उषि नरधर शरीर की कल्पना करता है :

शताब्दियों तब एत चित्त मैं / तुम्हारी यह देख / अज्ञात शिखरे  
 के एक प्रस्तर ती अनबाँधी/ यहाँ पड़ी रहेगी / यतुई/ निरन्तर एत पर लेप  
 करते हुए/ एक दिन / हिमालय कर देंगी।<sup>३</sup>

1. सर्वप्रथम दयानन्द सत्तेना : गूठ की पंढियाँ : पृ० 28

2. सर्वप्रथम दयानन्द सत्तेना : चर्चिता का पुनः : पृ० 194

3. आचार्य नन्द कुतारे वाक्येयी : नई कविता : पृ० 55

4. नरेण मैहता : गजरी : पृ० 19

‘महाप्रस्थान’ की मर्यादा समझे हुए पुधिष्ठिर मन में विचारते हैं कि संसार के प्रत्येक जीवात्मा से दूर हिमालय पर्व उसकी अनुभूति मात्र रह जाती है। इसी प्रतीति से सर्वथा अपने आपको मुक्त करना ही ‘महाप्रस्थान’ का यत्न है। वस्तुतः महाप्रस्थान में कवि ने सभी पाण्डवों एवं द्रौपदी के मन की पुथा को कल्पना के साध्यम से खोल कर रखा है। विलम्बे यथायै ऐसी अनुभूति प्रतीत होती है। मन के अन्तर्द्वारों की तीव्र वेदना मानसिक ज्ञान, लोकापमान से दूषित मन आदि द्विपारों स्वच्छन्दतावादी धरातल पर प्रस्फुटित हुए हैं। जिनकी वेदना को मानवीय धरातल पर कवि ने प्रस्तुत किया है :

“ स्मृतियाँ -/ फिर प्रतिक्रिया उनकी आहूतियाँ -/ कुछ भी तो जीत नहीं पाता है पार्थ, / व्यक्त के मन से। / जो कुछ श्री अंजित या उत्थोर्ध्वित होता / एक पार / तब कैसी ही कल्पना, उदारता, छाया आदि का / महाज्वार / कुछ भी तो भेंट नहीं पाता / मन की निगूढ़ / इन अन्ध गुफाओं से।”

अन्तर्द्वार की अभिव्यक्ति सिर्फ मानवीय धरातल पर ही संभव है। अतः नयी उदित की यह मानवीयता स्वतः स्वच्छन्दतावादी हो जाती है।

मिथजीय पात्र शत्रु की कल्पना अनेक कवियों ने अपनी कविताओं में की है। किन्तु श्री नरेश मेहता ने उसके व्यक्तित्व के प्रति एक अनुठी पट्टा भी लगायी है, जो अपने को राम से अलग नहीं समझती वरन् वह स्वयं को राममय ही मानती है। उसी विनम्रता, गुन के प्रति आस्था एवं श्रद्धा, कष्टों के प्रति प्रेम की देव पर धरो लगता है कि वह गृह जाति न होकर ब्राह्मण ही होगी। वह सभी ब्राह्मण समाज के प्रति अपनी दयालुता दिखवाती है। अतः अपनी इसी विशिष्टता के कारण वह ‘रामायण’ के पात्रों में अपना विशिष्ट स्थान बना लेती है। श्री की कल्पना ने उसके साधारण चरित्र को असाधारणत्व प्रदान

फिया है, जो सबों को मोहित करने की क्षमता रखती है। शबरी का कोमल मन उत्पन्ना करता था :

“ प्रभु ने जितने मधुर बनाये  
वन, सरिता, यह धरती । ”

किन्तु यह मनुष्य जितना पापशील है जो पशुओं का कून बहाता रहता है। पता नहीं उससे इस एनन से क्या होगा। शबरी के मन में इस बातावरण से थिरे वितुब्जा फिर आयी। एक दिन वह अर्द्धरात्रि में सब कुछ छोड़ कर पम्पासार में भक्त मुनि के पास आश्रय लेने पहुँची और निवेदन करती हुई बोली :

“ मे पापी हूँ हूँ क्षमागी  
इस भयसागर से पार करो  
प्रभु-वरणों में ही शक्ति अटल  
मुझे जो दासी स्वीकार करो । ” 2

और इस प्रकार अपनी विनम्रता से, ग्राह्य की सेवा-कृपा से, तथा प्रेम भक्ति का गुणगान करते राम प्रसन्न हो जाती है। राम की कृपा प्राप्त हो जाती है। और राम में दिलीब हो जाती है।

“ प्रवाद ” पर्व को मिथलीय उत्पन्ना भी कम स्वरचन्द्र नहीं है। कवि ने राम के अन्तर्मन की सारी पीड़ा को काव्य में उड़ेला है। राम का अभी तक मर्यादा का ही मिलता है। जैसे तो इसमें भी राम अपने को लोकापवाद से बचाने के लिए सीता को वनगमन का आदेश देते हैं किन्तु अन्दर ही अन्दर वह जितने मर्मन्तिक हैं, अन्तर्मन से ग्रसित हैं, उसकी उत्पन्ना भी पड़ी अनुही है। कम करने का उद्देश्य सभी देते हैं, किन्तु कर्म का उद्देश्य अपने रागात्मिक सम्बन्धों को उत्पन्न करना तो नहीं है। इसकी उत्पन्ना मार्मिक शब्दों में आभाषित हुई है। मनुष्य क्या केवल साधन मात्र है, क्या वह केवल माध्यम है, मनुष्य की इस जिज्ञासा का उत्तर नहीं

नहीं मिल पाता :

“ मनुष्य की उस आदिम जिज्ञासा का उत्तर -

किसी भी दिशा पर

कभी भी दस्तक देकर देखो,

किसी भी प्रहर के

धित्व-अवरोध का हटाकर देखो

कोई उत्तर नहीं मिलता राम ।

दस्तकों की कोई प्रतिध्वनि तक नहीं जाती

शून्य से किसी का देखना नहीं सीखता ।” 1

कहीं भी चले जाओ गत, आगत शताब्दी में कर्म के इस तटस्थ अनुष्ठान से कोई भी मुक्ति नहीं है ।” 2 जब कोई किसी पर अंगुली उठाता है तो प्रभावित तो जाता ही है। उसी प्रभावित में राम भी घुलत रहे हैं। एक अनाम व्यक्ति ने सीता के चरित्र के अपर अंगुली उठायी है। जिसे राम सहन भी नहीं कर पा रहे और अपनी मर्यादा की खातिर छोड़ना भी नहीं चाह रहे। इस स्थिति का जो अन्तर्द्वन्द्व है। क्यों राम सोचते हैं ? :

“ वह मात्र अंगुली ही नहीं होती राम ।

उसका एक प्रतिऐतिहासिक ध्वनित्व होता है ।” 3

तर्जनी का संकेत, कवि की कल्पना ने, धाणी का स्व दिया है। अतः प्रस्तुति की नवीनता स्वच्छन्दतावाद का प्राण-तत्त्व है। इसमें अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति भी है, जिसकी कल्पना कवि ने की है, ‘ व्यक्ति चाहे राजपुरुष हो या इतिहास पुरुष अथवा पुराण-पुरुष । देश किसी भी तोमा में नहीं समाता । अतः जो सत्य है वही कृतम्भरा ध्वनित्व है ।” 4 सत्य और असत्य में अन्तर करते हुए राम, लक्ष्मण से

1. नरेश मेहता : प्रवाद पद : पृष्ठ 21

2. नरेश मेहता : प्रवाद पद : पृष्ठ 23

3. नरेश मेहता : प्रवाद पद : पृष्ठ 25

4. नरेश मेहता : प्रवाद पद : पृष्ठ 35

रावणा की प्रशंसा करते हैं :

“ इतना अग्रिम धर्मस्व

अग्राध पाणिपत्य

तपस्या ते अर्चित परात्पर शक्तियौ

और निरंजना ध्यस्तित्व

रावणा ते पदा इतिहास-पुरुषा कोर्ष धा लक्षण १ । ”

और सत्य और असत्य का भेद करते हैं। संभवतः इसी विचार-धारा के फलस्वरूप राम ने गर्भवती सीता को जनमन का आदेश दिया। और सीता ने राम को मर्यादा की छातिर पुष्याप इस आदेश का पालन किया। श्री कुँवर नारायण दूत 'आत्मजयी' में नचिकेता की कहानी है, जो सत्य को पाने के लिए संघर्ष करता है उसका यह चिह्नोद अनेक स्वयं का नहीं है वरन् यह समस्त मानव जाति के लिए संघर्ष है। कवि ने कल्पना के द्वारा इसमें यथार्थ का अंकन किया है। जिसका आभास शीर्षक देते हैं। सर्व प्रथम राजकुमार का परिचय मिलता है, फिर नचिकेता का, उसके बाद नचिकेता के निश्चय को सुनकर पिता का क्रोध, क्रोध के फलस्वरूप उसमें विषाद उत्पन्न होता है, वह प्रलोभन से भी नहीं डिगता, इसके अतिरिक्त आसक्तिहीन होकर आत्महत्या का प्रयत्न करता है। इसी अवस्था में उसे अतीत-बोध, भविष्य-बोध, यम, जिज्ञासा, रोषता का, सुख दुःख का, आत्म शक्ति का, ज्ञान प्राप्त होता है। पुनः वह सुष्टि, सौन्दर्य शान्ति एवं मुक्ति-बोध का प्राप्त करता है। चिह्नोद और नवीनता की यह स्वच्छन्दतावादी चेतना नयी कविता के कवियों में कुछ परिनयित होती है।

कुँवर नारायण की उपमाएँ, स्पष्ट और विम्ब काव्य सम्मत है, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि उनकी काव्य चेतना सम्यक कल्पनाओं का सनाहार कर सकती है। इस अर्थ में उन्हें कल्पनाप्रधान कवि भी कहा जा

सकता है।'' 1

नचिकेता का संदर्भ 'कठोपनिषद्' में मिलता है। जिसमें कल्पना का आशय भी मिलता है। इसमें कथानक को आधुनिक संदर्भ में देखा है।

'कठोपनिषद्' में यम से साधात्कार पाने हेतु नचिकेता पानी में कूद जाता है लेकिन कवि ने यहाँ कल्पना की है कि वह डूबता नहीं, मरता नहीं, है धरन् मरने से पहले ही अचेतावस्था में उसे निकाल लिया जाता है, जो उसी अवस्था में यम से साधात्कार करता है। संतार की कल्पना कवि ने दर्पण से की है :

'' संतार किसी दर्पण में प्रतिबिम्बित माया'' 2

'' कवि ने कल्पना को और बुद्धि को आफ जाने वाली च्यथा न बताकर उसे दिव्य बताया है जिसमें कहीं-कहीं कल्याण और वेदना भी परिलक्षित होती है।'' 3 श्री गिरिजा कुमार माथुर इस संतार में हरेक आदमी को अधनंगा, पिस्तुता हुआ, हाथी-दाँत के चेपेदे प्रेम में, पुदटी में धिये घूट में मतलबी सफेद पोश की तरह, संत में अपोरसंग की तरह, नीति में अनौति-में राजनीति में दल-पदनु-पलीत 4 की तरह देखते हैं। जो समाजवादी यथार्थवादी कल्पना है। घटसूत्र से देखा-दर्शन की कल्पना करते हैं जहाँ उन्हें 'नाक में तीली, मरे पशु की गंध, जाँघ में झिझरी, जवान पर जाठ-धू दिमाग में गानियाँ' 5 की तरह दिखनायी पड़ता है।

स्वप्न मनुष्य की मनोदृष्टानुविता है। जिसे वह कल्पना के द्वारा अपने मस्तिष्क में लाता है। जब उदास, पीमार, सपना देखता है तो वह असफलताओं से घिरा हुआ होता है। ऐसा ही उदास सपना गिरिजा कुमार माथुर देखते हैं

1. आचार्य नन्द हुलारे वाजपेयी : नचिकेता : पृष्ठ 56

2. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 46

3. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 62-63

4. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृष्ठ 9-15

5. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृष्ठ 17

वहाँ प्लेट फार्म पर हर बार ट्रेन उनको छोड़ जाती है और वह प्लेट फार्म तक पहुँचते पर आखिरी लिफ्टे की त्याह पीठ देखते \* 1 वह जाते हैं। श्री गिरिजा कुमार माथुर ने शाम की उत्पना केवर मजूरन से की है जो कुत्पाथ पर पैठी सुये टिफ्फु खातो है।\*\* 2 क्योंकि शाम की धूप घेहद हल्की और कम देर ठहरने वाली होती है। उसमें उदासीपन भी एकता है इसीलिए उसकी उपमा केवर मजूरन से की है। एक दूसरे की नौचा खसोटो में कधि की उत्पना यथार्थ रूप सेती है :

“ देवता तव मर चुके / ताहीं किसम के भूत / हर एक के पीछे  
लग चुके / अब सबके भीतर / एक एक भूत घेर है। तपका  
अना छात / अलग अलग घर है / हम तव एक परिवर्तनहीन  
शून्य में / लटके हुए लोग हैं।” 3

आदमी अब अपनी विशेषताओं से विमुक्त होता जा रहा है। वह अब टुकड़े-टुकड़े होकर जा रहा है, जिसे वह सत्य समझ रहा है वह दिशावली पन्नी मूी तलवार की तरह दिखाता है। उसकी चीखें, छछारें दब चुकी है। 4 : जा के भारी पदलाप में हरेक की परिभाषा बदल चुकी है। वह अपनी कमोरियों को सुनना नहीं चाहता, तब है। 5 और जब आशा की छिन्ना दिखनाथी पती है तो वह उत्पना करता है:

1. गिरिजा कुमार माथुर : साप्ती रहे वर्तमान : पृ० 23

2. गिरिजा कुमार माथुर : साप्ती रहे वर्तमान : पृ० 29

3. गिरिजा कुमार माथुर : साप्ती रहे वर्तमान : पृ० 44

4. गिरिजा कुमार माथुर : साप्ती रहे वर्तमान : पृ० 59-62

5. गिरिजा कुमार माथुर : साप्ती रहे वर्तमान : पृ० 59-62



“ देखा तुमको मैंने जितने जन्मों के बाद  
 चम्पे की बदली-सी धूम उठि आत-यात  
 धूम सी गर्ज दुनिया यह भी न रहा बाद  
 यह गया है दस्त लिख तारे मेरे पताज ” ।

जी नागार्जुन श्रुतिधारो कवि हैं। अतः इनकी कविता में चिद्रोहात्मक कल्पना प्राथम्य परिलक्षित होती है। उनका स्वर श्रुति, समता प्रयति और जन्य भाव का स्वर है। इसी कल्पना कवि ने की है कि ‘त’ आकृति वाला चेतावनी देने लगा कि ‘जाने कब से तू। / हमारी ऐसी-तेसी करता आया। / अब तेरी करतूत अब बदरित नहीं होगी’, ‘त’ आकृति वाला होगा, ‘त’ करना क्या है’। गला घोट दे लाने का ‘स’ और ‘प’ आकृति वाले ने इन दोनों की अपेक्षा कुछ जालीनता दिखाई और कहा ‘सहजगीनता की भी एक सीमा होती है। सोचिए तो बुद्ध ही ‘और ‘ज’ आकृत वाला बोला, ‘तेरे तारे ठीर ठिठाने। हमें मालूम हो चुके हैं। बोल क्या करें तेरा।’ 2

कवि संस्मरित मनुष्य की कल्पना करता है :

‘ ऐसा भी मन क्या, / ऐसी भी बुद्धि क्या, / कर न लगे  
 प्रपंचों का उद्वेग-भेदन \* \* \* पहराए जरा-जरा ती पार्तें में/  
 अठारणा पिदके पग-पग से रुठ जाए / पहन ले दंड का मुकुट/  
 पया नहीं पाए ग्लानि और अपमान / ले नहीं पाए  
 प्रतिशोध, ध्मा की ध्मा करता चला जाए...../ऐसी भी  
 बुद्धि क्या / ऐसा भी मन क्या ’ 3

कवि कल्पना के माध्यम से पर्वत शिखर का यथार्थ चित्रण करता है कि पर्वतों पर निकली हुई धूम हिम मंजित शिखरों को घू रही है। भारी-भारी बोरियाँ लादे हुए पर्वत उन्धारे धूम रही हैं। ऐसे धूम को देखकर पर्वत भी धूम

1. गिरिजा कुमार माधुर : साधी रहे वर्तमान : पृष्ठ 90
2. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृष्ठ 9-11
3. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृष्ठ 31

उठा था।''<sup>1</sup> कल्पना का त्य वेहद कोमल एवं मधुर है, जिसमें व्यक्ति डूब कर आत्मलीन हो जाता है। जब कल्पना सार्थक होने लगती है तो कवि भी अपनी प्रतिभा का श्रेय उन्हें देना चाहता है, जिनसे उसे आत्मतुष्टि मिलती है :

'' गुलाब के फूल/पुनता हूँ मैं / उसके लिए, / पुनं लिया है / जिसने मुझे / अपने लिए, / काव्य की सृष्टि में / अमर रहने के लिए''<sup>2</sup>

कवि अपनी कल्पना से स्वयं बात करता है कि मैं हूँ और तुम हो, और दोनों 'रक्यरक' <sup>3</sup> सुन्दर, सार्थक जीवन जीने की कोशिश कर रहे हैं। वस्तुतः कवि अपना सारा समय और ही तरह पीता रहता है, चिन्तु समय उसे धीरे-धीरे नीर की तरह पीता है। यह काल्पनिक अभिव्यक्ति यथार्थ के अंकन पर प्रस्तुत हुई है। जिसमें वेदना का स्वर स्पष्ट तब से परिलक्षित होता है। कवि कल्पना को लावण्यमयी मानता हुआ कहता है :

'' तुम हो। एक मौन / लावण्य में लीन / लावण्य से उद्भूत, / स्वर और व्यंजनों का / अक्षुण्ण संगम''<sup>4</sup>

श्री केदार नाथ अग्रवाल कल्पना के प्रति अपने आत्मउद्गार प्रकट करते हैं कि मैं तो तुम में पूरी तरह डूब चुका हूँ तुम भी उसमें पूरा डूबो। तुममें इतना सराघोर हूँ कि मुझे कभी भी ज्वन महसूस नहीं होती। अतः इतनी आत्ममोयता का मतलब है कि समझ-झूँकर, मन की मथ कर, सत् से सथ कर, तम से बँधकर जीना। जो बाहर-भीतर एक आत्मतुष्टि देता है। जो मानवीय कर्तव्य को भी जागृत रखता है। कवि अपनी कविता में गुँजते एवं व्यंजित स्वरों को मुखरित करते हुए कहता हूँ कि जो मेरी कविता के शब्द हैं उनके पीछे मैं ही तुमसे बोलता हूँ और यह बोलना होता प्रतीत होता है जैसे मैं सरसों की पात को पीछे छिप कर बोल रहा हों।''<sup>5</sup> वह कल्पना को रंगीन चित्रोद कहता है :

1. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या : पृ० 47
2. डॉ० केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 17
3. डॉ० केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 43
4. डॉ० केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 195
5. डॉ० केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं : पृ० 118

‘ न कुछ, तुम एक चित्र हो/ रंगों से उभर आये अंगों का / जवान/  
जादुई/जागता / मन पर मेरे अंकित / मेरे जीवन की परिष्कृता का/  
अमान्त / अतृप्त / अनिर्वाह/ रंगीन विद्रोह ।’ 1

‘ अक्षेय’ जी का चित्रित्व अनेक पुंजों का संग्रह है। अतः उत्तम विविधता मिलनी संभव है। उनकी कल्पना ने भी अपने अनेक रंगों का रूप लिया है। मन की उदासी को वह तर्ज पर उतारते हैं :

‘ तूनी- ती तर्ज एक/ दूधे-पाँच मेरे कनरे में जायी थी/ मुझको भी  
वहाँ देख/ थोड़ा सलुवायी थी ।’ 2

तर्ज का समय तो स्वाभाविक रूप से हल्का होता है तथा वह बहुत कम समय ठहरती है। लेकिन कवि की कल्पना ने वहाँ तर्ज को रंगों से सराबोर कर दिया है। गरमाई हुई पलकों स्वाभाविक रूप से बार-बार उठती रेंग गिरती हैं, लेकिन कवि ने उन पलकों का वर्णन काँपने से किया है :

‘ तनिक सा कमर छुना, फिर सेंपना / तुम्हारी पलकों का फँसना/  
मानों दीखा तुम्हें सजीली किनी कलौ के/ खिलने का सपना ।’ 3

रात की कल्पना ‘ अक्षेय’ ने मानवीय रूप में की है, रात का अन्तिम प्रहर अपनी अन्तिम चरणा में है और भोर अपना स्वल्प बनाने वाला है, यह अभिव्यक्ति कवि के मन की प्रेरित कर उठती है। जीवन अनुभूति के यथार्थ सत्य की कल्पना कवि ने की है कि चाहे जितना भी मनुष्य ज्वाइयों को हुए लेकिन उसे पैठना तो धेरों के सहारे ही पड़ता है। इसी प्रकार चाहे जितना नीचे दसदस में गिरा लेकिन ऊँचा तो धेरों के सहारे ही हुआ जाता है। कवि का मन सांसारिक वेदनाओं से आक्रान्त है वह दर्पण की सत्ता को नकारना चाहता है :

1. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग घोंसते हैं : पृ० 139
2. अक्षेय : आँगन के पार-द्वार : पृ० 27
3. अक्षेय : आँगन के पार-द्वार : पृ० 18

“ ईश्वर आग है / आग तेरे भीतर है, आग मेरे हाथ में है /  
 मैं सर्वत्र आग लगाता फिरता हूँ-फिरो, मुझे आग लगाते  
 फिरना चाहिए कि सारा विश्व आग हो कर धूँध उड़े/  
 ईश्वर आग है। ” 1

इसमें जो विद्रोह का स्वर ध्वनित है। वस्तुतः  
 स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख प्रवृत्ति विद्रोह ही है। स्वच्छन्दतावादी कवि  
 सुछपता परम्पराओं को तोड़ता है और स्वयं की विकसित शैली को अपनाता  
 है। उसमें मग्न रहता है, वही उसकी रचना होती है, उसी को वह  
 पुरस्कार रूप में ग्रहण करता है। इस सम्बन्ध में ‘अधेय’ का कथन है,  
 प्रयोगाश्रम कोई भी नयी कविता या पद्धति रचयिता को आकृष्ट कर  
 सकती है, पर हर प्रयोग की सीमा भी है कि सफलता अथवा विफलता में  
 उसकी परिणति हो जाती है। सर्वज्ञगीनता अगर उसके बाद भी शेष है, तो  
 वह अपने लिए दूसरा मार्ग ढूँढ निकालेगी। ” 2 नयी कविता का मुख्य स्वर  
 सर्वद्वारा वर्ग की क्रांतिकारी चेतना का है, जिसमें कवि विद्रोह के साथ-साथ  
 परम्पराओं को अस्वीकार भी करता है, पुरानी कवियों के प्रति उसका  
 मत है :

“ न देखो लौट कर पीछे : / वहाँ कुछ नहीं दीखेगा / न कुछ  
 है देखने को / उन लकीरों के सिवा, जो राह चलते / हमारे ही  
 चेहरों पर लिख गयी / अनुभूति के तेजाब से। ” 3 वस्तुतः ‘चित्त  
 तरह छायावाद एक नये ‘मूड’ का प्रतिचिम्ब है। और यह नया परिवर्तन उस  
 पहले परिवर्तन से गहरा और अधिक व्यापक है। ” 4

- |         |   |                                     |   |     |     |
|---------|---|-------------------------------------|---|-----|-----|
| 1. अधेय | : | अन्तरा                              | : | पृ० | 70  |
| 2. अधेय | : | अन्तरा                              | : | पृ० | 7   |
| 3. अधेय | : | अरी ओ छल्ला प्रभाव                  | : | पृ० | 22  |
| 4. अधेय | : | हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य | : | पृ० | 141 |

सर्वनात्मक कल्पना द्वारा कवि ऐतिहासिक तथ्य को नवीन रूप में रखता है। जिसके द्वारा वह अपनी रचना में वैयक्तिकता एवं मौलिकता लाता है। स्वच्छन्दतावादी कल्पना बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूति के वैयक्त्य को समाप्त करती है। जहाँ पर यह वैयक्त्य समाप्त होता है, वही स्थिति स्वच्छन्दतावादी है। स्वच्छन्दतावादी रचना धर्म अपनी कलात्मकता के द्वारा सर्वनात्मक कल्पना का विस्तार करता है। सर्वनात्मक कल्पना के द्वारा नवीन उद्भावनाएँ, नयी प्रस्तुति एवं मौलिक भाव भूमि की प्रस्तुति तो होती ही है और यही उसकी अपनी पहचान पकती है।

### अनुभूति :

‘ मनुष्य की चेतना अपने परिवेश से संयोजित होती है। जाने-अनजाने कवि के मानस पर परिवेश आना प्रभाव छोड़ता जाता है। परिवेश की सीमारेखा में वर्तमान और अतीत दोनों ही आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में कवि या लेखक अपने परिवेश से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ होता है। उसकी अनुभूति भी उसी की उपज होती है।’<sup>1</sup> वस्तुतः कवि या साहित्यकार अपने साहित्य का सृजन संवेदना, भाव एवं विचार से करता है। उसके अन्दर बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियों का संयोजन होता है। इन दोनों के परस्पर टकराव से मानवीय अनुभूतियों का इतिहास परिवर्तित होता है। अनुभूति काव्य में प्रेरक तत्त्व के रूप में उभरती है, जो उसकी मूलभूत सत्ता है। अनुभूति ही कल्पना का क्रियाशील रूप है। इसी के परिणाम स्वरूप काव्य में स्वात्मक अभिव्यञ्जना परिलक्षित होती है। आचार्य नन्द हुनारे बाजपेयी का कथन है, ‘‘ यह वस्तु जो कल्पना के विविध अंगों और मानस-वृत्तियों का नियमन और एकाग्र करती है, अनुभूति कहलाती है। अतएव अनुभूति काव्य का निर्णायक और केन्द्रीय तत्त्व है जिसका सृजन और विन्यास काव्य-कल्पना तथा काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूपों में होता है। इस भाषात्मक अनुभूति में मानव-व्यक्तित्व

और मानवता के ऐसे ठोठ उपादान होते हैं जिनसे काव्य में मूल्य और महत्त्व की प्रतिष्ठा होती है।''<sup>1</sup>

अनुभूति की क्रियाएँ मनोवैज्ञानिक होती हैं। अतः मनोवैज्ञानिकता इसमें सर्वोपरि है। क्योंकि यह अनुभूति चेतन एवं अचेतन की क्रिया है। जिसकी पहचान स्वयच्छन्तावादी है। जब कवि सामूहिक अचेतन में विचरणा करता है, तो वहीं वह नयी कविता से जुड़ जाता है। क्योंकि नयी कविता सम्पूर्ण विश्व की चेतना लेकर चलती है। फलतः इसमें वैयक्तिक एवं बाह्य अनुभूति स्वाभाविक रूप से मिलती है।

धीमी स्मृति की अनुभूति जितनी सुख होती है, इसका सहसास सिर्फ स्वयं भोगकर ही किया जा सकता है, खासतौर पर प्रेयसी की धीमी स्मृति, जब वह उसके साथ घिताये घण्टा घाद करता है।''<sup>2</sup> किन्तु जब मन उदास होता है और कुछ न सोचते हुए भी मन निश्चल होता है, तभी कुछ नयी, अनदेखी चीज मन में सुखद विचार पैदा करती है :

'' सुनी तो तारों एक / दबे-पाँव मेरे कमरे में आयी थी / मुझ को भी  
वहाँ देख / थोड़ा सकुचायी थी / तभी मेरे मन में यह बात  
आयी थी / कि ठीक है, यह अच्छी है / उदास है पर सच्ची  
है।''<sup>3</sup>

जो चेहरा हजारों चेहरों से एक दीखता है, वही उसके मन को बाँध पाता है, जिसकी अमिच्छित स्वयं कवि ही जान सकता है। जीवन की गतिशीलता की अनुभूति कवि के मन को विचलित कर देती है वह पेड़ से अपने मन की अनुभूति प्रकट करता है कि पेड़ तुम जो अपने बड़े गन्धर्व, आँधी-पानी से जूझने वाले होकर भी सन्तुलित शान्त गम्भीर खड़े हुए हो / तो पेड़ भी धिनगुता से सारा श्रेय मिट्टी को देता है।''<sup>4</sup> यह अनुभूति पेड़

1. आचार्य नन्द दुमारे बाजपेयी : : नया साहित्य : नये प्रश्न : पृ० 170

2. अक्षय : आंगन के पार-द्वार : पृ० 20

3. अक्षय : आंगन के पार -द्वार : पृ० 27

4. अक्षय : अरी ओ कल्या प्रमामय : पृ० 48-49

तीखे लेने के लिए है कि वह इतना कूट सहज भी स्वयं कुछ नहीं भोगता, बल्कि, यात्री, अधिक मजदूर ही उसका काम उठाते हैं।

कवि अत्यक्त प्यार की अनुभूति, बरसती बरसात में धरते पत्तों से, जो एक प्रकार का चादर गलीचा बना रहे हैं<sup>1</sup> उसमें खो जाता है। शान्त निर्जर, निर्मल, जीवन की अनुभूति की कल्पना कवि पुष्पाय<sup>2</sup> करता है। किन्तु जीवन के जाने-जाने की अनुभूति कितनी तीक्ष्ण होती है, इसी की अभिव्यक्ति कवि ने की है :

“लका नहीं कुछ, / सब कुछ चलता ही जाता है / लका नहीं  
हूँ मैं भी खड़ा तेरु पर / देखो-देखो-देखो / फिर आयी वह  
रश्मि-बाण, दामिनि-द्वत, देखो / केष रहा है मुझे लक्ष्य  
मेरे बाणों का।”<sup>3</sup>

प्रेमानुभूति से पीड़ित कवि अपनी प्रेयसी की याद में चिन्तित है। वह प्रकृति के सुरम्य चित्रण में स्वयं को भाव विभोर कर देता है। और सोचता है कि ऐसी ही अनुभूति उसकी प्रेयसी को भी अनुभव होती होगी, क्योंकि प्रेम की पीड़ा दोनों ने समान ही भोगी है।”<sup>4</sup>

‘मुक्तिबोध’ की काव्यानुभूति यथार्थवादी अनुभूति है। कवि स्वयं की पीड़ा को व्यक्त न करके अपने - आत-पास की दुनियाँ को देखने का प्रयत्न करता है। अमर पहादुर सिंह का कथन है, “अनुभूति के यथार्थ से कतराता हुआ नहीं : बल्कि अपने तब और भावना के कुदाल से अनुभव की कड़ी धरती को लगातार गहरे खोदता जाता। थककर बैठ जाता - अपने दायित्व को झूल जाता नहीं, कभी नहीं, बल्कि उसके सिलसिलों को कसकर बाँधता।”<sup>5</sup> मजदूरों की पीड़ा क्या है ? वह मजबूत होते हुए भी

1. अक्षय : अरी ओ कल्ला प्रभामय : पृ० 75

2. अक्षय : अरी ओ कल्ला प्रभामय : पृ० 77

3. अक्षय : अरी ओ कल्ला प्रभामय : पृ० 95

4. अक्षय : अरी पास पर छा भर : पृ० 55

5. ग्यानन माधव मुक्ति बोध : पाँदे का मुँह टेढ़ा है : एक चिन्तन प्रतिमा [पृ० 19]

कमजोर क्यों है ? उनके ऊपर कुहरा क्यों छाया हुआ है ? उसकी अनुभूति व्यक्त की है :

‘ जी नहीं, / वे सिर्फ कुहरा ही नहीं है, / ठाने-ठाने पत्थर /  
व ठाने-ठाने लोहे के लगते हैं वे लोग । ’ 1

‘ यलमक ’ से मुक्ति षोष का तात्पर्य उस विमानवाय, दृढ़ व्यक्तित्व से है, जिसमें जीवन अनुभवों के साथ ही संस्कार रूप में पुनः-पुनः-पुनः की मानवीय चेतना, एवं परम्परा उत्तम समायी हुई है।

‘ छाने में, अंधेरी दूरियों में से / उमरता एक / छोटी श्याम,  
धुँआं साथ, / सहता कमलटी पर बोंदू से जायात । / आँखों-  
सामने पिस्कोट, / तारा एक बंद दूटा, / दमकती लाल-  
नीली टैंगनी / पीली व नारंगी / अनगिनत चिनमारियाँ  
पिछरा / सितारा दूर बंद फूटा । ’ 2

‘ यलमक ’ अथ की अनुभूति कवि ने अचेतन में सुप्त अनुभवों से की है । ’ यलमक की चिनमारियाँ कविता मुक्तिषोष के निजी व्यक्तित्व, स्वभाव उनकी दृष्टि और उनके कवि-व्यक्तित्व का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करती है। उस कविता में वे अपने द्रव्य और भोक्ता मन के साथ ही, चिन्तन- विचारक कवि, जवाहर आदि सभी स्वरों में हमारे सामने उपस्थित हुए हैं । ’ 3

मुक्तिषोष अनुभूति की नये संवेदन-नये अध्याय-प्रणयन से जोड़ते हैं ।:

‘ तुम्हारे कारणों से जगमगाती है  
व मेरे कारणों से सपुन्य जाती है ।  
कि मैं अपनी अधूरी जीवियाँ तुम्हारा

1. गलानन माधव मुक्तिषोष : चाँद का मुँह देड़ा है : ॥ एक चित्रण प्रतिमा : पृष्ठ 48

2. गलानन माधव मुक्तिषोष : चाँद का मुँह देड़ा है : ॥ एक चित्रण प्रतिमा पृष्ठ 157

3. डॉ० लल्लन राय: मुक्तिषोष का साहित्य-विश्लेष और उनकी कविता: पृष्ठ 28



छायी सीढ़ियाँ चढ़कर

पहुँचता हूँ

निरखते चाँद के तल पर

अचानक विफल होकर तब मुझी से छिपट जाती है।<sup>१</sup>

मन के अन्तर्द्वन्द्व जब वेदना पाकर शहर निऊलने लगते हैं तब वह किसी का आश्रय पावता है। उस अन्तर्द्वन्द्व में जो अनुभूति अनुभूत होती है उसे कवि ऐसकर कविता में उतारता है :

“ मैं पसुत दिनों से बहुत-बहुत तो घातें / तुमसे घाट रहा  
था कहना, / जैसे मैदानों को आसमान / कुदरे की,  
मेघों की भाँज त्याग / बिचारा आसमान कुछ / स्व  
बदनकर रंग बदलकर कहे।<sup>२</sup>

दुःखानुभूति को कवि आत्म-कथा से मजबूत है कि दुःख मुझे भी है और तुम्हें भी। हमारी स्थिति परिस्थितियाँ मलबे के ढेर के नीचे दबी हुई तो लगती है जिसमें जोर भी मुश्किल से निऊलती है। उसी प्रकार यह सामाजिक मानसिक आसदी है। जिसे समाज का प्रत्येक व्यक्ति अनुभूत कर रहा है। जिसमें जिन्दगी पैरों से फिसलती हुई, लड़-लड़ कर चलती हुई प्रतीत होती है।<sup>३</sup>

अकेलेपन की संज्ञा जो कि कितनी असहनीय होती है। उसमें कहीं भी पैर नहीं मिलता अन्त में अकेलेपन से अथवा अपनी उद्येशियों के बीच घेरना दुपाना, कितनी मनोवेष्टानिष्ठ क्रिया है।<sup>४</sup> वेदना की अनुभूति से कवि संवस्त है ठंड के मौसम में भी उसके आँसू टपक रहे हैं, उसके शब्द कण्ठ में

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृष्ठ 170

2. गजानन माधव मुक्तिबोध : प्रतिनिधि कवितारें : पृष्ठ 17

3. गजानन माधव मुक्तिबोध : प्रतिनिधि कवितारें : पृष्ठ 42

4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जंगल का दर्द : पृष्ठ 97

ही वर्ष की तरह जम गये हैं। किन्तु स्मृति की अनुभूति उसे आगे की तरह धक्का रही है।''<sup>1</sup> कवि के स्वजन एक-एक करके उसकी आँखों से ओझल हो गये, वह उनकी स्मृति से व्यथित है, पीड़ित हैं। वह ह्रुःवानुभूति में ईश्वर की कल्पना करता है कि वह तो बहुत लम्बी जेबों वाला कोट पहने हुए जो छाँटों की तरह सर्पों को अपनी जेबों में भरकर चलता है।''<sup>2</sup>

प्रेम की अनुभूति कितनी मधुर एवं मीठी होती है, जो बिना बोले ही सब कुछ कह-सुन-जान जाते हैं, एक दूसरे का संगीत सुनकर अंदर ही अन्दर प्रेमानुभूति में सराबोर हो जाते हैं यही भाव कवि ने व्यक्त किया है :

'' कितना अच्छा होता है / एक-दूसरे को बिना जाने/ पास-  
पास होना / और उस संगीत को सुनना / जो धानियों में  
घबकता है / उन रंगों में नहा जाना / जो बहुत गहरे चढ़ते  
- उतरते हैं।''<sup>3</sup>

कवि का मन इतना संवेदनशील है कि वह प्रत्येक अनुभूति का वर्णन करना चाहता है। यहाँ तक की कभी-कभी फासतू पेठकर को हृत्पुट कार्य किया जाता है उसका भी वर्णन किया है, कि खाली समय में ही नाकून ढाटे जाते हैं, दाढ़ी साफ की जाती है, सर पुबलाया जाता है, इन बातों से भी सन्तुष्टि न मिले तो धूप में जाकर बैठ गये या लेट गये, ग्रथया हागज कमल लहर तस्वीरें बनाने लगे, कभी गुनगुनाने लगे, अलवार जोर-जोर से पढ़ने लगे, कभी स्वयं ज्योतिष बनकर हाथ की लकीरें जानने लगे आदि। क्रियाओं का जो प्रवर्णन के दिन सहज क्रियाओं का वर्णन किया है वह सहजानुभूति एवं मनोविधानिष्ठ क्रियाएँ ही हैं।''<sup>4</sup>

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जंगल का दर्द : पृष्ठ 97
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : [गर्म ठंढायेँ] : पृष्ठ 134
3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जंगल का दर्द : पृष्ठ 91
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : ठाठ की पेंटियाँ : पृष्ठ 104-105

“ उधड़ती जा रही है  
 तोंछन हर देह को,  
 टकि दिन पर दिन कच्चे होते जा रहे हैं,  
 पर हर हाथ में मारने वाली छड़ियाँ  
 और मजबूत और रंगीन होती जा रही हैं।” 1

हर जगह मानवीय अनुभूति उत्पन्न होती जा रही है, हर आदमी एक दूसरे को मारने में तत्पर है, सम्बन्ध दिन पर दिन कमजोर पड़ते जा रहे स्वार्यों का हर जगह घोंसलाया मच गया है।

नयी कविता की चेतना क्रांतिकारी चेतना है, अतः इस युग के कवियों में यही प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। कवि को अपने देश की भूमि में अजीब चित्रों की झुलझुल मिलती है, जिसे वह बास्ती घरों को भुजाकर मिट्टी की तोंछी अनुभूति में डूबे रहना चाहता है। और इसमें खुबकर अपना जन्म सकारण करना चाहता है।

“ भीखुरी माटी तोंछी है, / कतना यह अद्भुत तोंछापन, /  
 लहरा उठती है / कदम-कदम पर, इस माटी पर, / महामुक्ति की अग्नि-  
 गंधा / ठहरो-ठहरो इन नथनों में इसको मग्न हूँ। अपना जन्म सकारण कर  
 लूँ।” 2

प्रकृति चित्रण को अनुभूति कवि के अन्तर्गमन को भिन्नो जाती है वह स्वयं वादलों की उत्पत्ति करता है कि वह जो तावन की बदलियाँ जा रही हैं इन्होंने मुझे इतना प्रभावित किया है कि लगता है जैसे वे बदलियाँ न होकर मेरे रोम छिद्र हैं, मेरा मेरे साथ लहन रहे हैं और मैं मेघाचन हूँ, जिसे दौड़ा रहा हूँ।” 3

आम्बिआत्य धर्म की शान-शौकत से कवि के मन में पीड़ा होती है। वह एक तरफ आम्बिआत्य धर्म की और दूसरी तरफ बेतिहर मजदूर की

1. सर्वेश्वर दयाल सप्तेना : कुशानो नदी : पृष्ठ 48

2. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृष्ठ 20

3. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृष्ठ 40

तुलना करता है। एक तरफ तो आम्बर, रंगीन सपने, अनुकूल प्रचार, सभी कुछ है, मगर दूसरी तरफ रिक्तता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता।<sup>1</sup> यह सर्वव्यापी धर्म की अनुभूति का चित्रण कवि ने बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

कवि को समुद्र स्थल पर मनोहारी, विहंगम सुगन्ध की अनुभूति प्रतीत हो रही है वह चिन्तना करता है, मैं तट मधुआरा हूँ और मुझे सागर की उठाम लहरें ढाना-फूँती करती प्रतीत होती हैं।<sup>2</sup> भोर की अनुभूति तो हर किसी का मन पुलकित करती है ऐसे ही परिवेश में कवि अनुभव करता है :

“ सुबह-सुबह/ आया हूँ तट/ दूब भरी लॉन से / सुबह-  
सुबह धाँग आया हूँ / मोतियों का अम्बार/ सुबह-सुबह/  
घटोर लाया हूँ अनुभव / पुलक रहे हैं रोम-रोम / स्पर्श  
के प्रभाव से किस तरह / सुबह रहे झुंझुंझ। पेरों के दोनों  
तलवों के छिद्रों होकर/ पी आया हूँ/माघ के आकाश की  
हिमानी ओत / सुबह-सुबह / आया हूँ तट / दूब भरी  
लॉन से।”<sup>3</sup>

गिरिजा कुमार माधुर इस अलंकार पीढ़ी से, संवत्स, पीड़ित दिखलाई पड़ते हैं। उनके अन्दर एक वस्त्रहीन मनुष्य उनकी चेतना को कोषता रहता है। वह अपने भीतर दुनियाँ की गन्दगी छिपाये हुए है। अतः चिन्तना करते हैं कि मेरे चित्त के अन्दर सड़े, अधमरे, जिंदा, गुदा जहान हमेशा घसा रहता है। उनके अन्दर की आत्मा भर चुकी है और उसका मलवा लगातार अंगे दरवाजों पर गिर रहा है।<sup>4</sup>

1. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या। : पृ० 93

2. नागार्जुन : आँखें ऐसा क्या कह दिया मैंने : पृ० 12

3. नागार्जुन : पत्रहीन नग्न गाछ : पृ० 15

4. गिरिजा कुमार माधुर : साँधी रहे वर्तमान : पृ० 15

कवि ने उस अव्यक्त सत्ता की अनुभूति, आत्ममान, हवाओं, चन्द्रमा, जंगल की सुनसान स्याही, सितारों में, लुमावने फूल, हर साँस में, हर बरखे के भीसेपन में महसूस किया है।

कुँवर नारायण ने 'आत्मजयी' में जीवन का अनुभूत का अभिव्यंजित किया है। ऐसा लगता है कि नचिहेता की अनुभूति स्वयं कवि भोग रहा है। नचिहेता अपने पिता के 'स्व' को पतलाते हुए कहता है कि जो तुम सोच रहे हो, जो मान रहे, जिस पर अपना अधिकार प्रकट कर रहे हो, वह उस दुख के आगे नगण्य है जिसे आज तुम नकार रहे हो। तुम उस तारे वैभव को अपना सिद्ध नहीं कर पाते क्योंकि :

“ तुम्हारी देन से तुम्हारी ही तरह / फिर पाने वाला तुम्हें नहीं होता , / तुम्हारे पास जो है, उससे और अधिक चाहता है / विश्वास नहीं करता कि तुम इतना ही दे सकते हो । ” 1

नचिहेता संसार से विमुख हुए, कारण की अनुभूति व्यक्त करता है कि यदि तुम्हारे पास साधन-शक्ति है तो उसे आक्रान्त मत करो, उसे प्रसन्नता देा, उससे शक्ति ग्रहण करो क्योंकि तुम्हें अभी अधिष्ठान में उ ी के सहारे जीना है। किन्तु उसके पिता ने क्रुद्ध होकर उसे मृत्यु का शाप दिया। जो उस वक्त शाप की शक्ति से कहे थे, लेकिन नचिहेता ने धिमाद मन से सुने थे। कवि जैसे मानों उनकी अभिव्यक्ति में जीता है। वह अनुभव करता है, यह संघर्ष केवल बाहर नहीं है, अन्दर, प्रतिअन्दर, जात-प्रतिजात की अन्दर की दबा हुआ है। यह समस्त विश्व जो अभी सुन्दर दिवाँ देता है तो अभी असुन्दर उसका वह अस्तित्व पादय त्व का नहीं है, बल्कि यह उथल-पुथल तो मानव की अनुभूतियों का अन्दर है। जिसे वह अनुभव करता है। ” 2

1. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 4

2. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 14

“ इस अनुभूति को  
 कोई छुटकार नाम दो, —  
 कि हमने नाट होने से घबराया उसे  
 जिससे अभी हमने अर्थ पाया । ” 1

नचिठेता को सत्य की अनुभूति प्राप्त हो जाती है। उसके बाद वह अद्विष्टोक्ति के स्वप्नावस्था में ही, अपने आस-पास कोलाहल अनुभव करता है। वह सोचता है यह लोग क्यों मुझे मेरे हुए हैं, क्या यह अस्थिर चेहरे मेरे परिचित हैं। ये आवाजें मेरे पास से क्यों नहीं हटती ? सांसारिक रोगनी मेरी आँखों में क्यों घुमती है ? वह अपने अस्तित्व के प्रति जाग्रत होता है :

“ क्या मैं तत्पुत्र ही जीवित हूँ..... ?  
 क्या जीवित ही  
 मैंने जीवन को होने का अनुभव जाना ?  
 क्या मैं तत्पुत्र ही मरा नहीं - -  
 मरने से भी कोई छुटकार मर्म जाना ? ” 2

नचिठेता को अनुभव हो रहा है कि मैं इस मायाजाल के बंधन से मुक्त हो चुका हूँ, मैं प्रत्यागत फिरणी की उर्वस्वी तन्नाएट में जाग्रत हूँ मुझे सम्पूर्ण का बोध हो चुका है। वह अनुभव जिसमें मैं जी चुका था वह जीवनानुभव था, वह जीवन जिसमें मैं मर चुका था वह एक रोमांचकारी अनुभव था। इस अनुभूति से मुझे सृष्टि के आरम्भवाली शान्ति 3 जैसे प्रतीति होती है।

मानव की पीड़ा तो दूसरा मानव जायद अनुभव कर सकता है।

1. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 32
2. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 87
3. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 93

किन्तु पेड़ों की पीड़ा को स्वयं के अनुभव में देखना, यह अभिष्विक्त उदात्त है जिसकी उत्पत्ति कवि ने की है, कि जब पतझड़ शुरू होता है तो उसके पत्ते छरने लगते हैं, सभी बड़बड़ पेड़ों की लकड़ी काटने जाते हैं, यही वह मौसम होता है, जब वह अधिक सबसे ज्यादा परेशान रहते हैं। उनकी लकड़ी को छीलकर, काटकर मेज और कुर्तियाँ बनती हैं। इस छिलने और कटने से कितनी पीड़ा अनुभव होती है, यह कितने के मन में नहीं जाता।''<sup>1</sup> अतः यहाँ मानवीय अनुभूति परिलक्षित होती है।

'रोटी' मजदूर और गरीबों की सबसे जरूरत मंद चीज है। वह भी उनके मुख से छीनी जा रही है। उन मजदूरों के अन्दर विद्रोह बन रहा है, उनकी आग की ज्वालाएँ फैलती जा रहीं हैं। कवि इस अनुभूति को दूसरों में भी पाँटना चाहता है।:४

'' मैं सिर्फ आपकी आर्म्बित कल्ला  
कि आप आँखें और मेरे साथ लीये  
उस आग तक चले''<sup>2</sup>

और वह उस आग की गहराई में ज्यों-ज्यों उतरता है, त्यों-त्यों उसे वह आग पहले से अधिक तीव्र ज्यादा सुर्ख और पकी हुई दिखायी पड़ती है। मनुष्य के अन्दर कभी-कभी ऐसी बेचैनी पैदा होती है कि वह कुछ करना चाहते हुए भी कुछ कर नहीं पाता। कुछ लिखते हुए भी कुछ लिख नहीं पाता, कुछ सोचते हुए भी सोच नहीं पाता। वह शून्य में तड़पता रहता है।''<sup>3</sup> कवियों का शोर इस सूनेपन में मन को कुछ तसल्ली देता है, जिससे कवि को कुछ अपनापन लगता है, इस आत्मीयता से वह पास में मैदान की तरह विस्तृत अनुभव करता है।''<sup>4</sup>

1. केशव नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 11
2. डॉ० केशव नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 23
3. डॉ० केशव नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 49
4. डॉ० केशव नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 61

कविता करने की अभिव्यक्ति हमेशा अपूर्ण रहती है, इसी की वजह कवि के अन्दर विभिन्न प्रकार की अनुभूति जाग्रत करती है किन्तु हमेशा कुछ न कुछ हमेशा टूट जाता है, कुछ न कुछ खाली अवश्य रहता है :

“ कविता यही करती है  
यह सोधा मगर जोखिम भरा काम  
कि तारे शब्दों के बाद भी  
जादनी के पास हमेशा बसा रहे  
एक तादा पन्ना ।”<sup>1</sup>

‘ प्रवाद पर्व ’ राजसी राज - सम्मान का और अपनी मर्यादा को सुरक्षित बनाये रखने का जादनी की अभिव्यक्तियों की प्रस्तुति है, जिसमें राम अपनी प्रयोग करने के लिए देखी सीता को धनगवन का आदेश देते हैं। देखे तो इस आदेश के प्रति स्वयं ही अन्तर्हन्त की स्थिति में होते हैं, और देखी सीता की पवित्रता को स्वीकारते हैं किन्तु एक साधारण जन की सही उंगली पर विचलित होकर सोचते हैं, यदि किसी एकान्त की भयानक पावड़ी में तेजस्वी पीपल-पुरु। उत्पन्न हो तो उसकी अभिव्यक्ति सहज तत्त्व की कसीटी माननी चाहिए।”<sup>2</sup> इसी अन्तर्हन्त की वेदना अनुभूति में अपनी नियति के सम्बन्ध में विचारते हैं :

“ यह कितनी दूर और / अमानुषी मोला है प्रिये, / जो  
प्रत्येक बार / हमारे और तुम्हारे बीच / जाकाश की  
ज्याएषों मृती / एक अमिट/प्राचीन जिले की / अन्धी /  
मृत, पुष्पुषित प्राचीर / प्रतिप्राचीर ता जा च,ी होती है।”<sup>3</sup>

इन प्राचीरों से हम बार-बार साँट कर टकराते हैं। और अन्दर ही अन्दर टूटते चले जाते हैं। इसी प्रकार का टूटना समुद्र बनता जाता

1. डॉ० केदार नाथ सिंह : खोजीन पक रही है : पृ० 95

2. नरेगा मेहता : प्रवाद पर्व : पृ० 34

3. नरेगा मेहता : प्रवाद पर्व : पृ० 59-60



है। यही आनन्दीय पुरुषार्थ की चिन्मयता है। उस आनन्द-आनन्द के चङ्कपूर में सब कुछ घटी रहता है, वन्द्य, कुल-कुलम्ब, परिवार, राज्य, केवल हम ही उन पथोंपर चल कर जाते हैं जैसे हम यात्रा करते हुए हों।<sup>1</sup>

राजसी जीवन में लोभ भयानक का स्थान रहना जरूरी है, किन्तु उन त्यों से परे निर्मिष्ट भाव से जीने वाले जितने सुखी हैं। इसी भाव की अभिव्यक्ति कवि ने अनुभव की है। सुख की परिभाषा तो सभी जगह एक है, किन्तु दुःख उसके व्य ही अनेक हैं, किसी का भी द्वार छटकाओ। प्रत्येक द्वार से दुःख की अनुभूति ही निकल कर आयेगी। सुखी नहीं है जो पदार्थ भाव से ऊपर है। जैसे निमादगौर शरीर।

किन्तु सीता के मन की अभिव्यक्ति देवता पूर्ण है। वह जैसे हमेशा से इस रहस्य से परिचित थी अतः वह कहती है :

“पृथिवी की नियति ही है कि/ उस पर / पदचिन्हों के अङ्गरे  
आलेख / चिह्नित याथार्थ और/ आख्यान ही आख्यान सिद्धें हों/  
चाहे वह मात्र दुःख के ही क्यों न हों। / जबकि आकाश /  
पक्षियों को लांछ कर/ सारे मेघवस्त्रों को उतार/सम्पन्न्यहीन  
ज्वागरिण सन्यासी की भूमिका में/ शोभा पाता है।”<sup>2</sup>

ऐसी मनोवृत्ति की अनुभूति 'शरीर' की प्रतीत होती है। शरीरों को अकृत थी, लेकिन पूर्वजन्म के कल से उत्तम सद्बुद्धि थी। अतः वह अपने कार्य अपने परिवार, अपने जाने से छुड़ा कर ले लगी। उसी विरहित ने उसे धर छोड़ने पर मजबूर कर दिया। प्रेम ऊपर को जाने को लालसा में मत्तगुनि के आग्रह हैं आग्रह पीजती हैं। उसकी सद्बुद्धानुरक्ति से प्रभावित होकर मत्तगुनि उसे अपने आग्रह में रख लेते हैं। और वह प्रेमानुभूति में दिन पर दिन तल्लीन होती जाती है। जब ही राम वहाँ पहुँचते हैं तो वह भाव-विह्वल होकर, अपने आराध्य को बंगली-बेर

1. नरेश मेहता : प्रवाद पद्य : पृष्ठ 67

2. नरेश मेहता : प्रवाद पद्य : पृष्ठ 74

का प्रसाद रखती है यह अनुमति जितनी तीव्र व हृदयस्पर्शी है जब वह  
चल-चल कर राम के तन्मुख धर रखती है :

“ प्रभु को देगी वह वर  
कर, हर्मि रसाल जो मीठे,  
जब प्रभु को बिच्छा बनकर  
चलैगी कड़े मीठे।

वह सहज भाव से चखती  
मीठे प्रभु को दे देती  
प्रभु सहज भाव से खाते  
अर्घों से कृपा परसती।” 1

आत्मा की जो आत्मोभिव्यक्ति है उसकी सीमा अज्ञान है।  
इसी प्रकार महाप्रस्थान में पाण्डुरोहण राज्य को जीत कर उस पर शासन  
करके भी अज्ञान ट रहते हैं। वह मन की मन युद्ध की विभीषिता से आक्रान्त  
दिगर्भ पड़ते हैं। अतः अपना राज पाट छोड़कर हिमालय की गोद में  
महाप्रस्थान करते हैं। इन अन्तर्द्वन्द्वों की अनुमति कवि ने तपस्विना के स्तर  
पर की है। राज्य प्राप्ति के पश्चात् पाण्डवों की अनुमति ऐसी रही,  
वैसे, जब की मुदही में भर लिया हो। वह राज्यारोहण था या श्वसाधन  
था।

नगर महलों के मुख पर उजाड़ता था, पाण्डवों की जय में ऐसा  
तं-पन था, गेय पद्ये हुए लोगों की अर्घों में युद्ध की वासदी नचि रही थी।<sup>2</sup>  
मन की इन त्पुतियों से कुछ भी ओपन नहीं होता :

“ कुछ भी तो भेंट नहीं पाता  
मन की निगूढ़  
इन ग्रन्थ गुफाओं से।” 3

1. नरेश मेहता : शबरी : पृष्ठ 90
2. नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृष्ठ 42-43
3. नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृष्ठ 52

सत्य की अनुभूति यह होती है जब गाँव अपने हाथों में समाप्त हो जाती है तब बाहरी वर्धन कोई महत्त्व नहीं रखता ।<sup>1</sup> वस्तुतः यह मन की अनुभूतियाँ हैं जब बाह्य पदार्थ से ऊपर उठकर मनुष्य की चेतना जागृत होती है तब उसके अन्दर आसक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है। यही स्थिति पाण्डवों की है। महाप्रस्थान के समय द्रौपदी सबसे पीछे रह जाती है। किन्तु आसक्तिहीन होकर पाण्डवगणा आगे ही चले जाते हैं। फिर एक-एक करके युधिष्ठिर को छोड़ बाकी अन्य भी साथ छोड़ जाते हैं। अन्तिम हिमालय का अनुभव युधिष्ठिर को मन ही मन सातता है। किन्तु वह हिमालय की सृष्ट्यानुभूति में खो जाते हैं :

“ हिम- / एक पर्व है / श्वेत फूलों वाला एक नगोंत्सव है /  
आकाश में / सृष्टि के आरम्भ में / मन्दार फूलों की जो माला  
हाली है / उस पर परिणय की / वह प्रथम गन्ध ही /  
हिमालय है ।<sup>2</sup>

केदारनाथ अश्वान प्राकृतिक अनुभूति की कल्पना में पिरोते हैं। यह मस्त वसन्ती हवा जब धीरे-धीरे चलती है तो मन को मुग्ध कर जाती है। कभी वह शहर में, गाँव में, वस्ती में, नदी पर, रेत पर, निर्जन में पोखर में, हर जगह का अंग सहनाती, छूँती-छामती चली जा रही है।<sup>3</sup> वस्तुतः यह प्रकृति की कल्पना की सहजानुभूति है जो कवि के मन को दर्शाती है। इसी प्रकार सूर्य की पहली छिरनों ने जब उगना शुरू किया तब पृथ्वी पर धीरे से, कोमलता से अपना पग रखा। जिससे मिट्टी सभी तत्वों का रंग धीरे से लाल हो उठा। सूर्य की लालिमा में छोटा सा गाँव भी केसरी रंगा का हो उठा है। कच्चे मिट्टी के घर इस प्रकार प्रतीत होते हैं जैसे वह निर्मल कंचन पानी में डूबे हुए हों। सूर्य की छिरनों ने

1. नरेगा मेहता : महाप्रस्थान : पृष्ठ 84

2. नरेगा मेहता : महाप्रस्थान : पृष्ठ 126

3. केदार नाथ अश्वान : फूल नहीं, रंग घोलते हैं : पृष्ठ 21

“ दर्द था एक / जो तुमने दिया / हजार गुणों के बीच / जो  
 देने दिया / रात में तपसा / और दिन में दिया, / न किसी  
 ने जाना / तुमने क्या किया ।” 1

इस प्रेमानुभूति में हुआ हुआ कवि अपनी प्रेयसी की पीड़ा में स्वयं  
 को पीड़ित अनुभव करता है ।” 2 वह उसी विरहाग्नि में, जो कल्पना  
 करता है वह उसे छोड़कर इस संसार से विदा होगी, वह अनुभव करता  
 है कि उसके साथ-साथ यह भीन आत्मिक हिमवान, सूरज-चंद्र, धरती का  
 अक्षय भी गीला हो उठेगा ।” 3 कवि अपनी प्रेयसी की प्यार की  
 अनुभूति में पुलकित हो उठता है वह चुपचाप, उसके प्यार में खोता है। वह  
 हर क्षण उसके प्यार में दमकता ही रहता है और प्रतिफल पुलकित हो  
 उठता है ।” 4 नदी की वेदनाभूति से पीड़ित अनुभव को व्यक्त करता है :

“ नदी ने घरों / जिसे प्याह किया, / मिलन के लिए/जिसका  
 रोज/ इन्तजार किया / पाकर जिसे तुम त काम/ अब/ आज /  
 उसी की लाल लिर कहती है। विरह-विलाप का / शोक-संतोष  
 सहती है, / किसी से कुछ नहीं कहती, / काष्ठापुल ललकनाती  
 रहती है ।” 5

भारती के प्रगीत में प्रेम और वातना की उछाल अनुभूति को हरम  
 और सहज अभिव्यक्ति मिली है। उन लीरोजी होंठों पर बरबाद मेरी  
 जिन्दगी ।” वह इस अनुभूति पर छायावादी परदा नहीं डालते। वह  
 तीन्द्र्य के मांसल रूप की सुधम अभिव्यक्ति करती है ।” 6 डॉ० धर्मवीर

1. डॉ० केदार नाथ अग्रवाल : पूल नदीं रंग पीलते हैं : पृ० 132
2. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 20
3. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 24
4. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 71
5. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 157
6. डॉ० रघुनाथ : भारती का काव्य : संपादनीय डॉ० अन्न नाथ मदान :  
 पृ० 1

भारती कैमोर्ष मन : स्थितियों के पारछी हैं। अतः उनका भीषापन, तलोनापन कवि के अन्दर तप हुआ है। वह अन्धधु यौवन को तथेय करते हुए चेतावनी सी देते हैं:

‘अभी-अभी यौन ने ली है अरसौंही अंगड़ाई।  
जैसे साधन की छूटों से पायल हो पुरवाई,  
अभी नगर में नाच करनी है,  
जैसे सागर की लहरों पर हो नमकीन कुमार।  
अभी जो मत तुम रतनारी किरनों को सिंगार।’<sup>1</sup>

‘‘अभी-अभी यौवन ने दहलीज पर अपने पाँव रखे हैं, और तुम्हारे अन्दर तो वही पध्यों जैसी विद्व, नादानी, अन्धधुवन है। तुम अभी बहुत नाजुक सी-सुकोमल हो, तुम अभी प्यार करना मत सीखी।’’<sup>2</sup> वस्तुतः कवि को उन सबसे भय, डर है जो उसकी कोमल मुग्धा नायिका को छूट देना चाहती हो। अतः वह हर तरह से उसे अगाह करना चाहते हैं। डॉ० भारती को वह वाक्य अनुभूति उन्हें नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी भाव के अधिक निष्ठ में जाती है।

‘‘कुप्रिया’’ में डॉ० धर्मवीर भारती ने मुख्यतः राधा की भावानुभूतियों को अधिक परिष्कृत किया तथा ये अनुभूतियाँ परिवेश के माध्यम से अधिक उजागर होती हैं। डॉ० धर्मवीर भारती ने इसी अनुभूति एवं परिवेश के माध्यम से आधुनिकता-बोध को प्रस्तुत किया है। मध्ययुग के माध्य में अधिकांश विप्रलब्धा, जिलासिनी, आदि नारी के त्यों का वर्णन मिलता है, परन्तु आधुनिक युग में इस उपेक्षित नारी के प्रति कुछ प्रह्ला उत्पन्न हुई। उसी प्रह्लाका राज्जुकि मैथिलीशरण गुप्त ने ‘साकेत’ में उपेक्षित लक्ष्मण पत्नी उर्मिला के भावानुभूतियों को दृष्टीगत तथा अपनी कल्पना के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इसके साथ

1. डॉ० धर्मवीर भारती : ठण्डा लोहा : पृ० 24

2. डॉ० धर्मवीर भारती : ठण्डा लोहा : पृ० 25

ही थी मैथिलीशरण गुप्त ने ' यशोधरा ' में गीतम-पत्नी के उज्ज्वल चरित्र का प्रकाशन करके नारी गौरव की स्थापना की। इन काव्यों का जन-साधारण के ऊपर काफी प्रभाव पड़ा। युग-युग से पीड़ित, उपेक्षित, जड़-विमूढ़ नारी के उत्थान की आवाज आधुनिक युग में काफी सुलभ हो चुकी थी। नारी के उत्थान की भावना से प्रेरित हो, डॉ० भारती ने ' कनुप्रिया ' की राधा के हर मनोभाव को समझा है एवं हर परिस्थितियों का सामना करने की बुद्धि चातुर्य को भी पाया है।

“ इतिहास-निर्माण ” की आलोचना करने की दृष्टि मद्रसकाल के किसी कृतित्व में नहीं है। कनुप्रिया राधा में इस दृष्टि की चेतन्यता है। वह कनु से प्रश्न करती है, उपासक देती है, उसके युद्ध-आयोजन की आलोचना करती है वह कनु से कहती है :

“ क्या मैं तिरक एक सेतु थी तुम्हारे लिए  
लीला भूमि और युद्ध-क्षेत्र के  
अलंध्य अन्तराल में । ” ।

यह मनः स्थिति राधा के उपेक्षित रह जाने के कारण बनती है। राधा की अनुभूति उस प्रकार की कल्पना भी नहीं कर सकती कि वह कृष्ण के लिए केवल सेतु भर थी। इसीलिए राधा पुनः कृष्ण से ' एक प्रश्न ' करती है, ' मान लो कि धना भर को मैं यह स्वीकार लूँ कि मेरे वे तारे तन्मयता के गहरे धना तिरक भाषाधेरा थे, सुकोमल कल्पनाएँ थीं, रंगे हुए, अर्थहीन आकर्षण शब्द थे<sup>1</sup> 2 तो क्या पाप-पुण्य, धर्मार्थ, न्याय-दण्ड, धर्मातीत घाला यह तुम्हारा युद्ध सत्य है । ये धरा में बह-बह कर आते हुए शस्त्र, टूटे हुए रथ, ज्वर पताकाएँ हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ, नम को कपाते हुए युद्ध-पीप, फुंदन स्वर भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई युद्ध की अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएँ क्या ये सब तार्थक्य हैं ? लाशों पर मंडराने

1. डॉ० धर्मवीर भारतीय कनुप्रिया : पृ० 60

2. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 67

के लिए जाते हुए गिद्धों को क्या तुम बुलाते हो ?'' । राधा को स्वधर्म, अधर्म के निर्णय की परिधेरा के अनुसार आलोचना करती है:

'' और जब के पति की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो  
जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म  
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म.....'' ३

अतः राधा को वह अनुभूति अति सुखदनीय हो जाती है जब अन्तिम प्रगीतों में को अक्षय्य छिन्न होकर राधा के वक्ष के गहराव में हो चरम सुखद अनुभूति पाते हैं।

प्रणय प्रसंग में राधा की भावानुभूतियाँ दर्शनीय हैं। जब राधा पानी भरने जाती है तो अपनी आँखों की चंचलता को वह बहुत मछलियाँ समझकर घड़े का पानी बार-बार ठुसका देती है, ' ३  
इसी प्रकार को राधा को जो धुर के बीच से पूरा की धाती के समान सहेज लेते हैं।'' ४ और राधा को जो छोट से छाने के समान समझाओं में को अपने आँख में छिया लेती है।'' ५ प्रस्तुत संदर्भ में डॉ० रमेशा कुन्तल मेन का कथन है, '' ये मुद्गारें मानों'' काव्य में मूर्तियाँ की भाँति होते हैं जो अर्थ की व्यंजना और व्यंजनी नवीनता का नया संधान करते हैं। मुद्गारें बिना व्यंजना आकृति के रची ही नहीं जा सकती। और व्यंजना का स्वधर्म है अनुभूति की प्रगाढ़ता अर्थात् तन्मयता।'' ६ वस्तुतः राधा अपनी भावानुभूति की

1. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 68
2. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 75
3. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 28
4. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 34
5. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 35
6. डॉ० लक्ष्मणदेव गौतम : धर्मवीर भारती । डॉ० रमेशा कुन्तल मेन का लेख । : पृ० 201

परिष्कार के साथ चित्रित करता है। राधा का सच्चा रूप साध की गहनता, सुजन-संगिनी बनने का महत्त्वपूर्ण योगदान तथा सदा राधा की भावानुभूतियों की गहनता का परिचायक है, जिसे डॉ० भारती ने परिष्कारानुसार आत्मने में पूर्णतः सफल हुए हैं। जिसे डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह कहते हैं, "यह प्रणय की गहन अनुभूति से जो वस्तुओं के वाह्य पार्थक्य को पाटकर तद्रूपता का साक्षात्कार कराती है।"। वस्तुतः प्रेम ऐकान्तिक भावानुभूति है, जिसे हल्का सा ध्यानात्मक भी वर्णित कर देता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में जो स्वच्छन्दतावादी काव्यानुभूतियाँ परिलक्षित होती हैं वह स्वाभाविक एवं परिष्कार के अनुरार ही अभिव्यंजित होती हैं।

### व्यक्तिवाद :

कविता की रचना करते वक्त कवि वैयक्तिक व आत्मपरक ही होता है। कवि की रचना यथार्थ जगत् से मीमांसात्मक ज्ञान के आधार पर हवाच लेती है। अतः कवि अपने काव्य-संसार में किसी दूसरे का हस्तक्षेप सहन नहीं करता। कविता के रचना-विशेष में वह कतौनिस कोई अनुसंधान नहीं कर पाता। स्वच्छन्दतावादी व्यक्तिवाद के अन्दर रचना, अनुभूति, प्रतीक विषय आदि प्रेरक तत्त्व कार्यशील रहते हैं। ये प्रवृत्तियाँ जहाँ भी कविता में एक साथ गुंथित होती हैं वहीं स्वच्छन्दतावादी व्यक्तिवाद दिखलाई पड़ता है।

नयी कविता सर्वद्वारा वर्ग की चेतना को उपलब्ध है। फलतः नयी कविता में व्यक्तिवाद के अन्तर्गत व्यक्तिमत्त्व की अनुभूतियों के साथ-साथ वाह्य स्थितियाँ, परिष्कार एवं रोजो-रोटी की समस्याओं का आकलन भी परिलक्षित होता है। कवि यहाँ पर सामाजिक, धार्मिक आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों से जुड़कर नयी-चेतना का निर्माण



करता है। युंग के अनुसार सुबन-क्रिया अचेतन स्तर पर होती है। जिसे दो वर्गों में विभक्त किया है, वैयक्तिक अचेतन और सामूहिक अचेतन। इन दोनों को वह व्यक्ति की पूर्ण चेतना कहता है। अतः काव्य सर्जना वैयक्तिक और सामाजिक होती है। " युंग वैयक्तिक एवं सामूहिक अचेतन की अभिव्यंजना को स्वीकारते हुए कहता है कि कवि सर्जन के सांत्विक ऋण में इन दोनों तत्त्वों को काव्य-सुबना का माध्यम बनाता है। फलतः कवि या कलाकार की रचना में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता की सहज स्वाभाविक अभिव्यंजना होती है। सामूहिक अचेतन अच्छी तरह मानवी समस्याओं का संकेत देती है जो हमेशा से समस्त विश्व में व्याप्त है।" 1

व्यक्तिवाद स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है जिसकी जनक नवी कविता में परिलक्षित होती है। कवि नागार्जुन का जीवन और मानसिक पीड़ा, एवं आघातों में व्याप्त हुआ। जिस प्रकार कायावाद के प्रतिकारी युगप्रवर्तक निराला का जीवन सामाजिक परिवेश से कटा हुआ था उसी प्रकार नागार्जुन का जीवन भी है। अतः उनकी कविता में एक फुस्कार जो कि पाठक के मस्तिष्क एवं हृदय को उद्बलित कर देती है। डॉ० रामविनायक शर्मा का कथन है, " रामराज्य के सपने टूटने पर तेवर बदलती हुई हिन्दुस्तानी जनता की शेष भरी फुस्कार नागार्जुन की कविता है।" 2 इसी फुस्कार में कवि का व्यक्तिवाद भी सुघरित हो उठा है। वह अपनी काव्य प्रतिभा को सुघरित करना चाहता है परन्तु सामाजिक तिरस्कार एवं आर्थिक तंगी से परेशान होकर उसे छोड़ना चाहता है, यही अन्तर्न्द की मानसिक स्थिति है :

" कम ही मेरा हल है कुदाल है, / चबुत बुरा हाथ है, /  
कहाँ मैं किस वर्ग में गिनती अपनी, / लेखक ही बना रहूँ, /

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 99

2. नागार्जुन : युगधारा : पृष्ठ 112

पकड़ लूँ यह पेशा - / बाप-दादा करते जाये जो हौशिया । / नहीं,  
नहीं लेता नहीं । / आशीष दो मुण्डों / मन मेरा स्थिर हो ।।<sup>१</sup>

वस्तुतः यहाँ कवि की वैयक्तिकता स्पष्ट होती है। सामाजिक संदर्भ में कवि अपना आक्रोश शिव के उमर उतारता है कि मेरा तिर तुम्हारी कदमों में कभी नहीं पड़ेगा। क्योंकि तुमने गरीब, मजदूर, बेघर लोगों को कुछ नहीं दिया। उनके बच्चे बिना अन्न के रो रहे हैं, उनके घर के चूल्हे में मकड़ी ने अपना जाला बना लिया है। मजदूरी में इन्होंने अपने घर के पतन भी घेव डाले हैं। किन्तु तब भी उनके नतीव में दो वज्र की रोटो भितना मुश्किल हो रहा है।<sup>२</sup> महात्मा गांधी के तपने आज रूँदि हुए हैं, पहले तो सिर्फ एक ही चाणक्य था किन्तु आजकल हर ठोड़ चाणक्य नजर आता है हर एक की भीतर-बाहर की देश-भूषा बदली हुई है। ऐसी असीम घेदना में क की रहा है। वह लिखता जाता है रोता जाता है, उस पीड़ा से बेबाबू हुआ जाता है। क्योंकि यह पीड़ा इतनी तीव्र है चाहे जितना लिखें उतना ही कम है।<sup>३</sup> कवि सम्पूर्ण विश्व में नयी चेतना, नयी जागृति लाना चाहता है, अतः कवि की वैयक्तिक अनुभूति मुखरित होती है कि यदि तुम शिर्षिक होकर साहित्य का निर्माण करना चाहते हो, स्वप्नों को साकार करना चाहते हो, फिर कल्पना अथवा अमृत धारा बहाना चाहते हो तो उठो -

“मन और तन की समूची ताकत लगा कर  
विघ्न-बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, दाह दो ।  
अमंगल के, अशुभ के उन हेतुओं को ध्वस्त कर दो ।  
छोड़ कर निर्मूलक दो कण्टकावृत प्राधियों को ।  
राह में रोड़े पड़े हैं अभित-अगदित .....  
उन्हीं में अतनान्त गहार पाट डालो ।

- 
1. नागार्जुन : युगधारा : पृ० 14
  2. नागार्जुन : पत्रहोन नग्नगाछ : पृ० 33
  3. 4. नागार्जुन : युगधारा : पृ० 47. 73

करता है। युग के अनुसार सृजन-क्रिया अचेतन स्तर पर होती है। जिसे दो वर्गों में विभक्त किया है, वैयक्तिक अचेतन और सामूहिक अचेतन। इन दोनों को वह व्यक्ति की पूर्ण चेतना कहता है। अतः काव्य सर्जना वैयक्तिक और सामाजिक होती है। ' ' युग वैयक्तिक एवं सामूहिक अचेतन की अभिव्यंजना को स्वीकारते हुए कहता है कि कवि सर्वत्र है सात्त्विक अतः में इन दोनों तत्त्वों को काव्य-सृजना का माध्यम बनाता है। फलतः कवि या कलाकार की रचना में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता की सहज स्वाभाविक अभिव्यंजना होती है। सामूहिक अचेतन अच्छी तरह मानवी समस्याओं का संकेत देती है जो हमेशा से समस्त विश्व में व्याप्त है। ' ' 1

व्यक्तिवाद स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है जिसकी जनक नयी कविता में परिलक्षित होती है। कवि नागार्जुन का जीवन घोर मानसिक पीड़ा, एवं अभावों में व्यतीत हुआ। जिस प्रकार छायावाद के प्रोत्तिकारी युगप्रथक निराला का जीवन सामाजिक परिदृष्टि से कटा हुआ था उसी प्रकार नागार्जुन का जीवन भी है। अतः उनकी कविता में सब कुस्कार जो कि पाठक के मस्तिष्क एवं हृदय को उद्देक्षित कर देती है। डॉ० रामविलास शर्मा का कथन है, ' ' रामराज्य के सपने टूटने पर तेवर बदलती हुई हिन्दुस्तानी जनता की श्रेष्ठ भरी कुस्कार नागार्जुन की कविता है। ' ' 2 इसी कुस्कार में कवि का व्यक्तिवाद भी मुखरित हो उठा है। वह अपनी काव्य प्रतिभा को मुखरित करना चाहता है परन्तु सामाजिक तिरस्कार एवं आर्थिक तंगी से परेशान होकर उसे छोड़ना चाहता है, यही अन्तर्बन्ध की मानसिक स्थिति है :

'' लम्ब ही मेरा हल है कुदास है, / बहुत बुरा हास है, /  
क्यों मैं किस वर्ग में गिनती अपनी, / लेखक ही बना रहूँ, /

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 99

2. नागार्जुन : युगधारा : पृ० 112

भूख और प्यास से व्याकुल लोगों की समानित वीर्यार को यह तरवार मुन न लगी। उन पर शस्त्रों से धार डरने लगी। कुछ तो तो धिक्करी के पार पहुँचा चुका है। हरेक के बदन में कटि ही कटि केना दिए हैं। ग्रहंसा के मनोवृत्ति तो वहीं दिखारु भी नहीं पड़ती।'' 1

गिरिजा कुमार माधुर सभा की प्रस्तावों की व्यवस्था के प्रति कतना रोच दिखते हैं कि उन्हें लगता है कि एक हाथ में लोहा ले कर सारे कृष्य में एक साथ लोहूँ। इस व्यवस्था पागडोर का, नेता के मोटे घाम को, मुनाफा कमाते व्यापारियों को इस सारी व्यवस्था से जोड़ की तरह पिपडे इस शहर को, अपना कून कुसवाते हुए गंधीं को, ' 2 हर व्यवस्था में तरह-तरह फ़ोन व्याप्त है, जिनके प्रति उचि अपनी दीयन्तिक अनुभूति पर उजागर पर उजागर करता है।

'' अब वह स्थिति / कि बाहर से नहीं / मेरे समूचे शरीर से / निपलता है / एक ठीकना शोर'' 3

सामाजिक चेतना के अन्तर्गत उचि दफ्तर के पाधुओं की चापवृत्ति, अक्सरों की जाति मिश्रावी और लोन्डू के पैर को तरह पितते हुए ईमानदार कलहों का गाथा व्यक्त करता है। जिनसे कुछ जाता नहीं है वह चापवृत्ति करके, दूसरों को धोखा दे कर अपनी तरफ़ी करते हैं।'' 4 किन्तु प्रतिभावान लोग मजली की भाँति त, पते रहते हैं, ऐसी गन्दी व्यवस्था के अन्दर। उचि ऐसी व्यवस्था के प्रति जाग्रोश व्यक्त करता है'' यह तीन ती व्यवस्था है यहाँ लगी कतनायत बने हुए हैं, ज़ामदी विद्वत् बने हैं, जिनके हर क़ुर्ब पर तासियाँ प्यार स्वगत दिया जाता है, सरे ग्राम पूजा की जाती है, यह स्वयं ही हाकिम मन पापदे-कानून तोड़ते हैं। यह तीन ती

---

|                       |   |                  |   |     |       |
|-----------------------|---|------------------|---|-----|-------|
| 1. नागार्जुन          | : | सुगंधारा         | : | पृ० | 83    |
| 2. गिरिजा कुमार माधुर | : | साधी रहे वर्तमान | : | पृ० | 17    |
| 3. गिरिजा कुमार माधुर | : | साधी रहे वर्तमान | : | पृ० | 30    |
| 4. गिरिजा कुमार माधुर | : | साधी रहे वर्तमान | : | पृ० | 33-35 |

कवि ने तन, मन, धन से अपनी प्रेयसी को तप कुछ दिया, लेकिन वह हर  
सहस्रान को भुलाकर उसे सिर्फ माघ पौर्णिमे की रत्नी मान मानती रही।  
अपनी उदात्त प्रेयसी के लिए कवि सिर्फ सागर की भाँति धनता है जो  
सिर्फ देना जानता है लेना नहीं।

वस्तुतः नयी कविता में मानवीय अनुभूति व्यक्ति की वैयक्तिक  
चेतना को लेकर उद्भूत हुई है, जो निरन्तर विरासत के सोपानों को प्राप्त  
कर रही है। कवि अपने ही शब्दों के प्रति जाँझिती हो उठता है। अतः  
उसे कोई तन न ले और अन्दर अपने खोल में छिप जाता है।<sup>१</sup> वह  
अपने आपको छोटों में, पड़े हुए दोनों के अन्दर, घण्टी की आवाज के  
पत्थर के नीचे, आटा पिसते हुए माँ के गाने की आवाज में, छिपाने की  
कोशिश करता है। क्योंकि स्वतंत्रता के पहले तो आजादी के लिए  
आवाजें पुलंद थी, किन्तु आजादी के पश्चात प्रत्येक आवाज पर अंशुला  
लगा हुआ है।<sup>२</sup> 'बाजार से लौटकर' आने की वैयक्तिक अनुभूति को  
कवि अभिव्यक्ति देता है कि बाजार से लौटकर जब मुस्ता आता है तब  
उसे अपनी हथेली पर निराली और देखी कि उसमें कितना तेजाब और  
बाजार की धूल भरी है।<sup>३</sup> कवि चाहे जहाँ भी विद्रोह करे या  
किन्तु अन्त में लौटकर उसे घर आना ही पड़ता है। तब उसे महसूस होता  
है कि उसका घर ध्वंश से मुहरावर उसे बर्बाद देता ही।

“ आत्मान मुझे हर मोड़ पर / पीड़ा से लपेटकर बाँधी  
छोड़ देता है / अगला कदम उठाने / या बैठ जाने  
के लिए। ”<sup>३</sup>

कवि के सामने आगे जाने कोई रास्ता सुझाई नहीं देता।  
सिर्फ एक हाव ही दिखाई पड़ती है जो कितनी मन्तव्य की ओर इशारा

१. ठेदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ १५

२. डॉ० ठेदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ ५५-५६

३. डॉ० ठेदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ ५५

जगारा भी नहीं करता। और जब दास ऐसी प्रतीत होती है जैसे  
 लायुमण्डल में अपना छतदार टंग दिया हो।" <sup>1</sup> फिर भी कवि  
 को आर्वांधा चलती चली जाती है। अपनी प्रतिदि पाने लालता में,  
 किन्तु वहाँ पहुँच कर उसे हर नाम एक चोखला प्रतीत होता है। जो  
 दूसरों को कुछ नहीं दे सकता।" <sup>2</sup> तयाज की व्यवस्थाएँ इतनी ऊँच  
 हो चुकी हैं कि कवि को वह एक दीवार की भाँति दिखनाई पड़ती  
 जिनके आर-पार कोई नहीं देख सकता, तथा उनसे दूर नहीं जा सकता।  
 किन्तु पुनः व्यवस्था में चेतना जाग्रत होती है :

“ एक फावड़े की तरह उससे पीठ टिकाकर  
 एक तमूची उग्र घाट देने के बाद  
 मैं उस नतीचे पर पहुँचा हूँ  
 कि लौटा नहीं

सिर्फ आदमी का सिर उसे तोड़ सकता है।" <sup>3</sup>

निराशा की चोटी में जब कोई आशा का मन्त्र बोलता है तो मन  
 में ऐसी अभिव्यक्ति जाग्रत होती है जैसे काफी समय की चोमारी को ढेल  
 कर अब स्वास्थ्य लाभ पहुँचा हो। उस वक़्त बाहर का माहौल मनोहारी  
 लगने लगता है, कवि को तमूचा शहर की एक विशाल फूल की तरह  
 छिना हुआ प्रतीत होता है।" <sup>4</sup> मन स्थितियाँ तो दो ही प्रकार की  
 होती हैं। आशा और निराशा की। किन्तु जब परस्परार्थों में  
 परिवर्तन हो चका होता है तो वहाँ स्वर लुहृष्टि विकसित होती है।  
 जी नरेरा मेहता की कृति 'श्वरी' व्यक्ति मन की कृपा है। जिसे कवि  
 ने काल्पनिक अभिव्यक्ति के माध्यम से सजीव बनाया है। जिसे कवि ने  
 स्वीकारा है, " जिस युग की यह कथा है उस समय सामाजिक स्तर पर

1. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ 55
2. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ 56
3. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ 65
4. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृष्ठ 89

भले ही वर्ण व्यवस्था का विधान रहा हो पर व्यक्ति, कर्म के द्वारा वर्ण मुक्त होने की कोशिश कर सकता था। शबरी की कथा में भी यही वर्ण-मुक्त होने की चेष्टा है।<sup>1</sup> शबरी को पशु हितों से धृणा होनी जा रही थी, वह सोचा करती थी कि क्या यही पाप-कर्म मेरे जीवन में लिखा हुआ है।<sup>2</sup> रक्त से सने हथियार को नदी में धोते वक्त चिन्तारती कि ईश्वर ने यह धरती, वन, सरिता कितने सभ्य एवं सौम्य बनाये हैं, किन्तु वह जाति क्यों निरौष्ठ पशुओं का वध करती है। इस माहोल ने उसके अन्दर चित्तुष्णा ने जन्म लिया<sup>3</sup> और सब परिवार को सोता हुआ छोड़ कर वन में चली गयी। गुरु की आज्ञा से वह अपने जीवन व्यर्थ बनाने लगी। वहाँ जाकर उसे कभी खालीपन नहीं लगा :

“ दिन भर कुटिया थी सूनी / यह लगा नहीं कोई दिन /  
ताला ही लगता तब कुछ / ये फूल और यह पूजन। ”<sup>4</sup>

इसी प्रकार पुँवर नारायण 'आत्मजयी' मैगनचिक्ता की वृथा को उजागर करते हैं। नचिक्ता के अन्दर भी व्यक्तिवाद सुन्नरिता होता है। वह उस जीवन-मृत्यु से इस सांसारिक बंधन से मुक्त होना चाहता है जिससे वह इस सुख-दुःख से परे शान्त चित्त रहे। वह संसार में मृत्यु को नहीं देखा चाहता। वह चिन्तारता है कि मैं अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु हूँ और नास्तिकता में अधिक धार्मिक, अकेलेपन में अधिक मुक्त एवं उदासी में अधिक उदार।<sup>5</sup> उसके अन्दर व्यक्तिवादी घेना अभिव्यंजित होती है :

1. श्री नरेश मेहता : शबरी : पृष्ठ 8
2. श्री नरेश मेहता : शबरी : पृष्ठ 19
3. श्री नरेश मेहता : शबरी : पृष्ठ 21
4. श्री नरेश मेहता : शबरी : पृष्ठ 44
5. पुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 8

“ अभी भी उस लम्बी की दुमन / मैं अपनी छतियों पर महसूस करता हूँ / और एक सूखे चीमड़ कंकाल का / लंबा पुर्रियों वाला हाथ / मेरे गालों से छू जाता है।”<sup>1</sup>

कवि इन मान्यताओं में परिवर्तन चाहता है, किन्तु उसके विचार पीछड़ में फँसी नाव की तरह उसके पास ही विचरते रहते हैं, जैसे वह रहे हों” मीन रही” और प्रतीक्षा करो।”<sup>2</sup> उसके मन में तीव्र अन्तर्द्वन्द्व उठते हैं। वह सोचता है कि कुछे अपनी तारी उम्र क्या इसी तरह फाटनी थी, वह सोचते हुए अंधिरों भागता<sup>3</sup> चला जा रहा है। न तो वह इन पलायन करना चाहता न प्यार करना चाहता। वह देखता रहता इन धूप में झिलझिलती पत्ती को पिछलाई की, या बर्फ में पड़े फूल के रंग को।”<sup>4</sup> याददायक एक पगड़ी के समान है, जहाँ ज्ञान्तरिक एवं संवेदनशील स्मृतियाँ रहती। अपने जित्म के उन हिस्सों को बहुत गौर से देखते हैं जो पादों के धारणा दुर्बल हो गये हैं।”<sup>5</sup> कवि अनुभव करता है।

‘ पर हर धार लगता है / मैं कोई ताबूत छील रहा हूँ / एक उदस हरहराते प्रवाह में / प्रेत सा होल रहा हूँ।”<sup>6</sup> कवि एक पत्थर को अपने आकाशों में टांगकर व्यक्ति-अनुभूति व्यक्त करता है। वह पत्थर जो न तो पूजा जाता है और न वह अस्वर है, न ही उसका महत्त्व भिन्न अभिमान से उठा हुआ है। घड़ी ज्ञातानी से इसमें हर क्षण जो ज्ञात में पड़ता है, उसकी सहजामिथ्यपति दे देता है।”<sup>7</sup> क्योंकि उस पत्थर ने

1. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 22

2. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 23

3. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 25

4. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 27

5. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 73

6. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 75

7. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 87



कवि को इन्सान की शक्ति पर विश्वास करने का मौका दिया है, और हर कोष, पार कराने के लिए स्वयं कोष में प्रतिष्ठित है।<sup>1</sup> कविता के सन्दर्भ में कवि की व्यक्तिवादी दृष्टि परिलक्षित होती है :

“ मुझे कुछ नहीं रहने देती  
मेरे हर शब्द को  
अप्रमान बनक बना देती है  
जितना ही मैं कहना चाहता हूँ  
स्पर्श उतना ही जोमल होता जाता है  
शब्द उतने ही पागलबत्। ” 2

वस्तुतः आत्म-आभिव्यक्ति के अन्तर्गत कवि ने व्यक्तिवादी चेतना सामाजिक धरातल पर दिखाने की प्रतीति है। यहाँ उन्होंने अपनी आन्तरिक अनुभूति को सामाजिक स्तर में लाया है। ऐसी ही व्यक्तिगत अनुभूति वह कोहरे में कर दहे हैं कि विश्विर वृत्त की शाम में बना कोहरा उतना फना होता है, जहाँ कुछ दिखाने नहीं पड़ता। जल, धन, धैर्य, गर्व सव अपनी 'स्व' की पहचान में खो गये हैं।<sup>3</sup> एक कदम के बाद ही आगे कुछ दिखाई नहीं देता। या तो का भी कुछ नहीं, क्योंकि रास्ते खंद हो चुके हैं।

कवि के मन में आदमी के लिए क्या अस्पन्न होती है कि वह धूस और गरमी को चिंता किए बिना, अपने शरीर से प्यार करता है। धरती की गहराई को खोदता है, बाँधता हुआ भी मिट्टी को ढीला है और गन्दी आवादी के नाले को पाटता है।<sup>4</sup> अर्थात् वह उन परम्पराओं को मानता रहता है जो हमेशा उसे दुःख देती हैं, पीड़ा-संक्रांत पहुँचाती हैं। किन्तु फिर भी वह उन परम्पराओं एवं मान्यताओं के ऊपर पदार्थ जानता रहता है। कवि की स्वयं की अनुभूति है :

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 87

2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृष्ठ 90

3. केदार नाथ अग्रवाल : गुल्मोददी : पृष्ठ 24

4. केदार नाथ अग्रवाल : गुल मेंदो : पृष्ठ 28

“ कायरों का मोह में बैठे ज़हो / अन्य चिन्तन कर रहे हो :। /

होन-हुर्लस भावनाओं का निरर्थक / सिन्धु-मथन कर रहे हो ।। ” 1

मानव हो या पशु किन्तु ब्रह्मापत्या में तब लाचार हो जाते हैं। इसी की अनुभूति कवि उद्घुत करता है कि यह चित्कला कुत्ता, अब घूटा होकर खाली पेट लेटा-लेटा जमाता रहता है, जब यह घुसा था तब पिचली की गति से दौड़ता था, पंखों में जल था, हवा से बातें करता था, एक ही हवाटे में घिसल को दबोच लेता था, म्यानक आवाज में गुरगुराता था। किन्तु अब यह जाहट भी नहीं भोजता, एक लाखों मकली हमला करती है और काटती है। किन्तु अब यह गुंगा, पहरा और मुरदा बनकर जीवन काट रहा है।<sup>2</sup> जीवन के प्रति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण है कि यह जीवन मोमबत्ती के समान है जो, जलती, पिघलती है अन्त में अपना अस्तित्व ही देती है। यह जीवन उस प्रकाशमान सूर्य के समान है, जो गहरे सागर में उमरता है, पहले अग्नि की तरह दहकता है, जो, चेतन, सम्पूर्ण प्रकृति को सुलसाता है। फिर धीरे-धीरे थर-थर जाता जाता जाता है। और दिन उसे धीरे-धीरे अस्तावल की ओर गेजा बत्त पहन कर घिलीन हो जाता है।<sup>3</sup> कवि की व्यक्तिवादी अनुभूति अनिवार्य होती है :

“ क्यों जाते हैं नाथ न जिनका / मैं अधिकारी ? / क्यों जाते हैं

शब्द न जिनका / मैं व्यवहारी / कविता क्यों ही बन जाती है /

बिना बनाए, / जोरि हृदय में तड़प रही है/याद तुम्हारी । ” 4

कवि व्यक्तिवादी अनुभूति से प्रेरित होकर कहता है जब तुम मेरी कविता में उतरती हो तो यह अनुपम हो जाती है, जब तुम शब्दों के पंख लगाती हो तब वह जीवन की तरह कूड़ने लगती है, जब तुम क्या संघार

1. ठेदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 39

2. ठेदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 52-53

3. ठेदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 57

4. ठेदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 73

‘ आत्मगंध’ जैसा कि उसके नाम से विदित होता है, यह पूर्णतः व्यक्तित्वादी कृति है। जिसमें कवि ने अपनी मनः स्थितियों का आकलन किया है। अपनी पत्नी के प्रति प्रेम को मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। यह कवि के उन संक्यों की पीड़ा को व्यक्त करता है जब कवि की पत्नी बहुत बीमार अवस्था में पहुँच चुकी थीं। तथा उसके बाद मृत्यु को प्राप्त हुई थी। इन अन्तर्द्वन्द्वों का संघर्ष कवि के कोमल मन पर आघात करता है। परन्तु जीने की आत्मशक्ति के प्रखर होने के कारण सहजता पूर्वक नेता, है, उसमें जीता है। वृद्धावस्था में बीमारी के कारण पत्नी बेहोश है, बहुत दिनों के पश्चात् प्रायः कुछ मुस्कराहट आयी है। इसी मुस्कराहट पर कवि निहास हो उठता है।’’<sup>1</sup> कवि अपनी पत्नी के लिए वेदना से व्यथित है कि न तो आँखें खोलती हैं, न किसी को पहचानती हैं, अस्ति-नास्ति का ज्ञान भी हो चुका है। वाणी भी बन्द हो चुकी है। केवल मैं ही अपनी चेतना में उन्हें बिताये हुए हूँ।’’<sup>2</sup> अपनी प्रिया के इस दुःख को वह कविता के वन पर सुख जैसा ही पीता है।’’<sup>3</sup> कवि अपने जीने में ही, प्रिया का बाधन मानता है, अपनी रचना में उसका ही रस है, अपने पाने में प्रिया को पाता है, यह क्रम वह सदा चालू रक्ता चाहता है।’’<sup>4</sup> कवि अपनी आत्म-अभिव्यक्ति प्रकट करता है :

‘‘ धूम बहुत छापी है मैंने/ मार बहुत छापी हूँ मैंने / फिर  
भी/ पीड़ित रहकर मैंने/ आँसु नहीं गिराये / मैं/ जोठों  
पर / सदा रहा / मुस्कान बिठाये- / आँखों में/ मयता के/  
दीपक रहा बनाये।’’<sup>5</sup>

- 
1. केंदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 19
  2. केंदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 22
  3. केंदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 33
  4. केंदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 48
  5. केंदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 67

कवि अपनी प्रिया के प्रियोग में भीतर रोता है, किन्तु बाहर संतता है, वह अपनी व्यथा को अपनी संती के साथ फूलों से पिछेरता है। उस संती में उसे जीने की अद्भुत क्षमता मिलती है।'' ६

'कनुप्रिया' में व्यक्तिवादी चेतना राधा की मनःस्थितियों में परिलक्षित होती है। राधा जो कृष्ण सखा, मित्र, माँ, बधू, सहचारी, बान्धवी, जेजों-बाँ में कृष्ण का साथ देना चाहती है, किन्तु कहीं-कहीं उसे कृष्ण उपेक्षित सा छोड़ जाते हैं वहीं वह व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति में आ जाती है। किन्तु यह व्यक्तिवादी अनुभूति सिर्फ राधा की है। अतः 'पहला गीत' के आख्यम से उसे उपेक्षित रह जाने का दर्द साजता है 'दूसरा' गीत में अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होते हुए अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती है। वह लज्जा से स्वयं लज्जागील बनती है :

'' पर हाथ मुझे क्या मालूम था / कि इतत देना जब अपने को /  
अपने से छिपाने के लिए मेरे पास/कौन आवरण नहीं रहा /  
तुम मेरे विस्म के एक-एक तार से / छंदार उठोमे।'' 2

राधा कृष्ण के प्रति इतनी आसक्त है कि जब कृष्ण से साक्षात्कार होता है तब कृष्ण के सामने बिलकुल बड़ और निस्पन्द हो जाती है। उसे मधुर भय, अनजाना संशय, आग्रह भरा गोपन घेदना, उदासी अभिभूत कर देती है।'' 3 निर्बल स्वान्त की प्रेमानुभूतियों उसके मन में उत्साह पैदा करती है। वह अपने प्रिय के साथ बिताये क्षणों को स्वान्त में बैठ कर दीपक के मन्द आलोक में याद करती है।'' ४ किन्तु समय पर न पहुँच कर, प्रिय से मिलन न होने पर उसके अन्दर तीव्र व्यक्तिवादी चेतना उभरती है :

1. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 84
2. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 134
3. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 213
4. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 24

“ यह कैसे पताऊँ तुम्हें

कि परम साक्षात्कार के ये अनुभूति क्षण भी

जो अभी-अभी मेरे हाथ से छूट जाते हैं

तुम्हारी कर्म पुकार जो अभी-अभी मैं नहीं सुन पाती

तुम्हारी भेंट का अर्थ जो नहीं समझ पाती

तो मेरे तारों के साथ मन ही भी होती है।” 1

राधा के मन में व्यक्तिवादी अनुभूतियाँ तब और गहराने लगती हैं जब कृष्ण उसे कैलिसखी बनाने के बाद अकेला छोड़ कर चले जाते हैं वह अपने आपको सुनी हुई राधा, दृढ़े हुए गीत, सुने हुए चोंद केसा महसूस करती है। अपने आपको वह धोते हुए उत्सव सा, उठे हुए मिले सा व्यक्ति मानती है। उसके पास अब 'तिर्क' में हूँ, यह तन है, और याद है' 2 उसे इतिहास 'उत्तरी वर्षण में पुष्पा-सा एक प्रतिपिम्ब

मुड़-मुड़ नहराता हुआ

निर को दोहराता हुआ” 3

प्रतीत होता है। वस्तुतः 'कनुप्रिया' में राधा की मनःस्थितियाँ मनोवैज्ञानिक हैं। उसकी उपेक्षा, उसकी सार्थकता, उसका इतिहास सभी कुछ, अन्तर्द्वन्द्व से उपजी घेतना है। जो राधा के व्यक्तित्व से उभरती है। जिसे डॉ० भारती ने सुधमता के द्वारा अपनी दृष्टिकोण प्रदान किया है। राधा अपने 'स्व' के लिए चिन्तित है। अतः यहाँ पूर्णतः व्यक्तिवादी घेतना उभर कर आयी है। गजानन माधव गुणितबोध का व्यक्तिवाद सामाजिक पीड़ा से संतप्त है। उनके स्वर में क्रांति के तत्त्व विद्यमान है। वह किसी दूसरे से अपनी पीड़ा व्यक्त भी नहीं करते बल्कि अपना स्व सभी समाज का दुःख स्वयं अपने पीते हैं। वह एक क्य वाय

1. डॉ० कर्पोर भारती : कनुप्रिया : पृ० 25 27

2. डॉ० कर्पोर भारती : कनुप्रिया : पृ० 57

3. डॉ० कर्पोर भारती : कनुप्रिया : पृ० 57

और पीड़ी में कविता के माध्यम से उतर जाते हैं। वस्तुतः नयी कविता की व्यक्तित्वादी धेतना सामाजिक, सर्वहारा वर्ग की धेतना लेकर चलती है। जिसमें कवि की 'स्व' अनुभूति, समाज की अनुभूति, सर्वहारा वर्ग की अनुभूति, शोषित एवं पीड़ित वर्ग की व्यक्तित्वादी अनुभूति परिलक्षित। जिसमें कवि कहीं न कहीं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उनमें जुड़ा रहता है। अतः ऐसा प्रतीत होने लगता है यह अनुभूति दूसरे की न होकर स्वयं कवि की पीड़ानुभूति है। मुक्तिबोध में पीड़ा का तत्त्व इतना अधिक रहा है कि वे पथार्थवाद की एक नई तरंग के ही झुंडा बन गए हैं जिसमें धैर्यवशेष का सीमान्त आग्रह है।<sup>1</sup> अथेन स्तर पर इन्हीं अन्तर्द्वंद्वों में कवि का व्यक्तित्वादि भी परिलक्षित होता है। क्योंकि व्यक्तित्वादी धेतना तो मनोवैज्ञानिक क्रिया है। जैसा कवि के सामने परिघेरा रहता है वैसी ही अभिव्यक्ति जाग्रत होती है। जिसके फलस्वरूप कवि का 'स्व' बनता है और व्यक्तित्वादी धेतना उभरती है। कवि अपने व्यक्तित्व से आशा लगाये हुए था कि वह एक दिन महान कवि बनेगा। किन्तु सामाजिक उपेक्षा के कारण वह अपने आपको उपेक्षित महसूस करता यही आत्मउद्गार प्रस्तुत होते हैं कि हमें जिन्दगी में कवि के किरये मिले हैं, हम मन में पूरा शीशा का प्रतिध्विज लगाये थे। रत्न का एक टुकड़ा मिला था, किन्तु उसे हम अच्छी तरह देख भी न पाये थे कि वह खो गया, उसके साथ ही कवि के किरये भी खो गये। इस बात का तनाव शिराजों, स्नायु-संत्र मन-बुद्धि में ऐसा लगा कि उस तहलाने के समान अन्दर चले गये।<sup>2</sup> कवि की आन्तरिक पीड़ा उभरती है :

'कायरता व साहस के—/ जिन्दा हूँ, पीच में / पुनो और  
साहस की / जिन्दा में मस्त रह।'<sup>3</sup>

1. आचार्य नन्द हुनारे पाण्डेयी : नई कविता : पृष्ठ 94

2. गजानन माधव मुक्तिबोध : भूरी-भूरी छाक-धून : पृष्ठ 12-13

3. गजानन माधव मुक्तिबोध : भूरी-भूरी छाक-धून : पृष्ठ -13

क्योंकि जब तक जोधन है तब तक जिन्दा तो रहना ही है, इसीलिए साधन व वायरता के जोध दिनेरी से जिन्दा रहूँ।

कवि के हृदय में हर मास के लहर दाग की तरह घन गया है, उसकी प्रत्येक भूज दूसरी भूज की सुधारने में नई भूज हो जाती है। ऐसा अवस्था उसकी आत्मा को कचोटी रहती है। फलवार पिड़पिड़ाहट, श्रीधर शान्ता में स्वयं पर प्रयोग हर संशोधन करता है।<sup>1</sup> कवि समाज की साहित्यिक प्रथा से भी संजप्त है। क्यों यहाँकिये मूल्यों, नयी अभिव्यक्तियों की कोई पहचान नहीं है। जो कुछ भी योजना चाहते हैं पुराने साहित्य में ही ढींचते हैं। इसी की पीड़ा कवि को परेशान किए हुए है :

“ मैं भय आर्शकाहट पिछले दरवाजे से / ऐसे जिज्ञा मानो शरीर  
से मुखमुप/जिज्ञा बाए आत्मा / यह आत्म-सदर घन भीलों पार  
कहीं पहुँची / चीजती हुई तब और अभिजापित वस्तु स्वयं।”<sup>2</sup>

मुक्तिबोध अपनी आत्मा को नोला-बोला मानते हैं, जितने उन्धेने हृदय और रक्त से सींचा है। आत्मा को रोमलता में जधान हो रहा है। अनुभव लगे रहते हैं उससे बेर, अपनी खड़े, पान, लेकर बढ़ रही है। किन्तु मन में जो हर का अनुसंधान है वह मैं ही हूँ।<sup>3</sup> कवि मेरे मुँह पर धूस का बख्तर होगा, चारों तरफ कीलगी होगी, फिर भी मेरे आशा के मन में, मेरी आँखों में गुनहरा सपना लहरायेगा।<sup>4</sup>

कवि अपनी आत्मानुभूति को एक पात्र में उतारता है :

“ रामू जीवता ऐकिय व्यर्थ गया सारा दिन/ मेहनत गरीब के असाध्य  
चिन्ती रोगग्रस्त / जीवताय किन्तु अति भीले प्यारे / पालक की  
उदास / चिन्ती आन्तरिक प्रेरणा से घमकती हुई / आँखों- सा कि  
म्यान मुस्कानों-सा/ अरे, यह मेरा दिन बीतने/ की प्रेरणा लिए हुए/

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : भूरी-भूरी छाक-धून : पृष्ठ 52
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : भूरी-भूरी छाक-धून : पृष्ठ 56
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : भूरी-भूरी छाक-धून : पृष्ठ 68
4. गजानन माधव मुक्तिबोध : भूरी-भूरी छाक-धून : पृष्ठ 76

भी पूरा न कर पाया अपना काम / प्रभाव के कपालों को/  
हृदय के दाह-भरे घुम्बन से / ताल कर दूंगा मैं ।'' 1

कवि महसूस करता है कि हम एक दहे हुए मकान के नीचे दबे हुए हैं, जहाँ पीछ निकलना भी मुश्किल है। ऐसी पीड़ा कितनी भयानक है। यह महसूस करते जाना कि पत्तली की हड्डी टूटी हुई है और यह भयंकर वजन भी नहीं सधता। घस अपनी साँसों का धीरे-धीरे चम्पना, कितना भयंकर है।'' 2 जो वास्तव में कुछ नहीं है, किन्तु कुछ घायल लोगों ने जिन्हें चढ़ा दिया है उनके प्रति कवि अपनी व्यक्तिवादी चेतना अभिव्यंजित करता है कि मैं ऐसे लोगों से बहुत दूर हूँ। उनकी प्रेरणा और मेरी प्रेरणा अलग-अलग है जो उनके लिए विश्व के समान है वहीं मेरे ही अन्न है। मैं अकेला होते हुए भी मनोबल को दृढ़ रखता हूँ। मेरी ऐसी में मनोबल देखकर तुम चिन्तित हो जाते हो। मैं असफलता का धूल-कचरा थोड़े हूँ। क्योंकि सफलता चक्करदार जीनों पर मिलती है और मैं तो सीधा-सीधा चलता हूँ। और अपनी स्थिति में संतुष्ट हूँ।'' 3 वस्तुतः कवि शून्यों से खिरी पीड़ा को ही सत्य मानता है जो तो विध्या, भ्रम है। सत्य केवल एक है जो दुःखों का भ्रम है। जिसके प्रति कवि के मन में पीड़ा है :

'' मैं कनफटा हूँ डेठा हूँ / श्रेष्ठ-शक्ति के नीचे मैं लेटा हूँ।  
तेलिया-निषास में पुरजे सुधारता हूँ / तुम्हारी आवाज़  
ढोता हूँ।'' 4

कवि विजय और पराजय के मध्य अपना 'स्व' को बचाते हुए अन्तर्द्वन्द्व में जगमगाता रहता है। मेरे विचार जैसे स्याह समुद्र में नहाये हुए हैं। फिर भी आशा की किरण धामों में इस संतार स्त्री सागर का

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : भूरी-भूरी राक-धूल : पृ० 195
2. गजानन माधव मुक्तिबोध :: चाँद का मुख टेढ़ा है : पृ० 79
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 121
4. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 122



फिलान भर किनारा पकड़ कर बार-बार निकलने की कोशिश करता है।<sup>1</sup> कभी-कभी संसार के प्रति चितुष्णा बागृत होती है। युक्तिबोध तोछते है मने यह कंटीमे तारों के पार जाने के लिए अनाधिकार चेष्टा की है। वहाँ क्या है ? यह सोचकर उसके मन में कुछ दुःखता अवश्य है।<sup>2</sup> चिन्दगी में अभी तक दुःखों का तमगा ही पसना है। अकेले में अपनी बुद्धि एवं अनुभूति के साथ ही समय व्यतीत किया है। ऐसी तमथर के समान चिन्दगी नीरस हो गयी है।<sup>3</sup> नीरस चिन्दगी से घेरत छोकर कवि भागता है :

“ भागता मैं दम छोड़ / धूम गया कई मोड़ । / भागती है चप्पल,  
चटपट आधाब / चोटों- ती पड़ती । ”<sup>4</sup>

वस्तुतः सामाजिक पीड़ा, संभ्रात, अपेक्षा से पीड़ित होकर ही कवि के ये व्यक्तित्वादी उद्गार निजले हैं। जिसमें चिन्दगी की सच्चाई एवं कृदाहट निहित है।

कुल मिलाकर यह ज्हा जा सजता है कि व्यक्तित्वादी पीड़ा जो स्वच्छन्दतावादी कवियों में थी, उससे अमर उठकर नयी कविता में देखने को मिलती है। क्योंकि स्वच्छन्दतावादी कवि में 'स्व' चेतना है केवल अपने लिए, किन्तु नयी कविता के कवि में यह 'स्व' चेतना सर्वहारा, मजदूर, पीड़ित संक्रस्त एवं स्वयं अपने लिए है। जो पीड़ा वह भोगता है। वही ही पीड़ा उसको समाजवादी यथार्थवादी चेतना में परिवर्तित होती है। फलतः उसी की पीड़ा स्वयं भोगकर व्यक्तित्वादी चेतना की अभिव्यक्ति प्रदान करता है। डॉ० अमर सिंह का अभिमत इस संदर्भ में उल्लेखनीय है : ' जाज की नयी कविता या जाज की संगिमाओं की कविताओं में मिथक, चिम्ब, प्रतीक एवं त्यक को अभिव्यक्ति नये रूपों में होती है। ऐसी स्थिति में कविता

1. गजानन माधव युक्तिबोध : चाँद का मुँह देड़ा है : पृ० 186
2. गजानन माधव युक्तिबोध : चाँद का मुँह देड़ा है : पृ० 213
3. गजानन माधव युक्तिबोध : चाँद का मुँह देड़ा है : पृ० 270
4. गजानन माधव युक्तिबोध : चाँद का मुँह देड़ा है : पृ० 276

की चेतना व्यक्तिपरक ही रहती है, क्योंकि मिथक, धर्म, प्रतीक एवं त्यक्त कवि-मान की उपज है। हिन्दी कविता स्वच्छन्दतावादी काव्य के अनन्तर एक नया मोड़ लेती है। इस बिन्दु पर हिन्दी कविता स्वच्छन्दतावादी बोध से छुटकारा पाने के लिए उत्पत्ताती तो है, लेकिन उसकी साजना धिक्क रहती है। इसलिए स्वच्छन्दतावादी या आयावादी दौर के पश्चात की कविताओं में स्वच्छन्दतावादी आधुनिक बोध को अत्यधिकार नहीं जा सकता।<sup>1</sup>

### मानववाद :

मानववाद में, मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की प्रधानता है। अतः मानववादी चेतना मनुष्य के धर्म में उत्पत्ता का संकेत है। प्रत्येक मानव अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, जिसे वह जन्म से अर्जित करता है। अतः यह विचारधारा मानवीय भावनाओं का प्रेरणा स्रोत है। मानववाद के संदर्भ में डॉ० अजय सिंह काकधन है, "मानववाद देवतावाद, परमेश्वरवाद के बदले मनुष्य केन्द्रित धर्मबोधी, भौतिकवादी, विज्ञानवादी जीवन-दर्शन है, जो मानव-कल्याण का लक्ष्य पुरा करता है। विज्ञान की सहायता से मानव-प्रकृति के रहस्यों को ज्यों-ज्यों समझने लगा त्यों-त्यों उसमें आत्मनिर्मिता, स्वावलम्बन, विश्वास, विश्वास आस्था एवं विवेक सम्मत तर्क की प्रवृत्तियाँ बनने लगीं।"<sup>2</sup> मध्यकाल में मानव के स्थान पर देवी, देवताओं, एवं रहस्यवादी भावना की प्रधानता थी। कविगण अपने साहित्य में इन्हीं का गुणगान एवं वर्णन किया करते थे। किन्तु चौदहवीं शताब्दी ने यह मान्यता छिड़ित की। इस युग के मनुष्य में नयी चेतना जाग्रत हुई। फलतः उसने धार्मिक रुढ़ियों का उच्छेदन कर अन्यविश्वासों को तोड़ा अतः मानववाद में मानव आचरण की नैतिक अवधारणा को स्वीकारा जाने लगा। मानववाद मानवीय सम्बन्धों में कल्याण की महत्ता एवं सम्भावनाओं के प्रति जाग्रद है। जो

1. डॉ० अजय सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ : पृ० 204

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 134

क्योंकि यह प्रभरत पीड़ित मानव जितता भरता तो है परन्तु हारता नहीं है। यह मानव अधिषित दुर्जय है।''<sup>1</sup> कवि ने मानव के दो रूपों का वर्णन किया है एक में वह अमर आस्था का प्रतीक तो दूसरे में विद्रोह का :

'' मैं मानव हूँ। मानव का एक आयाम अमर आस्था का है तो एक विद्रोह का भी है। दोनों ही स्वाधीनता के आयाम हैं : जैसे विद्रोह मेरी अतमर्थता में बहुमूल नहीं है वैसे ही मेरी आस्था भी मेरी अक्षमता में बहुमूल नहीं है - दोनों मेरे स्वाधीन कर्म हैं।''<sup>2</sup>

सब वस्तुओं की माप मानव है सब मूल्यों का स्रोत मानव है, इसका वास्तविक अभिप्राय यह है किमानव मूल्यों की सृष्टि करता है।''<sup>3</sup>

वस्तुतः मानव का महत्त्व इसलिये सर्वोपरि माना है कि उसके अन्दर सदा, विज्ञान के प्रति जिज्ञासा, छहलोक की मान्यता, सामाजिक चेतना, नैतिकता का उचित समन्वय मिलता है। आधुनिक मानव स्वतंत्र, सृजनशील एवं गतिशील है, क्योंकि वह स्वयं अपना स्रष्टा है।

कवि के हृदय में निम्नवर्गीय बच्चों, पुरुषों महिलाओं के लिये कल्याण है। अतः उन्हीं की दयनीय स्थिति का आकलन किया :

'' तिहरते, ठुहरते, पंगु, नग्न बच्चे, भग्न गुम्बद पर धेड़े हैं।

चेतर-हर, दुर्धर कुहासे की हलाहल-स्निग्ध मुदली में

तिहरते - से पंगु, टुडे

नग्न, बच्चे दर्दमारे पेड़े।

पात फिर दो भग्न गुम्बद -

निषिद्धता की भेदती धोतार-सी मीमार -

बाँस की टूटी छुई टही लटकती

एक छम्मे से फटी-सी ओढ़नी की चिन्दियाँ दो-चार।''<sup>4</sup>

---

|               |   |           |   |             |
|---------------|---|-----------|---|-------------|
| 1. सं० अक्षेय | : | तार सप्तक | : | पृ० 314-315 |
| 2. ' अक्षेय   | : | अन्तरा    | : | पृ० 11      |
| 3. ' अक्षेय   | : | अन्तरा    | : | पृ० 24      |
| 4. सं० अक्षेय | : | तार-सप्तक | : | पृ 0 286    |

श्री नरेश मेहता ने मानवीय अस्तित्व, मानवीय स्वतंत्रता को उठाया है। यह परिप्रेक्ष्य चाहे पौराणिक हो या आधुनिक। परन्तु मानव हित की रक्षा करना प्रत्येक राजा का कर्तव्य है। जिसे 'प्रवाद-पर्व' में राम करते हैं। वह समस्त जनता की दृष्टि से अपने परिवार को देखते हैं। अतः अनाम व्यक्ति द्वारा उठाया गया सीता के घरिन पर संदेह करने लगते हैं। राम मानव स्वतन्त्रता को उसी भाषा, अभिव्यक्ति, प्रतिगतिमा एवं विमर्श से स्वीकारते हैं।<sup>1</sup> वह मनुष्य के अस्तित्व की दृष्टि को विच्छा<sup>2</sup> करते हैं।

नागार्जुन ने समाज की पीड़ा को स्वयं भोगा है। अतः वह प्रत्येक उस व्यक्ति का दर्द सहना चाहते हैं जिसमें पीड़ित, मजदूर वर्ग सह रहा है। नागार्जुन की दृष्टि दूर-दूर तक गयी है। साम्प्रदायिक लड़ाई में मारे गये व्यक्तियों का अस्तित्व, अस्तित्वहीन हो जाता है जिसमें बेकसूर लोग ही ज्यादा मारे जाते हैं। उन्हीं का दर्द अपनी अभिव्यक्ति से कवि अभिव्यक्त करता है कि निर्दोष महिला को पुत्रित्व के ज्वान की गोली का शिकार हुई उसका कतूर क्या था ? वह तो आग लगाने नहीं गयी, उसके पास आपत्तिजनक कोई चीज भी नहीं थी, मगर वह ज्यों मारी गयी ?<sup>3</sup> इसके साथ ही कवि समाज की, व्यक्तियों की कमजोरी व उनकी बुराइयों को उजागर करता है। वह प्रत्येक मनुष्य की पीड़ा से स्वयं को पीड़ित महसूस करता है, अतः इसीलिए वह कहता है :

“ गिरता-पड़ता / लड़कता / मार की छुंदों के तार टपकाता /  
लकड़ागस्त- पराणित अंग...../ पतन्य आसना तुम्हें ऐसा  
सुदीर्घ जीवन ? ”<sup>4</sup>

1. नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृष्ठ 50
2. नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृष्ठ 51
3. नागार्जुन : छिछड़ी विप्लव देखा हमने : पृष्ठ 9
4. नागार्जुन : छिछड़ी विप्लव देखा हमने : पृष्ठ 55

यह ध्वंग्य सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत है जिसका जीवन लक्ष्मणग्रन्थ की तरह हो गया है। मानव की शक्ति दुर्लभ अनमनीय, प्रातिद्वर्षी, है, वही सर्वद्वारा कर्म का सरलतम चन्द्र है। कवि सु-शून की शक्ति के विषय में वर्णन करता है कि तुममें उसकी शक्ति है कि तुम अपनी कलम से गदा का काम कर सकते हो, मगर इस प्रत्यंवा को टोली मत करो। तुमको पोखेवाले मनुष्यों के अन्तर्गत दया नहीं करनी, कुट मनुष्यों के अन्तर्गत दया नहीं दिखानी।'' 1

मध्यकाल में ईश्वर की शक्ति ही सर्वोपरि थी, किन्तु आधुनिक काल में मानव ही सर्वोपरि है। अतः कवि ने कहा है :

'' कोटि कोटि/ अन्नहीन, वस्त्रहीन जनों का प्रतिनिधि, ५ तु  
भ्रमा बाहर नहीं निकलेगा / कितनी सामर्थ्य है / जो तुझे  
रोक सके।'' 2

अतः जो कष्ट निवारण पहले ईश्वर करता था, आज मानव स्वयं समर्थ है जो हर प्रकार की स्थिति-परिस्थिति से सामना करने की क्षमता रखता है। फलतः आज का मानव उन अनेक लोगों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करता जो उसे दवाना चाहते हैं जो उसका हक दवाये हुए हैं, उन सबके विरुद्ध ईश्वर की शरण में न जाकर स्वयं अपनी आवाज उठाता है। उन हजारों भूखे एवं पीड़ित लोगों की आवाज बनता है जिन्हें दीवानी की सुनियौ भी नसीब नहीं है, जहाँ स्वयं खेती करके किसान की धानी खाली है। कारखानों में अज्ञान्त लोग पित्त रहे हैं। मध्य वर्ग का मन, तपन भरा गहरी घुमड़न से भरा हुआ है उसके मन में लुटे हुए अनेकों मनोभाव है और दया हुई अनगिनत उममें हैं। इस वर्ग के मन में सदियों से कई पाप भरे पड़े हैं। इस वर्ग के मन में अजीब कुहासा भरा हुआ है। इस वर्ग की जो भी जिधर क्लेश, उधर ही अपने अगमगते कष्टों

1. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या : ऐसे भी तुम क्या। : पृष्ठ 24

2. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या : ऐसे भी तुम क्या। : पृष्ठ 70

कदमों से चल देते हैं। अतः नयी कविता का कवि उन शोषित, पीड़ित  
 पेश्वारों अवलूत जीवन जी रहे हैं, निर्बल हैं उनके गीत गाने को उत्सुक है।  
 वस्तुतः मध्यकाल में कविगण छंदर के हो गुणमान किया करते थे। किन्तु  
 आधुनिक युग में एवं नयी कविता में छंदर का स्थान मानव ने ले लिया है।  
 मानव की मजदूरियाँ हैं, उसका जो दुःख है उसकी जो चेतना है, सभी का  
 आकलन किया जाने लगा। सर्वेस्वर दयाल की 'कुआनो नदी' मानव पीड़ा  
 की गाथा है। जिसे कवि प्रत्येक जगह फैली हुई देखता है अर्थात् सम्पूर्ण  
 समाज की स्थिति कुआनों नदी की भाँति गतिहीन एवं सूजी है जिसका अब  
 सिर्फ नाम भर रह गया है, उसमें रोध कुछ नहीं बचा है। यही स्थिति  
 मानव एवं सामाजिक व्यवस्था की है। कवि के मस्तिष्क में पुरानी  
 स्मृतियाँ ताजा होती हैं, अतः उसी परम्परा की सज्जरी, नीली शक्ति बहती  
 हुई नदी का स्वप्न देखता है। वह नदी जो बरसात में अपना पाट चौड़ा  
 कर आस-पास के गाँवों को भी डूबी देती है।'' । '' कुआनो नदी'  
 मानवीय पीड़ाओं की, छेतिहर मजदूरों की, शोषित, पीड़ित लोगों की  
 कहानी है,। जैसा कि इसके छंदों के नाम से परिलक्षित होता है। वस्तुतः  
 नयी कविता आजादी के बाद की कविता है। आजादी से पहले ज्यों  
 ने गरीब मजदूरों का शोषण किया था किन्तु आजादी मिलने के पश्चात  
 भी वह स्थिति ज्यों की त्यों चली रही। क्योंकि राजनीतिक घातों  
 ने इन्हें अगरे उठे ही नहीं दिया और उनकी दुर्दशा दिन-पर-दिन  
 बिगड़ती चली गयी, या चली जा रही है। जैसा कि कवि ने इन छंदों  
 को शीर्षक दिया है। 'कुआनो नदी' अर्थात् भारतीय संस्कृति, 'कुआनों नदी  
 के पार' अर्थात् आजादी के बाद, 'कुआनो नदी-खारे का निगमन, अर्थात्  
 शोषित, दलित लोगों की चिन्ता हुई स्थिति औरभी ज्यादा बेहाल।  
 जिसमें अब शोषित, पीड़ित, मजदूर, छेतिहर मजदूर ही नहीं मध्यम वर्गीय  
 लोग भी शामिल हो गये हैं :

“ मैं भागता हूँ देखता हूँ : / यह छेतिहर मजदूर भूख से  
 मर गया, / यह घोषाये के साथ घाट में घड़ गया / यह  
 सरकारी बाग की रखवाली करता था / लू में टपक गया, /  
 यह एक छोटे से रोजगार के सहारे / जिन्दगी काट से  
 जाना चाहता था / पर जाने क्यों रेत से कटागया ।” 1

कवि उनकी समझना चाहता है जिनकी रंगों में सून नहीं दाँड़ता  
 उन हज़ारों आँखों में कमर नहीं उपजती, किन्तु हर माथे पर सिलसिले  
 क्यों नहीं है ? ऐसे लोगों से कवि न धुमा करता है न प्यार केवल  
 समझना चाहता है। इन देवुवान लोगों की आँखें कवि महसूस करता है :

“ वह आग धीरे करीब आती जा रही है / कभी मैं कितानों  
 की चिलमों में जंगरे की तरह दमकने की कामना करता था /  
 मजदूरों की कीड़ियों में सुलगने के / कबाब देखता था । /  
 उनके घुन्घ्राँ में धकना चाहता था / और इस तरह / मैं  
 अपने को पचाकर / उनका और उनके लिए होना चाहता  
 था ।” 2

वस्तुतः जब सप पोलते थे तब उसकी जुवान ही घन्द रही, जब  
 पूँजीवादी और अमीर हुए तो वह ही पीछे हट गया, जब पूँजीवादी  
 दुतरों का सुटते थे तब भी वह चुपचाप बैठा रहा, यही चुपचाप बैठा  
 पेकसूर आदमी गोली चलने पर सबसे पहले मारा गया ।” 3 वस्तुतः यह  
 मानववादी चेतना सर्वहारा वर्ग की चेतना है, जिसमें यथार्थवादी  
 अभिधापित मिलती है।

नयी कविता की मानववादी धारा वह मानव है जो धुलसंयुक्त  
 शोषित उत्पीड़ित वर्ग को लेकर खड़ी है जो प्रायः अस्तिमापित भी रही  
 है।। मुक्तिबोध स्वयं की पीड़ा में दूसरों की पीड़ा भी भाँगतें हैं।

1. सर्वेधर दयाल सज्जेना : पुमानो नदी : पृ० 27-28

2. सर्वेधर दयाल सज्जेना : जंगल का दर्द : पृ० 19

3. सं० जगदीश चतुर्वेदी : भाषा[ग्रंथ चार जून 1982]: पृ० 37

मानव की पीड़ानुभूति को सुनकर तुम भी जनपथ पर दौड़ोगे।'' 1

कवि दूसरों की पीड़ा को व्यक्त करता है हम एक दूरे हुए मकान के नीचे दबे हैं जहाँ निठलना, चीखना, हिलना, साँस लेना भी मुश्किल है। अर्थात् हम ऐसी सामाजिक व्यवस्था के नीचे दबे हुए हैं जिनके नियमों से साधारण जन की पसलियाँ ही घूर-घूर हो गयी हैं। एक ऊँची भूमि तबों में व्याप्त है। पुरानी परम्पराओं की तुलना पुराने मकान से की है जो अपनी ही दम्भ के कारण ढह गया। अब हमने उन परम्पराओं को ढुकरा दिया है। अब हमारे सामने रास्ते ही रास्ते हैं। पूँजीवादो व्यवस्था ने भी गरीबों का जीना दुखार कर दिया था। अब नयी चेतना बाहर एक छूट होकर पिछोह का स्वर मुखर हुआ है :

'' भूत-बाधा-भूत / कमरों की ग्रन्थ - श्याम तयि-तयि /  
हमने धतायी तो / दण्ड हमीं को मिला / चागी करार  
दिये गये / चाँटा हमीं को पड़ा / बन्द तहलाने में- कुर्जों  
में फँके गये / हमीं लोग, ११ / क्योकि हमें छान था / छान  
अपराध बना।'' 2

कवि अपने शब्दों को एवं दूसरों के शब्दों को मिलाकर एक मानवीय ढाँचा तैयार करना चाहता है वह उन उपेक्षित काल-पीड़ित सत्य को उठाना चाहता है जिसकी छोज में अतंजय स्त्री-पुरुष भटक रहे हैं।'' 3

मुक्तिबोध की 'अंधरे में' कविता मानववाद का सशक्त उदाहरण है जहाँ सर्वहारा वर्ग से लेकर कवि की स्वयं की पीड़ा भी सुपरित हुई है। कवि दमघोट पातादरना से लगातार भागता जा रहा है।

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : पंदि का मुँह देड़ा है : पृष्ठ 34
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : पंदि का मुँह देड़ा है : पृष्ठ 82
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : पंदि का मुँह देड़ा है : पृष्ठ 108



भागते-भागते एक कर बियाहने लगता है कि उसे कांपती आवाज सुनाई दे रही है। इस आवाज में तीखी वेदना है। कवि उसे पहचानने की कोशिश करता है, वहाँ कोड़ व्यथित बोरे को ओढ़कर हाथ-पैर समेटे काँप रहा है। इतने में वह उस बोरे में से तिर निकाल कर बाँकता है, कवि उस धुंधली आकृति को पहचानकर अन्दर तक काँप उठता है।<sup>1</sup> तत्पश्चात् प्रत्येक घेहरे की गति-विधि को ढाँक-ढाँक कर देखता है। हर एक आत्मा का इतिहास, प्रत्येक मानवीय आदर्श, धिवेक-प्रक्रिया खोजता है जहाँ उसे खोयी हुई परम अभिव्यक्ति मिल सके।<sup>2</sup> कवि मानव का उत्थान गहरे विधोभों के अनथक भूलाओं को झेलते हुए मानता है :

“ युग के जग के गहरे विधोभों के अनथक  
भूलाओं ने काड़ी जमीन ही नहीं, धरन्  
जब एक धरातल नभ तक लाकर खड़ा किया  
जीवन ही ऊँचा उठा दिया  
मानव अनुभव की संचित शिला-शैलियों के  
ऊँचे त्रिकोण से शूल-शिखर पर उगा दिया।<sup>3</sup> ”

यह सूर्य के प्रकाश की तरह प्रकाशमान मानव का रुधिर है इसमें घेतना का बाँकता का रश्मि-जाल उत्पन्न हुआ। अब मानव भी सूर्य के समान प्रकाशमान हो उठा है उसके विकास की किरणों भी चारों तरफ फैल रही हैं। वह अपने-जीवन अनुभव लपटी शिखर पर खड़े होकर अपने मस्तिष्क का ही तेजोमय रूप देखता है।<sup>4</sup> मानव के विकास को कवि एक मिठास बताता है जो वर्तमान के ताने-बानों में 'मकड़-जाल' की तरह फंसी होकर भी सूखे रेगिस्तान में मोठे पानी के छरने के समान

1. गजानन माधव मुक्ति-बोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 279
2. गजानन माधव मुक्ति-बोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 298
3. गजानन माधव मुक्ति-बोध : भरी-भूरी छाक-धूल : पृ० 120
4. गजानन माधव मुक्ति-बोध : भरी-भूरी छाक-धूल : पृ० 121

लगती है :

“ मानव अन्तर की एक सभ्यता का सा सुन्दर मरुस्थान हो गया /  
 कि जिस आन्तरिक सभ्यता का अपना इतिहास/ कठिन संग्राम-काव्य  
 , रोमांस, ललित-विस्तार/ गुणादय की छल- उदपाटक बृहद-कथा /  
 है मानवीय माधुर्य धनों की द्राघ-लता / जिसके भीतर / उसे मरुस्थान  
 के तरवर में से फूट पड़ा / निर्जर नीला / मेरे जी में बहता आया/  
 घस घसी तुम्हारे अन्तस्तल में लहराया ।” ।

वस्तुतः मुक्तिबोध ने मानव की शक्ति को ईश्वर से भी बढ़कर बताया है। मध्यकाल में ईश्वर ही <sup>सर्व</sup> शक्ति माना था, उसी को आधार बना कर साहित्यकारों ने रचनाएँ की, किन्तु आधुनिकता में नयी कविता की धारा में मानव ही सर्वोपरि हो गया। उसके दुःख-सुख का वर्णन होने लगा, उसके व्यक्तित्व का वर्णन होने लगा। फलतः मध्यकाल की परम्परा को ठुकराकर नयी चेतना विकसित हुई। परम्पराओं को तोड़ने के कारण नयी कविता की चेतना स्वच्छन्दतावादी हुई। अतः नयी कविता स्वच्छन्दतावादी चेतना का विस्तार है, फैलाव है।

मानव को प्रत्येक पीड़ा को नयी कविता के कवियों ने समझा है। अतः पानी की पीड़ा से नस्त कवि जब पीड़ित व्यक्तियों को देखता है तब उसका हृदय द्रवित हो उठता है। वह उनकी पीड़ा का वर्णन पथार्थवादी भाषना से करता है कि यह लोग तन से भी विचलित हैं और मन से भी। पानी के अभाव में किसी प्रकार अपने प्राणों को जिलाये हुए हैं।” <sup>2</sup> इसी प्रकार जमींदारों के अत्याचार से पीड़ित मानव की ध्येया भी कवि उजागर करता है।” <sup>3</sup> ऐसे लोग जोने के नाम पर सिर्फ जिन्दा रहकर अपनी जिन्दगी काटते हैं। वे न तो इंसान कहलाने लायक रहते हैं। वह तो दुनियाँ के दमिदर

1. गजराज मधुवन मुक्तिबोध : भूरी-भूरी ठाक-धूल : पृष्ठ 127

2. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 101

3. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 162

में फँसे हुए, हाड़-मांस के टाँपा होते हैं। न तो अपनी उन्नति तोच पाते हैं और न अवनति पर अग्रसौत बाहिर करते। जहाँ देखो वहीं पाँच पाँचों हुए कुलुआते रहते हैं। मरे रहकर भी न मरने की पातें करते हैं, सिर्फ कल्पना कर-करके जीने का अभियान करते हैं।''<sup>1</sup>

'' देह है - / पर आदमी नहीं है / उसकी देह में / न जिंदगी

उतने की है -- न पायी है, / उस उतने / मरे- मरे बितायी है।''<sup>2</sup>

आज के मानव में असन्तोष बहुत मिलता है। कवि ने मिट्टी की वैभवशीलता बताया है कि वह उतनी वैभवशाली है कि मेहनत करके उसके कुछ भी उपजाया जा सकता है, किन्तु कल्पनाशील मनुष्य उस निर्गुण आकाश को देखकर स्वप्नों में खो जाता है। फिर असफलता में घुलकर पागल हो मर जाता है।''<sup>3</sup> अधिकांश मनुष्य रस्ती की टोकरी बैठा कालतु बीघन व्यतीत करते हैं-- संघाहीन, अर्थहीन बेकार।''<sup>4</sup> सुबह-सुबह ही भोंपू के खजते ही मिल के फाटक में घुसते हैं। शाम तक थकान से घूर, मरते, खमते छः आने दस आने पाते हैं। शाम को घर आकर पनेधी पी कर भूख शान्त करते हैं। नंगी पीठ जमीन में सोते हैं, रोज ही बदलू में तड़ते रहते हैं।''<sup>5</sup>

'' दाईं तो कर्कों के बाद / किन्तु, सोपड़ी बही बड़ी है / नयी ईंट तक नहीं लगी है / पड़ी गरीबी मरी पड़ी है / बहो धुँआ है / बहो धुँआ है / बही कर्ज है / बही सुद है / बही जमींदारों का छल है / मानव से मानव शोषित है।''<sup>6</sup>

- |                             |                |             |
|-----------------------------|----------------|-------------|
| 1. केदार नाथ अग्रवाल :      | आत्मगंध :      | पृ० 172-173 |
| 2. केदार नाथ अग्रवाल :      | आत्मगंध :      | पृ० 186-87  |
| 3. केदार नाथ अग्रवाल :      | गुलमेंहदी :    | पृ० 27      |
| 4. केदार नाथ अग्रवाल :      | गुलमेंहदी :    | पृ० 29      |
| 5. केदार नाथ अग्रवाल :      | गुलमेंहदी :    | पृ० 44      |
| 6. सं० डा० रामधिलास शर्मा : | श्रम या सूरज : | पृ० 60      |

डॉ० रामविलास शर्मा का कथन है, ‘‘ लोक और आलोक में ही श्रम पर इसी रंग में एक बहुत सुन्दर कविता है, ‘‘ छोटे-हाथ’’। सुन्दर मुख, सुन्दर हाथों की भी, उपमा कमल से दी गयी है लेकिन खेत जोतने वाले किसान के साथ १ केदार के लिए वे कमल जैसे हैं , लाल कमल जैसे, जो सबेरा होते ही काम में लग जाते हैं। हाथ का काम में लगना कमल का खिलना है। यही हाथ किसानी करते हैं और आने वाले वैभव के दिन को उँगली से टोया करते हैं। मानो भविष्य अभिन्न रूप में इनके श्रम से जुड़ा हो। भविष्य की टोह लेना कवि की करनी भी है। कवि का श्रम और किसान का श्रम एक ही उद्देश्य से प्रेरित है।’’ ।

‘‘ छोटे हाथ / गुनी ग्यानी है, / मौलिक ग्रंथों को रचते हैं.... /

मानव की सुन्दरतम कृतियाँ / मानव को अर्पित करते हैं।’’ 2

वस्तुतः नयी कविता में मानव की अभिव्यक्तियाँ इतनी सटीक है कि वह यथार्थ रूप में ही सामने प्रस्तुत हुई हैं। मानव की छोटी-छोटी कार्य प्रणालियों का वर्णन कवि ने किया है। उसे हर दृष्टिकोण से देखा-परखा है , तभी मानववादी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है।

डॉ० केदारनाथ सिंह आज की मशीनी दुनियाँ के मानव की पीड़ा व्यक्त करते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में हर जगह अफरा-तफरी है, सब एक-दूसरे से आगे जाने की होड़ करते हैं। यहां तक कि कभी-कभी स्वयं के जरूरी कार्य के लिए भी वक्त नहीं मिलता।’’ 3 निम्न वर्ग की पीड़ा उच्च वर्ग नहीं समझता, बल्कि वह उसको दबाता जाता है। ऐसी ही पीड़ा मार्मिक शब्दों में व्यक्त की है।:

‘‘ नमक और पानी / सिर्फ दो शब्द मेरे पास हैं / तीसरा हमेशा

उसके पास रहता है।’’ 4

- |                                            |         |
|--------------------------------------------|---------|
| 1. सं० डॉ० रामविलास शर्मा : श्रम का सूरज : | पृ० 25  |
| 2. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी :         | पृ० 135 |
| 3. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है :   | पृ० 18  |
| 4. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है :   | पृ० 22  |

ऐसे लोगों के पास अपना बहने को कुछ भी नहीं होता। तिरक उदासी के सिवा। न तो उन लोगों के पास कोई दिशा है और न ही उन्हें सही दिशा दिखाने वाला सहयोग।

मध्य-निम्न वर्ग के लोग प्लर्की की दुनियाँ में ही घिघरते हैं। उनके पास समय नाम की चीज रह ही नहीं पाती। उनका जीवन एवं समय अपसर्गों को जी-हजुरों में ही व्यतीत होता है। अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में खाना-पीना तक भूल जाते हैं। इन्हें ठोप भी खर नहीं चौंकाती, पर अपने तक ही सीमित रहते हैं।<sup>1</sup> इन निम्न-मध्य वर्ग के लोगों को तिरक यह सहसात रहता है कि मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे चारों तरफ यही वातावरण है :

“ मैं अकेला नहीं हूँ इस बातोंमें / क्योंकि जहाँ न जहाँ जासू झूने जा रहे हैं / जहाँ न जहाँ बच्चे पैठे हैं / एक लम्बी और सफेद दाढ़ी को धरकर और दाढ़ी से काले बालों बाहर निकल रहे हैं।”<sup>2</sup>

वस्तुतः नयी कृति में मानववाद, मानव के प्रत्येक पहलू को उजागर करता है। उसी कजोरी एवं बाहुरी का गुणगान भी करता है। उच्चवर्ग की सोना जोरी एवं निम्न-मध्य वर्ग की दबी हुई मानसिकता की अभिव्यक्ति देता है।

डॉ० धर्मवीर भारती ने ‘कुप्रिया’ में राधा और कृष्ण के पौराणिक रूप को न अपनाकर आधुनिक मानव का रूप दिया है। ‘कुप्रिया’ में जो प्रिया-कलाप राधा और कृष्ण करते हैं वह मानवीय स्तर पर प्रतीत होता है। ‘भय, संभय, गोपन, उदासी’<sup>3</sup> यह सारी मनोस्थितियाँ मानवों प्रप्रिया से ही उजागर होती हैं। जो राधा की सख्त भावानुमति है। इसी भय, संभय, लज्जा के फलस्वरूप वह कु से मिलने के लिए नहीं जा पाती।

1. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन थक रही है : पृष्ठ 49

2. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन थक रही है : पृष्ठ 80

3. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृष्ठ 21

जितसे क्नु को निराशा होने लगती है वह निराशा से धिरे व्यक्ति को तब  
आम धीरे को मतलब है।<sup>1</sup> प्रिय के सांकेतिक स्थल पर न पहुँचने से जो  
खिन्नता व्यक्ति के मन में उपजती है, ऐसी ही सारी स्थितियाँ कृष्ण के  
हृदय में भी है। अतः इसी लिए वह खिन्न होकर संकेत स्थल पर अपने  
आने का सहसास कराकर गुमगुम से चले जाते हैं। फलतः यह सारी स्थितियाँ  
मानवीय ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'पौर्ण की जंगली लतरों के  
पके फलों को तोड़कर मतलब कर उनकी लाली से महात्तर लगवाना, लाज से  
दोहरी हो जाना'<sup>2</sup> मानवीय क्रियाओं के गुण हैं।

मानव अपने अस्तित्व का सहसास कराने के लिए कभी हंसता है, कभी  
रोता है तो कभी क्रोधित भी होता है। इसी मानवीय गुण के अन्तर्गत राधा  
भी अपने अस्तित्व का सहसास कराने के लिए कभी खिन्न होकर, कभी  
अनबोला ठान कर, कभी हंसकर<sup>3</sup> क्नु को छटाती है। यह प्रक्रिया मानवीय  
प्रेम के स्तर में घूमने के लिए एक अगली कड़ी है। मानव क्रिया का प्रमुख गुण  
'क्नुप्रिया' में उस वजत ज्यादा स्पष्ट होता है जब कृष्ण राधा से  
'नाये पर पल्ला डालो'<sup>4</sup> कहकर राधा के अस्तित्व को नववधू की भाँति  
रखना चाहते हैं। इसी प्रकार राधा की सखियाँ राधा से, कभी च्यंग्य से,  
कभी कुटिलता के संकेतों से राधा और क्नु का सम्बन्ध जानना चाहती हैं  
तो राधा मानवीय धरातल पर ही क्नु को अन्तरंग सखा, रघुक-धन्धु, लक्ष्य-  
आराध्य-गन्तव्य की सीमाओं में मापती है। किन्तु वही क्नु अक्षर सखी  
के सामने बुरी तरह ठेड़ते हैं तो राधा खींचकर, अँखों में आँसू भरकर कहती है

“कान्हा मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है X मैं क्लम ठाकर कहती  
हूँ / मेरा कोई नहीं है।”<sup>5</sup>

1. 2. डॉ० धर्मवीर भारती : क्नुप्रिया : पृ० 23
3. डॉ० धर्मवीर भारती : क्नुप्रिया : पृ० 29
4. डॉ० धर्मवीर भारती : क्नुप्रिया : पृ० 51
5. डॉ० धर्मवीर भारती : क्नुप्रिया : पृ० 35

यही सदा बाल-सुलभ क्रिया में 'कुप्रिया' को मानवीय धरातल पर अभिव्यक्त करती है। वस्तुतः पहले सज्जन्त में राधा का कु के साथ खेना फिर कु का राधा की सखियों के सामने खेना, ये क्रियाएँ प्रेम की ही भावाभिव्यक्ति है। अतः ये क्रियाएँ मानवीय क्रियाएँ हैं। धर्मवीर भारती का काव्य मांसल या शरीरी पक्ष को साथ लेकर चला है। स्वच्छन्दतावादियों में इस प्रकार की शारीरिकता नहीं पाई जाती, परन्तु जयदेव जैसे संस्कृत कवि में यह मांसलता पूरी मात्रा में विद्यमान है। 'गीतगोविन्द' में इसका साक्ष्य भरा पड़ा है। अंतर केवल इतना है कि जयदेव ने जो उद्गार राधा-कृष्ण की प्रेमा-लीला के संबंध में प्रकट किए हैं, "भारती ने उन्हें मानवीय भूमिका पर ही रहने दिया है।"।

वस्तुतः कुप्रिया में मानवतावादी दृष्टि आधुनिक भावबोध के अनुसार वर्णित है। पेरों में महात्मा लगाना, राधा का कभी रुकना, कभी मानना, सखी, पार्थिवी, माँ, सहपरी बनकर अपने अस्तित्व का सहसास दिलाना, युग निर्माण के लिए जग की मर्यादा को टुकरा कर कु के पास चले आना, यह सारी की सारी विधियाँ मानववादी हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रभुत्व मानववाद भी परिलक्षित होती है। इसमें सामाजिक परिवेश एवं मजदूर वर्ग, सर्वहारा वर्ग की नवमानववादी प्रकृति परिलक्षित होती है। जो नवस्वच्छन्दतावादी योजना से जुड़ जाती है। नयी कविता के कवि ने सर्वहारा वर्ग एवं समाजवादी यथार्थवाद का चित्रण लघुमानव के रूप में किया है। जिसकी सुलभ-अति-सुलभ भावाभिव्यक्ति प्रकट की है। उसके प्रत्येक पहलू को उभारा है। उसकी दूरे-दूर समस्या को उठाया है। उसकी प्रत्येक पीड़ानुभूति को देखा एवं महसूस किया है। अतः नयी कविता में मानव ही काव्य का केन्द्र बिन्दु है, जिसके आस-पास ही कविता

विहरण करता है । यह मानव केवल हाँचा मात्र नहीं है बरन् पीड़ा है, जिसे राजनैतिक, सामाजिक, सभी परिस्थितियों की पहचान है । 'नयी कविता' की भाव-भूमि के केन्द्र में प्रधानतः वह नया मनुष्य छाया है जो युगजनित कुण्ठाओं और दर्जनाओं की कुलता हुआ, सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ, अपनी आस्थाओं और उन्मुक्त धारणाओं के बल पर अपने व्यक्तित्व की सार्थकता सिद्ध करता हुआ, मानवता के नये आयामों को विस्तारित कर रहा है ।<sup>१०१</sup>

### विद्रोह भाँति और नवीनता :

समाज की ऊँच मान्यताओं एवं परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह करके उसमें नवीनता लाना स्वयच्छन्दतावादी कवियों की मनोप्रवृत्ति है । वस्तुतः परम्पराओं की तो स्वच्छन्दतावादी कवि तोड़ता ही है, साथ समाज में व्याप्त घुराहटों के प्रति विद्रोह की आवाज उठाकर उसमें नवीन परिवर्तन करना भी अपना धर्म बताता है । जिससे मानव-हृदय में परिवर्तन होकर उसमें सुधार हो । मध्यवर्ग को जीने की शक्ति मिले, वह अपनी आवाज पुनः उठा सके । अपना अस्तित्व कायम रख सके । विद्रोही कवि अपनी आवाज उठाते समय प्रायः ऊँचा ही होता है । यह अन्यायपूर्ण प्रतिबन्धों के विरुद्ध अपना स्वर उठाता है ।

वस्तुतः नयी कविता में विद्रोह का स्वर आन्दोलन के रूप में दिखलाई पड़ता है क्योंकि एक तो इस युग के साहित्यकार अपना मत स्थापित करना चाहते थे जो बुद्धिजीवी वर्ग स्वीकारना नहीं चाहता था । दूसरे मध्यवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण सामाजिक रीतियों के विरुद्ध अपना रचना कार्य कर रहे थे । अतः उसमें प्रत्येक कवि के विद्रोह का स्वर अलग-अलग है । किन्तु नवीनता प्रत्येक कवि चाहता है ।



गजानन माधव मुक्तिबोध के काव्य में विद्रोह का स्वर बाहुल्य रूप से मुखरित हुआ है। वह समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति अपना स्वर व्यक्त करते हैं कि समाज के विचार अंधेरी उंचाइं तक पहुँच गये हैं। जो हमारे शरीर से टकराकर, सहचर रूप में विचर रहे हैं, किन्तु हम तो चाँद-तारों व आसमान की उमंगें और विचार रखते हैं। तुम्हारे विचार आज के विचारों से बाहर हैं। तुम्हारे और हमारे बीच फर्क आबोधवा का भी है। शब्द एक होते हुए भी व्यंजना, लक्षणा, ध्वनि, भिन्न-भिन्न है। इसके लिए क्या करें हम लोग।''<sup>1</sup> जब विद्रोह का स्वर उभरता है तब अधिकांश मत विलग हो जाते हैं :

'' हम प्रथम विद्रोही थे / जमाने से लड़े / नक्षत्र-पुरुषों-से दमकने  
ये लगे / उसी हुए त्रैलोक्यों के आँकड़े / जब-जब कहा / तब-  
तब ग्रहणा लगने लगा / इस सूर्य को उस चन्द्र को।''<sup>2</sup>

पुरानी जो परम्पराएँ थी वह जंग लगे डिब्बे के समान थी। जिसमें कवि मन लगाने नहीं सका। पुराने तर्कों में अपने विचार नहीं बैठा सका। उसकी गरजती गुँजती आन्दोलन की आवाज अन्तःकरण से उठ रही है। हर नया शब्द पुराने शब्द को काटता हुआ विद्रोह की गंध महसूस करता है।''<sup>3</sup> कवि का रोम-रोम विद्रोह की जीत्कार करता है कि बाह्य शक्ति, चुम्बल ताराओं, रंगवाले पानरों के ऊपर कहर बरवाओ। जो विद्रुत, आत्मय और झूट हैं उन पर प्रहार करो, उनका संहार करो।''<sup>4</sup> इस प्रकार कवि बागी बनकर नवीनता लाना चाहता है :

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : भरी-भूरी छाँड़ धून : पृष्ठ 27

2. गजानन माधव मुक्तिबोध : भरी-भूरी छाँड़ धून : पृष्ठ 41

3. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृष्ठ 38

4. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृष्ठ 50

वाला व्यक्ति अपने आपको छलकर धोखे में नहीं रख सकता। पूँजीवाद से मुड़कर जन की भी छल नहीं सकता।'' 'चक्रमठ की चिनगारियाँ' कवि के पूर्ण विद्रोह का स्वर है। इसमें कवि के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों स्पर्शों का वर्णन मिलता है। 'कनपटी पर जोर का आघात' तीये विद्रोह का स्वर हृदय पर अंकित होता है। विद्रोह के स्वर में जीवन के सभी अनुभवों की ओर ध्यान जाता है। इसी में डॉ० प्रभाकर माधवे का कथन है,

'' उनकी कविता में मौत एक अकास मृत्यु का दारुण परिवेष्टन लेकर आती है। यह कुचलन उच्चाटन, उच्छेदन है। यह बाहर से आने वाली एक जलजला और जंघाघात है। यह दुनाली से जंघाधुध छिड़ जाने वाली कायर है। यहाँ अर्थनियति पुनानियों की क्लार्थों, मेघतप्त एकापात नहीं है यहाँ शैक्षपियर की तरह मनुष्य केवल मक्खी नहीं है जो कोई सनकी देवता नारता जाता है, यहाँ मनुष्य केयाम के निरे प्यादे और गोटियाँ नहीं है कि 'रक्तम व सन्दूके यक्यक बाज' यहाँ मनुष्य निरी बाल्मोकि की चींटियाँ हैं— मनुष्य एक संकल्पपुंज है - सताहसत्य से लोहा लेना चाहता है।'' 2

वस्तुतः मुक्तिबोध का विद्रोह अपनी कविता में ऐसा ही यथार्थवादी ध्यंग्य प्रस्तुत करता है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ काकथन है, '' मुक्तिबोध के लिए जो तिलक था, वह व्यवस्था के शोभा और सत्ता की वर्चस्वता का था। वे लोकचित्र की अन्य विरासती भूमि में दबकर गड़कर उसे तोड़ने की कोशिश करते रहे हैं। उनके लिए जो-जो मोहभंग हुए हैं वे सब प्रहमराक्षस और जोरांग उदांग हैं। उन्होंने संत गाँवों के प्रहटाचार और सत्ताधारो वर्ग के आतंक की छद्महरों, पुग्गुओं, उल्लूकों, चिल्लियों और जासूसों के जरिए उभारा है।'' 3

1. गजानन माधव मुक्तिबोध + बाँद का मुँह देड़ा है : पृ० 292

2. गजानन माधव मुक्तिबोध : सं० लक्षणदत्त गौतम : ३ में डॉ० प्रभाकर माधवे का लेख : नयी कविता निराशा से मुक्तिबोध ३ : पृ० 231

3. वही,

पृ० 252

डॉ० धर्मवीर भारती ने विद्रोह के स्वर को 'अंधा युग' में नवीनता प्रदान की है। पहले और पाण्डव युद्ध करके अपना विद्रोह प्रकट करते हैं, किन्तु जब सर्वनाश लीला का दृश्य देखकर शान्ति की भावना मानवता की भावना उपजती है जो नवीनता लिए हुए है। युद्ध के पश्चात् प्रत्येक योद्धाओं में विचार परिवर्तन होने लगता है वह महसूस करने लगते हैं कि यह पराजय ज्ञान एवं हृदय तथा नवीनता से परिपूर्ण है। अपने पुत्रों के वियोग में माता गंधारी का विद्रोह छुलकर सामने आता है। वह कहती है कि धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब केवल आत्म्य मात्र है, निर्णय के क्षण में धिक्के और मर्यादा, व्यर्थ सिद्ध होते जाये हैं। हम सबके मन में गहरा अन्धकार भरा हुआ है, जहाँ घबरे पशु, अन्धा पशु अपनी वर्तमान मानवता को अमर दिखाता है।<sup>1</sup> माता गंधारी प्रभु के अग्र भी विद्रोह का स्वर प्रकट करती है वह कहती हैं, मुझे मत कहो तुम जिसको प्रभु कहते हो वह भी मुझे माता ही कहता है।<sup>2</sup> लेकिन उसने मुझे क्या दिया ? किन्तु उस विद्रोह के स्वर में आस्था एवं नवीनता का स्वर भी मिलता है :

“ जब कोई भी मनुष्य / अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास  
 का / उन दिन नयेगी की दिशा बदल जाती है ✓ नियति नहीं  
 है पूर्व निर्धारित- / उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता -  
 मिटाता है। ”<sup>3</sup>

वस्तुतः यह चुनौती विद्रोह का ही स्वर है जो एकमत होकर एक छुट होकर उभरता है तब मानव अपने समक्ष नियति भी बदल देता है जो नवीनता ही है।

माता गान्धारी पुत्र सुयोधन के मृत शरीर से छवत्त की देखकर शोध

1. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 23

2. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 24

3. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 26

से उषल उठती है, वह कुब्ज के प्रति विद्रोह कर उठती है, और अपने सब जन्मों का पुन्य संचित कर कुब्ज को शाप दे देती है।' प्रभु हो, नर मारे जाअंग पशुओं की तरह।''<sup>1</sup> कुब्ज के प्रति पहले सभी विद्रोह करते हैं किन्तु यथार्थ हो समग्र कर कुब्ज का अन्त देखकर उनकी विचारधारा परिवर्तित हो जाती है।

निम्नर्ण की शायरी अपनी जाति से विद्रोह करती है। उसे पशु - पक्षियों का भक्षण पितृकुल पतन नहीं आता। वह अपनी जाति वालों से भी यही अपेक्षा करती है कि वह भी शूद्र शाकाहारी बनें। किन्तु नारी लज्जावशा कुनकर विद्रोह को सामने नहीं ला पाती। परन्तु मन से यही चाहती है कि यह पशु-पक्षी हत्या बन्द होकर ईश्वर आराधना में, शान्ति को खोज में सभी बनें। मानवता की रक्षा करें।

कभी-कभी शायरी प्रकृति सुरम्य वातावरण में छो जाती, ऐपर पर आकर वह दीनपते दृश्य देखकर उसका मन विद्रोह कर उठता, छेद तोड़ा करती, 'पाप कर्म हो क्या मेरे जीवन में मिठा हुआ है।''<sup>2</sup>

राम भी ईश्वर का अवतार होते हुए भी, मनुष्य रूप में उसके कर्म से विद्रोह करना चाहते हैं। वह कर्म के प्रति कहते हैं कि, 'क्या मनुष्य का कर्म इतना प्रभावशाली है कि वह उसके रागात्मक सम्बन्धों को धारदार अस्त्र की भाँति काट कर पला जाए।''<sup>3</sup> क्या इसीलिए मनुष्य एक प्रत्यंगा सा बना हुआ, कर्म के बाणों को सहन करता हुआ, केवल साधन है।''<sup>4</sup> एक साधारण माना जब राजसी सत्ता के प्रति विद्रोह करता हैतब सम्पूर्ण जन में असन्तोष की लहर फैल जाती है। तब इस एक सर्वनी को दबाने का प्रयत्न किया जाता है फिर भी इतिहास अपना स्वल्प पनाता है।

1. डॉ० धर्मवीर भारती : ग्रंथा युग : पृ० 102
2. नरेगा मेहता : शायरी : पृ० 19
3. नरेगा मेहता : शायरी : पृ० 19-20
4. नरेगा मेहता : शायरी : पृ० 19-20

“ सर्वस्व की उस प्रामाणिकता को / जो उसे प्रति इतिहास बनाती  
 है / समूल नष्ट कैसे किया जा सकता है ? / जब-जब भी / लोगों को/  
 इतिहासहीन कर देने की चेष्टा की गयी है / तब-तब / वे लोग /  
 अपनी धीमीनिकावत साधारणता के साथ / इतिहास की आग पर  
 चलकर / पुराण- पुरुष बन जाते रहे हैं ।”<sup>1</sup>

जब कोई साधारण जन इतिहास-पुरुष के विरुद्ध विद्रोह करता है  
 तब वह विद्रोह पूर्ण नहीं होता। परन्तु यह विद्रोह राजसी लोगों को ऐसा  
 लगता है जैसे धरती को फोड़कर कोई पुराणिक निकल आया हो। जिसे देखकर  
 शक्ति भी क्षीण एवं पीली पड़ जाती है।<sup>2</sup> वस्तुतः विद्रोह के लिए कोई  
 एक निश्चित काल नहीं है। जब जिसे कोई परम्परा अछरती है तो व्यक्ति  
 के मन में विद्रोह उपजता है, वह उस परम्परा में परिवर्तन लाकर एक सुदृढ़  
 मत स्थापित करना चाहता है।

कवि नागार्जुन का विद्रोह यथार्थपरक है वह जन-आक्रोश के  
 नजदीक है। उनका विद्रोही स्वर ऐसा भासुम देता है जैसे प्रत्येक व्यक्ति की  
 आवाज हो। आजकल की व्यवस्था को देखकर कवि के मन में तीव्र असन्तोष  
 जन्म लेता है। वह सोचता है कि भविष्य में हम क्या रेंगकर चलेंगे ? क्या  
 अपनी धूक चाहेंगे ? क्या हम दोनों जान पकड़कर दण्ड-बैठक लगायेंगे ?  
 क्या हम आँठ मूँद कर, हर बात पर हामी भरते जायेंगे। क्या हम डर के  
 मारे गूँसे बन जायेंगे ? क्या पूँजीपति हमें टोर-डंगर की तरह हाँकते रहेंगे ?<sup>3</sup>  
 कवि का हृदय ऐसी व्यवस्था देखकर विद्रोही बनता है। इसीलिए कहता है :

“ यही धुँआँ मैं दूँद रहा था / यही आग में खोज रहा था /  
 यही गंध थी मुझे चाहिए / वास्तवी ज़र्रे की कुल्लू ।”<sup>4</sup>

1. नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृ० 31

2. नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृ० 47

3. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृ० 12

4. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृ० 20

कवि वह चिनगारी द्रुता है जो वास्तव के समान तेज हो, जो हर किसी व्यक्ति में उत्पन्न हो, तथा प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे में उत्पन्न कर अपनी अस्मिता की रक्षा करने के लिए। जो पूँजीपति, निम्न-वर्ग-मध्यवर्ग का शोषण कर रहा है, उसके प्रति विद्रोह तोड़ हो, और उसके नियमों में परिवर्तन होकर नवीनता उत्पन्न हो।

डॉ० केदार नाथ सिंह का विद्रोह गरम पत्तीली के समान उज्जा है। उसी की तरह विद्रोह में भी चेहरा लाल हो उठता है, छाँछों में पूँजीपति के विश्व बूँडार चमक उठती है, जो अपनी परिस्थिति को देखकर और भी तेज हो जाती है।<sup>1</sup> और जैसे-जैसे वह उसके शोषण की प्रक्रिया जानता जाता है, उसकी माँस पैशियाँ और आँख तनाए गूस्त होता जाता है। वह अपनी आजादी के लिए नयी जमीन तलाश करने लगता है।<sup>2</sup> इसके लिए वह प्रत्येक व्यक्ति को आमंत्रित करता है :

“ मैं सिर्फ आपको आमंत्रित करता हूँ / कि आप आँखें और मेरे साथ  
तोपे / उस आग तक चले / उस घुल्ले तक - जहाँ वह पक रही है /  
एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ / समूची आग को गंध में  
बदलती हुई / हुनियाँ की सघने आश्चर्यजनक चीज / वह पक  
रही थी।”<sup>3</sup>

और इस विद्रोह की लहर जन-जन की चेतना में फैल रही है। इस लहर के कारण कवि को विश्वास है कि उसका सामना प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। यह लहर दिखायी नहीं पड़ती सिर्फ उसकी अस्तिजना से महसूस किया जाता है। और जो जीवन भर दूसरों को घोस दोता रहा है वह अन्त में अपना निष्कर्ष देता है कि आदमी का तिर उसे तोड़ सकता है।<sup>4</sup> वह अपनी शक्ति

1. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 9
2. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 22
3. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 23
4. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 65

अर्जित करना चाहता है :

“ मैं पूरी ताकत के साथ / शब्दों को फेंकना चाहता हूँ आदमी की  
तरफ/ यह जानते हुए कि आदमी का कुछ नहीं होगा/ मैं मरी  
तश्क पर कुनना चाहता हूँ वह धमाका / जो शब्द और आदमी  
की टक्कर से पैदा होता है। ” 1

यह विद्रोह का धमाका वस्तुओं के बीच में समस्त विश्व में फैल रहा  
है। यह विद्रोह एक महान समुद्र की तरह फैल रहा है। लगातार आदमी के  
निष्ठ और निकटतर होता जा रहा है।

‘ आत्मजयी ’ का नयिनेता मृत्यु के प्रति उसके रहस्य को जानना  
चाहता है। वह उस विषय में पिता से पूछता है परन्तु पिता द्वारा अपमानित  
हो जाने पर उसके अन्दर विद्रोह उत्पन्न होता है। वह सम्पूर्ण मनुष्यों  
की मृत्यु के विषय में चिन्तित है। अतः वह मृत्यु का रहस्य खोजना  
चाहता है। पिता द्वारा अपमानित होने पर वह पिता के विद्रोह के स्वर  
प्रत्युत्पन्न करता है :

“ पिता, तुम भाविष्य के अधिकारी नहीं, क्योंकि  
तुम्हारा वर्तमान जिस दिशा में मुड़ता है  
वहाँ कहीं एक भयानक संघर्ष है जो तुम्हें मारकर  
तुम्हारे संघर्षों को मार्ग में ही सूट लेता है , ” 2

सत्य तदैव विद्रोही -ता रहा है। नयिनेता के यथार्थवादी  
सत्य को सुनकर उसके पिता अपनी मान्यताओं का उत्सर्जन महसूस करते हैं।  
किन्तु वह तो नया बोधन-बोध देना चाहता है। वह अपने पिता से कहता  
है तुम और तुम्हारी यह दुनियाँ एक-दूसरे की ध्वनी प्रतिक्रिया में लड़ और  
घासी लगती है। यह भी अपने स्वार्थों तक सीमित है। कार्य-क्रम, आय-व्यय  
रीति, नीति, सिद्ध नहीं विद्रुत स्वामियों से भरी लगती है। ” 3 वस्तुतः

1. डॉ० देदार नाथ सिंह : जमीन एक रही है : पृ० 66

2. बुँदर नारायण : आत्मजयी : पृ० 4

3. बुँदर नारायण : आत्मजयी : पृ० 33

यह अन्धविश्वास प्राचीन युग का ही नहीं है बल्कि आज भी ऐसा ही यथार्थ देखने को मिलता है।

गिरिजा कुमार माथुर का चित्रोद्घाटन अन्धविश्वास की तरह सड़क पर बिखले हुए चीखार प्रतीत होता है। कवि के भीतर का मनुष्य पूँजीवाद की ज्यादितियों का बार-बार सामने लाता है। उसका अन्तर्मन चित्रोद्घाटन करता है, कि मेरे भीतर तमाम तारा हलवा लपटी छामिया मरी हुई है, जिन्हें पदलना अब पेशद जरूरी हो गया है। कवि कहता है तुम्हें क्या चाहिए - मलवा या मौत, आजादी या दलाली, आदमी या कठपुतली की तरह जीना। अगर तुम्हें ऊपर उठना है अपने-आपको पहचानना है तो इन पूँजीपतियों के विरुद्ध आवाज بلند करो :

“ मेरे बाहर और भीतर से / मलवा यह गिरता है / लगातार एक साथ / मरी जान के भीतर जैसे दरवाजों पर। ” 1

कवि के चारों तरफ एक छीन्नाछ स्थिति दिखाई पड़ती है जो बाहर ही नहीं शरीर के अन्दर भी निकलने वाली है। जहाँ, दुःख, अज्ञान, -विश्वास के अतिरिक्त कुछ नजर ही नहीं आता :

“ तिरहुत युग / स्वयं युग, कन्फ्यूजियस युग / प्रान्तवाद, भाषावाद, गुर्गावाद / कितने ही किस्म के लक्ष्मी समाजवाद / चारों तरफ घूम रहे ज्यादातर धूर्ते, कौँछे, कुराहते, विषय / असंतुष्ट, नाराज आदमी। ” 2

जब आदमी सिर्फ अपने स्वार्थ में जीता है तब उसकी हर चीज धिक्कने वाली हो जाती है। जब उसके अन्दर जो कुछ उठाने की आदत भिड़ जाती है तो, हर चीज मर जाती है। जब अपनी कमजोरियाँ सुनने से डर लगने लगता है, जब सच को दबाना नीति बन जाता है, सच का सहारा लिया जाता है, तब ईमानदारी पर अपने आप शक उत्पन्न होता है। आदमी सहनशील भी बहुत होता है, वह हर दुःख को झुलाने की कोशिश

1. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृष्ठ 15

2. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृष्ठ 32



किन्तु ऐसी ही सहनशीलता हो पार कर उसके सप्रेम का बाँध जब टूट जाता है तो वह एकदम विद्रोह पर उतर जाता है।''<sup>1</sup> अगर उस विद्रोही को रोका गया तो वह आग बन जाएगा। और उस रोके हुए शब्द अन्यों के लिए ज्योति की चिराय बन जायेंगे। जब सत्ताधारी, कुछ घोलकर सब को दवायेंगे, न्याय-अन्याय में फर्क नहीं रहेगा, इन सत्ताधारियों का प्रचार चलवान बनता जायेगा, सब हर अपमान को सहन करता हुआ व्यक्ति प्रतीति जारी बनकर उभरेगा।''<sup>2</sup>

समय-समय पर अपनी परिस्थिति के अनुकूल विद्रोह की भावना बनपती है। उस विद्रोह को डॉ० केदारनाथ अग्रवाल ने 'युग की गंगा' नाम दिया है। जो अपने मार्ग में आयी रूकावटों की चट्टान को भी तोड़ आयेगी। यह युग की गंगा नयी वस्तुयाँ बना कर नव-निर्माण करेगी। युग की गंगा अन्धकार से निकल कर सूर्य पास पहुँचने की हिम्मत करेगी। यह एकनिष्ठ होकर दृढ़ित मन से, जन-सागर के मन में नयी चेतना जगायेगी।''<sup>3</sup>

वस्तुतः सधम में यह कहा जा सकता है कि नयी कविता के कवियों ने विद्रोह में नवीनता को स्वीकारा है। क्योंकि स्वच्छन्दतावादी कवि तो विद्रोही ही होता है। वह उन परम्पराओं को नकारता है जो गली हुई हो चुकी हैं। जो पूँजीपति गरीबों का, मजदूरों, किसानों का शोषण कर उन्हें ऊपर नहीं उठने देना चाहते, उनको सुदृढ़ नहीं बनाना चाहते, उनके प्रति कवि तोड़े शब्दों द्वारा विद्रोह की बात कहता है, जिससे निम्नवर्ग, निम्नमध्यवर्ग अपनी अस्मिता के लिए एक जुट बन कर शक्तिशाली बनें। अतः विद्रोह ही यह स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति नयी

1. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृ० 62-63

2. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृ० 88

3. केदार नाथ अग्रवाल : गुलबंदी : पृ० 19

उपिता में भी परिलक्षित होती है। जी सर्वोपर दयाल सप्रेमता ने 'जंगल का दर्द' में विद्रोह की बातें कही हैं। 'जंगल का दर्द' जिसका दर्द है। एक जन-चेतना है। जिसमें धीरे-धीरे प्रीति करने की क्षमता उत्पन्न हो रही है। यह प्रीति विद्रोह के पश्चात् उभरी है, यह जन-प्रीति है, जो अपने हक के लिए लड़ रही है। प्रीतिकारी चेतना ही सर्वहारा वर्ग की मनःस्थिति है। सर्वहारा, मजदूर, शोषित, पीड़ित वर्ग के पहले पुँजीवाद के विनाश विद्रोह किया, किन्तु यह विद्रोह वाय होसती चेतनी के लक्ष्मण की तरह सिर्फ धो, धो, धो हो उड़ा। किन्तु अब, अर्थात् नयी चेतना कास में उन वर्गों ने प्रीति कर दी है। जो पार-पार उल्लस रही है, ध्वज रही है। और प्रत्येक वर्ग एक सम्मिलित शक्ति पनवर प्रीति उत्पन्न कर रहा है। अतः यह चेतना नयी उपिता में उभरी है। विद्रोह स्वच्छन्दतावादी चेतना है और प्रीतिकारी विचारधारा नवस्वच्छन्दतावादी है। क्योंकि सर्वहारा वर्ग, शोषित वर्ग, पीड़ित वर्ग की समस्या समाजवादी पथवाद से जुड़ी हुई है और समाजवादी पथवाद की मुख्य चेतना सर्वहारा वर्ग ही है। अतः यह प्रीतिकारी चेतना नयी उपिता में भी परिलक्षित होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि विद्रोह की बात स्वच्छन्दतावादी कवि करता है, किन्तु नयी उपिता का कवि विद्रोह के साथ-साथ प्रीति काकर नवीनता माना चाहता है। क्योंकि जो बात विद्रोह से नहीं बनी अब प्रीति काकर बनेगी। इसी चेतना नयी उपिता का मुख्य बिन्दु है जो स्वच्छन्दतावाद के साथ-साथ नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति भी है।

'विद्रोही कवि व साहित्यकार तथा प्रीतिकारी कवि व साहित्यकार में कुछ अन्तर है। अतः विद्रोही तथा प्रीतिकारी कवि व साहित्यकार कुछ भिन्न प्रवृत्ति के होते हैं। विद्रोही कवि व साहित्यकार उसे कहते हैं जो समाज के अनुग्रह नहीं बन सकता तथा जो अपने क्रिया-कलापों में समाज काहस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता। विद्रोही कवि व साहित्यकार अपनी स्वतंत्रता चाहता है। इसके विपरीत प्रीतिकारी कवि व साहित्यकार अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करके संतुष्ट नहीं हो जाता। प्रीतिकारी कवि व साहित्यकार चाहता है कि वह समाज को बदल दे और अपनी उच्छाओं

से उसका निर्माण करे। क्रॉंतिकारी कवि व साहित्यकार कर्मठ एवं सक्रिय होता है जो अपने सिद्धान्तों को एक व्यवस्थित रूप देना चाहता है।

विद्रोही कवि व साहित्यकार की अपेक्षा क्रॉंतिकारी कवि व साहित्यकार अधिक वस्तुगत होता है, साथ ही उसका लक्ष्य उन शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेना है, जो समाज का नियंत्रण करती है तथा समाज की गति को निर्धारित करती हैं। क्रॉंतिकारी कवि व साहित्यकार प्रभुसत्ता पर अधिकार करना चाहता है। इसके साथ ही साथ पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके समाजवादी कल्याणकारी व्यवस्था को लाना चाहता है।\* \* ।

वस्तुतः नवीनता एवं मौलिकता स्वच्छन्दतावाद की प्रेरणा शक्ति है। सत्ता, व्यवस्था एवं साहित्यिक व काव्यात्मक रूपों एवं अभिव्यञ्जना शिल्पों से विद्रोह करना स्वच्छन्दतावादी कवियों एवं साहित्यकारों की सहजता है। क्योंकि परम्परा एवं रूढ़ियों को तोड़कर उनसे विद्रोह करके नवीनता का निर्माण ही इनका प्रयत्न है। विद्रोह एवं क्रॉंति के पश्चात नवीनता अभीष्ट है।

प्रेम / प्रकृति प्रेम- देश- प्रेम :

प्रेम की अभिव्यक्ति कई रूपों में होती है। यही सभी रूप भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के ऊपर निर्भर रहते हैं। जो मनोवैज्ञानिक क्रिया से सम्बन्धित रहते हैं। प्रेम के अन्दर आवेश, एवं आवेश रहता है। यह आवेश और आवेग भी प्रेम के सम्बन्धों के ऊपर टिका हुआ है। वस्तुतः प्रेम की क्रिया मानवीय क्रिया है। अतः मानवीय क्रिया होने के कारण यह स्वच्छन्दतावादी चेतना की अभिव्यक्ति देती है।

मूल रूप से प्रेम से जो यथार्थवादी अर्थ ग्रहण किया जाता है वह नर-नारी के आपसी आकर्षण से उत्पन्न स्थिति को दिया है। किन्हीं

किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में नर-नारी के आपसी मिलन के पश्चात् जो मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ उपजती हैं वही प्रेम है। फलतः इसमें सात्त्विक एवं वासनात्मक दोनों भाव परिलक्षित होते हैं। सात्त्विक प्रेम विनाश फल पर अपना स्वस्थ बनाये रखता है, जबकि वासनात्मक प्रेम संकुचित ऊर्ध्व में छिप जाता है। अतः प्रेम की क्रिया में मनस्वी शरीर दोनों प्रसन्न एवं स्वस्थ रहते हैं। प्रेम मनुष्य को तनाव से सर्वथा मुक्त रखता है। जिससे मानव की कार्य करने की क्षमता और ज्यादा विकसित होती है।

वस्तुतः नयी कविता के कवि ने अपनी पत्नी को ही प्रेयसी मानकर प्रेम-सौन्दर्य का आकलन किया है। अतः यहाँ प्रेम में यथार्थता दिखाई पड़ती है। यहाँ प्रेम के स्वस्थ में क्रांतिकारी ढांचा दिखता है। अतः नयी कविता में प्रेम लौकिक एवं वासनात्मक रूप में दूखमान है। इसमें आध्यात्मिकता का आवरण नहीं है। अतः मानवीय धरातल पर होने के कारण इसमें और सांसारिकता है।

केदार नाथ अग्रवाल का प्रेम के संदर्भ में कथन है, “ मैं प्रेम को जीवन का मूल्य मानता हूँ। प्रेम है क्या ? यह एक का किसी दूसरे से सम्बद्ध होना है। दो आत्मीय हुआइयों का रचात्म होना है। यह देवताओं की दुनियाँ का प्रेम नहीं है कि उन्हें प्रेम छोड़ और आदमी को खितार दो, सतत उसकी उपासना करते रहो। इतना ही नहीं, प्रेम मानवीय चेतना की परम उपलब्धि है जिसे प्राप्त कर आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। ”

वस्तुतः कवि अपनी पत्नी को बहुत प्रेम करते हैं, उन्होंने कविता करनी अपनी पत्नी की प्रेरणाओं से ही लिखी है। अतः वह उसके दिवंगत हो जाने के पश्चात् भी अपने विचारों में उसे जिलाये हुए हैं। वही प्रेम के दिन स्मृति में आते हैं। कवि कहता है, हे प्रियतम तुम्हारा प्यार प्रबल, प्रघर है, जिसने मुझे जमर दिया है। ” 2 बीमारी के समय कवि की प्रेमानुभूति और तीव्र हो उठती है। वह सोचता है, मैं बागूँ या लोड़

1. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 4

2. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 18

लेकिन तुम्हें न लोऊ क्योंकि हमने जीवन अब तक साथ ही लिया है।'' 1  
 तुम न रहेगी तब भी हृदय तुम्हारा होगा, मेरे जीवन में जगता संगीत  
 तुम्हारा होगा।'' 2 कवि अपनी प्रेयसी पत्नी के प्यार को व्यक्त करता है  
 कि हमारा प्यार इतना सच है जैसे महाकाल से पकड़ भुज-तारा अमर हुआ।'' 3  
 कवि की पत्नी का प्यार उसे आँकड़ें दुबाये हुए है। उसके दिल और दिमाग  
 में कुछ का ओर-ओर दिखलाई नहीं पड़ता। उसके प्यार के सुगम अब भी  
 पोर-पोर में जैसे आनन्द प्रधान पर रहे हैं।'' 4 कवि की प्रेमानुभूति इतनी  
 तीव्र है कि अपने विचारों में भी लचीलता पाता है :

'' तुम अक्षय से आ जाती हो / दुःखमान हो, / मुसकाती हो /  
 अपने संस्पर्शों से मुड़ो / भाव-विह्वलता / अपनाती हो।'' 5

क्योंकि कवि ने प्रेम को सदैव निष्क्रिय न मानकर सत्त्व सक्रियता  
 माना है। प्यार से ही एक दूसरे को जाता जाता है। इसी प्यार के  
 सहारे संसार चलता एवं फलता-फूलता है। अतः कवि प्रेम की भावाभिव्यक्ति  
 अनुभव करता है :

'' प्यार की गुपचाप पीता रहा / प्यार की गुपचाप जाता ही  
 रहा / प्यार से दमदम / दमकता ही रहा / प्यार से प्रतिफल  
 फलकता ही रहा।'' 6

कवि अपनी प्रेयसी के प्रेम से विंधा हुआ है। वह अपने आपको बाँधन  
 और प्रेयसी को तरिता समझता है जो धरतल पर उसे आश्रित में पाँध लेना।'' 7

1. डेदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 21
2. डेदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 24-25
3. डेदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 24-25
4. डेदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 36
5. डेदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 39
6. डेदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 71
7. डेदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं: पृष्ठ 53

उसके बिना वह अधूरापन अनुभव करता है, प्रेयसी के बिना जीवन रूपी दीपक ऐसे जलता है जैसे यमुना पर छोटा सा खदोत टिमटिमाता हुआ दीपक क्षण-क्षण में जलता और बुझता हो। कवि प्रेयसी के मांसल सौन्दर्य-प्रेम को इंगित कर कहता है। प्यार की एक लहर तुम्हारे शरीर से उठकर मुझ पर छा गयी, फैल गयी, जिसकी अनुभूति अमिट बन कर मुझ पर छा गयी।''<sup>1</sup> कवि प्रेमानुभूति में दर्द अनुभव करता है। जो हजारों सुखों के समान है :

'' दर्द था एक / जो तुमने दिखा / हजार सुखों के बीच / जो मैंने  
पिया / रात में तड़पा / और दिन में जिया / न किसी ने जाना /  
तुमने क्या किया।''<sup>2</sup>

कवि की प्रेयसी सबसे सुन्दर है वह दिन से, रात से, रवि-शशि से भी ज्यादा सुन्दर है। यों तो तारे, जुगनु, तालाब नदी, दीप-शिखा भी सौन्दर्य युक्त है, किन्तु इन सबसे भी सुन्दर मेरी प्रेयसी है। वह उसके प्रेम की चंचल हवाओं से, प्राकृतिक सुष्मा से, वन-वन में विकसित छाबू से, जब कल-कली गन्ध का पराग लुटाती है ऐसा भी प्यार वह अपनी प्रेयसी से करता है। सिर्फ उसने अपनी प्रेयसी को चाहा है और उसी को पाया है।''<sup>3</sup>

'अज्ञेय' के काव्य में प्रेम का मांसल सौन्दर्य रूप मिलता है। कवि अपनी प्रेयसी के स्नेह में ही अपना मनोबल अनुभव करता है। अतः यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी है कि हृदय जिसके अनुराग से अनुरक्त रहता है उसकी प्रत्येक क्रियाओं में अपनी कामना की पूर्ति करता है। यहां तक कि अपने योग्य व्यक्तित्व को उभारने का श्रेय भी उसे ही देता है। वह अपनी प्रेयसी को सम्बोधित करता है — तुम्हीं मेरे हृदय में चिरन्तन ज्वाला प्रज्वलित करती हो, तुम्हीं मेरी कल्पना हो, तुम्हीं आलोक हो :

1. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं : पृ० 125
2. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं : पृ० 132
3. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 81

“ तुम्हारा ही तब धुंधला / क्या सदा मानस-मुकुर में भासता है ? /  
तुम्हीं ही क्या बन्धु छह जो / हृदय में मेरे धिरन्तन जागता  
है।” 1

कवि अपनी प्रेती की प्रत्येक क्रियाओं का स्मरण करता है :

“ जो झुकाता है, नहीं वह झूल पाता / जो रमाता है स्वयं  
निर्लेप है वह / वही कहता है कि ये सब प्यार भी/ जो रहे हैं—  
तुम्हारे हैं —/ हैं।” 2

छायावादी कवियों ने अपने प्रेम का आकलन प्रकृति पर आरोपित  
करके किया था। किन्तु स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने का अपनी प्रेयसी  
के सम्बन्धों को ज्यों का त्यों उजागर किया। अतः नयी कविता के कवि  
‘अक्षेय’ भी अपने प्रेम के सम्बन्धों को उजागर करते हैं :

“ कि हरी मुलायम चिड़ली आस पर उसकी प्रेमिका छरहरी बाजरे  
की कमली के समान लगती है। या वह उसको ढलती साँझ के  
अंठले तारे के समान प्रतीत होती है। या भीर की पहली किरण  
से न्हायी चम्पे की छली प्रतीत होती है। छती प्यार के सौन्दर्य  
में कवि बंधा हुआ है।” 3

“ ‘अक्षेय’ प्रेम को यत के समान मानते हैं, जो अन्यूक्त वरणा है,  
जितसे कवि स्वयं विधा हुआ है।” 4 कवि अपनी प्रेयसी को मुद्रितियों में  
भरा है जहाँ वह उँगलियों के बीच से छनकर वह निकल रही है :

“ मैंने तुम्हें छुआ है / मेरी मुद्रितियों में भरी हुई तूम / मेरी  
उँगलियों बीच छनकर बहती हो—/कण प्रतिकण आप्त, स्पृष्ट, मुक्त,  
मैंने तुम्हें घूमा है / और हर घुम्यन की तप्त लाल जाया-कठोर  
छाप/ मेरा हर हस्त-कण धारे है।” 5

1. ‘अक्षेय’ : हरी आस पर अंभर : पृष्ठ 19

2. ‘अक्षेय’ : हरी आस पर छा भर : पृष्ठ 30

3. अक्षेय : हरी आस पर छा भर : पृष्ठ 57

4. अक्षेय : क्योंकि मैं उसे जानता हूँ : पृष्ठ 71

5. अक्षेय : कितनी नावों हैं कितनी बार : पृष्ठ 20

वस्तुतः यहाँ यौनपरक प्रेम परिलक्षित होता है। जिसका यथार्थ रूप में अंकन हुआ है। अतः यह रोमांटिक प्रवृत्ति है। कवि की प्रेमिका उसे भूल चुकी है तो वह उसे उलाहना देता है, मैंने तुम्हें आँखों में बसाया क्या भुलाने को। मैंने अपने दर्द को सहलाया, क्या उसे सुलाने को।<sup>1</sup> चियोगावस्था की प्रेमानुभूति बहुत संवेदनशील होती है। जो जरा सी ठेस पर ही पीड़ा पहुँचाती है और जब सही हुई प्रेयसी के घर से आया जाता है तब पैर और मन उसी की देहरी पर छोड़े हुए जान पड़ते हैं।<sup>2</sup> कवि कभी प्रेयसी के बिछोह से स्वयं दुखी हो उठता है और कभी उसका बिछोह सहन कर आशावादी हो उठता है। वह पर्वत, नदी, पेड़ों के सौन्दर्य को अपनी सहनशीलता से परखता है। उसकी स्मृति ही उसे जीवन प्रदान करने बेसी लगती है। वह सोचता है :

“ आज मैं ने अपने प्यार को / जो कुछ है और जो नहीं है उस सबके बीच/प्यार के एक विशिष्ट आसन पर प्रतिष्ठित देखा / तुम्हारी आँखों से देखा / आज मैंने तुम्हारा / एक आमूल नये प्यार से अभिन्न किया / जिसमें मेरा, तुम्हारा और स्वयं प्यार का/ न होना भी है वैसा ही ओषध प्रमा- मंडित। ”<sup>3</sup>

प्रेयसी और प्रेमी दोनों के परस्पर बिंध जाने का नाम हवा प्यार नहीं है, बल्कि कवि प्यार को एक दूसरे प्रकार से प्रस्तुत करता है। वह कहता है :

“ प्यार अकेले हो जाने का एक नाम है / यह तो बहुत लोग जानते हैं / पर प्यार/ अकेले छोड़ना भी होता है इसे / जो/ वह कभी नहीं भूली/उसे/ जिसे मैं कभी नहीं भूला....। ”<sup>4</sup>

1. अक्षेय : कितनी नावों में कितनी बार : पृ० 20

2. अक्षेय : नदी की पार्श्व पर छाया : पृ० 18

3. अक्षेय : नदी की बाँक पर छाया : पृ० 49- 50

4. अक्षेय : नदी की पार्श्व पर छाया : पृ० 69



कवि ने प्यार को छाता के समान माना है जो खुलते ही सबको छिपा लेता है। उसी प्रकार प्यार को शीतल छाया सबो अपने में समेट लेती है।<sup>1</sup> वस्तुतः 'अज्ञेय' ने अपने काव्य में प्रेमी और प्रेयसी के सहज आकर्षण से उत्पन्न प्रेमानुभूति की गहन और सूक्ष्म अभिव्यक्ति दी है। यह प्रेमानुभूति एक अविच्छिन्न धरा के रूप में प्रवाहित हो रही है। उनके प्रेम-यात्रों में नारी सिर्फ लज्जा या छुद्रता की पात्र नहीं है, इसमें पुरुष भी संलग्न है। कवि प्रेयसी के हर हाव-भाव पर मुग्ध है। यहाँ तक कि उसके चलने से जो रजकणा उड़ते हैं उन्हें भी संचित करना चाहता है :

“ उड़ती रज को ढेरी को घूम-घूम कर संचित करता है और उसे मरकत मणियों ता अपने अन्तर कोषों में भर लेता है। ”<sup>2</sup> 'अज्ञेय' स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम सम्बन्ध में कहते हैं, “ पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध पति और पत्नी का नहीं, चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का सम्बन्ध निवार्यतः गतिशील & डार्डनेमिक & सम्बन्ध है। गति उसके किसी एक क्षण में हो या न हो, गतिशीलता - गति पा सकने की आन्तरिक सामर्थ्य- उसके स्वभाव में निहित है। पुरुष और स्त्री की परस्पर अवस्थिति एक कर्षण की अवस्था है। विकर्षण की विभिन्न प्रवृत्तियों के संतुलन द्वारा एक ऐसी अवस्था प्राप्त कर ले, जिसमें बाह्य-रूप से कोई गति प्रेरणा नहीं है, किन्तु किसी न किसी प्रकार का आन्तरिक छिंचाव बना रहना अनिवार्य है। नाटकीय भाषा में इसे पुरुष और स्त्री का चिरन्तन संपर्क कह सकते हैं। ”<sup>3</sup>

वियोगावस्था स्थिति सिर्फ नारी ही नहीं लेती वरन् पुरुष भी लेता है। अतः यह अनुभव करता है।:

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना & एक सूची नाव & कवितारें दो : पृ० 28

2. अज्ञेय : इत्यलम् : पृ० 17

3. अज्ञेय : चिन्ता : पृ० 15

“ गगन में मेघ धिरते हैं / तुम्हारी याद धिरती है। / उमड़ कर विषा/  
 खूँद बरसती है—/ तुम्हारी सुधि घरसती है। / न जाने अन्तरात्मा में  
 मुझे यह कौन कहता है / तुम्हें भी यही प्रिय होता।” 2

कवि को अपनी प्रेयसी के मनाने के सारे शब्द लुठे लगते हैं वह उसके  
 प्रसन्न करने के लिए कहता है कि हाथ में तुम्हें मानाने के नये भाव कहाँ से  
 लाऊँ ? जब तुम अपनी अनुकम्पा मुझे देती हो तो मैं कृतज्ञ हो उठता हूँ। किन्तु  
 जब तुम लुठती हो तब मन-ही मन विचलित होकर रह जाता हूँ।” 2 कवि  
 प्रेम की अभिव्यक्तिशब्दों के द्वारा प्रगट न कर मौन रहकर ही अनुभव करना  
 चाहता है :

“ तुम्हीं ने दिया यह त्यन्द/ तुम्हीं ने धमनी में बाँधा है तबू का वेग/  
 यह मैं अनुष्ठा जानता हूँ/ गति जहाँ सब कुछ है, तुम धृति पारमिता/  
 जीवन के सहज छन्द/ तुम्हें पहचानता हूँ ।” 3

प्रेम की स्मृति कितनी दृढ़, स्थिर एवं सुदृढ़ होती है कि कि जो प्रेमी  
 और प्रेयसी ने स्मृति पिन्ध बनाये थे वह भी जीर्ण-शीर्ण हो चुके हैं, मगर यह  
 प्रेम का बन्धन इतना सुदृढ़ है कि टूटता ही नहीं, प्रेमी अपनी प्रेयसी को  
 भुना-भुना कर हार चुका किन्तु पीती पार्से एवं पीता समय चौख-चौख कर  
 उसे उस प्रेमानुमृति की यादें दिला देता है। विशेष कर पतन्त मृत का फूलों  
 भरा समय उसे याद आता है, जब वह फूलों की डाल पकड़कर छतराता था,  
 और उसकी प्रेयसी अजगर की भाँति लियट कर एक ठंडी किन्तु गहन प्रेमानुमृति  
 प्रदान करती थी।” 4 आज वही पीती स्मृतियाँ याद आती हैं तो वह  
 अनजड़े नीट आता है :

1. अक्षेय : सर्वना के छा : पृ0 28

2. अक्षेय : सर्वना के छा : पृ0 49

3. अक्षेय : सर्वना के छा : पृ0 79

4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें २७ : पृ0 143

“ लौट आया मैं बिना कुछ कहे / शब्द पड़ने लगे छोटे /  
दर्द बढ़ने लगा / कहे भी थे जो कभी सब हो गये ।”<sup>1</sup>

वस्तुतः यहां प्रेम की मनोवैज्ञानिक स्थिति है।

प्रेमी और प्रेयसी को मनःस्थितियों में हो रही हलचल का एवं परस्पर प्रेमानुभूति का वर्णन करते हुए कवि ने वर्णन किया है कि प्रेम समाज के अन्दर कितनी बड़ी विघ्नता है, जो एक-दूसरे के प्रत्यक्ष, समक्ष नहीं आ सकते, “ चार नयन मुस्काये खोये, भीगे, फिर पथराये-कितनी बड़ी विघ्नता जीवन की कितनी कह पाये।”<sup>2</sup> इस अनमिले समय में उसे उदासी घेर लेती है। उसे सांझ डूबी-डूबी, अनमनी लगने लगती है।”<sup>3</sup> सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने प्रेम के मांसल रूप का चित्रण भी किया है वह अपनी प्रेयसी को प्यार करने का खुला निमंत्रण देता है।:

“ मुझे घूमो / खुला आकाश बना दो / मुझे घूमो / जलभरा मेघ बना  
दो / मुझे घूमो / शीतल पवन बना दो / मुझे घूमो / दमकता  
सूर्य बना दो / फिर मेरे अनन्त नील को इन्द्र धनुष- सा  
लपेट कर / मुझमें विलय हो जाओ।”<sup>4</sup>

यहां मांसल प्रेम के साथ-साथ प्रेम की उदात्तता भी दिखाई पड़ती है क्योंकि प्रेमी सिर्फ अपनी प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य में बंधा नहीं रहना चाहता वरन् वह उसी प्रेम में बंधकर सूर्य की ऊचाईयों तक पहुँचना चाहता है। इस प्रेम के संदर्भ में वह भी अपनी प्रेयसी के साथ संलग्न है। वह भी अपनी प्रेमिका को उतना ही चाहता है जितना कि उसकी प्रेमिका उसे चाहती है।”<sup>5</sup> प्रेम जो भयभीत पक्षी की भाँति सहमता आँखों में,

1. श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ एक : पृ० 166
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ एक : पृ० 30
3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ एक : पृ० 26
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जंगल का दर्द : पृ० 110
5. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जंगल का दर्द : पृ० 111

“ वह एक शब्द- / जो तुम्हारी आँखों में / टिमटिमाता है / और  
अधरों की मुस्कान में / सहमा रहता है / भयभीत लाल पत्ती  
की तरह / देख से उतरता / सफेद केजुल-सा ।”<sup>1</sup>

वस्तुतः सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में प्रेम का मार्तल रूप ही आधिक परिलक्षित होता है। जिसकी भाषाभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक है। कवि गिरिजा कुमार माधुर की है प्रेम-वर्णन ऐसी अपने-आप में अनुठी एवं नयी है। ‘छाया मत छूना मन’ में उनकी प्रेयसी उनके पास नहीं है किन्तु वह उसके प्यार की याद में आँकठ घुसे हुए हैं। अपनी प्रेयसी को छूने से उनके शरीर में बिजली के जैसे झटके लगते हैं तब उन्हें छूमड़े हुए मेघ याद आने लगता है। कवि को पूत की ठिठुरती हुई रात में अपनी प्रेयसी की याद आती है :

“ याद आए मिलन के / मसली सुहानिग सेज पर के सुमन के / फिर  
याद आए मत पलक / फिर चिहुडने के अंगु हूँ नयन के ।”<sup>2</sup>

कवि की यह स्मृति प्रेम-सौन्दर्य की मार्तल स्थिति है। जो मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ रोमांटिक भी है। कवि की अपनी प्रेयसी को अनजानी बातें भी उद्घोषित कर जाती हैं। जब वह बोलने की क्षया मुक्करापी, तब उसकी मुक्कराहट हृदय में गढ़ कर रह गयी। जब उसने अपने आँखों में साड़ी का पल्ला लपेटा, तब भी मौन रहने पर अनगिनत उससे बातें हुई।”<sup>3</sup> जिसना प्यार बोलने पर प्रकट होता है, उससे कहीं ज्यादा अनबोले पन में प्रकट है। यही प्रेमानुभूति प्रगाढ़ एवं सुखद अनुभूति है।

वस्तुतः कवि के काव्य में प्रेम की सुखद अनुभूति के साथ-साथ वियोगावस्था का वर्णन भी परिलक्षित होता है। कवि की प्रेयसी ने उसके प्यार को झंकार दिया है। अतः वह दुःखी मन से कहता है कि जिसे तुमने नागर समझा है वह प्यार तो सागर के समान है। जिन मेरे

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जंगल का दर्द : पृ० 105

2. गिरिजा कुमार माधुर : छाया मत छूना मत : पृ० 26

3. गिरिजा कुमार माधुर : छाया मत छूना मत : पृ० 31

मोतियों को तुमने पत्थर समझ कर फेंक दिया वह तोती स्त्री आई  
ये। जो मैंने तुम्हें फूल दिये थे, उन्हें तुमने फूल बताकर फेंक दिया। तुमने  
मेरा प्यार अभी तक नहीं पहचाना है। तुमने मेरी छीयल तानतारें  
मुस्कराकर हुंकार डालीं। अब मैं इस जीवन स्त्री अगर पर धकान बन कर  
रह गया हूँ।''<sup>1</sup> अब उस पहले प्यार की धिंदा-धेला में पीड़ित मन  
के उद्गार व्यक्त होते हैं :

'' स्वप्न की पहली निशा में/ स्वप्न अपने आप टूटा/ क्या  
निशाँ देखे, आखिरी/ प्यार भी तो दे न पाये / वो गये  
परिचित नयन / जो मिल न सकते विन्दगी भर / वह वही  
पथ है वहाँ / हम मिल गये तुमसे बिछुड़कर।''<sup>2</sup>

डॉ० डेदार नाथ सिंह स्त्री-पुरुष के प्रेम सम्बन्धों में क्या  
व्यवहार देखते हैं कहते हैं कि तुम जिस स्त्री को प्यार करते हो उसे  
मूल जाग्रो। क्योंकि वहाँ तुम्हें जंगली पत्तों जैसी छुंछु, जानवरों के  
रोआँ जैसी गरमाहट मिलेगी। वहाँ तुम्हें मजबूत पत्थर की तरह हठ  
आस्था मिलेगी, जिस पर तुम विश्वास कर सकते हो।''<sup>3</sup> उसका  
प्यार तुम्हें सब गरमाहट देगा :

'' वह सब जाँच है वो तुम्हें धीरे-धीरे / उस यातना के तिर  
तैयार करेगी/ वो कि तुम हूँ हो।''<sup>4</sup>

इस यातना को सहो और उसे केनने दो, क्योंकि यही तो  
मन की जड़ों का संगीत है जो नस-नस में खजता है। इसी प्रेमानुभूति  
के वशीभूत वह अपनी प्रेमिका हाथ अपने हाथों में लेते वस्तु सोचता है  
कि हुनिया वो इसी तरह गर्म और सुन्दर होना चाहिए।''<sup>5</sup>

1. गिरिजा कुमार माथुर : छाया मत कुना मन : पृ० 40

2. गिरिजा कुमार माथुर : छाया मत कुना मन : पृ० 44-45

3. डॉ० डेदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 59

4. डॉ० डेदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 60

5. डॉ० डेदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 75

डॉ० सिंह प्यार को एक अनबँधी-रेखा के समान मानते हैं, जो कभी बोलती नहीं, कोई आकार नहीं लेती वरन् एक बिजली की बॉंध के समान मन से निकलती है :

“ एक रेखा / जो कि बँधती ही नहीं है / कभी तुममें / कभी  
मुझमें कँध जाती है / हम उसी को प्यार करते हैं ।

डॉ० धर्मवीर भारती ने ' कनुप्रिया ' में राधा के प्रेम के स्वल्प का चित्रण किया है। इसमें राधा-कृष्ण के अद्भुत प्रेम का चित्रण की अभिव्यक्ति मिलती है। राधा का प्रेम काव्य के आरम्भ से लेकर अन्त तक एक सी ही सहजता पाता है। उसका प्रेम तन्मयता के क्षणों में डूब कर सार्थकता पाता है। यही सहज प्रेम की आन्तरिक अनुभूति, इस काव्य का प्रमुख आयाम है। डॉ० भारती ने राधा के प्रेम का चित्रण परम्परानुसार करते हुए इसमें नवीनता का समावेश किया है। इसमें राधा-कृष्ण का प्रेम लौकिक एवं अलौकिक दोनों विन्दुओं के छोर को पकड़ कर चलता है।

' कनुप्रिया ' कनु की अनन्तकाल की लीला-सहचरी है एवं भविष्य में भी इतिहास निर्माण एवं सृजन-सृष्टि के लिए सहचरी बनने के लिए दृढ़ संकल्प है। अपने ब्रज-लीला-रूप में भी कनु के साथ उसके अनन्त सम्बन्ध हैं। वह कनु की सखी है, सहचरी है, प्रेमिका है। कनु उसका बन्धु है, सखा है, प्रिय है, रक्षक है। कनु राधा की क्वॉरी उजली माँग में आगबौर रूपी सिंदूर भरकर अपनी मंजरी-परिणीता बना लेता है। अतः वह कनु की स्वकीया प्रेमिका बन जाती है। कनु राधा के अंग-प्रत्यंग के सम्पूर्ण के लोभी बन जाते हैं। वह राधा के जिस्म में बसकर सितार की झंकार की तरह झनझना उठते हैं। राधा तो कृष्ण को कोई वन देवता समझ कर करबद्ध प्रणाम करती है पर कनु को राधा की करबद्ध प्रणाम करने की मुद्रा इतनी भाती है कि वह राधा के प्रणाम का उत्तर देना भी भूल जाता है। उसे तो राधा के प्रणाम की वह मुद्रा और हाथों की गति इस तरह भा गयी कि उसने राधा के एक-एक अंग की एक-एक गति को पूरी तरह बाँध लिया।

राधा भी कृष्ण का आश्रय समझ कर उस साँवरे समुद्र पर आसक्त हो जाती है । इस प्रकार वह कनु में डूब जाती है कि कृष्ण के वाँसुरी की धुन सुनकर तुरन्त मृगी सी दौड़कर चली आती है । राधा कृष्ण के प्रेम में इस तरह तल्लीन हो जाती है कि रास की रात वह कृष्ण के पास से लौट क्यों आई ? उसे यह ख्याल हर वक्त सालता रहता है । वह कण-कण अपने छो देकर रीत क्यों नहीं गयी :

“ कण-कण अपने को तुम्हें देकर रीत क्यों नहीं गयी ? तुमने तो उस रास की रात / जिसे अंशतः भी आत्मसात किया / उसे सम्पूर्ण बनाकर / वापस अपने-अपने घर भेज दिया । ” 1

‘ समर्पण ’ शब्द को पर्याय बनाकर डॉ० धर्मवीर भारती ने प्रेम को आधुनिक संवेदना में अभिव्यक्त किया है । आधुनिक संदर्भ में व्यक्ति बन्धन से अन्मुक्तता चाहता है क्योंकि यही उन्मुक्तता उसके व्यक्तित्व को पहचान बनती है । इसी तरह की अभिव्यक्ति राधा के संदर्भ में है । वह रास की रात कनु में पूरी तरह, जो समुद्र में घिलीन हो जाती है- घिलीन नहीं हो पाती, किन्तु उसे क्या मालूम था कि उसे रास की रात में कनु ने जिसे स्वयं में अंशतः भी आत्मसात किया उसे सम्पूर्ण बनाकर भेजा और उसका प्यार है जो किसी छो सम्पूर्णतः बाँध कर भी सम्पूर्णतः मुक्त छोड़ देता है :

“ तुम्हारा अजीब - सा प्यार है / जो सम्पूर्णतः बाँधकर भी / सम्पूर्णतः मुक्त छोड़ देता है । ” 2

प्यार की यही अलौकिकता, उन्मुक्तता काव्य का केन्द्र बिन्दु है ।

राधा-कृष्ण के प्रेम के स्वल्प का साक्षात्कार वहाँ भी होता है जब कनु कदम्ब के नीचे बैठकर पोई की जंगली लतरों के पके फलों को तोड़कर, मसलकर उनकी ताली से राधा के पाँवों को महावर रचनेके लिए

1. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 17

2. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 32

अपकी गोंद में रखता है तो राधा लाज से धनुष की तरह दोहरी हो जाती है और अपने पाँव पूरे बल से समेट कर खींच लेती है।''<sup>1</sup> डाँ० रघुवंश का कथन है, '' राधा के पैरों में कृष्ण का महावर लगाना और फिर रात के गहरा जाने पर राधा का उसी आम्रडाली को बाहों में धरे रोते रहना, यह सब रोमैटिक प्रेम-प्रणय के भाव-बोध को व्यक्त करते हैं।''<sup>2</sup> उस समय लाज से सिमट कर वह घर भाग जाती है और ऐकान्त में उन पैरों को देखकर धीरे से प्यार कर लेती है। और इस प्यार में इस तरह तल्लीन हो जाती है कि जब वह दधि बेचने जाती है तो नगर-डगर 'श्याम ले लो'<sup>3</sup> की आवाज लगाने लगती है। इसी प्रकार कृष्ण का घनिष्ठ प्यार पाकर वह कनु की 'मुँह लगी, जिददी नादान मित्र बन जाती है। उसे बार-बार नादानी करने में अच्छा लगता है। वह कहती है, मेरे हर बावलेपन पर कभी खिन्न होकर, कभी अनबोला ठानकर कभी हँसकर तुम जो प्यार से अपनी बाँहों में बसकर बेसुध कर देते हो, उस सुख को मैं छोड़ूँ क्यों। कल्लो। बार-बार नादानी कल्लो।''<sup>4</sup> 'कनुप्रिया' में प्रेम स्वरूप की प्रधानता छोटे-छोटे प्रणय-प्रसंगों के माध्यम से अत्यन्त मधुर हो गई है। उदाहरण स्वरूप 'कनुप्रिया' के 'तुम मेरे कौन हो' शीर्षक के अन्तर्गत आया है, 'अक्सर जब तुमने माला गुँथने के लिए कंटीले झाड़ों में चढ़-चढ़कर मेरे लिए श्वेत रतनारे करौंदि तोड़कर मेरे आँचल में डाल दिये हैं, तो मैंने अत्यन्त सहज प्रीति से गर्दन झटका कर वैणी झुलाते हुए कहा है'' कनु ही मेरा एक मात्र अंत-रंग सखा है।'' अक्सर जब तुमने दावाग्नि में सुलगती डालियों, टूटते घुँघों, बहराती हुई लपटों और छुटते हुए धुँए के बीच निस्प्राय, असहाय, बावली सी भटकती हुई मुझे साहस पूर्वक अपने दोनों हाथों में फूल की थाली सी सहेज कर उठा

---

1. डाँ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 23

2. डाँ० रघुवंश : भारती काव्य : पृ० 47

3. डाँ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 31

4. डाँ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 29



लिया और लपटें चोरकर बाहर ले आए, तो मैंने आदर, आभार और प्रगाढ़ स्नेह से भरे-भरे स्वर में कहा, "कान्हू मेरा रक्षक है, मेरा बन्धु है. सहोदर है।" १

"कनुप्रिया" में संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का प्रेम स्वल्प मिलता है। राधा का प्रिय कनु इतिहास-निर्माण के लिए राधा को छोड़कर, उसके तन्मयता के क्षणों को भुलाकर, युद्ध और राजनीति प्रपंच रचने चला जाता है। राधा विप्रलब्धा नायिका बन जाती है। कनु के साथ रहने पर जो राधा के पास जादू था वह अब 'बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चाँद, रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण' २ सा हो गया है। कृष्ण के साथ जो शरीर खिना हुआ पुष्प था, वह कृष्ण के वियोग में बूड़े से गिरे हुए बेले सा टूटा है, म्लान है, दुगुना सुनसान है, बीते हुए उत्सव सा है, उठे हुए मेले-सा है। राधा को बीते दिनों की स्मृतियाँ उलावा करती हैं, वह सोचती है क्या वह सिर्फ 'सेतु थी, तुम्हारे लिए लीला-भूमि और युद्ध के क्षेत्र में अलंघ्य अन्तराल में।" ३

वस्तुतः 'कनुप्रिया' में प्रेम के दो स्वल्प परिलक्षित होते हैं, नारी की उत्तिरोत्तर विकासमयी यात्रा का और दूसरा पुरुष द्वारा सम्पूर्ण प्राप्ति का भाव। दोनों स्वल्पों का आधार राधा ही है। राधा का संयोग-वियोग प्रेम है तथा उसके अन्दर सहजता एवं तन्मयता भी है। यही 'कनुप्रिया' के प्रेम स्वल्प के नये आयाम हैं एवं शाश्वतस्वल्प और बदलते संदर्भ में बदलते सम्बन्धों की ओर संकेत है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रकृति सौन्दर्य एवं मानव प्रेम के साथ-साथ प्रकृति-प्रेम की ओर भी गई है। वैसे तो स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति का वर्णन बहुत मनोहारी रूप में किया है। किन्तु नयी कविता के कवियों ने प्रकृति का वर्णन सर्वथा नये रूप में प्रस्तुत किया है।

1. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 33-34

2. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 57

3. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 60

जिससे कविता में एक नयापन झलकता है। यही नयापन अन्य युग की कविता से नयी कविता अपना स्वरूप बनाती है। कवि पहाड़ों का प्रकृति-प्रेम प्रस्तुत करता है कि सुबह-सुबह के कोहरे ने सूर्य की रोशनी को ढक लिया है, इस प्रकार सारा शहर ऐसा प्रतीत होता है कि सबने बहुत बड़ी मच्छरदानी लगा रखी है। कवि ने कोहरे से मच्छरदानी की उपमा की है :

“ बर्फ की सफेद चोटियों पर / खिली हुई आग / घने कोहरे ने  
छिपा रखी है। / सारा शहर / एक बहुत बड़ी मच्छरदानी/  
लगाकर सो रहा है।” 1

बन में स्वच्छन्द विचरणा करते पशु-पक्षी कितने मनोहारी लगते हैं, साथ ही स्वच्छन्द चाँदनी के समान जल का बहता हुआ स्रोत और उसके साथ अठखेलियाँ करते पक्षी मन को मुग्ध कर लेते हैं। कवि ने प्रकृति का कितना सुन्दर मनोहारी चित्रण किया है कि भोर की प्रथम किरण जब झरने पर पड़ती है तो झरने के स्वच्छ जल में उसका प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है। गीली रेत पर घोघा जब चलेगा तो पत्तों की सरसराहट तेज सुनाई पड़ेगी। पेड़ों पर बैठे हुए पक्षी अपने मधुर कंठ का अवलोकन करेंगे।

इसी प्रकार भोर का स्वरूप और ज्यादा उज्ज्वल होगा।  
अर्थात् सुबह का उजाला और फैलेगा।” 2 वस्तुतः नयी कविता का प्रकृति-प्रेम निर्मल एवं सादा है, फिर मन को मुग्ध करने में सक्षम है :

“ सवेरे उठा तो धूम खिल कर छा गयी थी / और एक चिड़िया  
अभी-अभी गा गयी थी।” 3

नयी कविता के कवियों ने प्रकृति-चित्रण को नये आयामों से सराबोर किया है, बादल जब बरसकर नदियों में गिरते हैं तो ऐसा लगता है जैसे झीने बादलों से रंग झर-झर कर गिर रहे हों, वह रंग नदी में पिघल रहे हों, और उस झरने में सैकड़ों रंग निर्झरों में बदलकर ज्वालामुखी

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ दो : पृ० 55

2. अज्ञेय : आंगन के पार-द्वार : पृ० 51

3. अज्ञेय : कितनी नावों में कितनी बार : पृ० 1

समान बन गये हों।''<sup>1</sup> कवि को ताल के किनारे की धूम धूपों जैसी कोमल निरतेज, बीमार हंसी, हसंती हुई पथरायी सी, सितारों स्पी सिंघा: वायी हुई प्रतीत होती है।''<sup>2</sup> रात में निकले चाँद का दर्शन कवि करता है :

'' चाँद नीले घादलों में तो रहा है / चाँदनी को कुछ नशा सा हो रहा है / नींद में केँ गये पति छोरे/ छोश किसको क्या मिला, क्या हो रहा है / गुदगुदी का दर्द उभरा जा रहा है X छिलछिला बेदम जमाना रो रहा है।''<sup>3</sup>

कवि चाँद की रौशनी पर विमग्न होकर कहने लगता है कि वह थोड़ा और पिछे, हवा कुछ और तेज चले। जिसमें संसार का सौन्दर्य और उमरकर सामने आये। कवि ने आकाश को सिल्ले-सितारों बड़ी मछल को घोल चढ़ी सिंदोरा कहा है जो उलट कर धरती पर आ गया है।''<sup>4</sup> कवि को नदी का सौन्दर्य इतना भा गया है कि वह उसके किनारे घूमता ही रहता है। वह सोचता है, तुम कहाँ से आयी हो, और किससे मिलने जा रही हो। उसे नदी की ये ही लहरियाँ अच्छी लगती हैं जो उठती हैं, धूम में छिलछिलाकर मिलमिलाने लगती हैं। मछनियाँ उसमें कलाबाजियाँ खाती हैं।''<sup>5</sup>

हिमालय का पवन शुभ्र, कठोर, ठंडो तपस में ऐसा प्रतीत होता है जैसे देव-अप्सरसों ने परिधान धारण कर लिए हों। उसके लम्बे-लम्बे देवदार ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे आपस-कन्यारें गोपनीय घातलाप कर रहीं हो। इन वृक्षों के बीच से सूर्योदय ऐसा प्रतीत होता है जैसे संवोची

- |                           |                     |         |
|---------------------------|---------------------|---------|
| 1. सर्वेधर दयाल सप्तेना : | कवितारें :          | पृ० 204 |
| 2. सर्वेधर दयाल सप्तेना : | कवितारें :          | पृ० 205 |
| 3. सर्वेधर दयाल सप्तेना : | कवितारें एक :       | पृ० 57  |
| 4. सर्वेधर दयाल सप्तेना : | कवितारें एक :       | पृ० 62  |
| 5. सर्वेधर दयाल सप्तेना : | छुटियों पर छै लोग : | पृ० 95  |

नदियों का धुला-धुला सा कोलाहल हो।''<sup>1</sup> हिमालय ऐसा प्रतीत होता है :

'' हिम, केवल हिम -/ सुगन्धार्ध धूम / देव कन्याओं की हिम  
फिसल रही है / वाँदनियों की पारदर्शिका मलयमल में।''<sup>2</sup>

कवि केदार नाथ अग्रवाल का प्रकृति-प्रेम सरल एवं मन को लुभाने वाला है। उनकी दृष्टि प्रकृति के घेत-छविहानों की तरफ दौड़ो है। जब गेहूँ की घाल पठ जाती है तब हवा उसे हिलाना शुरू कर देती है पर वह तो ऐसा उटा हुआ खड़ा रहता हो जैसे भाले की नाँक संभाले हिम्मत वाला जवान लुम रहा हो। कागुन की मस्ती की शक्ति उसे हिलाकर उसकी गति को मानों मंद करना चाहते हों, किन्तु वह तो धूम की गरम गोद में बैठकर वैभव की चितवन से उटा खड़ा रहता है।''<sup>3</sup> कवि ने कोहरे का चिह्न अंकित किया है कि शिशिर श्रुत की शाम में धनघोर अन्धकार में धरती पर धीरे-धीरे उतर रहा है, यहाँ-वहाँ, दूर-दूर पर बैठकर अपना पहरा दे रहा है। उसने प्यारि घर, मन केत सभी अपने अस्तित्व में छिया लिए हैं।''<sup>4</sup>

संध्या अपने सुन्दर रेशम के केरा खोल कर उतर रही है। वह अपनी लज्जा से स्पर्श ही लाल हो रही है अर्थात् संध्या का लालपन उसकी लज्जा है। जिसमें उसने अपने साथ-साथ जग को भी लाल कर लिया है। पश्चिम में डूबता सूर्य उसके आनन का पराग हो रहा है इसी समय तिरछी, ऊँची-नीची कतार बाँधे पक्षी भी अपने पोंतलों में लौट रहे हैं।''<sup>5</sup> प्रातः का सुकोमल वर्ण कवि ने इस प्रकार किया हैः

1. श्री नरेगा मेहता : महाप्रस्थान : पृ० 28-29

2. श्री नरेगा मेहता : महाप्रस्थान : पृ० 33

3. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 21

4. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 24

5. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 100-101

“ प्रातः सुयोग अमोल री । प्राची-राग-रंगीली मदिरा श्यामा-  
सरिते बोल री । / मौन-मुकुल-सम-विधुर-विह्वलतर / सिकता के  
प्रिय अधर विह्वलतर -- / पीं में जी भर प्याली-प्याली, ले ले  
कुंकुम बोल री । ” 1

कवि ने चंद्र राशि का वर्णन किया है कि चाँदि स्या गागर राशि  
के तिर पर रखा है और चाँदनी स्या जॉपिल धरती पर पड़ा है । उसका रूप  
रसदार है वह ऐसा प्रतीत होता है जैसे रसमा नृत्य कर रही हो । इस दृश्य  
को देखकर सारा संसार विमुग्ध होकर स्वप्नवत् हो गया है । ” 2 कवि ने  
चाँद और चाँदनी का एक चित्रण और किया है कि जिव बट-बूध पर  
चाँद बैठा है । और बड़े चाब से बाहें पतारे नीचे निहार रहा है, और  
योधमयी चाँदनी का केनिल फूल-धूमता है । ” 3 प्रातः लंघन किरणों ने  
अपना पाँव धीरे से धरती पर रखा । जिससे मिट्टी स्या तलवों का रंग  
लज्जा से लाल हो उठा । छोटा सा गाँव भी केसर-रंग में डूब गया । पेड़ों  
पर लज्जा स्या फूल खिल उठे । और जमा ने मस्तो से उमंग से उन्हें घूमा । ” 4  
मौन पत्थरों के स्वर भी मुखरित हो उठते हैं जब कवि की कल्पना तजीब  
होती है :

“ पत्थर भी बोलते हैं / जब चिड़ियों का हुण्ड / बैठ जाता है उन पर /  
और वे पहकती हैं आपस में, / पत्थर के ये बोल / मुझे मीठे लगते  
हैं / और हृदय में रस भरते हैं / जंगूरों से निकला / मीठा-मीठा  
ताजा । ” 5

पहकती चिड़ियों का शोर ऐसा प्रतीत होता है जैसे पत्थर ही बोल  
रहा हो । उसके बोल हृदय में एक अनजानी मिठास भर जाती है । यह मिठास

- |                        |                           |     |            |
|------------------------|---------------------------|-----|------------|
| 1. केदार नाथ अग्रवाल : | गुलमोहदी                  | :   | पृ० 104-05 |
| 2. केदार नाथ अग्रवाल : | गुलमोहदी                  | :   | पृ० 145    |
| 3. केदार नाथ अग्रवाल : | फूल नहीं, रंग बोलते हैं : | पृ० | 29         |
| 4. केदार नाथ अग्रवाल : | फूल नहीं, रंग बोलते हैं : | पृ० | 33         |
| 5. केदार नाथ अग्रवाल : | फूल नहीं, रंग बोलते हैं : | पृ० | 48         |

ऐसी प्रतीत होती है जैसे मोठे अंगूरों का मीठा रस पी लिया गया हो।  
अतः यह प्रकृति-प्रेम कवि का अनुठा ही है। कवि नागार्जुन की कविता करने  
की अपनी ही अनुठी शैली है। उनके काव्य में सपाट-खयानी में ही बहुत कुछ  
मिलता है। कवि ने प्रकृति-प्रेम को भी सीधी सरल भाषा के माध्यम से  
व्यक्त किया है, प्रातःकाल की सूर्य की लालिमा हिमगिरि के शिखर पर  
निहार रही है। जिसे जागे घड़ कर शिवा रवि ने और भी ज्योति दी है।  
कवि प्रकृति के इस स्व कार्य को विमुग्ध रूप से देखता रहता है।''<sup>1</sup>  
कवि ने शिशिर की रात्रि का वर्णन किया है :

'' शिशिर की निशा ५ ५ ५/ धुंध में डूब गयी /.....नखत हुए  
उदास/ छाँसिता है पंदि/ गगन के बीचोंबीच/ हाँफता है पंदि।''<sup>2</sup>

कोहरे में मन प्रमित तो होता ही है। किन्तु स्वयं कोहरा भाव  
नहाया हुआ या सरमाया हुआ, पुनः की छिन्नरन में उसकी छुन्न<sup>3</sup> में मन  
पर गहरा असर छोड़ता है। कवि देवदारों की ऊँचाई एवं उनकी सुन्दरता  
पर मोहित है। वह आश्चर्य करता है कि तुमको जलधि तल से सात-आठ  
हजार फुट ऊँचा यहाँ जीन लाया। तुम तो पहाड़ों में पाहुन के समान  
उदार लगते हो।''<sup>4</sup> कोहरे में तुम्हें का सूर्य कभी दिखाई पड़ता है तो  
कभी नहीं दिखाई पड़ता। किन्तु पिनहान तो वह कवि को दूषता-दूषता  
अपना मनोहारी सौन्दर्य कवि को दिखा हो गया।''<sup>5</sup> धर्षों से भीगें हुए  
छेत कवि को ज्यामितिक आकृतियों के समान दीखते हैं :

'' सौंथी भाक छोड़ रहे हैं/ज्यामितिक आकृतियों में/फैले हुए छेत/  
दूर-दूर-ऊँच-नीच/ऊँच-नीच, दूर-दूर/दीघ रहे छपर-उपर/हाडि के  
दोनों ओर/फैले हुए छेत, प्रसरे हुए छेत।''<sup>6</sup>

1. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृ० 44
2. 3. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृ० 45-46
4. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, : पृ० 49
5. नागार्जुन : आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने : पृ० 29
6. नागार्जुन : आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने : पृ० 33

वास्तवतः कवि का प्रकृति-प्रेम कोहरे में एवं सूर्य के प्रति अधिक रहा है। उसने प्रकृति का गणितीय आकार भी दिया है। और इसमें प्रकृति का मानवी स्वरूप भी परिलक्षित होता है।

प्रकृति-प्रेम में गिरिजा कुमार माधुर जी की अपनी ही निराली शैली है। इसमें भी उनका अपना अंदाज मुखरित हुआ है। प्रकृति का ऐसा चित्रण किया है कि वह मानवी स्वरूप से मुखरित होने लगती है। जब अधिराज जलते हुए राजनी के दीपक मंद पड़ने लगे, जब वाह्य मुहूर्त का समय उदय हुआ, तब हलके कम्पन के साथ-साथ पहलू वाला सिंहासन पश्चिम में जाकर छिपने लगा। चार भी मंद-मंद चलने लगी, उस समय भ्रमरों का स्वर्ग से गंगा उतरने का भ्रम उत्पन्न होने लगा।<sup>1</sup> तावन के बादल प्रकृति में कैसा रंग भरते हैं जिसका चित्रण कवि ने किया है।

“ ठाले बगरु-से उठे आज बादल/ नहाकर धनस्पति हुईं श्रुमती-सी/  
नितम्बिनि धरा ज्यों कुँवरि रसवती-सी / नवीदा नदी ने नवल  
अंग छोले/ तजी दीपतन की मिलन आरती-सी / उठे नैन लालिम  
हंती रेख काजल।”<sup>2</sup>

जाड़ों की धूसरता की गरिमा कितना मन लुभाती है, यह बिल्कुल गृहिणी सही-सी लगती है। धीरे-धीरे पग रक्ती चाय की टेबल तक आ जाती है, और सबों में एक गमछिंद देकर अपना अपमत्त्व प्रदान करती है।<sup>3</sup> ग्रीष्म-श्रुत की चाँदनी ऐसी लगती है मानो अपने कुले तन पर हवा का वस्त्र पहन कर तथा उसकी लहरों का पुनरुद्गात लहरों का पुनरुद्गात पहन कर कमरे में आ गयी है।<sup>4</sup> कवि ने न्यूयॉर्क की प्राकृतिक छटा का वर्णन किया है :

1. गिरिजा कुमार माधुर : धूसर के धान : पृष्ठ 3
2. गिरिजा कुमार माधुर : धूसर के धान : पृष्ठ 37
3. गिरिजा कुमार माधुर : धूसर के धान : पृष्ठ 51
4. गिरिजा कुमार माधुर : धूसर के धान : पृष्ठ 54

“ धूम गयी बरसात नम / आ गया है नायकन ता पारधीना / यह छुना  
मोसम / मनोरम कवि का मोसम / हिमानी रात / ठण्डी धूम का  
मोसम / समुद्री हवा पर उड़ता हुआ / पत्तों भरात अँटिम ।” 1

शरद ऋतु में भीर ऐसी प्रतीत होती है जैसे छुनी कपिती ली नरम  
हथेली हो। और बुँदछियों द्वारा मेंहदी लगा, आसता हो। हरी धूम किरन  
सोसता मासूम देती है। रात में चाँदनी श्वेत फूलों भरी लोहरी लगती है,  
जितने मासुमी के माल हूमके पहन जेवरों से लदी है।” 2 हेमन्त ऋतु की रात  
का मानवीकरण कवि ने किया है :

“ नयन लासिम स्नेह दीपित / भ्रम मिलन तन-गन्ध सुरमित / उत नुकीले  
धम की / वह गुपन, उकसन, गुप्ति अमसित / इस अगल-बुझि में सलोनी  
हो गयी है / रात यह हेमन्त की ।” 3

चाँदनी के धिंधिल रूपों को कवि ने छटमिट्टी चाँदनी कह कर सम्बोधित  
किया है। ऐसी चाँदनी में नीत के घोर, महुआ की गंध, हवा में घमेली की  
सुगंध ऐसी मासूम पड़ती है जैसे यह सब चाँदनी से ही फूटी हुई हों। ऐसा हवा  
हर किसी को मन्त्र मुग्ध करता है। ऐसा लगता है जैसे धरत का आसव भी  
लिया हो। इस चाँदनी ने जीवन में सौधी, भीठी, लोनी, स्वाद भर दिये हैं।  
यह देखकर मन कितना सुख पाता है।

स्वच्छन्दतावादी युग में देश अपनी आजादी के लिए संघर्षशील था।  
देश की आजादी के लिए धीरों, श्रौतिकारी, योद्धाओं के अतिरिक्त  
साहित्यकारों ने भी अपनी सामर्थ्य अनुसार इसमें भाग लिया और देश भक्ति  
का साहित्य जन-चेतना में पुष्कार भरने के लिये किया। परन्तु नयी कविता  
आजादी के बाद की कविता है। फिर भी देश-प्रेम की भावना इस युग के  
कवियों में विद्यमान है। कवि नागार्जुन ने भारत माता का उद्गोध किया :

1. गिरिजा कुमार माथुर : धूम के धान : पृ० 63

2. गिरिजा कुमार माथुर : छाया मत पुना मत : पृ० 19

3. गिरिजा कुमार माथुर : छाया मत पुना मत : पृ० 25



“ जय-जय-जय हे भारत माता ! / नमनिवातिनी जलनिवातिनी /  
हरि-भरित भूतल निवातिनी / गिरि-मल-पारावारवातिनी /  
नील-निविडु ान्तावातिनी । ”

भारत भूमि का विभिन्न रंगों में कवि ने वर्णन किया है। इसमें विभिन्न जाति, विविध लय की जनता रहती है। इसकी गोदी में हिमालय धेती उच्च श्रेणी अपनी शोभा बढ़ा रही है। यहाँ सब परस्पर भाई-बन्धु भाव से रहते हैं। यहाँ राष्ट्र की मुक्ति के लिए उच्च स्तरों में ऊँच स्तर गान हुए हैं।

कवि केदार नाथ अग्रवाल देश-प्रेम की वर्णित करते हैं कि मेरे देश में कदम-कदम पर प्रतिभावान पीढ़ी उदा मिलेगा। उनमें जाति का संवार भी मिलेगा। यहाँ मधुर कंठ में लौकिक एवं अलौकिक ध्वनियाँ गुँजती हैं। भारत-वर्ष अक्षय-वट के समान विज्ञान और व्यापक है। इसका मूलधार यहाँ की उर्वर माटी ही है। इस अक्षय-वट की शाखाओं की छाया सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। षट्-गुणों का यहाँ आगमन होता है। जाति-वर्ण रंग सभी धाराएँ तो यहाँ अनेक हैं लेकिन पानी एक है। कवि बंदना करता है:

“ मैं / अभिनन्दन करता अपने महादेश का -/ अपने भारत देश का—/ मूर्तिमान राष्ट्रीय एकता के / उन्नत मस्तक प्यारे भारत देश का । ” 2

कवि का देश-प्रेम एतना प्रगाढ़ है कि वह नरकर भी उससे दूर नहीं जाना चाहता, इसी माटी में बिलकर यही दुबारा उगना चाहता है :

“ मर जाँओ तब भी तुमसे दूर नहीं मैं हो पाँओ / मेरे देश,  
तुम्हारी छाती मिट्टी में हो जाँओ / मिट्टी की नामी से  
निकला मैं प्रसूमा होकर जाँओ / गेहूँ की सुदही धधि में खेतों-  
खेतों का जाँओ / और तुम्हारी अनुकम्पा से पक कर सोना हो

1. नागार्जुन : पुनधारा : पृ० 70

2. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 197-200

हो जाऊँगा / मेरे देश, तुम्हारी शोभा में तोना से चमकाऊँगा।” 1

मेरा देश गगन घुम्पी शिखरों का घर है। यहाँ हरियाली का सम्मिश्रित स्वर सुनाई पड़ता है। इसकी उपजाऊ धरती पर गेहूँ, धान, जने, गन्ना, लहसुन, तिली, तरसों, अलसी आदि पैदा होती है। यहाँ महापुरुषों की आत्माओं का निवास रहता है। प्रमजीवी सुन्दर घर का निर्माण स्वयं करता है। मेरे देश के पैरों पर सागर भी नतमस्तक हो उठता है। मेरे देश के सज्जन गायक पशु-पक्षी हैं और तार के पात हैं। मेरा देश रसों से सोंघा हुआ राग-अनुराग से पूरित है। मेरा देश आशा-अभिजाधाओं का उंचा घर है। इसके हित में मेरा हित है, मेरे हित में इसका हित है। इसने मुझे और मैंने इसको पाला है।” 2

कवि गिरिजा कुमार माथुर जी ने देश के प्रति अनेक आशाओं का संसार व्यक्त किया है। जब देश आजाद हुआ था, तो उसे मजबूत बनाने पर बल देकर कहा था कि अभी तो हमारी मशाल ऊँची हुई है अतः आगे का रास्ता अभी कठिन है। शत्रु तो हट गया, परन्तु अभी उसकी छायाओं से डर लगता है। शत्रु ने जो समाज का शोषण किया था, उससे अभी देश का घर कच्चा है। अगर हम एकजुट होकर विश्वास के साथ नयी जिन्दगी शुरू करें तो सफलता अवश्य मिलेगी।” 3

“होगें कामयाब / एक दिन / होगी शान्ति चारों ओर / एक दिन / हम जलेंगे साथ-साथ / आन हाथों में हाथ / एक दिन” 4

आज के संदर्भ में कवि का देश-प्रेम, विश्व शान्ति के रूप में सम्पूर्ण विश्व का प्रेम बन गया है। आजादी पर वह अपने देश की उन्नति, शान्ति, प्रगति, एकता के दिग्ग में सोचता था। आज जब देश सुदृढ़ स्थिति में आ गया है तब वह सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में पिरोना

1. केंदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं : पृष्ठ 103

2. केंदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृष्ठ 152-153

3. गिरिजा कुमार माथुर : धूम के धान : पृष्ठ 36

4. समूह गान : गीता निदेशालय, 3090 लखनऊ से उद्धृत : पृष्ठ 102

चाहता है। यही नयी कविता की विशेषता है, कि वह सम्पूर्ण विश्व की चेतना को लेकर चलती है। नयी कविता का कवि सोचता है कि उसका दुःख सम्पूर्ण विश्व का दुःख है। अतः इसमें मानवतावादी भावना जागृत होती है। उसके हृदय में प्रेमा-प्रेम उपज रहा है। अतः वह इसको सींचने में सबका सहयोग अपेक्षित रखता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि नयी कविता के कवियों ने प्रेम का वर्णन, परम्परा एवं परम्परा से दृष्टर दोनों स्तरों में किया है। जहाँ प्रकृति-प्रेम भी हृदय को उद्देक्षित करता है। उसके हर वर्णन में नूतनता ललकती है। देवा-प्रेम के साथ-साथ नयी कविता का कवि चाहता है कि लोगों के अन्दर विश्व-प्रेम की भावना उपजे। अन्ततः इसके लिए वह संपर्कीन, प्रयत्नशील दिखाना पड़ता है।

### सौन्दर्य :

सौन्दर्य वह शाश्वत आनन्द दायिनी तरिता है, जिसकी मधुर अनुभूति की तरफ प्रतिफल-प्रतिष्ठा नित्य बढ़ती जाती है, उसका कभी ह्यास नहीं होने पाता। यह सुष्ठि की ऐसी जीवन्त शृंखला है जहाँ प्रेम और सन्तोष दोनों ही मन को वर्धित करते हैं। यह सत्य, विश्व, के आधार पर ही अपना स्वयं गूढ़ करता है। जिससे सुन्दरम् की रचना होती है। सौन्दर्य क्षण-क्षण में अपना रूप बदल कर सुभाता है। अतः सौन्दर्य के अन्दर प्रेम-ही प्रेम दिखाना पड़ता है, दर्पण की मिथ्या प्रशंसा नहीं।

“ प्रकृति अथवा नारी-सौन्दर्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की कल्पना को उद्देक्षित करता है और वह अपनी सौन्दर्यानुभूति को अनायास कविता का रूप दे देता है। क्लासिक कवि भी सौन्दर्य-प्रेमी होता है, लेकिन सौन्दर्य

की क्लासिक एवं रोमांटिक भावना में अन्तर है। सौन्दर्य की क्लासिक भावना में एक प्रम है जबकि उसकी रोमांटिक भावना में सौन्दर्य के साथ जीवुहल का मिश्रण होता है। अतः क्लासिकल सौन्दर्यानुभूति में वाह्य और सुधीनता की प्रधानता रहती है और स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्यानुभूति का रहस्य कवि की आन्तरिक भावना में निहित रहता है।'' 1

'' सौन्दर्य मूलतः ऐन्द्रियता का विज्ञान है। इसका उद्देश्य भी स्वतन्त्रता तथा सुख-भोग है। यह भी मूलवृत्ति तथा नैतिकता का समन्वय करता है। वस्तुतः सौन्दर्य अपने आप में मानवीय चेतना का विस्तार है।'' 2

छायावादी कवि को सौन्दर्य दृष्टि प्रकृति के सौन्दर्य में अधिक रमो, किन्तु स्वच्छन्दतावादी कवि ने मानवीय सौन्दर्य को निरखा-परखा है। उसकी दृष्टि मजबूरी करती, पसीना पोंछती नारी में वही सौन्दर्य महसूस किया है जो एक उच्च स्तर की सजी हुई नारी लगती है। अतः नयी कविता के कवि की प्रवृत्ति भी ऐसी ही है। यह मानव के हर दृष्टिकोण को जो मन को लुभाता है, वही तरल सौन्दर्य उसे मोहित करता है। अतः सृजन करने की क्षमता ही सौन्दर्य है। यह सृजन-क्रिया जीवन-पर्यन्त चलती है, फलतः सौन्दर्य दृष्टि भी जीवनन्त दृष्टि है।'' अश्वेय' ने अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य का वर्णन किया है जो कवि को पल-पल मोहित कर प्रेम बढ़ाता है। उसकी पलकों का धीरे-धीरे कपिना, झुनझुन फिर छपना, कवि को इस प्रकार लगता है जैसे किसी लज्जाली कन्या के छिने का सपना हो।'' 3

उसकी आँखों का वर्णन इस प्रकार करता है।:

'' जिन आँखों को तुमने गहरा घतलाया था / उन से भर-भर मैंने /  
स्व तुम्हारा पिया / जिस छाया को तुम रहस्यार्थ से भारी  
वताते थे / उसके रोम रोम से मैंने / गान तुम्हारा किया।'' 4

1. डॉ० अबध सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 168

2. जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध : पृ० 5

3. ' अश्वेय : अश्विन के पार द्वार : पृ० 24

4. ' अश्वेय : आगिन के पार द्वार : पृ० 29

कवि अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य की तुलना आकाश में फैले इन्द्र धनुष की भाँति करता है जो सदा उसके हृदय में है और एक आकाश में फैला हुआ है। इन्द्रधनुष की जलान की तुलना वह उसके वक्ष से करता है।<sup>१</sup> वह उसके रूप-सौन्दर्य में इस प्रकार सो जाता है कि उसे लगता है यह रूप की धूम मेरे वदन पर गिर रही है। तुम्हारे घुने हुए घने बाल एकदम आमोश पड़े हैं। और मैं इस मुँह में धेसुप पड़ा हुआ हूँ।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त नारी सौन्दर्य के अलावा कवि रहस्यमय सौन्दर्य की ओर भी उन्मुख करता है :

“ त्यों में एक अर्थ सदा छिन्ता है / मोहर में सदा अगोचर, अग्रमेय, /  
अनुभव में एक अतीन्द्रिय / पुरुषों के हर देव्य में ओजस्र अपौरुषेय  
मिलता है।<sup>३</sup> ”

कवि अपनी प्रेयसी के सुन्दर भोलेपन पर मुग्ध है। उसके भोलेपन पर फूल भी उससे ठोसी करते हैं।<sup>४</sup> कायावादी कविता में तो कवि अपनी प्रेयसी की सुन्दरता की तुलना चाँद-तितारों से ही करता था, किन्तु नयी कविता में कवि अपनी प्रेयसी की सुन्दरता की तुलना बाजरे की छरछरी कलगी से करता है, जो अपने-आप में अनुठा एवं आकर्षित करता है। या उसके सौन्दर्य की तुलना सँघ के नभ अकेली तारिका से करता है जो आकाश में अकेली होने के कारण अनायास ही सबको अपनी ओर आकर्षित करती है। या गरद गुरु के ओस में न्यायी हुई चम्पे की कली के समान मुग्ध करती है।<sup>५</sup> वस्तुतः यह सौन्दर्य ऐसा प्रतीत होता है जैसे वेदांग आमोश एवं पवित्र हो, क्योंकि इन उपमानों के अन्दर एक पक्का भावना जागती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपनी प्रेयसी के हाठों के तिल पर

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें दो : पृ० 10
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें दो : पृ० 34
3. ' अक्षय ' : अग्नि के पार द्वार : पृ० 39
4. ' अक्षय ' : सर्वना के छा : पृ० 27
5. ' अक्षय ' : सर्वना के छा : पृ० 55

आकर्षित हैं, जो ऐसा प्रतीत होता है जैसे ईश्वर की तरफ से आठों को  
 वन्द करने के लिए कील जड़ी हुई हो। और मीन हर पल उसको अलौकिक  
 बनाता है।<sup>1</sup> कवि ने प्रेयसी का सौन्दर्य वर्णन प्रकृति की आभा से किया  
 है। वह उसकी आँखों की चमकता का वर्णन आकाश में भागते छोटे-छोटे  
 बादलों के टुकड़ों से करता है, उसकी मुस्कान मीसे के जार में वन्द मछली  
 को ऊपर-ऊपर तैरती है उससे करता है, उसकी हँसी हवा के तौलों से  
 झूलते कुँजों से की है, उसकी भाव-भंगिमाएँ मोर के बदलते परिवेश से  
 की है, उसका उठना, बैठना पैसा ही है जैसे शृगुरें बदलती हैं।<sup>2</sup> इसमें  
 नये-नये धिम्कों का अंकन कर कवि ने नया सौन्दर्य आयाम दिया है।  
 कवि नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करता है :

“तुम जो एक सफेद जड़ प्रतिमा-सी / मेज पर रोगनी के किनारे  
 बैठी हो / सुकी हुई पलकों में दो ढेरे-ढेरे मोती छिपाये /  
 और जिससे सुडीम गेहूँ गालों पर / ताड़ी में टँकी हुई  
 किरौंशिये की / धूल की परछाईं नन्हें-नन्हें सफेद / फूलों  
 की माला बना रही है / तुम जो चुप हो- / और दूधर  
 गिरी हुई एक पीली-पत्ती-सी / असहाय सुनी डाल को  
 चुपचाप निहार रही हो।”<sup>3</sup>

वस्तुतः कवि को अपनी प्रेमिका रोगनी के किनारे सफेद  
 जड़ प्रतिमा सी लगती है। क्योंकि वह उदास है, उदासी के समय ही  
 उसकी आँखों के आँसू मोती समान प्रतीत होते हैं। कवि को उसके गेहूँ  
 रंग में ही मलय का आकर्षण दिखनाई पड़ता है। यहाँ तक कि उसे उसकी  
 उदासी का मौन भी अपनी ओर आकर्षित करता जान पड़ता है। अतः  
 कवि को अपनी प्रिया को प्रत्येक भाव-भंगिमा अपनी ओर खिंचती है।

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें : पृ० 147

2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें : पृ० 232

3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें एक : पृ० 72

“ नागार्जुन’ की नायिका छोटे-छोटे दांत पंक्ति को घोल कर उन्हें  
सुभाती है। उसकी हँसी कवि को पिछरी फिरणों के समान लगती है :

“ छोटे - छोटे मोती - जैसे दाँतों को फिरमें पिछेर कर  
नील कमल की कलियों जैसी आँखों में भर  
अनुनय सादर ।”<sup>1</sup>

‘ मुक्तिबोध’ की प्रेयसी साधारण सौन्दर्यमयी है किन्तु फिर भी  
वह आकर्षित करती है। उसके मुख पर अँखि आलोक से भरी लगती हैं।  
जिनमें सतत गहरी आह मिलती है। वह हलचल एतनी गहरी है, ऐसा प्रतीत  
होता है मानो रत्नों की खोजने का प्रयत्न कर रहा हो। उन आँखों का  
व्य चोरी से कवि ने हृदय में छसा लिया है।”<sup>2</sup> वह अपने अन्दर अनुभव  
करता है :

“ उस हिमीभूत सौन्दर्य-दीप्ति  
में पुष्प कीर्ति  
की वह पायाणी अभिव्यक्ति  
कुछ हिमी । ”<sup>3</sup>

कवि को पायाणी प्रतिभा में भी वैसी ही सौन्दर्य प्रसक्ता है  
जैसा जोधन्त व्यक्ति में देखा जाता है।

छेदार नाथ अग्रवाल ने जी भी सौन्दर्य का वर्णन किया है वह  
अपनी पत्नी के ऊपर ही किया है। उन्हें अपनी पत्नी में संसार का सारा  
सौन्दर्य नजर आता है। कवि अपनी प्रेयसी के नयनों के पारे में उहता है,  
कि उसके जो चंचल किशोर नयन है वह चहोर के समान है वही आज मुझे इतना  
भा गये कि मैं बाधरा बना हुआ हूँ।”<sup>4</sup> कवि उसके व्य-सौन्दर्य में विमग्न  
हो जाता है :

1. नागार्जुन : युगधारा : पृ० 108
2. गबानन माधव मुक्तिबोध : पौँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 33
3. गबानन माधव मुक्तिबोध : पौँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 77
4. छेदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग घोलते हैं : पृ० 40

“तुम भी कुछ हो/ लेकिन जो हो,/ वह कलियों में —/ रूप-गन्ध  
की लगी गाँठ है / जिसे उजाला / धीरे-धीरे खोल रहा है।” 1

कवि को अपनी प्रेयसी का सौन्दर्य नदी से, समुद्र से भी ज्यादा सुन्दर और गहरा दिखलाई पड़ता है। इसीलिए वह कहता है कि असीम सौन्दर्य की एक लहर तुम्हारे शरीर से उमड़ कर मुझ पर फैल गयी।” 2 कवि अपनी प्रेयसी के रूप-सौन्दर्य से इतना मुग्ध है कि उसका सौन्दर्य अपने आप ही अन्तस्स मन को छू लेता है। उसके रूप-सौन्दर्य की रूप गन्ध स्वतः ही फलों की सुगंध के समान फैल रही है।” 3 कवि की पत्नी के मुख पर लम्बे कुंडलित केश, माँग में अमय सिन्दूर, आँखों में काजल, राग-रंजित मंद मुस्काते अधर” 4 में ही मगनमन कवि मोहित रहता है। केदार नाथ अग्रवाल सिर्फ अपनी पत्नी के सौन्दर्य में ही नहीं खोये, वरन् श्रमिकों के सौन्दर्य की ओर भी उनकी दृष्टि गयी है। ‘लोक और आलोक’ में श्रमिक के छोटे-छोटे सुन्दर हाथों का वर्णन किया है। सुन्दर मुख, की उपमा तो कमल से हुई है किन्तु सुन्दर हाथ जो एक श्रमिक के हैं, जो मेहनत करते हैं, उन्न उपजाते हैं, दूसरों को सुखहाली प्रदान करते हैं, वह भी कवि के लिए कमल जैसे लाल-सुन्दर कोमल प्रतीत होते हैं :

“छोटे हाथ / सबेरा होते / लाल कमल से खिल उठते हैं। /  
करनी करने को उत्सुक हो, / धूप हवा में हिल उठते हैं।” 5

‘कनुप्रिया’ की राधा सौन्दर्य शील, आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करती नारी है। जिसके अन्दर परम्परागत लज्जाशीलता है तो आधुनिक युग की चंचलता भी है। उसकी शोख चंचल बिद्युम्बित पलकें हैं, पतले मृणाल-सी गोरी अनावृत बाहें हैं, उलझे रूखे चन्दन-वासित केशों में पतली उजली गुनौती

1. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं : पृ० 49
2. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं : पृ० 125
3. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 175
4. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 63
5. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 133



देती हुई ज्वारी भाँग है। कृष्ण की चंदन से सुवासित घाटों के धिना राधा की देहवता के बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टोसते हैं। राधा-प्रकृति-स्वस्या है, अतः यह निश्चित सुनिश्चित उन्हीं का लीलातन है, कृष्ण के आस्वादन के लिए। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ राधा के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—“ उत्तुंग हिनशिखर राधा के स्पष्टली ज्ञान घन गोरे लीपे हैं जिन पर गगन का घोंडा और सचिनर और तेजस्वी माया टिकता है, चंदनी में छिलोंरे भेता हुआ महासागर राधा के ही निरावृत्त चिह्न का उत्तर-चढ़ाव है, उमड़ती हुई मेघ घटारें कवि राधा की ही झल छाती हुई जलमें हैं, सूर्यास्त-वेला में पश्चिम कवि की ओर झरते हुए अस्त्रप्रवाही करने राधा की ही स्वर्णवर्णों जघारें हैं। दिन उसकी छंसी, फूल उसके स्पर्श तथा हरियाली उसका आलिंगन है।”<sup>1</sup> चन्द्रमा राधा के माथे का तीमाग्य चिह्न है। आकाश गंगा राधा के केश-चिह्न का शोभा है। नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार अपनी ज्ञात्म्य साधना में सापेक्ष सौन्दर्य को चिह्नित करता है साथ ही निरपेक्ष सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में सांसारिक एवं मानवीय धरातल पर उतारकर एक नवीन एवं नये परिच्छेद में रख देता है। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी कवियों की सौन्दर्य चेतना में शारीरिक एवं आबुन प्रणय निवेदन की स्थिति होती है। सौन्दर्य चेतना दैहिक धरातल पर विद्यमान होती है।<sup>2</sup>

जब राधा कदम्ब के नीचे बैठकर पीपु की जंगली सतरों से अपने पेरों को रंगवाती है, उनके सौन्दर्य को स्कान्त में बैठकर निहारती है :

“ निमृत्त स्कान्त में दीपक के मन्द आलोक में / अपने उन्हीं  
चरणों को / अपना निहारती हूँ / बावली-सी उन्हें बार-  
बार प्यार करती हूँ / बल्दी-बल्दी में अध्यनी उन महादर  
की रेखाओं को / चारों ओर देखकर धीमे-से / घूम लेती हूँ।”<sup>3</sup>

1. सं० लक्ष्मणदास गीतमःधर्मवीर भारती [डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का लेख :  
परवाही भूमिका का आगतीकरण] पृ० 199

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 173

3. डॉ० धर्मवीर भारती : अनुप्रिया : पृ० 24

“ अनुप्रिया ” में डॉ० भारती ने सौन्दर्य के नये आयाम दिये हैं। राधा की शोच घंघन विपुल्यत पल्लवें पगदण्डी की तरह दिखनायी पड़ती हैं। उसकी पतली मृणाल सी गौरी बाहें भी पगदण्डी मात्र हैं। जिसे कृष्ण के माधव्य से छवि ने कलकवाया है।<sup>1</sup> डॉ० धर्मवीर भारती ने तिरु राधा के सौन्दर्य का हो धर्मेन नहीं किया धरन् कृष्ण का सौंदर्य-सुनहला रूप का भी धर्मेन किया है। कृष्ण का श्याम रंगी तन नील जलज सा, गहरे नीले समुद्र - सा तरल - होमल है। कृष्ण की चिंयित मुड़ी हुई शंख-ग्रीवा उठी हुई, चंदन बाहें, धीरे-धीरे हिलते हुए बाहु भरे होंठ, प्रगाढ़ अधाह आनिंगन जो राधा के वेतसलता से ऊँपते तन को कसे हुए हैं। पूर्ण पुच्छ रूप को व्याख्यायित करते हैं। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ एते, ‘ नवस्यच्छन्दतावादी सौन्दर्य-बोध की उदात्ता दृष्टि का अनूठा सम्पूरजन ’<sup>2</sup> मानते हैं। ‘ ठंडा लोहा ’ में सौन्दर्य, प्रेम, प्रवृत्ति-प्रेम आदि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का आकलन व्यापक क्षेत्र पर मिलता है। डॉ० इन्द्र नाथ मदान व्यते हैं, “ भारती के प्रगीतों में प्रेम और वासना की उछाम अनुभूति की तरल और सहज अभिव्यक्ति मिली है — इन कीरोजी होठों पर बरपाद मेरी जिन्दगी । ” वह इस अनुभूति पर उपावादी परदा नहीं डालते। वह सौन्दर्य के मसित रूप की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करते हैं।<sup>3</sup> भारती में रूप सौन्दर्य की तीखी आसक्ति है।<sup>4</sup> प्रेमी को प्रेयसी के चरण एतने उज्ज्वल, होमल एवं शरद के चंद्र के समान उल्लेखते हैं जिन्हें वह अपनी गोद में रखकर निहारता रहता है :

1. डॉ० धर्मवीर भारती : अनुप्रिया : पृ० 27
2. सं० लक्ष्मणदत्त गीतम : धर्मवीर भारती : डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का लेख : बरवाही भूमि का आसक्तिपूर्ण : पृ० 199
3. डॉ० रघुवंश : भारती का काव्य : संपादकीय डॉ० इन्द्र नाथ मदान : पृ० 1
4. डॉ० रघुवंश : भारती का काव्य : संपादकीय डॉ० इन्द्र नाथ मदान : पृ० 1

उस नोकीली नजर, मोले जोंठ, गुलाबी छिन्ता सा चेहरा, सैयों मन चीनस ल्पी मूर्ति में अटकता है।<sup>१</sup> कवि को अपनी प्रिया की चुप देह भी मुस्कायी समान प्रतीत होती है। जिसमें से घसंत होती अनगिनत कुसुम उठ रही है। उसकी मुस्कान घोंदनी के समान बिखरी हुई है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नयी कविता के कवियों की स्थान सौन्दर्य को तरफ नाममात्र को ही गयी है। जहाँ उन्होंने प्रेम का छुनकर वर्णन किया है वहाँ सौन्दर्य की तरफ दृष्टि नहीं के बराबर हो गयी है। डॉ० धर्मवीर भारती जो ने सौन्दर्य का छुनकर वर्णन किया है। उन्होंने अपनी प्रिया के सौन्दर्य को विविध रूपों में निहारता है। सौन्दर्य के प्रति तीव्र मानवीय लालसा छायावादी स्वच्छन्दतावादी कवियों में अधिक परिलक्षित होती है। अतः सौन्दर्य में मानवीयता स्वच्छन्दतावादी रूप है।

### संस्कृति एवं लोक संस्कृति :

‘संस्कृति मानवीय आन्तरिकता का विकास है। इस प्रकार संस्कृति का विकास अन्तः एवं बाह्य स्तर पर होता है। अतः संस्कृति किसी जाति, समुदाय, समाज और राष्ट्र की आत्मा होती है। इस प्रकार मनुष्य के क्रिया-कलाप, सांस्कृतिक चेतना के मूल चिह्न हैं। वस्तुतः दृष्टि-बिन्दु में मनुष्य की सांस्कृतिक ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का मूल आधार है।<sup>२</sup>

वस्तुतः ‘संस्कृति’ से मानव को पीढ़ी दर पीढ़ी जो सीखता है, जो व्यवहार करता है, जो परम्परा पाता है, उसकी अनुकृति ही संस्कृति है। अतः संस्कृति मानव को गुण-सम्पन्न बनाती है। मानवीय व्यवहार एवं क्रियाओं के फलस्वरूप यह स्वच्छन्दतावादी चेतना से जुड़ी है। डॉ० छगारी

1. गिरिजा कुमार माथुर : धूम के धाम : पृ० 97

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 155

प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की वास्तविक व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का। सभ्यता की दृष्टि वर्तमान की सुविधा-असुविधाओं पर रहती है। संस्कृति भविष्य या अतीत के आदर्श पर, सभ्यता नजदीक की दृष्टि रखती है, संस्कृति दूर की ओर, सभ्यता के निकट कानून मनुष्य से बनी चीज है, लेकिन संस्कृति की दृष्टि में मनुष्य कानून से परे है। सभ्यता वास्तव होने के कारण चंचल है, संस्कृति आन्तरिक होने के कारण स्थायी।"

साहित्य का विस्तार लोक-साहित्य एवं लोक-चेतना, लोक-संस्कृति की सहायता से ही संभव होता है। अतः लोक-संस्कृति, लोक-साहित्य की अभिव्यंजना है। लोक-साहित्य में मनोवैधानिकता एवं मानवीय अनुभूतियाँ परिलक्षित होती हैं। फलतः में स्वच्छन्दता, सहजता, स्वाभाविकता, अपने मूल रूप में परिलक्षित होती है।

वस्तुतः नयी कविता में लोक-संस्कृति के साथ-साथ संस्कृति का रूप भी मिलता है। संस्कृति-लोक-संस्कृति मानवीय अनुभूतियों से जुड़ी होने के कारण ही स्वच्छन्दतावादी चेतना का विस्तार है।

"हम-जीवन-परिपाटी जो इस स्थिति को पहचानते हुए यह सम्भव बनाये कि मानव अपनी विवेकायुक्त अर्थताओं को निरूपण करता हुआ अपने विवेकातीत कर्म का मार्ग चुन सके, उस कर्म से ऐसा कुछ प्राप्त करता जसे जिसे उसका विवेक भी समझ के रूप में पहचानता रहे।" 2 आद्य के तंद्री में संस्कृति का मूल रूप विकृत हो गया है। इसी की अभिव्यक्ति नदी के माध्यम से देने का प्रयास कवि ने किया है। हमारे देश की नदियाँ भारतीय संस्कृति की सम्पदा हैं। इनसे अलग-अलग प्रकार की अनेकानेक लोकोक्तियाँ मुखरित होती हैं। "उसके बापू ने कहा कि हमारे देश में पहले दूध की नदियाँ बहती थी। किन्तु उस बात पर कवि को अवरज

लेकिन प्रत्यक्ष में कुछ नहीं बोल पाता। इसी तरह की बात कवि ने अपने घेरे से कही कि दूध की तो नहीं पर स्वच्छ जल की अवश्य बहती थी। उसके घेरे ने तुरन्त सामने ही अपने साथी से कहा बापू अब नानी की कहानी सुहराने लायक हो गये हैं।<sup>१</sup> यह पीढ़ी का अन्तर संस्कृति को मान्यता को ठेस पहुँचाता है। किन्तु नदी की संस्कृति ने मानव को जीवन पर्यन्त बहुत कुछ दिया है :

“ नदी, तुम बहती चला। / झूंड से जो दाय हथ को मिला है,  
मिलता रहा है, / माँझी, संस्कार देती चलो :/ यदि ऐसा  
कभी हो / तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों से किंती स्वेराचार  
से- / अतिथार से- / तुम बढ़ो प्लावन तुम्हारा परधराता उठे/  
यह स्त्रोतस्विनी हो कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर / काल  
प्रवाहिनी बन जाय/ तो हमें स्वीकार है वह भी। / उसी में  
रेत होकर फिर छनेगे हम / जमेगे हम, वहीं फिर पेर देंगे /  
वहीं फिर भी छाँटा होगा नये व्यक्तित्व का आकार। /  
मातः उसे फिर संस्कार तुम देना।<sup>२</sup>

वस्तुतः इस संसार में जीवन-मरण का क्रम चलता ही रहता है। कवि इसी देश की मिट्टी के संस्कार में पैदा होकर यहीं की संस्कृति चिलीन रहना चाहता है।

भारतीय संस्कृति की महत्ता है कि यह ईश्वर की उपासक है। मानव अपने सभी कष्टों का निवारण, ईश्वर की आराधना करके करता है। ऐसा ही वर्णन कि नागार्जुन ने एक दुःखी बाला के संदर्भ में किया है :

“ मुक्ति हुई वन्दना / पुक-पुक कर बार-बार उसने की वंदना/  
हुई घट धूलका फूल के आभरण । पुण्यदाय-वलयित हो गये,  
कर धरणा ।<sup>३</sup>

---

|              |   |                  |   |        |
|--------------|---|------------------|---|--------|
| 1. अष्टम     | : | अन्तरा           | : | पृ० 66 |
| 2. अष्टम     | : | सर्वना के दृष्टा | : | पृ० 76 |
| 3. नागार्जुन | : | युगधारा          | : | पृ० 30 |

ईश्वर की आराधना से बेडियाँ भी उसे दुःखित वाला की फूलों के आभूषणों में बदल गयीं ।

“ बाढ़ किया करके अपने पितरों को आत्म-शान्ति पहुँचाना भी भारतीय संस्कृति की परम्परा है । जिसका उल्लेख कवि ने ‘ शमथ ’<sup>1</sup> में किया है । विजया दशमी का त्योहार भारत-वर्ष में धूम-धाम से मनाया जाता है । इसमें लोगों की आस्था है कि सत्य ने असत्य पर विजय प्राप्त की थी । वस्तुतः समाज इसी धारणा को मानकर अपने घर के दधियारों की पूजा-अर्चना करते हैं :

“ आज दार-दार पर धरे हैं मंगलपट / धर-धर हरित गौर मुहु-मसृण  
मवाँकुर आज हैं / आज हैं अस्त्र-शास्त्र / शान घड़ी तलवार । ”<sup>2</sup>

भारतीय प्राचीन संस्कृति स्वर्ण थी, किन्तु आज उसी संस्कृति का गुणगान ढोल पीट-पीट कर बताते हैं हमारे पूर्वज महान थे, दूध की नदियों में नहाते थे, वह युग हमारे इतिहास का स्वर्ण-युग था । ”<sup>3</sup> परन्तु आज हमारे संस्कारों में दरारें आ चुकी हैं । जो संस्कार हमें धरोहर स्वल्प मिले थे, उसे समाज ने बदल दिया हैः

“ सब खेतों में / लीकें पड़ी हुई हैं / ज़ डाल गये हैं लो / जिन्हें  
जोड़ता है समाज / उन लीकों की पूजा होती है । ”<sup>4</sup>

वस्तुतः संस्कृति नदी की धारा के समान प्रवाहित होती रहती है । जिसका जल स्तर उतरता-उढ़ता रहता है । किन्तु खत्म नहीं होता । ऐसी ही धारा संस्कृति में बहती है । किसी-किसी युग में अपनी संपूर्ण चेतना, सम्पूर्ण बहाव के साथ परिवर्धित होती है तो किसी युग में अधली, सूखे बहाव के साथ बहती है । जिसका स्तर सिर्फ नाम पर टिका हुआ है ।

- |              |   |                         |   |        |
|--------------|---|-------------------------|---|--------|
| 1. नागार्जुन | : | युगधारा                 | : | पृ० 30 |
| 2. नागार्जुन | : | युगधारा                 | : | पृ० 49 |
| 3. नागार्जुन | : | खिचड़ी दिप्पल देखा हमने | : | पृ० 70 |
| 4. अश्वेय    | : | नदी की बाँक पर छाया     | : | पृ० 9  |

कवि सर्वेधर दयाल सखेना जी की 'कुआनो नदी' ऐसी की संस्कृति का आभास देती है जो उथली, गन्दी, बहबूदर हो गयी है। स्वच्छ-निर्मल, पवित्र संस्कृति का आज कहीं नाम भी नहीं है। यह अपनी गन्दी संस्कृति बाढ़ की प्रतीक है जब बाढ़ आती है तब वह गाँव के गाँव लाखों आदमियों के घर कर जाती है। इसी प्रकार आज का मानव संस्कृति के संस्कारों को ठुकराकर अकेला पड़ा हुआ संसार में जी रहा है। जहाँ पहले गाँव के गाँव एक घर की तरह रहते थे। आज एक घर के लोग-दूर-दूर अलग-अलग रहते हैं। यह थोथे एवं उथले संस्कारों की देन ही है। संस्कार संस्कृति की ही देन है और संस्कार मानव के व्यवहार से प्रकट होते हैं। अतः जो 'पोड़ा' कुआनो नदी' की पीड़ा है वह आज के संदर्भ में संस्कृति की ही पीड़ा है। गिरिजा कुमार माथुर जी अपनी संस्कृति का गुणमान करते हैं :

“ मेरे अन्तर में मान जाग / अपनी विराट् संस्कृतियों का / जागी  
विभूति सम्राटों की / तप जागा कर्मठ यतियों का । ”

हमारी संस्कृति में सामगान की गूँज है, इसकी आत्मा दर्पण जैसी निर्मल है, इसी संस्कृति ने बुद्ध, ईसा जैसे महान विभूतियों के अपनाया है। मेरी भूमि से ही संस्कृति का सूरज उगता है। जब विश्व का सत्यता नव शिष्ट की भाँति ही थी तब यहाँ का दर्शन चाँद की तरह चमकने लगा था। आदर्श मनुष्यों के समक्ष ब्रह्माण्ड भी सृष्टि के रहस्य खोलने लगा था।

भारत की संस्कृति को यहाँ के त्यौहारों में स्पष्ट परिलक्षित होती है। दिवाली का त्यौहार संस्कृति की महानता का पर्व है। इस दिन 'सत्य' ने 'असत्य' पर विजय प्राप्त की थी। जिसकी खुशियाँ देश के कोने कोने में रोजनी जलाते हैं। और लक्ष्मी की आराधना करते हैं :

“ ले वैभव का धान्य / महालक्ष्मी घर-घर में उतरे / शुद्धि-सिद्धि  
से मेरे ग्राम / नगरों में ली-सुख बिखरे / मेरी बस इस धरती पर /  
तोना चाँदी बरसे/ऐसा दीपक जले कि जितसे / स्वर्ग धरा को तरसे ”<sup>2</sup>

1. गिरिजा कुमार माथुर : धूम के धान : पृ० 10

2. वही,

... : पृ० 39

भारतीय संस्कृति के मूल में रहस्यवादी धेतना प्रमुख है। ईश्वर की आराधना यहाँ हरके के मन में रचा-बसा है। कवि जी केदार नाथ अग्रवाल भी अपनी पत्नी के प्रति यही भाव व्यक्त करते हैं :

“ तुलसी धाले के समीप जा ।” तुलसी जी की पूजा करते /  
भक्ति-भाव से/ धिनय-प्रार्थना में लडा से लुके / दुनिया के  
दुख-द्वान का चिन्म हरते ।” ।

वस्तुतः किसी भी विपत्ति में ईश्वर की आराधना या रोज सुबह उठकर सूर्य एवं तुलसी जी को अर्घ्य प्रदान करना मुनि-मुनियों के काल से चला आ रहा है। यह एक भारतीय संस्कृति की विशेषता है। अतः आधुनिक युग में मनुष्य ध्यास्त रहते हुए भी सुबह-नित्य कर्म अवश्य करता है।

ईश्वर नारायण जी की कृति ‘आत्मजयी’ भारतीय परिचय एवं संस्कृति की कथा है। यहाँ पर इस संसार से विमुख होकर ‘बुद्ध आत्मा’ की खोज में अनेक लोगों ने तन्यास लेकर तपस्या में लीन हुए हैं। किन्तु नचिकेता सात्त्विक मूल्यों की अवहेलना करके स्थायी शान्ति पाने के लिए मृत्यु से साधात्कार करता है। अपने इस उद्देश्य में वह पूर्णतः तत्पन्न हुआ है। कवि ने कहा है, “ यह आत्मवैद्या का चिन्तु जिस तक नचिकेता पहुँचता है, मुझे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समा-प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ही सन्दर्भों में। भारतीय दर्शन की तो शायद ही ऐसी कोई महत्त्वपूर्ण धारा हो जिसका प्रवर्तक इस तरह की धीतराय स्थिति से नहीं गुजरता। मृत्यु की विचारते हुए सत्ता जीवन से उपरान्त हो जाते हुए बुद्ध की निराशा नचिकेता की निराशा से बहुत भिन्न नहीं। इसी प्रकार गीता में ‘बुद्ध नहीं कहेंगे’ कहकर अर्जुन जब हथियार पाल देता है उस समय जीवन की अतारता के प्रति अकस्मात् सचेत हुए अर्जुन की देवता का कोई अन्त नहीं।” 2 वस्तुतः नचिकेता ‘विरथायी सत्य’

1. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मर्ग्य : पृष्ठ 30

2. ईश्वर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ 11



की खोज करता है। आज का मानव भी वेदना, अवसाद, कुंठा से त्रस्त होकर शान्ति की खोज में भटकता है। उसे अत्याधुनिक हथियार जो दूसरों के लिए घातक है, इनको नष्ट कर शान्ति स्थापित करना चाहता है। अब वह इस विलासिता की जिन्दगी से उब गया है। यही मनः स्थिति उस समय नचिकेता की थी, जो 'परम सत्य' खोज में मृत्यु का वरण करता है। अन्ततः वह इस 'सत्य' को पाने में सफल होकर सांसारिकता से ऊपर उठकर जीवन व्यतीत करता है। अतः इसमें जीवन अनुभूति की कथा है जो स्वच्छन्दतावादी है। कवि का कथन है, 'आत्मजयी' के धार्मिक या दार्शनिक पक्ष की विशेष चिन्ता न करके उन मानवीय अनुभवों पर अधिक दबाव डाला है जिनसे आज का मनुष्य भी गुजर रहा है, और जिनका नचिकेता एक मुझे एक महत्वपूर्ण प्रतीक लगा।''

भारतीय संस्कृति में केवल पुरुष ही साधनारत नहीं होते बल्कि स्त्रियाँ भी ईश्वर भक्ति में लीन हुई हैं। 'शबरी' ऐसा ही एक उदाहरण है। वह सामाजिक तिरस्कार पाकर ईश्वर भक्ति में लीन नहीं हुई, बल्कि उसे श्रम और कर्म द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हुई। अतः श्रम और कर्म स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति ही है। इसी वृत्ति के कारण 'शबरी' अपनी जाति के साथ-साथ उच्च जाति में स्थान बना सकी।

कवि श्री नरेश मेहता ने शंका व्यक्त की है हमारी संस्कृति, देश की धरोहर अगर हिमालय न होता, गंगा न होती तो क्या इसकी संस्कृति इतनी महान होती।''<sup>2</sup> अतः हिमालय दृढ़ता और गंगा विनम्रता प्रदान करती है। शबरी ने मतंग मुनि के आश्रम में विनम्रता से दृढ़ता से ईश्वर को प्राप्त किया। उसके इसी सरल-सौम्य प्रेम को देखकर राम ने उसके झूठे बेर खाये। अतः आर्य संस्कृति की शबरी एवं ईश्वर रूप राम यहाँ मानवीय ही हैं। फलतः मानवीय रूप होने के कारण इसमें स्वच्छन्दतावादी भाव बोध है।

1. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ० 11

2. श्री नरेश मेहता : शबरी : पृ० 14

‘ अंधा युग ’ वासुदेव की संस्कृति सामने लाती है । जिसमें धृतराष्ट्र के साथ सभी ‘ अधि ’ होकर सभी युद्ध के लिए तैयार हुए । इन सबकी वासुदेव की सेवा दो प्रहरियों ने । वस्तुतः ‘ अंधा युग ’ की संस्कृति आत्मा-अनात्मा की है । जिसमें आत्मा व्यक्त की थी वह भी क्रूर, निराशा देने वाला निकाला । जिसमें अनात्मा थी वह तो असत्य था ही । अतः आन्तरिक संबंध में दोनों की स्थितियाँ वर्णन करती है । इसी को प्रहरियों ने व्यक्त किया है :

“ संस्कृति थी वह एक छूट और अन्ये की / जिसकी संतनों  
ने/ महायुद्ध जोरित किए / जिसके अन्धे मन में मर्यादा /  
गमित अंग धेया-सी/ प्रजापतियों को भी रोगी बनाती  
फिरी / उस अन्धी संस्कृति/ उस रोगी मर्यादा की/  
रक्षा हम करते रहे / सत्रह दिन । ” ।

जो उनके पास आत्मा थी मेहनत थी, साहस था, प्रेम था, सब का सब छड़ित हो गया । उनके अस्तित्व का कोई महत्त्व नहीं रहा । आत्मा और अनात्मा का स्वर आधुनिकता बोध हो है । जिसमें लोग आज भी जी रहे हैं । वस्तुतः ‘ अंधा युग ’ में प्राचीन संस्कृति की अभिव्यंजना की है । कृष्ण जो कूटनीतिज्ञ है, दोनों ओर मिलकर युद्ध के लिए उकसाते हैं । दोनों पक्ष ही कृष्ण के प्रति आत्मा रखते हैं । अन्त में अर्जुन की तरफ मिलकर कौरव दल को तहत-नहत कर डालते हैं । माता गान्धारी पुत्रों के दियोग से पीड़ित होकर कृष्ण को शाप भी दे डालती है :

1. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 15
2. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 101-102

“ सुनो, / आज तुम भी सुनो / मैं तपस्विनी गान्धारी / अपने  
 सारे जीवन के पुण्यों का / अपने सारे पिछले जन्मों के  
 पुण्यों का / बल लेकर कहती हूँ x x x x / प्रभु हो या  
 परात्पर हो / कुछ भी हो / सारा तुम्हारा धन / इसी तरह  
 पागल कुत्तों की तरह / एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा /  
 तुम खुद उनका धिनाश करके कई वर्षों बाद / किसी घने जंगल  
 में / साधारण व्याघ्र के हाथे मारे जाओगे। ” ।

और कृष्ण आकाशकारी बालक की तरह शाप को खेलने की  
 आज्ञा स्वीकारते हैं। वस्तुतः ये संधी दो पीढ़ियों का संघर्ष है, जिसमें  
 अन्तर्द्वन्द्वों एवं तनाव, पीड़ा, संघात व्याप्त है। आधुनिकता में भी यही  
 वृत्तियाँ हर जगह देखने को मिलती हैं। गिरिजा कुमार माधुर ने भी  
 यही ध्वनि व्यक्त की है। नयी कविता के कवियों ने इन्हीं प्रवृत्तियों  
 को जन्म दिया है। आधुनिकता बोधसे जुड़ने के कारण यही प्रवृत्तियाँ  
 स्वच्छन्दतावादी चेतना में परिवर्तित हो जाती हैं।

कृष्ण का जो रूप 'अंधा युग' में दिखनायी पड़ता है उससे हटकर  
 'कुप्रिया' में उपस्थित हुए हैं। 'कुप्रिया' के कृष्ण राधा के साथ प्रेम-  
 क्रीड़ाओं को भोगकर युद्ध भूमि में जाते हैं। भारत में कृष्ण का जो  
 सांस्कृतिक रूप मिलता है वह इन दोनों ही स्थितियों में परिलक्षित  
 होता है।

पेड़ मानव सभ्यता से पहले के उनके वंशज कहे जा सकते हैं।  
 इस प्रकार से भारतीय संस्कृति की धरोहर स्वल्प है, जिसका वर्णन डॉ०  
 धर्मवीर भारती जी ने अशोक के पावन वृक्ष में की है। अशोक का वृक्ष  
 भारतीय संस्कृति में पूजा जाता है। इसकी बहुत महत्ता है। शुभ अवसरों  
 पर इसकी पूजा होती है। घर सजाया जाता है। इसी वृक्ष को कृष्ण  
 का प्रतीक मानकर राधा अपने प्रमोदगारों को व्यपेत करती है। इस प्रेम

के पर्याप्त परिणय की स्थिति बनती है जिसे कृष्ण मंजरी-परिणय द्वारा करते हैं। भारतीय संस्कृति में परिणय-मणि तौलने से भी किया जाता है। उसके बाद तुहाग से प्रदोप्त राधा कहती है :

“ यह तुमने क्या किया प्रिय।

क्या अपने अनजाने में ही

उस आम के बौर से मेरी क्लारी उजली पदित्र मणि

भर रहे थे तौलने १” ।

यही नहीं माये पर पल्ला डालने की संस्कृति, नवधू की अस्मिता की पहचान है जिसे राधा अभिव्यक्त करती है :

“ और जब तुमने कहा कि “ माये पर पल्ला डालो, ” तो क्या तुम पिता रहे थे / कि अपने इसी निजत्व की, अपने आन्तरिक अर्थ की / मैं सब मर्यादित रखूँ, रसमय और / पवित्र रखूँ / नवधू की भाँति ।” 2

यह परिणय-संस्कार परम्परागत न होकर आधुनिकता बोध को लिए हुए है। क्योंकि भारतीय संस्कृति के अनुसार परिणय मंजरी से नहीं होता, किन्तु राधा-कृष्ण का परिणय डॉ० भारती ने मंजरी के द्वारा ही दिखाया है। अतः यह सर्वथा नवीन अभिव्यक्ति देता है। नवीनता के कारण ही परिणय स्वच्छन्दतावादी चेतना का मूल चिह्न है। वस्तुतः संस्कृति-लोक संस्कृति की बात नहीं कथिता में है तो सही, किन्तु ज्यादा नहीं। क्यों अधिकांश कवियों का आदर्श आज की व्यवस्था अस्तित्व के प्रति ही ज्यादा रहा है। इन्होंने छायावादियों की तरह विगत में जाकर संस्कृति के माध्यम से समाधान नहीं खोजा है। वल्कि अपने मजबूत विचारों द्वारा एकदुट होकर क्रांतिकारी चेतना की आवाज बुलंद करते हैं।

1. डॉ० धर्मवीर भारती : अनुप्रिया : पृ० 23

2. डॉ० धर्मवीर भारती : अनुप्रिया : पृ० 31

### चिन्मय एवं रहस्यानुभूति :

हृदय के प्रति ब्रह्माभाव भारतीय मानव की संस्कार स्व में जन्म से ही मिलता है। अतः अतीत या भविष्य के आदर्शों को स्वच्छन्दतादी कवि ने अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। सांसारिक मोह से दूर जब किसी अज्ञात, रहस्यमय शक्ति के प्रति चिन्मय, जिज्ञासा का भाव व्यक्त किया जाता है उसी अनुभव की आस्था को रहस्यानुभूति कहते हैं। कभी-कभी भादुक कवि संसार के तनाव, पीड़ा, सौन्दर्य से दूर शान्ति की खोज में उस अनीति सत्ता के दर्शन करना चाहता है। उस अज्ञेय, अव्यक्त सत्ता के प्रति विश्वास परके पूर्ण समर्पित होकर उसके सान्निध्य की कामना में विरहानुभूति व्यक्त करता है। यह रहस्यानुभूति की क्रिया पूर्णतः आन्तरिकता की उपलब्धि है। फलतः वैयक्तिक अनुभूति देना और बाल से परे, अनन्त और नित्य सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करती है।

नयी कविता के प्रमुख कवि 'अज्ञेय', जगत् की सभी उपलब्धियों को आशाओं, आकांक्षाओं को सुभाषनी झ्रान्ति मानते हैं। इन सबके प्रति वह उदासीन है। अतः इसीलिए वह रहस्यमयी शक्ति के प्रति आस्था व्यक्त कर स्मरणा करते हैं कि मैंने तुम्हें संख्याहीन स्वरों में याद किया है, सदैव प्राणों के अन्दर भी तुम्हारा संवाद सुनता हूँ। मगर वह कान तो ऐसी प्रातः होगी जब तुमसे साक्षात्कार होगा।" वस्तुतः कवि संसार की पीड़ाओं से संवस्त होकर उस रहस्यानुभूति का स्मरणा कर मुक्ति की कामना करता है। कवि के अन्दर हृदय के प्रति चिन्मय का भाव भी है :

" मेरे और हृदय के बीच में क्या है १/ प्रकाश/किन्तु प्रकाश १/  
मेरे ही चित्त की शुद्धि का, वह अगर है तो प्रकाश है, बीच  
का यह व्यवधान ही / हमें निरन्तर जोड़े रहता है।"

1. 'अज्ञेय' : दूरी प्राप्त पर छा भर : पृ० 13

2. 'अज्ञेय' : अन्तरा : पृ० 51

यह विस्मय बोध आस्था और अनास्था का है जो कभी इस रहस्यमयी शक्ति के ऊपर रहता है कभी नहीं होता। इस प्रकार नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति रहस्यानुभूति स्पष्ट परिलक्षित होती है। इस रहस्यानुभूति को कवि ने 'गूँगे का गुड़' <sup>1</sup> माना है।

कवि रहस्यानुभूति को इंगित करता है :

“ जो है, वह है / रहस्य अक्षेय यही / 'है' ही है अपने-आप / जो 'होता' है, उस का होना ही / जिसे जानना हम कहते / उस की मर्यादा, माप।” <sup>2</sup>

कवि उसे रहस्यानुभूति के प्रति आनन्दित होता हुआ कहता है तू हर राह पर नन्दन बन के फूल महकाता जा। और मैं हर बार हठ करके अनन्य भाव से तेरा वरणा छेँ।” <sup>3</sup> अक्षेय इस रहस्यमयी सत्ता के विस्मय विस्मय व्यक्त करते हैं कि जिसे मैंने स्मरणा किया है, जहाँ मैं अनुराग रखता हूँ वह अच्युत, अज्ञात स्व तुम कौन हो ? तुम्हें मैं हृदय में धारणा कर वह दूँगा जो मैंने इस संसार से पाया है। तुम तो मेरे हृदय के गूढ़ रहस्य हो, जिससे तुम मेरे मित्र बन गये हो। जिससे तुम एक पहिली भी बन गये हो। तुम्हीं को अपने प्रेम में बाँधकर मैंने तुम्हें वाद किया है।” <sup>4</sup>

‘अक्षेय’ इस रहस्यानुभूति को स्वीकार तो करते हैं परन्तु उसे ईश्वर का नाम नहीं देना चाहते। वह इस रहस्यानुभूति को असीम सत्ता कहते हैं :

- |           |   |                       |   |           |
|-----------|---|-----------------------|---|-----------|
| 1. अक्षेय | : | अन्तरा                | : | पृ० 74    |
| 2. अक्षेय | : | अरी ओ कल्या प्रभामयः  | : | पृ० 167   |
| 3. अक्षेय | : | अरी ओ कल्या प्रभामय : | : | पृ० 159   |
| 4. अक्षेय | : | सर्जना के क्षण        | : | पृ० 71-72 |

“ शक्ति अतीम है / मैं शक्ति का एक अणु हूँ / मैं भी अतीम हूँ /  
 एक अतीम बूंद—/ अतीम समुद्र को अपने भीतर प्रतिबिम्बित  
 करती है / एक अती अणु—/ उस अतीम शक्ति को जो उसे प्रेरित  
 करती है / अपने भीतर समा लेना चाहता है।”<sup>1</sup>

धस्तुतः ‘अधेय जी का यह रहस्यवाद अरविन्द दर्शन से प्रभावित है। डॉ० रामदिलास शर्मा ने कहा भी है, “छायावादियों के खिलाफ यह प्रचार किया जाता था कि वे रहस्यवादी कवितारें तो लिखते हैं, पर उनमें अनुभूति की सघर्ष नहीं होती। कुछ विद्वान आलोचकों की राय यह मालूम होती है कि अनुभूति की सघर्ष अधेय में तो है, प्रसाद में नहीं है। विजय देव नारायण साहो कहते हैं, “प्रसाद जी का सत्य एक दार्शनिक सत्य है, जो ‘मान्य’ अर्थात् आस्था-सम्मत’ मूल्यों की तरह हमारे मानस में सुदृढ रूप से वर्तमान रहता है। xxx इसके विपरीत ‘अधेय’ का सत्य सा-आत्कार का एक ध्वनि है, एक दीप है, जिसे हम अपने भीतर जड़ और चेतन के संकल्पित संयोग से अनुभूत करते हैं। x x x रहस्यवादी अधेय हैं, जड़ और चेतन-ब्रह्म और माया, पुरुष और प्रकृति-के संकल्पित ॥ अध्या कल्पित ॥ संयोग से साधु-सन्त जिस सत्य को अनुभूत करते आये हैं, वह अधेय के पास है, प्रसाद के पास नहीं। प्रसाद की मान्यता वैसे भी यह थी कि ‘एक सत्य ही ही प्रधानता, कहाँ उसे जड़ या चेतन।’ जब जड़ और चेतन का भेद ही मिट गया, तब दोनों का संयोग कहाँ संकल्पित होगा।”<sup>2</sup> अतः नयी कविता में रहस्यवाद और भी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति बन जाता है। जिसे डॉ० विजय देव नारायण साहो स्पष्ट करते हैं, “कामायनी में जो अनुभूति दर्शन में परिवर्तित हो जाती है, उसे अधेय फिर दर्शन से अनुभूति में परिवर्तित करते हैं।”<sup>3</sup>

छायावादी कविता की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि उसके रचयिताओं को बहुत आसानी से और सर्वत्र प्रकाश की धवा होती दिखायी देती थी। जग के उर्वर आंगन में खरतो ज्योतिर्मय जीवन- उनकी प्रार्थना का मूल स्वर यही था। अश्वेय के नव रहस्यवाद में इस प्राचीन छायावादी आलोक की अजस्र धाँसी हुई है। उनकी अखिं उसकी रही हैं उस तेजोमय प्रभापुंज से जिससे सरता कण-कण उस मिट्टी को कर देता था कभी स्वर्ण तो कभी शस्त्र।<sup>1</sup> डॉ० रामविलास शर्मा अश्वेय को के रहस्यवाद के संदर्भ में कहते हैं, "अश्वेय का रहस्यवाद बहुत की सुरक्षित किम्बदंती का रहस्यवाद है। वह विन्दगी के धूल-धकड़ से दूर रहता है, वह पंख-सा पंख में दायन पाक रखता है।"<sup>2</sup>

नयी कविता में कवियों ने नवहस्यवाद को स्वीकार किया है। इसी प्रकार 'अश्वेय' भी जीवन के अन्तिम क्षण के क्षण में सोचते हैं :

"कौन है, क्या है यह, कहाँ से आया है / जो ऐसे में मुझे रखता है / परिचित के घेरे में आलोक से धिमोर ? / जिसके ही साथ मैं चलता हूँ / जिस को ओर ? / जिस का ही आश्रित मानो जिस की सन्तान ?"<sup>3</sup>

कवि इस रहस्यमयी सत्ता को खोज करना चाहता है कि वह कौन है, कहाँ व्याप्त है ? मुझे परिचितों जैसे आलोक में घेरे रहता है। मैं किसकी ओर आकर्षित रहता हूँ। जो मुझे अपनी सन्तान की तरह पाले हुए हैं। यह अश्वेय सत्ता कहाँ और कैसी है। यह विचार मंथन उसके हृदय को मथते रहते हैं।

1. डॉ० रामविलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृ० 74

2. डॉ० रामविलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृ० 77

3. अश्वेय : क्योंकि मैं उसे जानता हूँ : पृ० 6



श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में रहस्यानुभूति दर्शन कम ही उपलब्ध है फिर भी 'एक सुनो नाथ' तथा 'बाँस का पुल' में कहीं उस रहस्यानुभूति की चर्चा की है। जिसके स्पर्श में नयी चेतना विकसित होती है, जहाँ अनुभूति ही ईश्वर का साक्षात् होने का सहसास दिनाती है :

“तुम एक यात्री हो—/ जहाँ कुछ घुटने का अर्थ/ कुछ मिलना है, / जहाँ हर महान/ एक नयी स्फूर्ति है, / जहाँ परिवर्तन का अर्थ / मेरा खुद का बदलना है, / जहाँ हर अनुभूति/ईश्वर की मूर्ति है।” 1

किन्तु इतना होने पर भी वह उसके सत्य को पा नहीं पाता। बार-बार लौट कर आकर पराजित होता है, किन्तु उसमें आस्था व्यक्त कर फिर जयी बनता है :

“तुम वह सत्य हो/ जहाँ मैं बार-बार लौटकर आता हूँ / वह शक्ति, जिसके धन पर / अपने को ललकारता हूँ, जूझता हूँ / पराजित होता हूँ, फिर जयी बन जाता हूँ।” 2

श्री केशर नाथ अग्रवाल जो इस रहस्यानुभूति को अनास्था पर आस्था का आवरण ढालकर प्रकट करते हैं। जो नितान्त मौन होकर भी सार्थक और सजोद है। वह कर्म की प्रधान मानकर जीने की अभिव्यक्ति देता है।” 3 यह रहस्यानुभूति आवरण की परतों के अन्दर परत के समान रुका हुआ है जिसमें सभी बारी-बारी से समाते चले जाते हैं :

“आवरण के भीतर है एक आवरण और/ भीतर के भीतर है एक आवरण और/ भीतर के भीतर के भीतर है / एक आवरण और / निर्विकार निरावरण दर्पण का/ जिसमें सब कूदते मनाये चले जाते हैं।” 4

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें दो : पृ० 41

2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें : पृ० 235

3. केशर नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग खोलते हैं : पृ० 148

4. केशर नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग खोलते हैं : पृ० 149

कवि इस रहस्यमयी अभिव्यक्ति को प्रकट करते हैं कि तुम मेरे अस्तित्व में समाहित हो गयी हो, दृश्य और अदृश्य में, अच्य और अअच्य में ज्ञात और अज्ञात रहकर सर्वत्र विद्यमान रहने के लिए।''<sup>1</sup> कवि इस रहस्यानुभूति को चिन्मय से देखता है। वह आदमी और इस संसार का अर्थ ढीलना चाहता है। इन दोनों के दुन्दों के कारणों को ढीलना चाहता है। वह चिन्मय बोध से भीतर एवं बाहर की मूर्धियाँ का अर्थ ढीलना चाहता है। वह आशावान होकर इस औलोचिक सूर्य के उदय होने का वाट जोड़ता है।''<sup>2</sup> कवि इस रहस्यानुभूति को 'होने' और 'न होने' में मानता है :

''होने' के साथ 'न होने' का नियम मात्र है तू / इसलिए  
अटल और अनुसंधनीय है तू/ सृष्टि के विकास-क्रम के लिए  
अत्यावश्यक है तू/ चालू रहेगा 'होने' का नियम हमेशा-हमेशा/  
चालू रहेगा 'न होने' का नियम भी हमेशा-हमेशा/ एक ओर  
चलता रहेगा। पुरातन का प्रमाण--/ जोर्ण-शीर्ण का विनाश।''<sup>3</sup>

जितने भी इस रहस्यानुभूति के अनुभव को जाना है, स्वयं मौन बनकर नेत्रों की भाषा में गूढ़ अर्थ व्यक्त करता है। वह मुँह ही उठी आँखों पर मुग्ध हो उठता है।''<sup>4</sup>

कवि गिरिजा कुमार माथुर इस रहस्यानुभूति को अधिनीन सुनसान की संज्ञा देते हैं। जहाँ चारों तरफ के शोर से परे एक रहस्यमय खामोशी है। यह अव्यक्त खामोशी आशरों से मुँह खुलाती है। यह एकटक घुपचा। छे पेड़, पानस्पतियाँ, पर्वत, फील, जगमगाती, वस्तियाँ सभी कुछ निर्वाध रूप से उसमें समाहित होकर बह रहा है। छोटे-छोटे सभी इस

1. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं : पृ० 192
2. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 98
3. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 109
4. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 184

इस विराट् तत्त्व की माना में विरोध हुए हैं :

“ छोटे बड़े इन सबको / एक विराट् मान में विराट् / वह अनुभव  
 पार आभास / मुझमें विराजे हैं / जिनकी अनुपमता के लिए  
 किसी भी भाषा में / शब्द नहीं होते । ” 1

कवि इस रहस्यमयी, अव्यक्त तत्त्वा की चिन्तनानुसूति में प्रकट करता है कि यह नीला आसमान, जहाँ से हवाएँ बेफ़िक्र चलती हैं, यह चन्द्रमा जहाँ से उगता है। यह सुनसान जंगलों का स्याह अधिरा, वह लुभावने फूलों के समान सितारे, जहाँ से अपना अस्तित्व पाते हैं। जिन्हें देखकर बच्चे अधिष्मत्त होकर निहारते रहते हैं। यह बादल जहाँ से पानी का घड़ा भरकर पृथ्वी पर उमट जाते हैं। जहाँ अपना हिस्सा भोगकर पत्ते घर जाते हैं। जहाँ की हर चीज अपनी ओर आकर्षित करती है। वह कौन अव्यक्त रहस्यमयी, चिन्तनयुक्तीतुल्य है भी शक्ति है । ” 2

“ आत्मजयी ’ की अभिव्यक्ति ’ जीवन-मरण ’ के संघर्ष की अभिव्यक्ति है। जिसे काव्य नायक ’ मृत्यु ’ के अघोर अपना स्वाधिकार बनाये रहना चाहता है। वह बार-बार के जीवन-मरण से मुक्त होकर स्वाग्र होना चाहता है। ” वह फिर से जीवन को जीता है किसी ऐसे सत्य के लिए जिसे वह समझता है । अमर है। यही उसका शाश्वत जीवन है, अमर जीवन है। वह सत्य ’ निर्वाण ’ हो सकता है, वह सत्य, ’ ईश्वर ’ हो सकता है, वह सत्य ’ ब्रह्म ’ हो सकता है— वह सत्य कोई ऐसा जीवन-सत्य हो सकता है जो मरणार्थी व्यक्तित्वगत जीवन से बड़ा हो, अधिक स्थायी हो, वा चिरस्थायी हो । ” 3 कवि उस रहस्यमयी तत्त्वा का नाम आत्मोप संवोधन है। जहाँ स्मृति कण्ठों में प्रकाश आता है। जहाँ संतान्, दण्ड, प्रतिदण्ड, पात-प्रतिपात कहीं अन्दर तक व्याप्त है।

1. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृ० 98

2. गिरिजा कुमार माथुर : साक्षी रहे वर्तमान : पृ० 100

3. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ० 8

यह समस्त विश्व जो सभी सुन्दर और असुन्दर दिखायी पड़ता है वह वास्तविक नहीं बल्कि मानव का आन्तरिक उधम-पुधम है। यह सब कुछ देखने में असंभव है। सत्य कहाँ है कहाँ :

“ उन उपत्यकाओं में/ जहाँ, जहाँ लहरें हैं/ और टूटने से पूर्व /  
हवा में उत्पटाते पत्तों की / छिन्न-भिन्न छाया/छोड़ था /  
जिसके पास कोई नहीं आया ।” १

कवि उस रहस्यवादी सत्ता से सम्बोधित करता है, तुम कौन हो ? तुम्हारी अकुलाहट मुझे बेचन क्यों करती है। तुम एक प्रकार की भूख हो, जिससे हृदय में एक चेहरा बनता है। उस चेहरे से मुझे शक्ति मिलती है।” २  
विक्रमता में अपमानित में, पराजित होने में दुःख में, विमृष्ट में, सजग में, कभी सबमें, कभी सबसे अलग इन सबके पीछे एक अछात छिपी रहस्यमयी शक्ति ही कार्यरत रहती है। ऐसा लगता है जैसे वह निर्लिप्त होते हुए भी निरपेक्ष नहीं, उसकी कृपा साँस रहती है।” ३ नयिकेता का सत्य से सामना होकर वह उसके अर्थ को पा लेता है। उसकी अनुभूति को व्यक्त करता है :

“ वह अगाध ममता जो/ जीवन को लाठी है ।—/ महाशक्ति /  
सुहिर्द-धीज जो धसीट ला सकती चाहे तो / मृत को भी मृतकों  
की पाटी से, जड़ को भी / धरती की अन्तरतम छाती से ।” ४

श्री नरेश मेहता ने 'शबरी' में राम के रहस्यमयी रूप की ही चर्चा की है। जिससे अमृत कन्या शबरी जितनी प्रभावित है कि वह अपना पार छोड़ कर उस रामत्व को प्राप्त करने के लिए जंगल में तपस्या करने चली जाती है। शबरी का रूप अमृत का है जो राम की अनन्य भक्त है। इसी भावित के कारण

1. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ० 19
2. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ० 29
3. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ० 35
4. कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ० 84

वह सम्पूर्ण रानायणा के प्रमुख पात्रों में वह अपना स्थान अलग से बना लेती है जिसे कवि ने स्वयं स्वीकारा है, " कवि की मानवीय दृष्टि ने ही शबरी के साधारणत्व को असाधारणत्व प्रदान किया। चरित्र की दृष्टि से ही शबरी, मंत्र चरित्र लगती है।" 1

शबरी सोचती है उन फूलों का परिमल कोई तो अर्प होगा। ये मंत्रों के पावन स्वर किसको सम्बोधित करके घोले जाते हैं ? यह बात बनकर कौन विचरणा कर पशुओं को घराता है :

" कोई तो होगा नभ में / जल में, धूल में या हममें / जो  
गन्ध समोरण बनकर/ है घूम रहा कण-कण में।" 2

यह धीरे-धीरे जो हवा चल रही है उसमें जो चन्दन की सुगन्ध है वह क्या प्रभु को छू कर ही बह रही है ? यह जो आकाश है वह शृषि की भाँति दिक्तापो देता है। क्या यही प्रभु का रहस्य है ? इस शक्ति के पास चाहे जिस माध्यम से पहुँचें। अतीत भी प्रभु था और भविष्य भी प्रभु है। नदियों, के समान प्रतिष्ठा बहता वर्तमान भी प्रभु ही है। अर्थात् वह सत्ता है नाम रूप धर कर आती इस जग में।" 3

' प्रसाद पर्व ' में कवि विस्मय से इस रहस्यमयी सत्ता के प्रति कौतूहल व्यक्त करते हैं :

" कौन है वह / अपोख्येय/ जो समस्त पुरुषार्थता के अवघों को /  
अपने रथ में सन्नद्ध धिये हैं ?/ कौन है ?/ वह कौन है ? ?।" 4

यह दृष्टि का रहस्य कैसा है ? यह मनुष्य की अग्नि परीक्षा जैसी नियति क्या है।

डॉ० धर्मवीर भारती ने भी इस रहस्यानुभूति को स्वीकार किया है। जिसे राधा अपने शब्दों में दुहराती है, कौन है वह जिसकी अनन्तकाल की

- |                    |   |             |   |        |
|--------------------|---|-------------|---|--------|
| 1. श्री नरेश मेहता | : | शबरी        | : | पृ० 7  |
| 2. श्री नरेश मेहता | : | शबरी        | : | पृ० 41 |
| 3. श्री नरेश मेहता | : | शबरी        | : | पृ० 62 |
| 4. श्री नरेश मेहता | : | प्रसाद पर्व | : | पृ० 20 |

पगडण्डी पर तुमने चाँद और सूरज को मेला है ? कौन है जिसे तुमने घंटा के उछाम स्वरों में पुकारा है ? यह महासागर की उताल झुगारें किसके निष्ठ ऐसी है ? यह कौन सी रहस्यमयी शक्ति है जिसने नदियों के घुमावों को मोड़ दिया है ।'' 1

डॉ० धर्मवीर भारती ने 'अंधा युग' में आस्था एवं अनास्था के बीच रहस्यानुभूति को प्रकट किया है, जो नवरहस्यवाद की परिणति है। इसी रहस्यानुभूति की गति में तारे इतिहास एवं तारे नव्य समाहित हैं ।'' 2  
 आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन है, '' भारती नारी की समर्पण भावना को बड़े विशद रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह विशद भावना यत्र-तत्र रहस्योन्मुख हो गई है। परन्तु भारती का रहस्योन्मुख काव्य भी ऐकांतिक है और कहीं-कहीं शरीरी हो गया है, अज्ञेय और भारती दोनों में यह डी०एच० नारेंस जैसे आधुनिकों का प्रभाव कहा जा सकता है ।'' 3

कवि की मुक्तिबोध उस रहस्यानुभूति से अपने जीवन-की पीड़ा अभिव्यक्त करते हैं। वह कहते हैं कि हे रहस्यमयी शक्ति तेरे अन्दर जितने ध्वंस तेज की शक्ति है वही इस जीवन में मुझे तीक्ष्ण घाणा मिले हैं ।'' 4 वस्तुतः मुक्तिबोध ने अपने अन्तर्मन की पीड़ा को रहस्यानुभूति के माध्यम से भी व्यक्त किया है। इस संसार में जितनी, उषा मुक्तिबोध जी को मिली, वह उन्हें मानसिक पीड़ा से संश्रुत कर गई। उनकी प्रतिमा को लोगों ने पहचानने में देरी की। अतः इस रहस्यानुभूति के साथ मन की पीड़ा की अभिव्यक्ति भी परिलक्षित होती है। यह रहस्यमयी शक्ति जो अपने हाथों में आसमान को धामे हुए है, वह तुम्हें कभी भी कन्ये पर बेटाकर न जाने कितनी दूर किस ओल से जायेगी । 'ब्रह्म x x पता नहीं, कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले ।'' 5

1. डॉ० धर्मवीर भारती : कमुप्रिया : पृ० 42
2. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : नई कविता : पृ० 50-51
3. धर्मवीर भारती : अंधायुग : पृ० 26
4. सं० अज्ञेय : तार सप्तक : पृ० 62
5. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 34

जब इस रहस्यानुभूति का रहसाज होता है तब हृदय में प्रकाश फूट पड़ता है। चारों दिशाओं में प्रभात सा जगमगाता है। रात में भी प्रातः सा ही मासूम होता है। मन किसी नव्य-स्फूर्ति से नहा उठता है, अहं बोध में विश्र-चेतना शक्ति सा नवशक्ति पूर्ण महसूस होता है।<sup>1</sup>

इस रहस्यवादी शून्य का आस्य कवि ने उड़ा किया है कि रात और दिन तुम्हारे दो जान हैं। धरती के चीखों के स्वर तुम्हारे जानों में भिन्नभिन्न होते हैं, किन्तु सोये ही रहते हैं। कोटि-कोटि कनिकाओं के बावजूद तुम्हें कुछ दिखनायी नहीं पड़ता :

“ कोटि-कोटि कनीनिकाओं के बावजूद/ कुछ नहीं दीखता/ एक-  
एक पुतली में लाख-लाख दृष्टियाँ/ असंख्य दृष्टिकोण/ घनते  
विगड़ते।। / इसी लिए, तुम सर्वज्ञ हो नींद में। / ”<sup>2</sup>

मुक्तिबोध ने इस रहस्यानुभूति के ऊपर ध्यान भी किया है। आत्मा ली कुतिया हर पल तुम्हारा नाम जपती है। स्वार्थ और सफलताओं पर चढ़ती और उतरती है। लेकिन तुम भी खूब हो तुनेपन में अधियारे के समान हो। जब तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नहीं तो उसका इतना दिखावा। ऐसे घुप्प अधिरे का इतना तेज उजाला।<sup>3</sup> लोग-धाम इस अन अस्तित्व ली अंधकार में जाने क्या खोजते हैं। तुम तो विश्व की शक्तिशाली फैटेली बन चुके हो :

“ जो रे निराकार शून्य, / महान विशेषताएँ मेरे सब जनों की/  
तुने उधार लीं / निज को तैयार लिया / निज को अवशोष  
किया / यशस्काय बन गया सर्वत्र अविभूत। ”<sup>4</sup>

कभी-कभी इस रहस्यमयी शून्य के प्रति आक्रोश भी प्रकट होता है। यह रहस्यानुभूति, अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है। मेरे हृदय में रिस रहे जखमों एवं ज्ञान का तनाव है वह, जिसे आत्मा की

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह टेढ़ा है : पृ० ११
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह टेढ़ा है : पृ० 136
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह टेढ़ा है : पृ० 137
4. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह टेढ़ा है : पृ० 138

प्रतिभा कहते हैं।

वस्तुतः मुक्तिबोध जी की रहस्यानुभूति में व्यंग्य, आक्रोश कभी धिस्मय का मिला-तुला रूप मिलता है। मनुष्य के अन्दर जब निराशा मरी रहती है तथा प्रतिभावान होते हुए भी असफलताओं से सामना होता रहता है तब यह स्वाभाविक है, मनोवैज्ञानिक हैं कि उसके अन्दर हर वस्तु के प्रति आक्रोश एवं व्यंग्य का स्वर निकलता है। यही स्थिति मुक्तिबोध जी की रही है। अतः उनकी रहस्यानुभूति में ये लक्षणा मिलते हैं।

कुल मिलाकर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति धिस्मय एवं रहस्यानुभूति के दर्शन नयी कविता में भी होते हैं। जिसकी चर्चा डॉ० रामबिलास शर्मा ने 'अज्ञेय और नवरहस्यवाद' लिखकर की है। वस्तुतः नयी कविता के कवि इसे रहस्यानुभूति न कह कर अज्ञात सत्ता की ओर झुंगित करते हैं जिसे विद्वान आलोचकों ने नवरहस्यवाद के नाम से प्रेषित किया है। यह रहस्यानुभूति स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति इस प्रकार खनती है कि उसमें मनोवैज्ञानिकता अपना गहरा असर दिखाती है। अर्थात् रहस्यवादी अनुभूति मन की अनुभूति ही है। अतः मनोवैज्ञानिकता के कारण यह स्वच्छन्दतावादी चेतना के निकट पहुँचती है।

अतः नयी कविता के कवि पीड़ा, संवत्स, वेदना की चर्चा से दूर शान्ति की लोभ में उस अज्ञात सत्ता के प्रति, नवरहस्यवाद के प्रति अपनी आन्तरिक अनुभूति प्रकट करता है। वस्तुतः नयी कविता के कवियों ने इसकी चर्चा कम ही की है। क्योंकि पहले तो उन्होंने ईश्वर की सत्ता की नकार दिया, किन्तु 'अज्ञेय' जी की रचनाओं में उसका वर्णन देख-भिन्न-रूप में इस प्रयोग में लाया जाने लगा। अतः छायावादी कवियों की तरह पुनः इसका प्रयोग नयी कविता नहीं परिलक्षित होता।



### अवसाद-विषाद-वेदना भाव :

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति अवसाद-विषाद-वेदना नयी कविता में सर्वत्र फैली हुई है। क्योंकि नयी कविता है कवि ने दूसरों की एवं स्वयं की पीड़ाओं-संघात का जंजन किया है। उन कवियों के अन्दर संसार से विद्रोह के साथ-साथ अवसाद-विषाद की स्थिति में भी जीते हैं। क्योंकि ठोढ़ गरीबी से तंग है। ठोढ़ प्रतिभा को न पढ़ाने वाले से संघर्ष है तो ठोढ़ निम्न वर्ग के तबके में छवि कर उनकी वेदना को देखा है। वहीं-वहीं अवसाद-विषाद-वेदना भाव को आपरनी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अतः नयी कविता में वेदना भाव कई स्थानों में अभिव्यक्त हुआ है।

नयी कविता है कवियों ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की पीड़ा, वेदना को भी व्यक्त किया है। 'अरेय' की व्याकुल होकर निरुद्देश्य सड़क पर भ्रम रहे हैं किन्तु फिर जानते मन नहीं हो पाते हैं। उन्हें कोई निश्चित हल नहीं मिल पाता। यह सोचते हैं कि शान्ति की खोज में व्याकुल होकर निकले थे, परन्तु अब दुपारा सौट कर फिर वहीं जाना है।''<sup>1</sup> यही नहीं इस अवसाद मारी जिन्दगी से कुछ कर, कवि मन वेदना से पीड़ित होता है :

'' रोज सवेरे मैं थोड़ा सा अतीत में जो जाता हूँ —/ क्योंकि  
रोज शाम को मैं थोड़ा सा भविष्य में भर जाता हूँ।''<sup>2</sup>

वेदने की उदात्ती में कवि की मनःस्थिति का आकलन मिलता है। जिसे कवि स्वयं 'यार्प' आत्मस्थीकृतियाँ कहता है। यह पादरी दुनियाँ के बूढ़े ठोंग से संघर्ष, पीड़ित है। यही वेदना उनकी कविता बनकर बही है। जब यह वेदना जो उठेगी, तब विरह की, उमड़-उमड़ कर हृदय में लू की तरह घटा करेगी।''<sup>3</sup> कवि के हृदय में अंतर के प्रतिभा अवसाद-विषाद

1. 'अरेय' : क्योंकि मैं उसे जानता हूँ : पृष्ठ 30

2. 'अरेय' : क्योंकि मैं उसे जानता हूँ : पृष्ठ 64

3. 'अरेय' : पूरी बात पर आधा भर : पृष्ठ 23

की स्थिति है। वह ऊपर की आग की तरह मानते हैं जो ऊपि के  
भीतर में है, बाहर में है। तदुपरान्त वह सर्वों में आग लगाता है।''<sup>1</sup>  
उनकी स्मृति में छीते हुए छा जाते हैं :

'' यों न जाने कब कहां / वह साँप / जोड़ल हो गयी / और  
मेरे लिए यह / सुने न रहने की / रीते न होने की / बाँह  
अनुकम्पा समाय की / कितनी घोरल हो गयी।''<sup>2</sup>

कवि वियोग की वेदना से पीड़ित है। वह उसे देखने की चाह में  
ही जीवित है। सुबह से दूँठ कर साँप हो गयी पर उसकी छाँही भी न  
मिल सकी। इस विरह-वेदना की प्यास में कोई मर जाता है, कोई प्यासा  
ही जी जाता है। किसी-किसी को जीवन-मरण से परे होकर जीना पड़ता  
है।''<sup>3</sup> कवि ने सागर के माध्यम से वेदना प्रकट की है :

'' घुप रहो / मैं अपनी अवाधता जैसे / सहता हूँ अपनी मर्यादा /  
तुम सहो / जिसे बाँधें तुम नहीं सकते : उस में अखिन्न मन  
पहो / मौन भी अभिव्यंजना है : / कितना तुम्हारा सब है /  
उतना ही रहो।''<sup>4</sup>

वस्तुतः यह अवसाद-विवाद की स्थिति असफलता मिलने पर बनती  
है तो कभी वेदना मिलने पर बनती है। अतः नयी कविता का कवि दोनों  
छोर के बिन्दु को लेकर आगे बढ़ता है। इससे कभी उसके मन में आशा की  
बहर भी उठती है। वह चिन्कार से एक ऐसा चित्र बनाने की कल्पना  
करता है जो मिट्टी का घना, पानी से सिंचा हो, जो अन्तहीन काल  
तक शून्य से लौा रहे। कवि की सर्वोपर दयाल सत्तेना की के अनुमध्यम  
जीवन में इतना अवसाद-विवाद है कि वह 'काठ की पंढियों से भी बजने  
के लिए उठ उठता है। और स्वयं मंदिर मानने लगता है तथा आस्था-

1. '' अक्षेय'' : अन्तरा : पृ० 70
2. '' अक्षेय'' : अग्नि के पार-द्वार : पृ० 28
3. '' अक्षेय'' : सर्जना के क्षण : पृ० 21-22
4. '' अक्षेय'' : सर्जना के क्षण : पृ०: 59

अनास्था के मध्य घूमता है। वह काठ को घंटियों और कुछ नहीं स्वयं उसके शरीर की हड्डियाँ है। इनमें जितना भी दर्द है उसे समेट कर अपने के लिए कहता है।''<sup>1</sup> बाहरी दुनिया की राजनीति से कवि का हृदय उद्दिग्ध हो उठता है। वह मानव के हृदय की दशा का वर्णन धरमस से करता है। इस दिखावे की दुनियाँ में सभी अपनी सामर्थ्य से अधिक प्रदर्शन करते हैं। जिससे वह शरीर के पास और मन से कोसों दूर रहते हैं। परन्तु उनका यह दिखावटी मन अन्दर ही अन्दर उनको खोखला बनाता जा रहा है, उनके अन्दर शून्यता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता है।''<sup>2</sup> अपनी वेदना को कवि स्वयं ही सहना चाहता है :

'' बोलना चाहता है, अपनी ही पगध्वनि से खोल / दर्द की गाँठ  
तू अपने ही छावों पर खोल / अपनी उखड़ी हुई साँसों पे ही  
स्माल हिला / अपने धकेले हुए कदमों से ही तू हाथ मिला/  
राह तेरी तभी ढटेगी / अभागे इन्सान।''<sup>3</sup>

अवसाद-विषाद की स्थिति में जब मुद्दियाँ तनकर कस जाती हैं, उनके फैलने पर लोग तिरस्कार की दृष्टि डालकर चलते हैं तब मन वेदना से व्यथित हो जाता है।''<sup>4</sup> अतः हर वक्त एक असमनी थकान परेशान किए रहती है। वह हर चीज जोड़ने के बाद, हर राह मोड़ने के बाद, हर पड़ाव छोड़ने के बाद थकान-वेहद महसूस करता है। उसका उत्साह समाप्त हो गया है वह उदास निर्लिप्त भाव से थकित है।''<sup>5</sup> कवि को अपनी ही नहीं दूसरों की समस्याएँ भी वेदना पूर्ण लगती हैं। वह देश की असमर्थता के विषय में, उसके गिरते हुए स्तर के विषय में चिन्तित है, वह मौत से भयभीत है, वह प्यार से भयभीत है, इन सबके पास वह धीरे-धीरे खंडित

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ एक : पृ० 168

2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ एक : पृ० 122

3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ एक : पृ० 15

4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ : पृ० 248

5. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ : पृ० 139

होता जा रहा है, खाली होता जा रहा है । वह इनसे इतना पीड़ित है कि उसे 'धीरे-धीरे' शब्द से ही चितृष्णा होने लगती है। वह स्वयं को समझाता है, धीरे-धीरे ही पुन लगता है, धीरे-धीरे ही दीमकें सब कुछ चाट जाती है। साहस, संकल्प धीरे-धीरे ही खत्म होता है। मैं धीरे-धीरे ईश्वर को नहीं पाना चाहता, धीरे-धीरे उसे कुछ भी स्वीकार्य नहीं है।''<sup>1</sup> कवि अवसाद-विषाद के उस स्थिति पर पहुँचता है जहाँ :

'' जहाँ चलना मृत्यु है / न चलना मृत्यु है / विश्वास मृत्यु है /  
अविश्वास मृत्यु है। समर्पण मृत्यु है / विद्रोह मृत्यु है / प्यार  
मृत्यु है / धूना मृत्यु है / जीना मृत्यु है / न जीना मृत्यु है /  
इस मृत नगर में / अन्त में वहीं पहुँच जाता हूँ / जहाँ से चलना  
शुरू करता हूँ।''<sup>2</sup>

वस्तुतः जहाँ से चलना दुबारा वहीं आना यह 'अज्ञेय' जी के अवसाद-विषाद भावना से बहुत साम्य रखता है। ऐसे ही वाक्य 'अज्ञेय' जी ने भी व्यक्त किए हैं। वह भी इस दुनियाँ के असन्तुलित व्यवहार से वेदना-ग्रस्त हैं। फलतः इस फलक पर दोनों कवियों का वेदना-भाव एक सा है।

कवि इस वेदना रूपी आग में चूल्ह की लकड़ी तरह धुँआ, लपटें, कायले एवं राख छोड़ता हुआ जलता है।''<sup>3</sup> पहले मैं हरे-भरे जंगल की तरह हँसता मुस्कराता, चँहचहाता रहता था। अब कुल्हाड़ियों से कट कर मेरे टुकड़े-टुकड़े हो चुके हैं। और अब मैं खूँटी बना टेंगा हुआ हूँ। सब कुछ तहस-नहस कर देने वाले अब वो भूकम्प कहाँ है ? मैं अब इस दीवार से मुक्त होना चाहता हूँ।''<sup>4</sup> क्योंकि बाहर की दुनियाँ बदल रही है,

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें : पृ० 87
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें दो : पृ० 48
3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : छुट्टियों पर टीगें लोग : पृ० 13
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : छुट्टियों पर टीगें लोग : पृ० 22

वेरों के नीचे जमीन नहीं रही, रास्ते पन्द्र हो चुके हैं, क्या चारों तरफ इतना धंस हो गया है कि किसी को भी दूसरों के प्रति संवेदना नहीं रही।''<sup>1</sup> मेरे चारों तरफ कुछ ऐसा घेरा तैकरा होता जा रहा है। जो मेरे शरीर को ही नहीं आत्मा में भी पहुँच रहा है। ऐसा लगता है कि घुबला जाना ही मेरी नियति बनता जा रहा है।''<sup>2</sup> कवि का दुःख वेदना सफेद चादर की तरह निर्मल है। उसका दुःख सूरज की तरह प्रखर हवा की तरह गतिमान, अग्नि की समर्थ है, जिस पर धर तोता है। तारे घेरे को देखा है, घाटों में स्टेड नेता है, और उसकी लपटों के साथ अनन्त में विलीन होता है।''<sup>3</sup>

वस्तुतः सर्वेश्वर दयाल जो को वेदना में ज्वलनशील घेतना उभरती है। यही अवसाद की स्थिति 'जनल का दर्द' में सामाजिक चिन्फोट का रूप धारण करती है। अनुभवों में युग और जीवन एक प्रहार से ऐसे धुने हुए हैं कि मूल संवेदना का समष्टि रूप ही सामाजिक दायित्व भावना एवं लोक संपूर्णता का भाव बन गया है। युग के अवसाद-विषाद ने असाधारण से हटकर साधारण अपना लिया है। समस्याओं के प्रति गाल्कता ने कवि के वाच्यानुभव को गाढ़ा बनाया है।

'' कुजानो नदी ' मानवीय पीड़ाओं की, छेतिहर भजदूरों की, शोषण, पीड़ित लोगों की कहानी है। जैसा कि इसके छंदों के नाम से विदित होता है। वस्तुतः नयी कविता आजादी के बाद की कविता है। आजादी से पहले अंग्रेजों ने गरीब, मजदूरों का शोषण किया था किन्तु आजादी मिलने के पश्चात भी यह स्थिति ज्यों की ज्यों बनी रही। क्योंकि राजनैतिक वालों ने उन्हें ऊपर उठने ही नहीं दिया, और उनकी दशा दिन-पर-दिन बिगड़ती ही चली गयी, या चली जा रही है। जैसा कि कवि ने इन छंदों को शीर्षक दिया है ' कुजानो नदी ' अर्थात् भारतीय संस्कृति

1. सर्वेश्वर दयाल तक्सेना : छूंटियों पर टंगे लोग : पृ० 29

2. सर्वेश्वर दयाल तक्सेना : छूंटियों पर टंगे लोग : पृ० 67

3. सर्वेश्वर दयाल तक्सेना : छूंटियों पर टंगे लोग : पृ० 77

है कि गले के ऊपरी हिस्से में जैसे लकड़ा मार गया है। आदमी कुछ भी सोचता समझता याद करता ही नहीं। अपने दिमाग को जरा भी कूट नहीं देता :

“ वह लम्बे काँठ की तरह/ पड़ा रहता है तारा दिन, तारी रात/  
वह फटी-फटी आँखों से / टुकुर-टुकुर ताकता रहता है तारा  
दिन, तारी रात / कोई भी सामने से आए-जाए / सत्य को  
सुनी निगाहों में जरा भी फर्क नहीं पड़ता ।” 1

कवि नागार्जुन ने निम्न वर्ग के तबके को करीब से देखा है, उनका दुःख जाना है। कवि ने उन्हीं की वेदना को उद्घृत किया है, क्या कहे सुझुर, क्या कहे मातृक, इनको देखकर अजूबा भी लगता है, क्योंकि इनको धुन कर अन्दर तक कोई घाट गया है।” 2 कवि आजकल की व्यवस्था से संवस्त है। यहाँ तक कि वह पतित बुद्धि जीवी वर्ग के चित्त आवाज उठाने पर मजबूर है :

“ हाँ, हाँ, भाई मुन्नी भी तुम गोली मारो/ पतित बुद्धिजीवी  
जमात में जाग लगा दो ।” 3

कवि के हृदय में आज की व्यवस्था के प्रति अस्वाद है। वह सोचता है क्या हम भविष्य में रेंगकर चलेंगे ? क्या हम दंड बैठक लगाएंगे ? क्या हम आँख बन्द कर उनकी हर बात का समर्थन करेंगे ? क्या हम डर के मारे गुँगे हो जाएंगे ।” 4 आखिर हमारा अस्तित्व क्या है ? जिन धीरे पुरुषों ने आजादी की लड़ाई की, गुलजात की, उन्हीं के साथी अब क्या से क्या हो गये हैं ? उनकी कवियों को देखकर पहले छीन पैदा हुई परन्तु बाद में ऐसी मानसिकता देखकर रोना आने लगा ।” 5 अतः कवि नागार्जुन जो की

1. नागार्जुन : छिछोरी चिप्पल देखा हमने : पृ० 30
2. नागार्जुन : पत्रहीन नग्न गाछ : पृ० 27
3. नागार्जुन : आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने : पृ० 13
4. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या : पृ० 12
5. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या : पृ० 25



“ वह आदमी के सर उठाने की/ यातना है / आदमी का दुखार/  
आदमी की कुन्हाड़ी/जिसे वह कंधे पर रखता है / और जंगल  
की ओर चल देता है।” 1

उषि ने देवा की देवना की अभिव्यक्ति नदी के तट में की है।  
जो बहुत पहले से प्रचलित चल रही है, अब जिसका कोई नाम नहीं है। इस  
सूखी नदी में अब कीचड़, तिलार, जलकुंभिया ही नजर आती है। वह  
अपनी पहचान बनाने का प्रयास कर रही है।” 2 आज के संदर्भ में आदमी  
के पास अपना रहने के लिए कुछ नहीं है। वह अपनी दिनचर्या वहाँ से  
शुरू करना चाहता है कुछ ठीक नहीं। वह उस लकीर की तलाश करता है  
जहाँ वह कह सके कि मेरा दिन वहाँ से शुरू होता है।” 3 डॉ० सिंह  
ने खेल की तरह मजदूर की जिन्दगी को व्यक्त किया है। जो दिन निरन्तर  
ही काम पर चल देता है। और सुबते सूरज के साथ लौटता है। गाँव में  
आकर सिर्फ खाने की गुंजायूँ उसे मिलती है। खाना नहीं। रात भर वह  
संतोष करके सो जाता है। फिर निकलने पर नयी आशा-उमंग के साथ  
काम पर जाता है। लेकिन हर रोज उसको यही दिनचर्या बनी हुई है।” 4  
उषि स्वयं अपनी देवना से पीड़ित है, यह भाषा, पहलू सब कुछ अवसाद की  
स्थिति बन जाता है :

“ और यह समय है/ जब रक्त की शिरा शरीर से कटकर/ अलग  
हो जाती है / और यह समय है / जब मेरे जूते के अन्दर की  
धूल नन्हीं-सी कील / तारों को गड़ने लगती है।” 5

1. डॉ० देवार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 10
2. डॉ० देवार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 16
3. डॉ० देवार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 19
4. डॉ० देवार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 36-37
5. डॉ० देवार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 47



सम्पूर्ण विश्व की वेदना अब एक-दूसरे के पास जाती जा रही है। और यह वेदना समुद्र का त्व मे रही है जिसमें अवसाद-विषाद की लहरें उफन रही है और लहरें प्रत्येक आदमी के घरे की तारों के नजदीक जाती जा रही है। अभी लगता है कि यह वेदना लम्बी वस्तुएँ समाप्त हो गई है :

“ मेरी आत्मा से यह रहा है पुन/ और वस्तुएँ/ मेरे पुन से फिर पेदा हो रही हैं।” 1

इस अवसाद-विषाद की वेदना को यदि ज़ेला नहीं सहन करता, बल्कि उसे महसूस होता है कि मेरे साथ एक पूरी वस्ती है, क्योंकि वहीं न वहीं पूरी वस्ती में यह वेदना प्रकट हो ही जाती है। चाहे वह भूमे आसु के त्व में हो या छागोरा बैठे बाग्यों के त्व में हो। एक काली और तपेद दाढ़ी अर्थात् राम और उन्हें लगातार धरे हुए हैं।” 2 यह वेदना को आदिम प्रवृत्ति मानते हुए वधि ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी दोते हुए कहा है।

“ यह आदिम व्यथा जो कि तुमको मिली थी एक सोने की जलती पिटररी में वन्द कहीं घरतों से, इस दुनियाँ के घरो में, मिर्दी में गड़ी हुई, जिसे तब सहन करने के लिए तत्पर है। यह वेदना, यह अवसाद आज स्थिति में भी तीव्र है और पूर्वजों की स्थिति में भी तीव्र था।” 3

“ जीने की आ लोभिया है / जीने में यह जो विश्व है।

तारों में भारी लोभिया है / पलका क्या करिए ?” 4

आज के अवसाद पूर्ण जो न में सभी तुलसे हुए हैं। सभी का जीवन रही रददी की टोकरी के समान बेजार, निर्मिप्त भाव से घीत रहा है। अगर उनकी संवेदना की क्षण को पुरे तो यह एक ही घार में जलकर भस्म भी हो सकते हैं।” 5 रात की गहन कालिया वेदना को और भी अधिक बढ़ाती है :

1. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन एक रही है : पृ० 68

2. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन एक रही है : पृ० 60

3. डॉ० केदार नाथ जगवान : गुलमोहदी : पृ० 29

4. डॉ० केदार नाथ सिंह : उमी पिछुल अभी : पृ० 27

5. डॉ० केदार नाथ सिंह : यहाँ से देखो : पृ० 55

“ हत से , उदास, निर्वाह, दीन/ मुर्छित हो, केले तरु मलीन /  
 सौरभ- सुगन्ध के धुटे प्राण / अग जरता है दुर्गन्ध-पान/ वस सॉय  
 -सॉय ही सॉय-सॉय/सर्वम नियन्त्रित सॉय-सॉय।” 1

इस देश में सर्वत्र वेदना भर गई है। जिन्दगी यहाँ एक जर हार  
 गई है। मनुष्य घम जरते-जरते मूख से पीड़ित है। हाथ-पाँव भी उदासी  
 के घोंघ से भारी हो गये हैं। तसि भी जमकर बर्फ हो गयी है। प्रत्येक  
 के दिलों में जो आग धधकती थी वह अब मोम सी निःप्राण हो गई है।  
 शरीर भी अयेरी रात के समान हो गया है।” 2 सैकड़ों हजार गिह  
 प्रोथित हुए आकाश में उड़ रहे हैं। जब माँस नहीं मिल रहा तो अंधकार  
 को ही नोचते हैं। ऐसी ही असाद वेदना देश के नाजवानों में फैली  
 हुई है। वह धीण, वृत्तिहीन, अत, पैर की मूख को दबाये हुए हैं।

असाद-विवाद की पीड़ा कवि में अतनी अधिक है जो वेदना  
 के स्वर निकलते हैं वह हमारे हो अमर गिरते टूटते हैं वेबल कवि की तरह।  
 हम स्पष्ट रूप से कुछ कह नहीं पाते तिरक मोन बने टूटो हुए अतंठय अंधी  
 आवाजों के बीच देखते रहते हैं।” 3 अपनी असार्थकता पर कवि को  
 वेदना उभरी है :

“ न कुछ कहने के लिए / न कुछ सुनने के लिए/ केवल काल के हाथ  
 से टूट कर/ धिपहरने के लिए।” 4

जो नील गगन में अपने टूटे पंख लिए तितल रही है। कवि  
 उसकी वेदना से व्यथित है। वह पिड़िया ओर ठोड़ नहीं मानव का  
 आकुल हृदय ही है। श्री केदार नाथ अग्रवाल जी अपनी पत्नी की पीड़ा से  
 व्यथित हैं। वह अपनी चेतना को प्रिया को चेतना हो कहते हैं। इसी  
 चेतना जिन्दगी को वेदना उपजी है। पत्नी मृत्यु के पश्चात वह वेदना

1. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 97
2. केदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृ० 125
3. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग धोलते हैं : पृ० 120
4. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग धोलते हैं : पृ० 149

ही कवि की देवना बनती जा रही है। और यह मौन चन्दना राग-रंजित  
चन्दना बन गयी है।'' 1

'' हम हैं कि जब भी रुके हैं यहाँ — / ज्यों-के त्यों —र के बाहर/  
कठोर केधे के तले/ सिर-झोड़ फल पाने के लिए / कचोटती/  
जिन्दगी धिताने के लिए।'' 2

हम दूटे घटनों की तरह हो गये हैं हर समय जिन्दगी में खोये-  
खोये रहते हैं, आः न तो दूसरों को कुछ दे ही पाते और न उनसे कुछ ले  
ही पाते। कवि आज की देवना से व्यथित है कि न तो वह बाहर मारता  
है न भीतर / मौत का मातम दिना मरे हर रोज मनाता है।'' 3

श्री गिरिजा कुमार माधुर जी आधुनिक समाज में व्याप्त, पीड़ा  
देवना, संसार से व्यथित होकर कहते हैं कि मेरे भीतर समस्त सारा  
मलबा भरा हुआ है, हर छिस्मो, जिवाइन, तो अफसरे, जिन्दा मुर्दा जहान  
का।'' 4 नीलों तक फैली सुद, घुस, भूटाचारी, जो बेगुनाहों की पीछों  
में तुनाई देते हैं। उन्हें देखकर, उनकी देवना देखकर अपने आप पर भी  
गुस्ता आता है। नगर की सभ्यता का अपसाद कवि को लगता है उसे  
अस्थायी वसा हुआ है। यह पूरी की पूरी बसती यहाँ से उठार कहीं  
आँर चली जायगा।'' 5 यह अपसाद विवाद की स्थिति यहाँ तक बढ़  
गयी है बाहर शोर भी कवि को अपने भीतर ही तुनाई देने लगता है :

'' मेरे समूचे शरीर से/ निरुत्तता है/एक छीफ्नाक शोर/ हेडलाइटों  
के समूचे दाँत पीछे/मरजते पिशाच/ मकानों का रिक्तता भरा  
रोजों से/ सल्लि की पॉइन्ती से/ बाहर फिंकते हैं/पत्तीने मिलें हैंट/  
गंधाते चीकट छपड़े/यंत्रों की अमान बात/हजारों मिन लुगियें।'' 6

1. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 42
2. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 151
3. केदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृष्ठ 184
4. 5. गिरिजा कुमार माधुर : तापी रहे वर्तमान : पृष्ठ 10-26
6. गिरिजा कुमार माधुर : तापी रहे वर्तमान : पृष्ठ 30

चारों तरफ कराहते, विष्णु अतन्तु-ट नारायण आदमी घूम रहे हैं।  
 हर वो अगली तनछाह तक घसीटते चिड़चिड़े आदमी। कवि इन सब की  
 वेदना को उजागर करता है। उनके लिए दिया हुआ खाना, स्वयं, पुर्जा,  
 सभी कुछ रेत में दबी हुई त.प के समान है। यह कौन सी ऐसी व्यवस्था है  
 जहाँ जाकर तारे पान खननाथक बन जाते हैं। छानामदी विद्वज्जनों के कुर्क पर  
 तानियाँ पकती हैं। जहाँ सिद्धिमी लोग ही तत्तापारी बन गये हैं। इनके कवदते  
 हुए पापों की पदधू अब हवा में भी जाने लगी है।

नगर-खोप की सभ्यता ने लोगों को एक दूसरे से जतना दूर अपरिचित  
 कर दिया है, सब सेगाने, वेदना-ग्रास्त जीवन व्यतीत करते हैं। नगर की  
 सभ्यता में दिया, नया संस्कार, धाम, रोमांस, कुंठा, अद्वेष्टना, ठोकरें,  
 अपमान दिया है। परन्तु मेरे भीतर से गर्व का महज प्यार ले लिया है।  
 न मुझे बड़ा काम करने दिया है न छोटा, सामूली आदमी की तरह जीने का  
 सुख भी नहीं रहने दिया है।''

'' मैं महाकांतारों भरे/ भीलों औ सुनसान/ अतन्तु पर्वतों के भुजाओं  
 में / बहुत घुल पड़ा हुआ / खोया हुआ जानक हूँ / मुझे आदस  
 देने वाली / भगता पारी उगेली/ जाने जहाँ छुट गई / लगता है  
 ऐसे / गला बियाँ उसे लीन गई / मुझे खाली है लोड़ गई—''

इस समय के देर पर कवि अपना जो न अतमर्षता, व्यर्थता से भोग  
 चुका है। अब हर जगह पू.ा ही पू.ा उदका है। होने न होने की वेदना  
 में आधा हो जो पा रहा हूँ।

कवि ऐसी विषयता में जीता है कि उसके अर दि.स, रात, धूम,  
 तपि भी रोने लगती है। गलानि पितृ-जा से जन वरसात की तरह रोने  
 लगता है। इन वरसाती जलधियों ने स्वयं के पैरों को धो जाता है। उसके  
 जो स्वप्न ये वह खंति हो गये हैं :

1. गिरिजा कुमार माथुर : तापी रहे वर्तमान : पृ० 45
2. गिरिजा कुमार माथुर : तापी रहे वर्तमान : पृ० 82

“ जिन्दगी का महल खंडहर हो गया है / रात कोई आँसुओं से धो  
गया है। मौन अब रहना पड़ेगा जिन्दगी भर / क्योंकि तेरा  
गीत भी अब लो गया है।”

। र किसी के चरित्र पर आरोप लगाना, कुछ छिपाना, दोष देना,  
डंक मारना, शब्दों में कुंठारना, दूसरों की देह धीरे-धीरे आगे बढ़ जाना।  
यही वेदना-अवसाद कवि के मन को मथता रहता है। क्योंकि इस दिवाले  
की दुनियाँ में कर्म को जगह तिरफ़ शब्द आ गया है :

“ ये पहिया जो चलता है / यन्त्रधारी विराट का/ वह भीतर का  
बहर / बहुत बाहर कुंठारता / आदमी हुआ बीना / मंति-मू  
इस परमता का/ डेढ़ गया है बाजारू धिभ्र / लोहे शीशे की  
तमाधि-सा/ हर कर्म-हर मकसद/ नयी व्यर्थता में डूब गया।” 2

इन वेदनाओं को देखकर अब कवि का मन निर्लिप्त हो गया है।  
दुःखों की चक्की भी पीस-पीस कर मुझे मोथरी हो गयी है। जीने की  
समस्याएँ तो सामर्थ्य से घड़ी होती हैं। अब अपने अपमानित होने का भी  
कोई दुःख नहीं होता।” 3

‘अंधा युग’ मानवीय कृत्तियों के विनाश की कथा है। फलतः इसमें  
अवसाद-विषाद-वेदना भाव मिलना स्वाभाविक है। नाट्यकृति के पात्रों  
का चरित्र भी उज्ज्वल या निःकलंक नहीं है। सबके सब एक दूसरे से  
असन्तुष्ट विचारा तथा दूटे हुए हैं। फिर भी उनके अन्दर आस्था का स्वर  
विद्यमान है, यह विनाश-प्रक्रिया के नये आयाम हैं।

इस नाट्यकृति की वेदना प्रहरियों के आर्तनाप से व्यक्त होती  
है। जिसमें अनिरन्तरता की समस्या का समाधान खोजने में आधुनिकता  
फलकती है। औरव नगरी महायुद्ध के परिणाम स्वयं उजड़ चुकी है, यह  
दापर युग की नगरी है, आज की भी नगरी है। इसमें महायुद्ध के  
आखिरी दिन की शाम का वर्णन है :

1. गिरिजा कुमार माथुर : धूम के धान : पृष्ठ 71

2. गिरिजा कुमार माथुर : भीतरी नदी की यात्रा : पृष्ठ 52

3. गिरिजा कुमार माथुर : भीतरी नदी की यात्रा : पृष्ठ 70

“ यह महायुग के अन्तिम दिन की संध्या / है छापी चारों ओर उदासी  
गहरी / और के महलों का सुना गलियारा / है धूम रहे केवल दो  
पड़े प्रहरी ।”<sup>1</sup>

इन दोनों घूँटे प्रहरियों के वातावरण में निरर्थकता, व्यर्थता, अर्थ  
हीनता बोलती है - ‘ मेहनत हमारी निरर्थक थी, आस्था का, साहस का,  
अस्तित्व का हमारे, कुछ अर्थ नहीं था ।”<sup>2</sup> इनके वातावरण में युगीन  
संघर्ष के साथ आधुनिक युग की अर्थ हीनता, घुटी हुई व्याख्या, जर्जर  
होती आस्था नजर आती है। अर्थात् उनकी मेहनत, आस्था, साहस,  
धर्म, अस्तित्व का आधुनिक युग में महत्वहीन होकर रह गये हैं। वस्तुतः  
द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिकाएँ ही ‘ अंधा युग ’ में परिष्कृत होकर  
उद्भूत हुई हैं। अर्थात् ‘ अंधा युग ’ की मूल चेतना वैयक्तिक चेतना, रोमांटिक  
युगीन हलचलों, जीवन की समस्याओं की जटिलताओं को लिए हुए है,  
जिनकी निजी और व्यापक सीमाएँ मिली-जुली हैं।

वस्तुतः यह प्रहरी ही प्रजा के प्रतीक हैं, जिनकी आस्था मर्यादाएँ  
टूट चुकी है। जिनका स्वयं में कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि सत्ता पूजे  
जाती है और प्रजा को अंधे राजा की आज्ञाएँ स्वीकार करनी पड़ती हैं।  
प्रजा आतंक और घात में जीने लगती है। पुतराबद्र ने बाहरी यथार्थ या  
सामाजिक न्याय को ग्रहण नहीं किया था, क्योंकि केवल वैयक्तिक  
मूल्य और मानवीय आधारों पर जीवन के सत्य का साक्षात्कार नहीं कर  
सकती। लेकिन न्यायारी की दृष्टि में नीति, मर्यादा, अनासक्ति आदि  
सब गूँठे आडम्बर हैं :

“ धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब हैं केवल आडम्बर मात्र / मैंने यह बार  
बार देखा था / निर्णय के पल में सिधे और मर्यादा / व्यर्थ  
सिद्ध होते जाये हैं सदा ।”<sup>3</sup>

---

|                      |   |          |   |          |
|----------------------|---|----------|---|----------|
| 1. डॉ० धर्मवीर भारती | : | अंधा युग | : | पृष्ठ 14 |
| 2. डॉ० धर्मवीर भारती | : | अंधा युग | : | पृष्ठ 15 |
| 3. डॉ० धर्मवीर भारती | : | अंधा युग | : | पृष्ठ 23 |

माता गान्धारी दोनों पाँों में मर्यादा एवं धर्म का तिरस्कार देकर बहती हैं तब ही ये अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित।''<sup>1</sup> गान्धारी को कृष्ण में आस्था थी उसीलिए युद्ध करने के वक्त उसने दुर्योधन से कहा था ' धर्म बिप्लव होगा जो मूर्ख । अपर ही जय होगी ।''<sup>2</sup> गान्धारी की यह आस्था भी ठंठित हो गई । क्योंकि अंधा युग के कृष्ण कूट बुद्धि के लेकिन भविष्य दृष्टा भी है, अनासक्त है, नाश की गति से ज्यादा शक्ति शांति है । — ऐसा व्यक्तित्व ही मानवीय नियति का निर्णायक एवं युग परिवर्तनशील होता है । परंतुतः ' अंधा युग ' की वेदना सभी पात्र सह रहे हैं ।

आचार्य नन्द हुतारे धाजपेयी की का कथन है, '' नयी कविता में नकारात्मक और आनास्था की प्रवृत्तियों का मूल स्रोत धर्मोपर भारती के काव्य में मिलता है ।।''<sup>3</sup> जो नयी कविता की प्रवृत्ति अज्ञात-विषाद-वेदना भाव को समेटे हुए है । '' यह कृति वर्तमान जीवन और युगीन समस्याओं को सु-ब-दू तत्पौर पेश करती है । हिंसा, विकृति, निराशा, पराजय, घर्षरता, अमानुषिकता, अनास्था, कुंठा, दासता, पाने पूरा युग तत्पि मुखर हो उठा है ।''<sup>4</sup> इसी प्रकार डॉ० रघुवंश का कथन है, '' काव्य नाटक के रूप में ' अंधा युग ' समस्त कृति है, क्योंकि नाटककार ने नाटकीय परिस्थितियों, पात्रों की मनःस्थितियों तथा अर्थव्यवस्थाओं और प्रतीकाओं को अभिव्यक्त करने के लिए जहाँ बेसी उक्ति थी, वहाँ बेसी छंदयोजना की है ।''<sup>5</sup>

'' हुआनो नदी ' और ' अग्निरे ' में शक्तिकारी चेतना की वेदना, अभिव्यक्त होती है । जिससे समाजवादी यथार्थवादी चेतना मुखरित हुई है ।

1. डॉ० धर्मवीर भारती : अंधा युग : पृ० 14

2. डॉ० धर्मवीर भारती अंधा युग : पृ० 23

3. आचार्य नन्द हुतारे धाजपेयी : नई कविता : पृ० 51

4. डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी : नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर : पृ० 23

5. डॉ० रघुवंश : भारती का काव्य : पृ० 24

इन दोनों कवियों की रचना कृति में काफी साम्य है। दोनों कवि सामाजिक चेतना से संयुक्त हैं जिससे अत्याद-विनाश की विध्वंसिता है। 'अंधेरे में' की कविता में जन-चेतना एवं आत्म-चेतना की चेतना परिलक्षित हुई है। राजनीति की मार से मारे गये आदमी की आसदी है। 'गुजानो नदी' में भी भारतीय जीवन चलचित्र की भाँति चित्रित हुआ है। अतः दोनों ही आम, आदमी की चेतना अत्याद से परिपूर्ण है। दोनों ही कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक, धिक्पताओं की भीषण चिन्ताओं के घुलतार आधामों में व्यक्त किया गया है। दोनों कविताओं में कवि का 'स्व' मिलता है। दोनों कवि इस चेतना संयुक्त से दूर भागना चाहते हैं :

“ भागता मैं दम तोड़ / काट गया कई मोड़ ” 1

मैं देखता हूँ और भागता हूँ ” 2

अतः क्रांतिकारी चेतना और नई नैतिकता का मापदंड इन कविताओं में वर्णित समाज के इतिहास और तात्कालिक वार्थता में ही अभिव्यक्त हुई है। यह चेतना शब्दों के माध्यम से कवि के अंतर्गत में बैठती जाती है जो दुःसह होते हुए भी सहनी पड़ रही है :

“ गहन मृतात्मारों की नगर की / हर रात जुलूस में चलती /  
परन्तु दिन में, / पैदली है मिलकर करती हुई प्रयत्न / विभिन्न  
दफ्तरों-कार्यालयों, केन्द्रों में, घरों में / हाथ, हाथ, मैंने उन्हें देख  
लिखा नंगा / इसकी मुझे और तथा मिलेगी । ” 3

कवि 'अंधेरे में' पैदा अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों का आलोकन वाह्य व्यक्तित्व के साक्षात्कार से करता है। जो अपनी अस्मिता का ही प्रत्यभिमान है। अतः इसमें आत्मिक चिन्ता अधिक मिलती है। 'य' चेतना जब दृश्य में बदलती है तब त्वरित एवं गतिशील हो गई है। कवि के

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह देढ़ा है : पृष्ठ 269

2. सर्वेस्वर दयाल गजानन : गुजानो नदी : पृष्ठ 25

3. गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह देढ़ा है : पृष्ठ 268



अन्दर का व्यक्तित्व फूल बनितर, घुने धरी रेत और पपड़ियों की तरह उजलता है। इन्हीं पपड़ियों को घुरघी तह में कवि वाह्य दुनियाँ में जाता है। जहाँ दिखनाई पड़ता है— दूसरों का हित करने वाले पिता को निकाल दिया है, कल्याण की मूर्ति माता को हँकाल दिया है, स्वर्ग का छुत्ता पल रहा है, अर्तप्य भावना त्याग दिये हैं, बुद्धि का भाल ही तो, दिया है, तर्कों के हाथ उखाड़ लिये हैं, अपने ही पेर कीचड़ में बाम हो गये हैं।

हाँ प्रमादर प्रीतिय का कथन है, “अधरे में ही स्वप्न-स्था जहाँ समाप्त हो जाती है, वहीं सुषुप्त हो जाती है। यह एक तरह से संसार को समाप्ति और संतोष का प्रतीक है, जिसकी अभिव्यक्ति अन्तिम पंक्तियों में हुई है।” हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव यहाँ पूर्णतः शामिल हो जाता है।”

अन्तर्द्वन्द्व सामाजिक अनुभव के भातदो रूप में उभरे हैं :

“हवाओं में अद्भुत ज्वाला की गरमी/ गरमी का आदेश/साथ-साथ घूमते हैं, साथ-साथ रहते हैं,/ साथ-साथ सोते हैं, छाते हैं, पीते हैं,/ जन-जन उद्देश्य।/ पथरीले चेहरों के छाकी ये क्लेश / घूमते हैं यंत्रणा / वे पड़वाने से लगते हैं घाक / वहीं आग लग पी, वहीं गोली चल गयी।” 2

श्री रामेश्वर महादुर सिंह का कथन है, “एक चट्टानी कृपापन, एक खरों नग्नता, हिंस्र वाँदनी, अशक्तियों से भरा मानव-लोक रात का या दिन का। xxx जिन्दगी जो विद्रुप और दूर योग्य है।...xxx अधरे में” मुक्तिबोध की एक ऐसी ही कविता है, जिसमें उनकी काव्यात्मक शक्ति के अनेक तत्त्व जुल-मिल कर एक महान रचना की सृष्टि करते हैं, जो रोमानी होते हुए भी अत्यधिक धार्मिकवादी और एकदम आधुनिक हैं।” 3

1. सं० शिव कुमार ज्ञानानी : ‘कंक’ दिस-पर 80 : पृ० 43-44

2. गजानन माधव मुक्तिबोध : वाँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 293

3. गजानन माधव मुक्तिबोध : वाँद का मुँह टेढ़ा है : भूमिका : पृ० 25-26

डॉ० नामर सिंह का ज्ञान है, " ज़िये में" कविता को पढ़कर भी कोई यह महसूस किए बिना नहीं रह सकता कि यह आज का भारत है। स्वप्न चित्र जैसी एक अर्थपूर्ण कला के द्वारा यमार्थ की काव्यात्मक पुनः सृष्टि करके मुक्तिशोध ने एक विरोधाभास का ही समतुल्य पैदा नहीं किया, बल्कि आधुनिक हिन्दी कविता में एक वास्तविकी कृति की रचना की, जिसे निःसंकोच निराशा की 'राम की शक्ति-पूजा' के बाद की सबसे बड़ी उपलब्धि माना जा सकता है।" 1 वस्तुतः विद्रुपता, उद्वेग, और विरोधाभास, अवसाद-विषाद-वेदना-भाव की जागृत करता है जिसे 'ज़िये में' स्पष्ट रूप से परिष्कृत किया जा सकता है।

कवि को तारी दिशारें, जाह्नवारें, सपेदनारें सभी अवसाद-विषाद से भर देती हैं।

" कहते देती है मुझे ये सब दिशारें / जा नहीं सकता सभी के पास /  
धेर धेरी है मुझे गम्भीर-मन सब जाह्नवारें / जा नहीं सकता सभी  
के पास / रंग-रंगों में फैल ये सपेदनारें। कर रही अनगिन तकावे /  
सब तकावे हूँ नहीं सकता हृदय का वास" 2

वस्तुतः नयी कविता में अवसाद-विषाद-वेदना-भाव की प्रवृत्ति छायावादी चेतना से कम नहीं है। लेकिन दोनों युगों के कवियों की मानसिकता अन्तर अन्तर परिवर्तित होता है। क्योंकि आज के संदर्भ में पीड़ा तनाव, संयास, वेदना कवि ने स्वयं भोगी है तथा ऐसी परिस्थितियों के मध्य स्वयं रहा है। अतः उसके स्तर में विद्रोह के ताय-ताय क्रांति की आज भी मुखरित होती है। नयी कविता का कवि मूलतः निम्न मध्यम

1. डॉ० नामर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 160

2. गजानन माधव मुक्तिशोध : भूरी-भूरी ठाक पून : पृ० 118

एवं मध्य मध्यम वर्गीय ही है। जहाँ से उसकी दृष्टि स्वयं पर तथा अपने आस पास के परिवेश पर समान रूप से पड़ी है। अतः उसने अपने साथ-साथ निम्न मध्य वर्ग की भी अपनी कविता का माध्यम बनाया है। जो वेदना कवि भोगता है वह मानसिक यंत्रणा देने वाली स्थिति ही है। स्वयं भीगने के साथ साथ ऐसी यंत्रणा वह देखता भी है, फिर तो उसका मन अवसाद-विषाद की पीड़ाओं में खोकर अपना दर्द हल्का करना चाहता है। अतः नयी कविता का कवि वेदना-भाव को आन्तरिक एवं बाह्य दोनों रूपों में व्यक्त करता है।

**अष्टम अध्याय**

**नयी कविता की शिल्पगत स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ**

भाषा

चित्र

प्रतीक

मिथस

प्रगीतात्मकता

ಕುಟುಂಬ ಕಲ್ಯಾಣ ಕಾರ್ಯಗಳನ್ನು ಸುಗಮಗೊಳಿಸುವುದು ಮತ್ತು ಸಮಾಜದ ಸಮಗಮವಾದವನ್ನು ಕಲ್ಪಿಸುವುದು

4141

नयी कविता के कवि की काव्य भाषा में बोल-चाल के शब्द एवं साहित्यिक शब्द दोनों प्रकार के प्रयुक्त हुए हैं। जिससे इसमें वैचारिकता प्रधान हो गई है। वैचारिकता के फलस्वरूप ही यह गंध के निष्ठ अधिक है। 'अक्षय' की की काव्य-कृति 'अन्तरा' तो पूरी

गद्य काव्य हो है। छायावाद तथा उसके पहले कवि अपनी कविता की भाषा का यत्न में हो रहता था, किन्तु नयी कविता के कवियों ने यह परम्परा तोड़ कर गद्य का नव-निर्माण कर अपने मूल्यों को स्थापित किया। अतः जो भाव काव्य में कविता के रूप में उभरते हैं, वही भाव अब गद्य के रूप में कविता में उभरे हैं। अतः पुरानी परम्परा को तोड़ना ही स्वच्छन्दतावादी कवि का स्वप्न है।

डॉ० जयसिंह का कथन है, "आधुनिक काव्य की भाषा-विषयक 'स्वीय' धेतना भी स्वच्छन्दतावादी धेतना का एक रूप है। आन्तरिकता एवं अन्तर्मुखी वृत्ति के कारण कवि का अनुभव क्रिया: रचना-क्रिया का अनुभव हो जाता है। इन्द्रिय-गोचर विश्व और उसकी पुनसृष्टि का प्रयास तथा भाषा के माध्यम से अपने-आपको अभिव्यक्त करने की साधना के अन्तर्गत कवि के हृदय का धारा हमेशा बना रहता है। ऐसी स्थिति में वे कविताएँ रचना को कविता होने की जगह कविता विषय कविता हो जाती है और इस प्रकार अन्ततः भाषा-विषयक कविता बन जाती है। किन्तु प्रत्येक स्थिति में कविता की संरचना वर्तुलाकार ही रहती है। इस प्रकार भाषा और विश्व के अन्तरास के संबंध ही आधुनिक काव्य का मूलधार है।"

काव्य भाषा मूलतः कवि की आन्तरिक संवेदना की अभिव्यक्ति है। यह भाषानुभूतियों की संवेदना को बहन करती है। कवि की आन्तरिक अनुभूतियाँ भाषा के माध्यम से ही उद्भूत होती हैं। उसमें प्रयुक्त किर-एक शब्द कवि की मानसिकता का परिचायक है। वस्तुतः एक सफल कवि की सफल कृति ही हो जानी चाहिए जिसके अन्दर भाषा की शुद्धता, स्थानों की भावुकता, संवेदनशीलता एवं उपयुक्तता हो। अतः भाषा संवेदना, अनुभूति कोमलता, कठोरता, भाषानुभूतियों का संग्रहण है।

वस्तुतः डॉ० धर्मवीर भारती की कृति 'कनुप्रिया' संवेदना के प्रति अर्पित है। यह संवेदना उनके काव्य को उज्ज्वा प्रदान करती है। डॉ० धर्मवीर भारती के संस्कार रोमानो होने के कारण अतः उनकी काव्य

संवेदना भी रोमानी भाव-भूमि पर अवतरित होती है जो भाँसलता एवं दर्द के पलों को लेकर चलती है। जिसमें रागात्मिका एवं काव्यनिका ने निःसुलभ संवेदना के छोर को पकड़ कर चित्रात्मकता से समन्वय किया है। डॉ० धर्मवीर भारती ने स्वयं स्वीकार किया है, "कैशोरावस्था के प्रणय, स्वासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्म समर्पणायी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहं का शमन पर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भाव भूमि को खोज मेरी इस छन्द यात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं।" 1

"कुप्रिया" में दर्द को क्रियाएँ निश्चित हैं--"सातना" और 'होसना'। यह शब्दावली अपना प्रभाव काफी गहरे तक छोड़ती है। 'यह पकतावा अब मुझे हर क्षण सातता रहता है।' 2 पर हाथ वही सम्पूर्णता तो, इस जिस्म के एक-एक टुक में धराधर टीसती रहती है। 3 'बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टीस रहे हैं' 4 और तुम क्या जानो कैसे तारे जिस्म में, आम के बीर सात रहे हैं। 5

'कुप्रिया' में भावों के रंग से रंगी हुई भाषा भी परिलक्षित होती है। जैसे- जहाँ पर लाल, सॉंदरे, गोरे, गुलाबी, चम्पई, सुनहले, उजले रंगों की चित्रात्मकता है वहाँ पर 'लाल - लाल कलियाँ' 'स्वर्णिम संगीत', 'सॉंदरी गहराई' 'श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन', 'नील जलज तन', 'श्यामल वन भातों', 'उजली पवित्र साँगे', 'गोरी अनाधृत्त धाँसे', 'चम्पक धर्णी देह', 'श्वेत रतनारे करदि' 'सॉंदले समुद्र', 'गुलाबी जिस्म', 'गुलाब तन', 'स्वर्ण धर्णी धरनों', 'हल्का गुलाबी गोरा जिस्म', 'शुभ्र उन्त पंजितियों के नीले-नीले

1. डॉ० धर्मवीर भारती : उंडा लोहा : प्रथम संस्करण की भूमिका
2. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 17
3. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 17
4. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 30
5. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 24

चिन्ह, 'नीले अवगुण्ठन,' सिन्दुरी गुलाब जैसा तुरज,' बुलायम गुलाबी यह पत्र', 'साँघरी शिथिल चाहें,' 'साँघरे तन,' इत्यादि भाषा की सुकोमलता एवं सधुरता, भाषानुमति एवं भाषामित्यर्थित परिलक्षित होती है। कहीं-कहीं डॉ० धर्मवीर भारती ने भाषा को विषयानुकूल बनाने के लिए नये शब्दों का वचन किया है, जैसे 'अन्धियारी,' 'धुंधराई,' 'अरसाँही,' 'साँघरे,' 'गधरी,' 'घाघरी,' 'कठिरियाँ,' आदि शब्दों का प्रयोग इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। इन नये शब्दों से भाषा की कोमलता ही परिलक्षित होती है।

इसके अतिरिक्त डॉ० भारती ने 'कनुप्रिया' में प्रतीकात्मक एवं चित्रवात्मक भाषा का भी प्रयोग किया है। जैसे कनु अर्द्धोन्मीलित कमल भेजता है तो राधा तमाज जाती है कि कनु ने उसे तंजा चिरियाँ बुलाया है। जब वह अगस्त्य के दो उजले कटावदार फूल भेजता है तो राधा तमाज जाती है कि कनु उसके कटावदार पंखों में महा र लगाना चाहता है। आस्र के घीर का प्रतीकार्थ है कनु राधा को उसी माँग आस्र घीर से भरना चाहता है। इसके अतिरिक्त अशोक-पुष्प का प्रतीक राधा को वंशी में ढेरने का प्रतीक, अँजुरी भर-भर खेले के फूलों का प्रतीक, माथ पर पल्ला डालो इत्यादि प्रतीकात्मक भाषा भी कृति के अनुकूल ही परिलक्षित होती है।

चित्र एवं प्रतीकों के अतिरिक्त अलंकारों का भी बहुत्य मिलता है। उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, प्रोत्तिमान आदि अलंकारों के साथ-साथ विशेषणा, विपर्यय एवं मानवीकरण का प्रयोग भी मिलता है। कुछ कभी किसी की याद में खड़ा नहीं रहता, परन्तु उसका मानवीकरण करके प्रतीकात्मक रसों का प्रयोग किया गया है। 'तीसरे प्रहर की अलसाई देला में मानवीकरण है। यह प्रकृतिपुक्त मानवीकरण है। इसी प्रकार भाव का मानवीकरण भी अद्भुत है। 'वह अस्वीकृति ही अटूट बंधन बनकर मेरी प्रणाम-वत् अंजलियों में ललाइयों में इस तरह निपट जायेगी कि कभी कुनकर ही नहीं पायेगी।'' यह साधुणिक प्रयोग का सर्वोत्तम उदाहरण है।



भय, संशय, गोपन, उदासी में सभी मनुष्य मन की प्रकृतियाँ हैं, परन्तु डॉ० भारती ने इस अमूर्त भावों का प्रतिरूपण किया है। एकजुट की कमी रोसती नहीं है लेकिन कवि ने इस भाव को मानवीकरण में व्यक्त किया है।

इसी प्रकार 'सात गीत वर्ष' में भी वेदना युक्त भाषा का प्रयोग किया है, "पुट कर मर जाते हैं विधात। प्राणों की सन्धारें जमकर हो जाती हैं सड़।" <sup>1</sup> विधात तो उन्मत्त होकर दूटते हैं मरते नहीं, और प्राणों की वेतना भी जमती नहीं है। किन्तु कवि ने यहाँ मानवीकरण का प्रयोग किया है। कवि ने शाग का भी मानवीकरण किया है 'मेघ की पुनर लपेटे हुए।' <sup>2</sup> वस्तुतः डॉ० धर्मवीर भारती मूलतः रोमांटिक कवि हैं। जैसे रोमांटिक शब्दों का प्रयोग उन्होंने 'कुनुप्रिया' में किया है। ऐसे ही रोमांटिक शब्द 'सात गीत वर्ष' में भी मिलते हैं। उनकी भाषा मानवीकरण का एक जगह-जगह दोहराती है। इसी प्रकार की भाषा 'ठंडा लोहा' में भी दिखने को मिलती है। जैसे- 'बहुत दिनों के बाद खिना चेला, मेरा आंगन भरका,' <sup>3</sup> अभी-अभी घोषन ने ली है अस्सीही जंगड़ा' <sup>4</sup> वस्तुतः कहा जा सकता है कि 'कुनुप्रिया, सात गीत वर्ष, ठंडा लोहा' का कलात्मक सौन्दर्य स्वच्छन्दतावादी चेतना से सिद्ध है।

'अंधा युग' की भाषा में जोष, तनाय, ठंडा रूप ट रूप से परिलक्षित होते हैं। 'कुचले हुए अजगर की 'xxxxx' सुखी लकड़ी - तो तोड़ डालेगी' <sup>5</sup> इसमें जोष, एवं विषय परिलक्षित होते हैं। 'अंधो प्रकृतियों की पोशाकें' शब्द यह जलते हुए लोहे की सलाखों-सा' <sup>6</sup> इन शब्दों में मानवीकरण का भाषा को व्यक्त किया है। यह शब्द मन की वेदनानुभूति व्यक्त होती

- 
- |                          |              |   |           |
|--------------------------|--------------|---|-----------|
| 1. डॉ० धर्मवीर भारती :   | सात गीत वर्ष | : | पृ० 20    |
| 2. डॉ० धर्मवीर भारती :   | सात गीत वर्ष | : | पृ० 31    |
| 3. डॉ० धर्मवीर भारती :   | ठंडा लोहा    | : | पृ० 16    |
| 4. डॉ० धर्मवीर भारती :   | ठंडा लोहा    | : | पृ० 24    |
| 5.6. डॉ० धर्मवीर भारती : | अंधा युग     | : | पृ० 19.24 |

है।

‘अंध चर्वर पशु,’ ‘भूरे पंजे,’ ‘घुड़े निहत्थों,’ ‘जर्जर,’ ‘गहरी पीड़ाओं’  
‘टूटी बांधों,’ ‘टूटी कोहनी,’ ‘टूटी गर्दन,’ ‘रत्नरंगी घुमा,’ ‘कच्चे आमों की,’  
‘गुठली जैसे उछल गर,’ ‘काले-काले थकनों की,’ ‘अगिर्जन,’ ‘विह्वल अदृढहास,’  
‘युग युगान्तर,’ ‘कलुषित छाया,’ ‘अर्द्धसत्य,’ ‘कर्मादि,’ ‘आदि भावों को  
मूर्त रूप प्रदान किया है। जो युद्ध की आसदी को पूर्णतः व्यक्त करने में  
सफल हुए हैं। डॉ० केदार नाथ सिंह की काव्य भाषा में उजास, शक्ति एवं  
कल्पना तीनों का चिह्न है। जो कम ही लोगों के काव्य में परिलक्षित  
होता है। उन्होंने भाषा को चिम्ब एवं प्रतीकों के माध्यम से उजागर  
किया है। ‘आलू’ की तरह खीता हुआ व्यङ्ग्य, ‘लोकेट की तरह अपनाता  
हुआ रोटी, ये मानव-विरोधी शक्तियों को रूप में भाषा का उजास हुआ है।

‘ताजे पर रखी हुई रात की रोटी’<sup>1</sup> में यथार्थवादी चिम्ब उमरा  
है। जो हृदय के मर्म को छूता है। ‘जमीन अपने कपड़े उतार रही थी’<sup>2</sup> में  
मानवीकरण अलंकार स्पष्ट होता है, क्योंकि जमीन कपड़े नहीं पहनती उसे  
कपड़े तो पेड़-पौधे हैं। ‘शब्द कहीं पक न गये हों’<sup>3</sup> शब्द अभी पकते नहीं  
हैं वरन् विकृत होते हैं। ‘शब्द अजनब गायब हो जाते हैं’<sup>4</sup> शब्द गायब  
नहीं होते, खामोशी व्याप्त जाती है। टमाटरों के अन्दर छिपे सही नदियाँ  
हैं<sup>5</sup>। ‘जिती खीते हुए पेड़,’ ‘छोर हुए घर’<sup>6</sup> घर जिज्ञासा एक रेलवे  
लाइन ट्रेल से,<sup>7</sup> नदी पर छपन लगती है।<sup>8</sup> में घास भरे मैदान की  
तरह फैला जा रहा हूँ,<sup>9</sup> यह भाषा केदना की अभिव्यक्ति देती है।

- |                          |   |                |   |            |
|--------------------------|---|----------------|---|------------|
| 1. डॉ० केदार नाथ सिंह    | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 9      |
| 2. डॉ० केदार नाथ सिंह    | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 12     |
| 3. डॉ० केदार नाथ सिंह    | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 14     |
| 4. डॉ० केदार नाथ सिंह    | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 29     |
| 5. डॉ० केदार नाथ सिंह    | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 32     |
| 6. डॉ० केदार नाथ सिंह    | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 42     |
| 7. डॉ० केदार नाथ सिंह    | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 45     |
| 8. 9. डॉ० केदार नाथ सिंह | : | जमीन पक रही है | : | पृ० 53. 81 |

उसके विम्ब पूर्णतः नवीन है। इस भा ॥ में सर्वहारा एवं मजदूर वर्ग की गुंज सुनाई पड़ती है। अतः कहा जा सकता है कि डॉ० सिंह की भाषा श्रौतिकारी भाषा है जो दूसरों के अन्दर उत्तेजना भरती है, उठने की शक्ति प्रदान करती है।

डॉ० केदार नाथ सिंह की भा ॥ में विम्ब-प्रतीक इन शब्दों के द्वारा व्यक्त होते हैं, 'आदमी के खून,' गले तथा मुस्तंड आदमी के भविष्य में, 'उसकी खानी का जरा सा छिलना,' 'भिदटी अपने नाखूनों से तुरप रहा था,' 'एपट्टा' 'गली कुछ दूर तेरा भागती जाती है,' 'सिप-सिप सिप सिप,' 'वायु मण्डल के स्तंभों पर,' 'उदास छाका,' 'जिरह के बीचो-बीच एक गधा,' 'तुम्हारे नाखूनों की तरह सख'। आदि शब्द--वाक्य प्रतीकार्थ रखते हैं। ये विम्ब-प्रतीक नवीन हैं।

भाषा के संदर्भ में स्वयं डॉ० केदार नाथ सिंह ने अपने काव्य संग्रह में कहा है :

'दो लोग तुम्हारी भाषा में से आते हैं। कितने गहरों की धून और उच्चारण।' १

'तुम अपनी बात/ अपनी भाषा की सारी ताकत के साथ/ कह सकते हो।' २

'और भाषा भी मैं बोलना चाहता हूँ / मेरी विजय पर नहीं/बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में/ सटी हुई है।' ३

भाषा सब कुछ कह लेने के बाद भी एक सादे पन्ने की तरह अनकही लगता है। यही आभास कविता देती है।

'कविता यही करती है / यही सोचा नगर जो छिप भरा काम/ कि सारे शब्दों के बाद भी/ आदमी के पास हमेशा बचा रहे। एक सादा पन्ना।' ४

1. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 31

2. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 35

3. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 46

4. डॉ० केदार नाथ सिंह : जमीन पक रही है : पृ० 95

वस्तुतः कविता की भाषा को कवि ने एक अनङ्गुली प्यास के समान माना है, जिसे जितने शब्दों में व्यक्त करो, तृणा अधूरी ही रहती है। डॉ० नामर सिंह के शब्दों में, "कविता में मौन की सभी स्थितियाँ पराजय और समझाति की स्वीकृति नहीं होती। ध्रुव की प्रत्यया के तनाव की एक स्थिति यह भी होती है जब टंकार की ध्वनि उग्र हो जाती है। \* \* \* इस मौन को व्यक्त करने वाली काव्य-भाषा में खोफनाक ताकत होती है।" वस्तुतः जाँ, विद्रोह की बात है, नवीनता की बात है, वहाँ स्वच्छन्दतावादी कृत्ति ही अभिव्यंजित होती है।

कवि त्रिलोचन जी की काव्य भाषा में बिम्ब, प्रतीक के साथ-साथ व्यंग्य भी मिलता है। यह व्यंग्य सामाजिकता एवं रणनीति के अंग है। वस्तुतः त्रिलोचन जी की भाषा जनसाधारण के अधिक निकट है। इसमें मौन-बाल के शब्द ही पाठक को प्रभावित करते हैं। जैसे—'जोमें,' 'सहार,' 'पीड़ी,' 'टसार्ड,' 'ताळे,' 'धुआधार,' 'दृष्टा कुवेर,' 'आसहर,' 'ठेला,' 'घातें,' 'कुदकते,' 'ओठ-ओठ,' 'धमोनी बंधी,' 'दूसे,' 'छहरा छहरा,' 'इयामता,' 'गोड़ा,' 'वैतारों,' 'हूती,' 'टाट-घटाई-टीनों,' 'सतुआ,' 'पितान,' 'प्याऊ,' 'नदी-बेदी,' 'नळे,' 'मोड़-मड़का,' 'उराना,' 'दाताराम,' 'सुलळे,' 'पनीला,' 'मंसुवा,' 'रमिया-बुधिया,' 'कोराती,' आदि शब्द जन चेतना से सिद्ध हैं। अतः इनमें लोक-संस्कृति स्पष्ट झलकती है। यह शब्द प्रचलित होते हुए भी वाक्य में नया अर्थ अभिव्यंजित करते हैं। श्री त्रिलोचन जी के काव्य में रोमांटिक शब्दावली भी परिलक्षित होती है। उदाहरणतया—'ओठ-ओठ,' 'निहारते,' 'वेगवती,' 'दाँड़ते हुए छिरन,' 'आभा,' 'सँजि गुलाबी,' 'सुहाने लाल फूल,' 'खेती कलोलती,' 'साँवला उजाला,' आदि शब्द रोमानियत का ही आभास देते हैं। इनमें रोमांटिकता तो है परन्तु भाँसल चेतना नहीं।

कहीं-कहीं भाषा का मानकीकरण स्व भी परिलक्षित होता है।

‘ सॉरि ’ गुलाबी कपि रही है उंड ते’<sup>1</sup> सॉरि नहीं कपिती किन्तु हवा चलने से ऐसा महसूस होता है।<sup>2</sup> राहें उदास देखती हैं<sup>3</sup> राहें उदास न होकर हुनसान रहती हैं। अतः यहाँ राह का मानवीकरण बढ़ा दिया है। ‘ ऊआ एक ही छा के लिए हँसी ’<sup>4</sup> ऊआ कभी भी नहीं हँसती बल्कि मनुष्य सुख-दुःख की अनुभूति में हँसना एवं रोना महसूस करता है। फलतः इन शब्दों में कवि ने मानवीकरण बढ़ा दिया है।

‘ ‘ अछेय ’ जो ने भाषा के संदर्भ में कहा है, ‘ ‘ हर भाषा को अपनी एक गन्ध होती है। अगुरु-धूस के धूस से गन्ध युक्त। भाषा मेरी साध्य नहीं है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मुझे बाजार की परपरी या नाली को सड़ी गन्धों से गन्धाती भाषा की खोज है— या कि उस के प्रति मेरी स्वीकृति भी है। कुली हवा को भी एक गन्ध होती है - - देहाती हवा की सौंधी या वनछंडी से आते हुए ठोंकि की तीखी महक- और मैं नहीं मानूँगा कि शहर में केवल सीसन और घुटन ही होती है जिस से केवल बहुत दिनों की दबी हुई सीसन से गन्धाती हुई भाषा ही शहरी यथार्थवाद की भाषा हो सकती है। शहर में भी लकड़ी घिरती है, पीड़-देवदार की लकड़ी, जिस की ताजा पिराई से पैड़ की अस्थि-मज्जा भी दीख जाती है, और गन्ध से वातावरण में जाता है। ताजा घिरी हुई लकड़ी की गंध जिस में मिले, ऐसी भाषा ..... ।’<sup>4</sup>

ऐसी हो जाती लकड़ी की सौंधी सुगन्धित भाषा ‘ अछेय ’ जो की है। जिसमें नवीनता एवं कौतूहल विद्यमान है। जो अपनी तरफ आकर्षित करने में सक्षम है। यह सौंधी सुगन्ध वाले शब्द हैं, ‘ सिहरते चुकाते,’ ‘ भग्न गुम्बद,’ ‘ दुर्घर कुहासे,’ ‘ हलाहल-स्निग्ध,’ ‘ प्रहर्षित देह,’ ‘ अनएजी परती,’ ‘ देह्य’ उदीया,’ ‘ उदग्ग,’ ‘ अनामय निर्विकार,’ ‘ काइते आकाश,’ ‘ दामिनि-मृत,’

---

|             |   |        |   |        |
|-------------|---|--------|---|--------|
| 1. त्रिलोचन | : | अर्थान | : | पृ० 31 |
| 2. त्रिलोचन | : | अर्थान | : | पृ० 35 |
| 3. त्रिलोचन | : | अर्थान | : | पृ० 36 |
| 4. ‘ अछेय ’ | : | अन्तरा | : | पृ० 14 |

‘ क्लिन्न सुनी,’ ‘ प्रलय-स्वर,’ ‘ तुलित शान्त,’ ‘ तम-शान्त,’ ‘ उदुमान्त,’  
 ‘ आलोडित,’ ‘ औत्सुक्य-सजग,’ ‘ समाप्ती साधि,’ ‘ नीहार -न्हायी कुई,’  
 ‘ मदमाती उन्मादिनी,’ ‘ दुर्दान्त पुकार,’ ‘ उत्तम्वबाहु,’ ‘ रन्ध्र-रन्ध्र,’  
 ‘ सुार नीरन्ध्र मृषा,’ ‘ पिघलती,’ ‘ सुलगन,’ ‘ स्पृ ट,’ ‘ अमृत,’ ‘ प्रप्रजित,’ आदि  
 शब्द नदीन अर्थ व्यक्त करते हैं। यह नदीनता ही ‘ अण्डेय’ जी की ताजी  
 लकड़ी की सौधी सुगन्ध के सामान है।

विम्बात्मक एवं प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग भी ‘ अण्डेय’ जी  
 के काव्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है :

‘ ‘ फिर-फिर मुद्राङ्कित हों ’ ’ यह अनुभूति के माध्यम से ही एक  
 चित्र अनेकों में बदलता है। ‘ लौट/लौट चले/पाँव-पाँव/ मन को वहीं/वही  
 देहरी पर छोड़ चले ’ <sup>2</sup> यहाँ वेदना एवं दोनों स्पष्ट रूप से परिलक्षित  
 होते हैं। ‘ मेरे भीतर की भटकन ’ <sup>3</sup> इसमें अवसाद-विषाद की स्थिति है।  
 जो विम्ब धारणा बिस् है। ‘ छँवर आग है ’ <sup>4</sup> छँवर आग नहीं है किन्तु  
 आस्था-अनास्था में वह तुलनाता है। अतः यहाँ प्रतीकार्थ है। बँधा हूँ  
 बिखरा हूँ बिछेरता हूँ, सुलूंगा, सिमटूँगा, समेटूँगा । ’ <sup>5</sup> प्रत्येक शब्द  
 विम्ब की अनुभूति सहज रूप में देता है। ‘ नंगी छली छाली पर नीछ ’ <sup>6</sup>  
 छली नंगी नहीं होती परन् अकेली हो सकती है। छुप-चाप, छुप-चाप हरने  
 का स्वर ’ <sup>7</sup> यह कोमल विम्बात्मक भाषा है।

- |    |        |   |                       |          |
|----|--------|---|-----------------------|----------|
| 1. | अण्डेय | : | नदी की बाँक पर छाया : | पृ० 72   |
| 2. | अण्डेय | : | नदी की बाँक पर छाया : | पृ० 18   |
| 3. | अण्डेय | : | अन्तरा                | : पृ० 70 |
| 4. | अण्डेय | : | अन्तरा                | : पृ० 28 |
| 5. | अण्डेय | : | आगन के पार- दार       | : पृ० 25 |
| 6. | अण्डेय | : | अरी ओ उल्ला प्रभामय : | पृ० 77   |

‘सुनी ली लॉक एक’<sup>1</sup> में कवि ने मानवीकरण उड़ा दिया है क्योंकि लॉक सुनी नहीं होती बल्कि वेदना युक्त अनुभूति से वातावरण सुना प्रतीत होता है। ‘मुग्ध मिट्टी’<sup>2</sup> में भी मानवीकरण हुआ है, मिट्टी मुग्ध नहीं होती बरन् मिट्टी के ऊपर मुग्ध हुआ जाता है। ‘छीं गुरों की लोरियाँ’ ‘ओपदे हिंडोलों ली घुला रही है’<sup>3</sup> तथा चेतना अन्तर्मुखी स्मृति-मीन होती है।<sup>4</sup> में कलात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है।

‘असाध्य बीणा’ में मीन रूप में भी मुखर हो उठती है। क्योंकि प्रारम्भ में और अन्त में सर्वथा व्याप्त आसक्ति ही है, जिससे वेदना निकलती है। डॉ० नामवर सिंह ने इस मीन को-शैत-अशैत के रूप में कामायनी से सम्बन्धित करके कहा है, “जिस प्रकार ‘कामायनी’ का प्रारम्भ और अन्त दोनों ही हिमालय में होता है, उसी प्रकार ‘असाध्य बीणा’ का भी आदि-अन्त दोनों ही मीन में होता है। x x x x आकस्मिक नहीं कि ‘असाध्य बीणा’ का मीन भी हिमालय के समान ही स्थिर, घिराद और हिम-गीतन है। वस्तुतः ‘असाध्य बीणा’ जिस वज्र किरिटी तरु के दारु से बनी है उसको जन्म भूमि हिमालय की ही उपस्थिति है। मीन की इस स्थिर भूमि से ही व्यापक जीवन की हलचल की अनेक घटनाएँ निःसृत होती हुई दिखायी गयी हैं।”<sup>5</sup> भाषा के सन्दर्भ में डॉ० सिंह का पुनः कथन है, “एक ही निष्प्राण चेतना भाषा से लेकर भाव के स्तर तक-कथन से कथ्य तक आसोपान्त व्याप्त है। भाषा की यह असाध्यता नैतिक असाध्यता का पर्याय है। इस प्रकार ‘असाध्य बीणा’ का मीन अपनी सारी वर्णन-चातुरी, नाटकीयता और शब्द-प्रयोग-सम्बन्धी सतर्कता के बावजूद आधुनिक परिष्कार के साथ एक समझौते का सुवर्ण है।”<sup>6</sup>

1. ‘अशेष’ : अश्विन के पार-टार : पृ० 27

2. अशेष : सर्वन के क्षण : पृ० 29

3. अशेष : सर्वना के क्षण : पृ० 66

4. अशेष : सर्वना के क्षण : पृ० 37

5.6. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 108

श्री गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की भाषा चिन्मात्मक है। यह अनेकों विम्वर हमारे मस्तिष्क में उडेलती चलती है। अथवा कहा जाए कि जिस प्रकार चित्रकार के चित्र को देखकर चित्रस्थिति का पता लगता है उसी प्रकार 'मुक्तिबोध' की ही भाषा अपना आकार स्वयं बना लेती है। मुक्तिबोध की भाषा में छद्मछाया भी मिलती है। किन्तु कथ्य के शिल्प में यह अपने आप छिप जाता है। श्री जम्मोर बहादुर सिंह का कथन है, "मुक्तिबोध की कविता, अद्भुत संकेतों-भरी, जिज्ञासाओं से अस्थिर-कभी दूर से ही गौर मचाती, अभी कानों में गुपचाप राज की पार्श्व कहती चलती है। हमारी बातें हमों को सुनाती हो और हम अपने को एक दम वंचित होकर देखते हैं, और पहले से और भी अधिक पहचानने लगते हैं।" किन्तु डॉ० नामदर सिंह ने 'मुक्तिबोध' की आरम्भिक भाषा को अद्भुत-छाया बताया है। शब्द चयन की दृष्टि से मुक्तिबोध की काव्य भाषा काफी अद्भुत-छाया लगती है घोल-चाल के साधारण शब्दों के बीच कुछ इतने अजनबी समासपद संस्कृतनिष्ठ शब्द आ जाते हैं कि ज्ञान लड़खड़ा जाती है।<sup>2</sup> वस्तुतः मुक्तिबोध की भाषा अद्भुत-छाया होते हुए भी आन्तरिक अनुभूतियों को छल्लोरने में काफी समर्थ है। उसमें मनोवैज्ञानिकता यत्र-तत्र छिपरी हुई है। उनकी अनुभूतियाँ, वेदनामयी, संक्रासमयी है, यही अंतर उनकी अद्भुत-छाया भाषा का कारण है। किन्तु उसमें जो विम्वर उत्पन्न होते हैं वह किसी अन्य के काव्य में उत्पन्न नहीं होते। अतः भाषा में जब मनोवैज्ञानिकता जाती है तो आधुनिकता से स्वतः जुड़ जाती है, आधुनिकता से जुड़ने के फलस्वरूप ही यह स्वच्छन्दतावादी चेतना से व्यंजित होती है। वेदनामयी तथा संक्रासमयी भाषा व्यंजित की अन्तः मन से जुड़ी हुई होती है। इसलिये इसकी आन्तरिकता स्वच्छन्दतावादी भाषा होती है।

'आँखें चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर की' <sup>3</sup> यह सही है कि चिलचिला रहे

1. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है : पृ० 20

2. डॉ० नामदर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 107

3. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है : पृ० 29



फासले' 1 अति-प्रफुल्लित कण्टकित तन-मन वहीं' 2' मैं मन्त्र की मित-सा  
भूमि में गड़ा सा' 3' मानों हृदय में छिपी हुई धातों ने सहसा अगिरे से  
बाहर आ भुमार पतारी हों' 4' विद्वत् सभ्यताओं के लोभी संयामक। मानव  
की आत्मा से सहसा कुछ दानव और निकल आये।'' 5 मुझे पुकारती हुई  
पुकार खो गयी कहीं... आज भी नवीन प्रेरणा यहाँ न मर सकी, न जी  
सकी, परन्तु वह न डर सकी।' 6 इस भाषा में आन्तरिक अनुभूतियाँ स्पष्ट  
लक्षित होती हैं। यही आन्तरिक अनुभूतियाँ मनोवैज्ञानिक खनती हैं। वस्तुतः  
आधुनिक भाव-बोध तत्तः मुखरित होता है। आधुनिकता से ही नयी कविता  
की पहचान उभरती है।

कवि श्री नागार्जुन' जो की भाषा में सामाजिक एवं राजनीतिक  
चेतना मुखरित हुई है। मूलतः वह जन साधारण के कवि रहे हैं। अतः  
जन साधारण की जो कठिनाईयाँ हैं उन्होंने सहज रूप व्यक्त किया है। जन-  
साधारण से जुड़े होने के कारण लोक-संस्कृति भी अग्रत्यय रूप में दिखलाई  
पड़ती है। डॉ० रामधिराज शर्मा का कथन है, 'उनकी कवितारें लोक-संस्कृति  
के इतना बजदीक हैं कि उसी का एक चिह्नित रूप मान्य होती है। किन्तु  
ये लोकगीतों से भिन्न हैं, सबसे पहले अपनी भाषा-छंदी बोली के कारण,  
उत्तरे बाद अपनी प्रखर राजनीतिक चेतना के कारण और अन्त में खोल-पानक  
की गति और लक्ष्य की आधार मानकर नये-नये प्रयोग के कारण।'' 7

उनकी काव्य भाषा में मानवीकरण मिलता है, 'कुपित त्वरों'' 8

1. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है' : पृ० 32
2. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है' : पृ० 37
3. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है' : पृ० 50
4. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है' : पृ० 55
5. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है' X पृ० 70
6. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : यदि का मुँह टेढ़ा है' : पृ० 89
7. डॉ० रामधिराज शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद : पृ० 140
8. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या : ऐसे भी तुम क्या : पृ० 9

स्वर कुपित नहीं होते वरन् मानव की कुपित होकर बोलता है। इसके अतिरिक्त नागार्जुन जी की भाषा में विम्ब-प्रतीक भी परिलक्षित होते हैं : राजनैतिक विम्ब शब्दों माध्यम से बनाये हैं 'ठ', 'त', 'प', 'ज' इन शब्दों से विम्ब एवं प्रतीक काम चढ़ाई लिया है, 'श्रुति, समता, प्रगति, जनवाद, में विम्ब, प्रतीक के साथ-साथ विद्रोह भी उभरा है।' वे हमें दोर-डंगर की तरह उण्डे दिखा-दिखाकर हाँकें'' सुरक्षित अंधकार के ये अंधन ' ' रेशमी तिनरंगा गद्दी में वेचन्द ' 2 काले-काले गुरु रंग'' काली-काली करतूत ' 3 ' साधनी बदलिया ' 4 ' ऊषा जी लाली में अभी से गये निखर हिमगिरि के एक शिखर ' 5 ' नखत हुए उदात्त खसिता है चाँद गगन के बीचोंबीच हाँफता है चाँद ' 6 गिरता-बढ़ता लड़खड़ाता सार की बुँदों के तार टपकाता, ' 7 ' 'वह लम्बे काँठ की तरह पड़ा रहता हैसारा दिन सारी रात ' 8 ' पुलक रहे हैं राम रोम स्पर्श के प्रभाव से ठित तरह ' 9 छोटे-छोटे मोती जैसे दाँतों की किरणें घिरेर कर नील कमल की कलियों जैसी आँखों में भर अनुनय सादर, ' 10 'तोंपजी भाक छोड़ रहें हैं ज्यामितीय आकृतियों में कैसे हुए छे ' 11 आदि वाक्य प्रकृति विम्ब, रोमानी विम्ब, राजनैतिक विम्ब, सौन्दर्य विम्ब

1. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या। : पृ० 27
2. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या। : पृ० 33
3. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या। : पृ० 34
4. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या। : पृ० 40
5. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या। : पृ० 44
6. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या। : पृ० 45
7. नागार्जुन : खिड़की विप्लव देखा हमने : पृ० 55
8. नागार्जुन : खिड़की विप्लव देखा हमने : पृ० 30
9. नागार्जुन : पंहीन नग्न गाँधि : पृ० 15
10. नागार्जुन : पुण्डरीक : पृ० 108
11. नागार्जुन : आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने : पृ० 33

नागार्जुन के वाक्य में स्पष्ट रूप से भाषा के माध्यम व्यक्त हुए हैं। श्री गिरिजा कुमार माथुर जी भाषा में स्वच्छन्दतावादी भाषना रोमांटिक विन्ध प्रतीक एवं प्रगोत माध्यम से अभिव्यंजित होती है। श्री गिरिजा कुमार माथुर जी नये उद्दिष्ट के उदिय हैं। किन्तु रोमानीयन उनमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो जाता है। अतः उनका भाषा में मांसल, क्षी रोमांस के दर्शन नहीं होते, इसी विशेषता के कारण वह नयी कविता में प्रतिष्ठित होते हैं। रोमांटिक एवं विन्ध-धर्मी शब्द हैं : 'रंगीन पुष्पन,' 'लज्जित तप्तवीर,' 'सेमली दिमाग,' 'रेशमी ठोह,' 'वंदन चाँदनी,' 'मोठी लकीरे,' 'संदली चाँदनी,' 'सुनसान आकाश,' 'उदास छाया,' 'गीली राहें,' 'भीगा दिन,' 'बोहिल उजियाले,' 'गोरज लहरों,' 'छिगमिगी अंगुष्ठ,' 'सँविलो लकीर,' 'शरयती मेहू,' 'रेशमीन देहरों,' 'हरी धूम,' 'अमलतासी उजास,' 'हिरनी चाँदनी,' 'लोहांगी गिलास,' 'पिया ललानी,' 'दिवनार,' 'निहोर,' 'अपिरा,' 'जान अनरित,' आदि शब्द उनकी भाषा को चमत्कृत कर निखारते हैं। यह शब्द अकेले विन्ध बनाने में भी समर्थ हैं और स्वच्छन्द प्रकृति का भी आभास देते हैं।

' नयन नाभिम् स्नेह दीपित / मुग्ध भित्तन तन गन्ध सुरभिः/उत्त  
नुकीले वध जी/ वह कुपन, उकसन, बुभन अनतित''<sup>1</sup> यहाँ पर  
भाषा भी स्वच्छन्द है तथा बिम्ब भी भाषा के कलाव से नवीन है।' अब  
तब जो युग भी देख जरा मुस्कायी अनगित वसन्त की रंग-गन्ध उठ आयी।''<sup>2</sup>  
' तुम्हारे आते ही मेरे कमरे चारंग गोरा हो जाता है हर आँखने ल  
पेहरा प्यारा। हो जाता है हर चीज पर पड़ता अवत तेज हो जाता है हर  
मामूली शब्द मुसकराहट बन जाता है।''<sup>3</sup> आदि वाक्यों में भाषा का बिम्ब  
के माध्यम से उभरा है।

1. गिरिजा कुमार माथुर : धूम के धान : पृ० 49
2. गिरिजा कुमार माथुर : धूम के धान : पृ० 98
3. गिरिजा कुमार माथुर : भीतरी नदी की यात्रा : पृ० 5

स्यध्वन्वतावादी भाषा की विशेषता है वह भाषा मानवीकरण करके प्रस्तुत करती है। अतः यह भाषा का यह मानवी स्वर गिरिजा कुमार माधुर जी के काव्य में भी परिलक्षित होता है।

‘जुसुई शाम’<sup>1</sup> शाम ज़ुसुई नहीं होती वरन् सुख अनुभूति में लगती है। ‘‘कॉपती-सी चाँदनी’’<sup>2</sup> चाँदनी नहीं चापती वरन् हँस की अनुभूति से ऐसा लगता है। ‘चाँदनी हुई लाल से लाल’<sup>3</sup> ‘‘उत्ती उनी-सी पतली चाँदनी में’’<sup>4</sup> समुद्र की अनारत लक्ष्मी तटों को तरह, ‘‘चाँदनी के झुले तन पर है न कोई धस्त्र भीतर पहिन कर वह हवा की पारीक लहरोंदार घुनर’’<sup>5</sup> इत्यादि शब्दों में मानवीकरण है। वस्तुतः चाँदनी लाल से लाल नहीं होती, उनी चाँदनी नहीं होती, समुद्र में ठंडी लहरे उठती हैं, आदि भावाभिव्यंजनार्थ भाषा का मानवीकरण हो करती है।

श्री नरेश मेहता ने भाषा में वैदिक और औपनिषदिक शब्द देकर उसे और भी समृन्धत बनाया है। ‘‘वल्लभः’’, ‘‘अभिषेकः’’, ‘‘मिष्टिरः’’, ‘‘अवत्यः’’, ‘‘दीर्घर्णीः’’, ‘‘कुलि पात्रः’’, ‘‘अनुब्रुषः’’, ‘‘विशाखा’’, ‘‘प्रतिवृत्तः’’, ‘‘वृत्तिव्यः’’, ‘‘वर्षसः’’, ‘‘निर्माल्यः’’, ‘‘अहोरात्रः’’, ‘‘ज्ञानः’’, ‘‘आरण्यकः’’, ‘‘उपजीव्या’’, ‘‘रेतसः’’ आदि शब्द मेहता जी की ही परम्परा है। इनकी भाषा में विशेषण जैसे शब्द भी मिलते हैं। उदाहरणतया ‘‘सहितः’’, ‘‘अस्मितः’’, ‘‘हिसलपितः’’, ‘‘ओसवतीः’’, ‘‘उदितः’’, ‘‘कृतपितः’’ आदि।

श्री नरेश मेहता जी की भाषा में विन्य दिये हैं :

‘‘संज्ञ का तुल्युट/छे गुपचाप भीमे गाछ/ राठ रंग के दही जैसा मेघ का परिवार / अब वरसकर हो गया गुपचाप।’’<sup>7</sup>

1. गिरिजा कुमार माधुर : छायामत छुनामन : पृ० 18
2. गिरिजा कुमार माधुर : छायामत छुनामन : पृ० 26
3. गिरिजा कुमार माधुर : छायामत छुनामन : पृ० 36
4. गिरिजा कुमार माधुर : छायामत छुनामन : पृ० 39
5. गिरिजा कुमार माधुर : भीतरी नदी को यात्रा : पृ० 15
6. गिरिजा कुमार माधुर : धूँ के धान : पृ० 54
7. नरेश मेहता : नयावी सुनो : पृ० 23

परिचय की गगन धिड़की के उस नील धुले शीशों पर / आज की बीमार  
छुड़ी / साँह की ये रौशनियाँ / पीले टिणर की तरह / फैल रही, फैल गयीं'' ।

इन पंक्तियों में भाषा धिम्ब के साथ-साथ स्वयं ही मुखरित होती है।  
भाषा का मानवीकरण भी इसी प्रकार प्रस्तुत है :

‘ तुनगियों पर कपोती- सी चाँदनी अलसा रही थी’ 2

देव कन्याओं सी हिम फिसल रही है, चाँदनियों की पारदर्शिका  
मसमल में’ 3 यह स्पष्ट मानवी है।

श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी की भाषा श्रौतिकारी होने से  
स्वच्छन्दतावादी है। उनकी भाषा ने धिम्ब एवं प्रतीक में नवीनता का  
समावेश किया है। उदाहरणार्थ : ‘ फिर भी स्मृतियाँ। आज की तरह धक्का  
रही हैं’’ 4 यह भाषा धिम्ब तो देती है किन्तु आज की तरह धक्का कर  
ढोसलता उत्पन्न करती है। ‘ चाँद गीले बादलों में तो रहा है चाँदनी को  
कुछ नशा सा हो रहा है।’’ 5 ‘ चाँदनी से कहा थोड़ा और पिघले’ 6  
‘ सलमें-सितारों की कामवाली नीली मछल का खोल चढ़ा अमर का धरा  
सिंदोरा उलटा धरती पर’ 7 ‘ सुबह की धूप भीगे जख्मों सी निरन्तर  
जाँघों से बीमार हँसी-हँसती कपिली, धरधराती ठण्डे सितारों के  
सिंघाड़े का रही है।’’ 8 छड़-छड़ करता कड़ा नाच रही विप्लव हवा, 9

---

|                             |                  |     |       |
|-----------------------------|------------------|-----|-------|
| 1. नरेश मेहता               | : कनपाखी सुनो :  | पृ० | 18    |
| 2. नरेश मेहता               | : कनपाखी सुनो :  | पृ० | 18    |
| 3. नरेश मेहता               | : महाप्रस्थान :  | पृ० | 33    |
| 4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना   | : जंगल का दर्द : | पृ० | 9     |
| 5.6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना | : कविताएँ एक :   | पृ० | 57-58 |
| 7. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना   | : कविताएँ एक :   | पृ० | 62    |
| 8. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना   | : कविताएँ एक :   | पृ० | 205   |
| 9. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना   | : कविताएँ एक :   | पृ० | 225   |

खोल कुन्तल धने धुधों के पार्श्व में चुप-चाप पड़ा है ताल' <sup>1</sup> 'हून गिरी  
 मुझ पर अजगर-सी ठंडी एक लपेट ने' <sup>2</sup> यह विन्वात्मक भाषा कोमल  
 एवं स्वच्छन्दतावादी है। श्री सर्वेधर दयाल सक्सेना जी ने भाषा के  
 माध्यम से मानवीकरण का प्रयोग भी किया है : 'यह धुंधी-धुंधी साँझ' <sup>3</sup>  
 धुंधी साँझ में मन की अनुभूति ही अभिव्यक्त हुई है। इसी के साथ प्रतीकाधि  
 भाषा का भी प्रयोग किया है, 'चार नयन मुत्काये, छोटे भीगे फिर  
 पथराये' <sup>4</sup> 'तनी हुई मुद्रियाँ' <sup>5</sup> 'छोने बादलों से धर-धरकर रंगों  
 का नदी के जल में' <sup>6</sup> इसके अतिरिक्त रोमांटिक शब्दावली का प्रयोग भी  
 दिखाई पड़ता है। 'रंगों में नहा जाना', 'गहरे पड़ते-उतरते', 'मुझे घूमो',  
 'कपोल', 'अधर', 'चिड़क', 'उछली हुई साँझ', 'झोरे', 'नशा', 'गुदगुदी',  
 'पिक्के', 'आमनी', 'देसीत-डाती', 'कलगी', 'थरथराती', 'तन्द्रालस',  
 'पतले होंठ' यह ठीक की रोमांटिक शब्दावली को ही प्रकट करते हैं।

श्री केदार नाथ अग्रवाल जी की काव्य भाषा सादा सरल भाषों  
 में व्यक्त हुई है। 'केदार छडीकतों को लीये-सादे शब्दों और छन्दों में  
 मुक्त छन्द के भी अंदाज में— छुनी और छुमती हुई ठेठ लीची उपमाओं के  
 साथ व्यक्त कर देते हैं।' <sup>7</sup> विन्वात्मक भाषा भी लीये-लीये ही व्यक्त  
 की है। जैसे : 'शिशिर निशा के दुर्दम धीरे तिमिर में, यह परदेशी भारी  
 लम्बा कोहरा' <sup>8</sup> 'लहर-लहर को छूकर, कस कर सागर, तर तरिता में बस  
 कर करता प्रतिफल प्रतिफल नर्म' <sup>9</sup> यदि की गागर निशा के शीश पर है।

- |                           |               |         |
|---------------------------|---------------|---------|
| 1. सर्वेधर दयाल सक्सेना : | कवितारें दो : | पृ० 34  |
| 2. सर्वेधर दयाल सक्सेना : | कवितारें दो : | पृ० 143 |
| 3. सर्वेधर दयाल सक्सेना : | कवितारें एक : | पृ० 26  |
| 4. सर्वेधर दयाल सक्सेना : | कवितारें एक : | पृ० 30  |
| 5. सर्वेधर दयाल सक्सेना : | कवितारें एक : | पृ० 248 |
| 6. सर्वेधर दयाल सक्सेना : | कवितारें एक : | पृ० 204 |
| 7. केदार नाथ अग्रवाल :    | गुलमेंदही :   | पृ० 5   |
| 8. केदार नाथ अग्रवाल :    | गुलमेंदही :   | पृ० 24  |
| 9. केदार नाथ अग्रवाल :    | गुलमेंदही :   | पृ० 104 |

चदिनी का रोप्य अचल भूमि पर है।'' 1'' तोने का रवि डूब गया  
 है केन बिनारे, नीचे जल में डोब रहे हैं नन्हें तारे'' 2 चदिनी के घर  
 सिती ने छोट डाले, और वह आकाश से उतरी धरा पर रो रही है।'' 3  
 अब भी, आ कर, धेर धेर लेते हैं दादल सूरज का मुछ-मण्डल।'' 4  
 ' विपद के घट-बुध के जैसे छिछर पर चाँद चढ़ कर'' 5 ' धीरे से पाँच  
 धरा धरती पर फिरनों ने, मिट्टी पर दाँड़ गया लाल रंग तलुओं का।'' 6  
 । इत्यादि शब्द चिम्पों का ही स्वभाव कराते हैं। यह भाषा उपमा,  
 व्यर्थों के माध्यम से न वह कर कवि ने सीधे-सरस भाष में व्यक्त किया  
 है। किन्तु इसकी अभिव्यक्ति कम नहीं है। जो गरिमा व्यक्त और  
 उपमाओं के माध्यम से होती थी, वैसी ही गरिमा कवि ने दर्शायी  
 है। मानवीकरण जो भी सरस भाषों की अभिव्यक्ति मिली है :

'' नयी एक नौबतान दीठ लकी है'' 7 वस्तुतः नयी  
 कविता के कवियों में यह विशेषता है कि वह अपने अभिव्यक्ति पुन-  
 फिरा कर न करते सीधे तब में अभिव्यक्त करते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी  
 भाषा की विशेषता है वह चिम्प-श्रुतीक एवं अलंकारों से सज्जित रहती है।  
 अतः नयी कविता के कवियों में भी जहाँ-जहाँ उस प्रवृत्ति की लसक  
 मिल जाती है। इसी लसक के कारण उनकी भाषा स्वच्छन्दतावादी है।

1. ठेदार नाथ अग्रवाल : गुलमोहदी : पृ० 845
2. ठेदार नाथ अग्रवाल : गुलमोहदी : पृ० 150
3. ठेदार नाथ अग्रवाल : गुलमोहदी : पृ० 167
4. ठेदार नाथ अग्रवाल : आत्मगंध : पृ० 135
5. ठेदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग खोलते हैं : 29
6. ठेदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग खोलते हैं : पृ०: 33
7. ठेदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग खोलते हैं : पृ० 122

चिन्मय :  
 २-२-२०-

सर्जनात्मक कल्पना से चिन्मय की रचना होती है। अतः इसमें चेतन-अचेतन का भी सक्रिय रहता है। मानव चेतन स्तर पर सामाजिक नियमों से बंधा हुआ होता है। फलतः उसकी नैतिक-अनैतिक प्रवृत्तियाँ कभी पूरी होती हैं कभी नहीं, कभी-कभी क्षन्तानन्द में भी फँस जाता है। जो प्रवृत्तियाँ उसकी पूरी नहीं होती हैं वह अचेतन स्तर में चली जाती है। फिर स्वप्नों के माध्यम से ऊपर उठ आती है। अन्तर्गत अभिव्यक्तियों के उचित चिन्मय के द्वारा प्रस्तुत करता है। काव्य का चिन्मय-विधान संवेक्यात्मक और संवेक्यात्मक होता है। कविता कल्पना की उद्भावना है। चिन्मय कल्पना की विशेषताओं को पुरस्कृत करता है, इसलिए कविता से जुड़ा होता है। \* \* \* काव्य में चिन्मय-विधान एक ऐसी-विशेष ही है, जिसका अपना एक सर्जनात्मक पक्ष है। चिन्मय भाषाभिव्यक्ति का शाब्द-सम्यक्ता का एक सहायक माध्यम भी है।”

कारणतः नवी कविता कविता की कविता है अतः इसमें जो काव्य चिन्मय उभरे हैं वह कविता के लिए हुए हैं। भाषा-आदी काव्य में जो आसक्तिपूर्ण भाषा में चिन्मयों को मूर्त किया जाता था वह कौमलकान्त भाषा नवी कविता में नहीं है, परन्तु यहाँ तीर्थ-समाप्त घवानी में ही चिन्मयों का सम्मूर्तन किया है। यह काव्य चिन्मय नूतनता का आनास निरंतर देते हैं। यह पारम्परिक नियम का नहीं है। अतः परम्परा से छटे होने के कारण ही इनकी चेतना स्वतन्त्रतावादी है।” एक आधुनिक कवि की कविता की परीक्षा उसके द्वारा आत्मिक कृत चिन्मयों के आधार पर ही की जा सकती है। उसकी विशिष्टता और उसकी आधुनिकता सबसे अधिक उसके चिन्मयों से ही व्यक्त होती है।” 2

1. डॉ० अरवि सिंह : नवप्रवाहकान्दतावाद : पृष्ठ 188

2. डॉ० नाम र सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृष्ठ 112



वस्तुतः नयी कविता के प्रणेता 'अश्व' जी ने अपने काव्य में रोमांटिक, प्राकृतिक चित्रों का समावेश किया है। रोमांटिक चित्रों का चित्रण है :

“ गुंथी उंगलियाँ, लिप, घनी साँसों की धाँसे / कमलियाँ,  
सताहटें / इनकलियाँ / अत्यर्ध दुम्बन / अनजली जापस में  
जानी प्रतीति / हली आँखों की धाँसियों में और गहरे/  
सहसा छुन जाने वाले ” ।

अश्व जी ने यहाँ ध्यान परक चित्रों का चित्रण किया है। वह अपने प्रेयसी के साथ। रोमांटिक अन्तर्ध में अधिष्ठानाकथा में है। जो उमड़ते हुए सेनाप को समेटता है। जो अपनी प्रेयसी में पहले छुन से रोमांचित कर उसके हाथ को उंगलियों को अपने हाथ से कसकर पकड़ कर प्रेम को व्यक्त करता है। वस्तुतः यहाँ स्वच्छन्द प्रेम की परिणामना परिलक्षित होती है। जिसमें प्रेमानुभूतियों की मनोवेष्टानिष्ठता भी स्पष्ट बनकती है। इसी प्रकार नदी से पानी भरती हुई नारी का चित्रांकन मनोहारी ढंग से किया है, जिसमें कोई मुटि न होकर प्राकृतिक जान पड़ता है :

“ धाँस की सँकरी सी, नी पर / पुलने पर टेक गगरिया / लड़ी  
पहुँरिया / धिर पतलों को एकाएक डूबा / कर ओट भँवरती  
धूमिल दिखती को / फिर उठा धोत / घड़ने लगती है । ” 2

प्रेमिका को मुट्टी में भरकर, फिर वह उंगलियों से उनकर निकले 3 उस चित्र में यौनपरक चित्रों की परिलक्षित होता है। अतः रोमांटिकिज्म से जुड़ता है। कवि ने अपनी प्रेयसी के स्व-सौन्दर्य को 'सताती साँस के मन की प्रेयसी तारिका' 4 चित्र में उद्धृत किया है।

- |           |                                      |
|-----------|--------------------------------------|
| 1. ' अश्व | : कितनी नावों में कितनी बार : पृ० 73 |
| 2. ' अश्व | : कितनी नावों में कितनी बार : पृ० 65 |
| 3. ' अश्व | : कितनी नावों में कितनी बार : पृ० 20 |
| 4. ' अश्व | : सदा के धन : पृ० 55                 |

यह विम्व अपने आप में अनुठा एवं नवीन है, जो सादगी के साथ-साथ साजगी निर दुर भी है।

इसी के साथ प्राकृतिक विम्व भी मनोहारी रूप में प्रस्तुत हुए हैं :

“ चाँदनी चुप-चाप सारी रात/ सुने अंगिन में/ जाल रचती रही ✓  
मेरी लपटीन अभिलाषा/ अधूरेपन की मद्धिम / अधि पर तर्जोती  
रही ” ।

चाँदनी का जाल रचना में उत्कृष्टता आ गयी है। ‘ नदी कुल के चल-नरसल घर-उमड़ा हुआ नदी का जल ’ 2 ‘ चाँदनी में धूल-धक्का बिछी लकी राह । ’ 3 ‘ कुहरा जीना और नहीं नर-नर पड़े अकासनीम ’ 4 ‘ सुरज ने खींच ली लाल, नभ का उर घेर दिया ’ 5 ‘ पहले सागर और विस्तीर्ण प्रवाद नीला और हलचल से भरा पवन के पैरों से आहत ’ 6 एत्यादि पंक्तियों में प्राकृतिक-विम्व परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त जीवोपम विम्वों से धुआँ निकलते देख उसका भी विम्व अंकित किया है :

“ पहलियों से धिरी हुई छत छोटी सी-भाटी में/ ये मुँह झोंकी  
धिनगियाँ धरावर / धुआँ उगलती जाती हैं । ” 7

श्री रामेश्वर बहादुर सिंह जी के काव्य में प्रकृति-विम्वों का बाहुल्य है। एक ‘ सूर्य ’ को ही ज़ेब सूर्य में व्यक्त किया है। जैसे ‘ जेबे ’ जेबे घादलों में सूर्य के टुकड़े ’ 8 जल में ‘ सूर्य का स्तम्भ ’ 9 झिलता हुआ, ‘ ताकि

|                                            |                          |             |
|--------------------------------------------|--------------------------|-------------|
| 1. ‘ अक्षय ’                               | : श्री जी कृष्णा प्रभामय | : पृष्ठ 146 |
| 2. ‘ अक्षय ’                               | : तर्जना के धरा          | : पृष्ठ 23  |
| 3. ‘ अक्षय ’                               | : तर्जना के धरा          | : पृष्ठ 38  |
| 4. ‘ अक्षय ’                               | : तर्जना के धरा          | : पृष्ठ 57  |
| 5. ‘ अक्षय ’                               | : तर्जना के धरा          | : पृष्ठ 81  |
| 6. ‘ अक्षय ’                               | : तर्जना के धरा          | : पृष्ठ 86  |
| 7. ‘ अक्षय ’                               | : श्री जी कृष्णा प्रभामय | : पृष्ठ 47  |
| 8. रामेश्वर बहादुर सिंह :: कुछ और कवितारें | :                        | पृष्ठ 33    |
| 9. रामेश्वर बहादुर सिंह :: कुछ और कवितारें | :                        | पृष्ठ 49    |

‘ ताकि उसकी अग्नि और लपट में तुम चौधारे की तरह नाचो ’<sup>1</sup> वह यदि और सूर्य को ‘ आकाशनी में रहे हुए ऐलघ्य से ’<sup>2</sup> निकाले तो । वह सूर्य को गगन में देखकर अपने पैरों के नीचे से आता हुआ विम्बान्वित करते हैं :

“ सुषह सूर्य नहीं, कारण कि / सूर्य तो उनके तलवों के नीचे  
दूर फिर भी धर्ती/एदियों में ही मानो नीचे-छहीं ”<sup>3</sup>

मोर का आकाश नीला शंख बैसा प्रतीत होता है। वह इस प्रकार दीखता है जैसे रात से लोपा हुआ गोला चौका हो :

“ प्रातः कम था बहुत नीला शंख जैसे/ मोर का कम/ रात से  
लोपा हुआ चौका । अभी गोला पड़ा है । ”<sup>4</sup>

एक और प्रकृति का विम्ब अंकित किया है :

“ एक फूल उमा की छिलछिलाहट पहनकर  
रात का गड़ना हुआ काला उम्बल उतारता हुआ  
मुझसे लियट गया । ”<sup>5</sup>

इसके अतिरिक्त अन्य और विम्ब है : ‘ गीली मुलायम लट्टे  
आकाश ’<sup>6</sup> यदि निकला बादलों से पूर्णिमा का । गल रहा है आसमान<sup>7</sup>  
पूरा आसमान का आसमान है एक हनुमन्तु की ताल<sup>8</sup> । उत्पादि विम्बोंका  
सफलता पूर्वक अंकन हुआ है ।

वस्तुतः श्री रामेश्वर बहादुर की उस समय के कवि हैं जब छायावाद समाप्त हुआ था । अतः उन्होंने अपने काव्य में वहाँ होमलता लेकर नयी

1. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ और कवितारें : पृ० 53
2. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ और कवितारें : पृ० 63
3. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ और कवितारें / पृ० 64
4. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ कवितारें कुछ और कवितारें : पृ० 23
5. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ कवितारें कुछ और कवितारें : पृ० 133
6. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ कवितारें कुछ और कवितारें : पृ० 48
7. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ कवितारें कुछ और कवितारें : पृ० 22
8. रामेश्वर बहादुर सिंह : कुछ कवितारें कुछ और कवितारें : पृ० 49

कविता के लिए नवीन चिन्मयों का सुजन किया। फलतः उनके चिन्मयों में होमलता के साथ नवीनता भी परिलक्षित होती है। कवि की त्रिलोचन ने भी चिन्मयात्मक भाषा का प्रयोग कियाः<sup>1</sup> पत्ते गिर रहे हैं खरहा छहरा कर वन-बुलों के<sup>2</sup> ' ' उषा की आभा जल के भीतर घुलती है<sup>3</sup> ' ' तटि गुलाबी कपि रती है छंड से, उधर गुलाबी के पीये लाचार हैं<sup>4</sup> ' ' नीले आसमान को सुहाने लाल फूलों को गुच्छा एक पुष्पी ने मीन उपहार दिया<sup>5</sup> ' ' नीम के फलों की हरी-भरी सुगंध फिर रात मीन रहती है<sup>6</sup> ' ' यह चिन्मय अपने आप में अनोखी आभा प्रदान करते हैं। डॉ० नामवर सिंह ने त्रिलोचन की के चिन्मय में कहा है, ' जहाँ अंधेरी ठोठरी को अंधेरी कहने की साहित्यिक सच्चाई है वहीं नये चित्र के साथ नयी भाषा देने का आत्मविश्वास भी सम्मिलित है।'<sup>7</sup>

इसी प्रकार की नागार्जुन की के काव्य चिन्मय भी अपनी अनूठी कला रखते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा का कथन है, ' ' उनकी बहुत सी कविताओं में ऐसा ही क्लासिक शब्दों का साहित्यिक प्रयोग और चित्रणा-कौशल है, जसा किसी लघु क्लासिक में हो सकता है।'<sup>8</sup>

' रवि रंजित शिखर वाले, हिमादि के वध पर, देवदास-वन में टहलते मेघ को<sup>9</sup> धरत रहे हैं आसमान से धुनी लुई के फाटे, या कि चिमानों में भर-भर कर यक्ष और किन्नर धरताते, कात कुसुम अधिराम

- |                       |   |                          |   |         |
|-----------------------|---|--------------------------|---|---------|
| 1. त्रिलोचन           | : | अरधान                    | : | पृ० 27  |
| 2. त्रिलोचन           | : | अरधान                    | : | पृ० 30  |
| 3. त्रिलोचन           | : | अरधान                    | : | पृ० 31  |
| 4. त्रिलोचन           | : | अरधान                    | : | पृ० 32  |
| 5. त्रिलोचन           | : | अरधान                    | : | पृ० 35  |
| 6. डॉ० नामवर सिंह     | : | कविता के नये प्रतिमान    | : | पृ० 122 |
| 7. डॉ० रामविलास शर्मा | : | नयी कविता और अस्तित्ववाद | : | पृ० 140 |
| 8. नागार्जुन          | : | पञ्चदश नग्न गाँव         | : | पृ० 113 |

हैं जा रहे देवदार की हरियारी की ओर दुधिया साग, ' 1 ' लाल-लाल गोला सूरज का दीप जाए पुरब में गायद सुबह-सुबह, ' 2 ' लाले-लाले पुतु-रंग लाली-लाली मन-मन, ' 3 ' ऊँचा की लाली में अभी से गये निखर छिमगिरि के कनक शिखर, ' 4 ' घाल रहि है मुग्ध अतिशय घन गया दानी, छुट नगपति यिमयश ही मौन है लानी । ' 5 ' इत्यादि कविताओं में चिम्बों की चिन्ता है वे उपमान के सहारे नहीं बढ़ते बाल्य सहज रूप में अपनी छवि अंकित करते हैं ।

श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी के चिम्ब प्रकृति-चिम्ब हैं, जिनकी भाषा सरल-सुबोध, जैसे : ' जबकि मेरे पिता बचि तक धोती उठाये पानी हो हलकोरते जाते हैं । कमल-कम, कमल-कम ' 6 ' इसमें भाषा का चिम्ब उपस्थित हुआ है । ' और चिन्तियाँ एक लक्ष्मी से दूसरी लक्ष्मी पर शोर करती झूलती रहती थीं । ' 7 ' श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने प्रकृति का चित्रांकन किया है कि सुबह-सुबह कोहरे के कारण सूर्य दिखाई ही नहीं पड़ता, चिन्तु, कोहरे में सारा शहर ऐसा प्रतीत होता है जैसे सारे शहर को मच्छरदानी ने ढक लिया हो । ' 8 ' सुबह-सुबह की धूप भीगे धप्यों जैसी मातृम अँकों से लँसती हुई, ठापती, थरथराती हुई छण्डे सितारों के सिंघाड़े का रही हो । ' 9 ' यदि गोले बादलों में तो रहा

- 
- |                           |   |                                 |   |         |
|---------------------------|---|---------------------------------|---|---------|
| 1. नागार्जुन              | : | सुगंधारा                        | : | पृ० 62  |
| 2. नागार्जुन              | : | आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने     | : | पृ० 29  |
| 3. नागार्जुन              | : | ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या | : | पृ० 34  |
| 4. नागार्जुन              | : | ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या | : | पृ० 44  |
| 5. नागार्जुन              | : | ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या | : | पृ० 48  |
| 6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना | : | कुआनो नदी                       | : | पृ० 12  |
| 7. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना | : | कुआनो नदी                       | : | पृ० 13  |
| 8. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना | : | कविताएँ दो                      | : | पृ० 55  |
| 9. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना | : | कविताएँ एक                      | : | पृ० 205 |

है, चाँदनी को कुछ नशा सा हो रहा है।' यह बिम्ब ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे मुलायम स्पर्श के गोले हों। क्योंकि कवि ने यहाँ कोमल शब्दावली के माध्यम से ही बिम्बों को निरारत है।

कवि ने मोर, दोपहर शाम और रात का चित्रांकन किया है। सुबह को दमकते सोने से रंगवाली छन्दसु किशोरी, दोपहर को गोरे चिरे रंग की सन से तपेज वालों वाली बुढ़िया, शाम को सिन्दूर का पड़ा टीका लगाए सँधिया औरत और रात को ठाँकी साड़ी पहने पाण्डुरूपी विधवा कहा है जो रंग-बिरंगी गूँव की अलिया, कलौदा काढ़े रंग-बिरंगी लच्छियाँ रंगरज आकाश अरुमकी पर टँगें तथा आकाश के विशाल कन्ध में डोरा डाल रही है।

सूर्य को लाल गेंद बनाते हुए कवि ने बिम्ब अंशित किया है :

“ पेड़ों के पुन्नुने/ काने लगे / बुढ़की आ रही है/ सूरज की लाल गेंद’ 2

तपसेना जी ने प्रकृति का चित्रण जितना मनोहारी किया है। उन्होंने विशाल आकाश को गुला-कुला, पृथ्वी को बिखरी-बिखरी और उस पर फैलती श्वेत चाँदनी को विधवा की तपेज साड़ी कहा है :

“ है गुला-कुला आकाश जहाँ / बिखरी-बिखरी है जहाँ धरा /  
चाँदनी जहाँ/ विधवा बनकर है पड़ी हुई / अपनी तपेज साड़ी में।” 3

प्रेमिका के प्यार की अनुभूति का रहस्यार करते हुए उसके मनोभावों का चित्रांकन किया है :

1. सर्वेधर दयाल सपत्तना : कविताएँ एक : पृ० 57
2. सर्वेधर दयाल सपत्तना : कविताएँ एक : पृ० 187
3. सर्वेधर दयाल सपत्तना : कविताएँ एक : पृ० 33

‘प्यार का नाम लेते हो/ बिजली के स्टाव-सी/ जो एकदम  
सुर्ग हो जाती है।’<sup>1</sup>

इसके अतिरिक्त लोक-संस्कृति से पगे बिम्ब भी परिलक्षित होते हैं। ‘सुनि-सुनि बात बिँरिया ओठेंगी’<sup>2</sup> ‘ऊन-ऊन-ऊन-ऊन घुरियाँ बोले’<sup>3</sup> इस प्रकार सर्वेश्वर दयाल सप्तेना जी ने अपनी भाषा में इतने सरल बिम्ब प्रस्तुत किए हैं कि यह बरबस आकर्षित करते हैं। यह काव्य-बिम्ब भी छायावादी काव्य-बिम्बों से कम नहीं लगते। बातचीत पर ‘बिजली के स्टाव सी सुर्ग’ की बिम्बात्मक भाषा अपने नवीन रूप में प्रस्तुत हुई है। श्री गजानन माधव मुक्तिबोध जी के काव्य-बिम्बों के दिव्य में डॉ० रमेश कुन्तल मेम जी का कथन है, ‘‘मुक्तिबोध का परिवेश और परिप्रेक्ष्य अंगारों और लपटों की तरह क्षमलपाता और दिपदिपाता है। एक तालाब, आदिय बुढ़ा बरगद, चौराहा और गलियाँ, नागपुर का घंटाघर, राजनांद गाँव के छाड़हर आदि - ये उनके काव्य में अर्कितोत्पल बिम्ब बनकर चहुँ ओर नानार्थक प्रतीकों और मिथकों में नाना कविताओं में निरन्तर छुलते चले गये हैं।’’<sup>4</sup> डॉ० नामर सिंह का कथन है, ‘‘मुक्तिबोध की अभिव्यक्ति की अर्थवत्ता फुटकर शब्दों-प्रयोगों से नहीं अँका जा सकती और न दो-चार बिम्बों अथवा-आध-चित्रों से मापी जा सकती है। उनकी अभिव्यक्ति की गरिबा का पता उस विराट् बिम्ब-लोक से चलता है, जो ‘अंधे में’ जैसी महाकाव्यात्मक कविता अपनी समग्रता में प्रस्तुत करती है।’’<sup>5</sup>

1. सर्वेश्वर दयाल सप्तेना : कविताएँ एक : पृ० 93

2. 3. सर्वेश्वर दयाल सप्तेना : कविताएँ एक : पृ० 93

4. डॉ० लक्ष्मणदत्त गातम : गजानन माधव मुक्तिबोध : I में डॉ० रमेश कुन्तल मेम का लेख : लोक जोधन का जासूस:मुक्तिबोध I पृ० 252

5. डॉ० नामर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 219

“ सुदूर नील कुहरे का धुंधलापन ओढ़े हुए / आत्ममानी रंग का  
गिरि-स्व / धारणा किये / भाव-विचार में / उतने ही धुंधले से  
मनोरम अत्यल / कुहरीले नीलाभ मनोहर आकाश ” 1

‘ निःकल-निर्जर-तट-यत्न में / अर्पिता था पूर्ण-मानव-धन्द्र / भर  
उठी थीं पुतलियों में चन्द्र-कनियाँ । ” 2 फिर, उल्टी धधको हुए  
सूर्य / के तले प्रहर, / तब ओर पिलपिलाती काली घट्टानों पर /  
तोकर जाता, टकराता गटकेगा समीर । । ” 3 यदि मैं पर्यंत ता  
ऊँचा हो जाऊँ सदास / वह गिरावर चन्द्रमा पनवर मेरे आस-पास /  
कौमल गदम्य सत्ता-सी चमकेगी नवीन । ” 4 ‘ उदित हुआ सूर्य  
सात, हुए गया, / चन्द्र व नभ आये, चले गये / डिन्तु उन सबके  
पार परे रह / अंधेरे की परम्परा ” 5 ” तब उतरी रंग लेकर  
उदासी का / पर्यंतों के पास / चिम्पिता लीनें हुए गम्भीर / तब  
की मानो सही हों ” 6 ‘ सुधे हुए घुलनों के वन-मैदानों के आसमान /  
में छिना चदि / भीठे समीर-सा लहराया / मैदानी आत्मा का तौंधा  
आशीर्वाद / मुग्ध स्मिता चदिनी के / अज्ञात प्रदेशों के अडोर / से घटती  
है ” 7 एत्यादि चिम्पों का चिन्ता मुजितबोध जी ने किया है।  
वस्तुतः यह चिम्प कुल-कुल प्रतीकार्य रखते हैं। चिम्पों रंगीन, एवं  
उदासी दोनों स्व भिन्न हैं। मुजितबोध जी की काव्य-भाषा को  
देखो हुए यह काव्य-चिम्प कौमलता लिए हुए हैं। कौमलता के कारण  
ही इनमें स्वच्छन्दता आ गई है। अतः नवीनता एवं प्रतीकार्य लिए

- 
1. गजानन माधव मुजितबोध : भूरी-भूरी ठाक-धून : पृ० 30-31
  2. गजानन माधव मुजितबोध : भूरी-भूरी ठाक-धून : पृ० 39
  3. गजानन माधव मुजितबोध : भूरी-भूरी ठाक-धून : पृ० 77
  4. गजानन माधव मुजितबोध : भूरी-भूरी ठाक-धून : पृ० 80
  5. गजानन माधव मुजितबोध : भूरी-भूरी ठाक-धून : पृ० 83
  6. गजानन माधव मुजितबोध : भूरी-भूरी ठाक-धून : पृ० 117
  7. गजानन माधव मुजितबोध : भूरी-भूरी ठाक-धून : पृ० 129



हुर ये बिम्ब स्वच्छन्दतावादी बन गये हैं।

‘ आत्मजयी ’ मिथकीय चेतना लिए हुए होने के कारण इसमें पौराणिक बिम्ब परिलक्षित होते हैं। ‘ जैसे पत्तियों का खड़कना या बिजलियों का कड़कना..... । ‘ गुहीत होकर/ अतल जन के धक्के हुए दीर्घ साँपकाल में/ असंख्य मउलियों बन जाता है—और यथ किया हुआ सूर्य डूबकर/ पुनः उसकी ही दुनियाँ में उदय होता है।’ 2 ‘ बाँहों पर बिछराये केरा-राशि/ नींदती निशा-भरी / विलास-स्मय उठ गली’ 3 ‘ पहाड़ों की चोटियाँ काफी अँवाई नहीं / न काफी एकान्त / न प्रकाश / और न कोलाहल की मारी / थकीताहसिक उड़ानों को छू जाता-सा / शान्त आकाश’ 4 ‘ दूर कोहरे से/ उठती हुई पृथ्वी को पूजता - सा एक दिन।’ 5 इत्यादि बिम्ब पौराणिकता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य लिए हुए हैं।

श्री गिरिजा कुमार माधुर जी के काव्य बिम्ब रोमांटिक एवं प्राकृतिक अधिक हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि विद्रोही होने के साथ-साथ विग्राम के णों में रोमांटिक कल्पना कर प्रकृति की ओर भी लुका होता है। फलतः नयी कविता के कवियों में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

‘ चमक बिजलियों की पलक-चाँदनी-सी / छुने चाँद तन की झलक दामिनी-सी, हुके मेघ गीले अधर ज्यों हुके हों’ 6 ‘ चाँदनी के छुने तन पर है न कोई घस्त्र भीतर पहिन कर वह हवा की बारीक लहरोंदार चूनर’ 7 ‘ ये अधूरे चाँद का ऐपन रंगा मण्डल गौर माये पर

- |                       |   |            |         |        |
|-----------------------|---|------------|---------|--------|
| 1. कुँवर नारायण       | : | आत्मजयी    | :       | पृ० 18 |
| 2. कुँवर नारायण       | : | :          | आत्मजयी | :      |
|                       |   |            |         | पृ० 27 |
| 3. कुँवर नारायण       | : | आत्मजयी    | :       | पृ० 31 |
| 4. कुँवर नारायण       | : | आत्मजयी    | :       | पृ० 44 |
| 5. कुँवर नारायण       | : | आत्मजयी    | :       | पृ० 54 |
| 6. गिरिजा कुमार माधुर | : | धूप के धान | :       | पृ० 37 |
| 7. गिरिजा कुमार माधुर | : | धूप के धान | :       | पृ० 54 |

गिरे, उड़' 1' पूर्व से उठ चढ़ आया त्वाह जल में चमचमाता बन  
चमेली की जड़ों से नाग कस कर लिपट जाता' 2 इत्यादि बिम्ब  
मार्मिक बन पड़े हैं। इसी प्रकार भीर का बिम्ब अंकित किया है  
जब धुंधला उजाला ही फैला है अभी सूर्य आगमन नहीं हुआ। कि दिन  
का फूल खिल गया है, सूर्य अपनी किरणों का रथ लेकर आने वाला है,  
हे रघुवंश दिननणि उठो, कमल ने भी केसर सुगन्ध फैला दी है। ये  
मिट्टी की सौंधी-सौंधी गंध, ये जामुनी रंग की पटारें हवा की  
तरह उड़ती ये कुहारें ये प्रकृति बिम्ब बरघस आकर्षित कर लेते हैं।  
आधाढ़ के घने मेघ, भूमि से निकली गन्ध, धन के आलिंगन से निकली  
चपला अर्थात् बादलों में चमकती बिजली, मन को लुभा लेती है। इन  
प्रकृति-बिम्बों के साथ-साथ रोमांटिक बिम्ब भी श्री गिरिजा कुमार  
माधुर के काव्य में अभिव्यंजित है :

देखा तुम्हें / मेरी मिट्टी में उठे हरे ज्वार / हुआ तुम्हें डू  
गये सब बिजली के छुले तार।' 3 ' आज तेरा भोजन घूम /  
हुई घुनर भी अलहड़ प्राण / हुए अनजान अचानक ही, कुसम  
से मतले पिछरे साज' 4 ' छेन से पल्ला जो उँगली पर कसा मन  
लिपट कर रह गया छूटा वहीं।' 5

यह रोमांटिक बिम्बों की सहजानुभूति है।

1. गिरिजा कुमार माधुर : धूम के धान : पृष्ठ 68
2. गिरिजा कुमार माधुर : धूम के धान : पृष्ठ 90
3. गिरिजा कुमार माधुर : छाया मत लूना मन। पृष्ठ 15
4. गिरिजा कुमार माधुर : छाया मत लूना मन। पृष्ठ 29
5. गिरिजा कुमार माधुर : छाया मत लूना मन। पृष्ठ 31

श्री केदार नाथ अग्रवाल जी ने अपने काव्य-चिन्मयों की शिल्प का  
 सौन्दर्य कहा है, " मेरी कविताओं में शिल्प का सौन्दर्य मिलेगा। वह  
 सौन्दर्य उसके स्थापत्य के शिल्प का सौन्दर्य है। वह सौन्दर्य अनेक भाव  
 -मंगिमाओं से अपने को व्यक्त करता है। उसकी अभिव्यक्ति अनेकरूपिणी  
 है। जैसे हर तवेरा एक नये सौन्दर्य का तवेरा होता है, वैसे मेरी हर  
 कविता एक नये सौन्दर्य की कविता होती है।" <sup>1</sup> वास्तुतः यही सौन्दर्य  
 उनके काव्य को अमृतकृत करता है। एवा सीधे से बहती है किन्तु उसका  
 मानवीकरण पर चिन्मय बनाया है, एवा को देखते ही अंतर लजायी,  
 पथिक आ रहा था उसी पर दली में, उसके कमर एवं हृदय से जा लगी,  
 मेरे हस्त करतब से चारों दिशाएँ छँते लगीं, केत भी लहराकर छँते  
 लगे। उस घसन्ती एवा में सारी सुकट ही पुलकितहो उठी।" <sup>2</sup> यदि  
 का चिन्मय उस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह चिन्मय ज्यो बह बूध  
 पर पड़ कर, अपनी दृष्टि से वहाँ फैलाकर बहती को निहार रहा है।" <sup>3</sup>  
 एक तरफ कवि ने सूर्य को चिन्मयित किया है धूम पृथ्वी सेते गिर रही है  
 जैसे शिव बूट से गंगा निकलती है। दूसरी तरफ रात को चिन्मयित  
 किया है रात के अंधियारे में नदी शान्त, निराल, वादल का चक्र  
 ओढ़कर पड़ी हो।" <sup>4</sup> मुख्य रूप की तरह, चाँदुरी - पल्ले छोले, कन्धों पर  
 अभिरों की व्याकुल अलें तोतो" <sup>5</sup> कुली धूम का चिन्मयित किया है कि  
 धूम चाँदी की चमकती साड़ी की तरह प्रतीत हो रही है, कुली तरतों पर  
 ऐसे पड़ रही है जैसे दो चिन्मयी तथियाँ आपस में जाँते करने को मगन हों।  
 नदी का मानवीकरण करके उसका चिन्मय अंकित किया है।

1. केदार नाथ अग्रवाल : पूल नदी, रंग बोलते हैं : पृष्ठ 5
2. केदार नाथ अग्रवाल : पूल नदी, रंग बोलते हैं : पृष्ठ 22
3. केदार नाथ अग्रवाल : पूल नदी, रंग बोलते हैं : पृष्ठ 29
4. केदार नाथ अग्रवाल : पूल नदी, रंग बोलते हैं : पृष्ठ 62

“ नदी एक मोखवान दीठ लपकी है / जो पहाड़ से मैदान में आयी है /  
बितली बँप लुकी / और हँसों से मरी है / बितने पना की  
सुन्दरता पायी है।” 1

वस्तुतः यहाँ पर कवि ने प्रकृति त्व में वासिलता का रंग मरा  
है। बितने काव्य-सौन्दर्य तो लीक से हटकर है ही चिम्ब भी अनुहा  
पन पगा है। डॉ० नामवर सिंह का कथन है, “ ये भाव चित्र अपने  
संक्षिप्त व्याख्यान में प्रायः ६३ से अधिक भावों और विचारों की  
बटिल स्थिति को चित्रित कर जाते हैं।” 2

डॉ० धर्मवीर भारती जी के काव्य-चिम्बों में रोमांटिकता के  
सा। यथार्थ वर्णन भी मिलता है। निराशा के बाद जब आशा का संघार  
होता है तो प्रकृति भी मधुर लगने लगती है, ‘ आंगन में नहाती हुई  
गोरिया भागी। और पुरमुट में छिपकर व्याकुलता से पढ़ती।” 3 शाय  
की ‘ मेघ की पुनर लपेटे हुए’ 4 चिन्माकन किया है।

“ पुरमुट में छुपकरिया कुम्हलायी/खेतों पर अधिपारी फिर आयी  
परिष्ठा की सुन्दरिया कुमरायी” 5

‘ अनुश्रिया’ में चिम्बों सहज-जीवन और जीवन-दृष्टि का  
अवलोकन मिलता है। दैहिक आसिप्त के माध्यम से प्रकृति-रसम्यों का  
उद्घाटन मूर्त चिम्बों के द्वारा ही किया है। दैहिक त्व में राधा  
का प्रेम सहजता को लिए हुए है किन्तु उसकी आन्तरिक अनुभूति  
अतिरुद्ध है। दैहिक त्व में जगत, समय, फूल, लता, वृक्ष, कुंज, धार  
नहरें, समुद्र, स्थानान्तरित होना आदि चिम्ब अमूर्त रहकर ही राधा

1. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग दोनते हैं : पृ० 122

2. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 117

3. डॉ० धर्मवीर भारती : सात गीत वर्ष : पृ० 33

4. डॉ० धर्मवीर भारती : सात गीत वर्ष : पृ० 31

5. डॉ० धर्मवीर भारती : सात गीत वर्ष : पृ० 32

के काम-रहस्यों का बोध कराते हैं। जो जीवन की सहजता है, सहजता ही चरम-तन्मयता के क्षण है, और यह तन्मयता के क्षण की सार्थक है। अन्य सब कर्म, स्वधर्म, दायित्व निर्णय अर्थहीन है। अतः इन बिम्बों में ऐन्द्रियता के साथ नवीनता का भी समावेश है। इसी नवीनता के फलस्वरूप 'कनुप्रिया' के बिम्ब स्वच्छन्दतावादी कहे जा सकते हैं।

वाक्ष्य बिम्बों के माध्यम से ही राधा की भावानुभूतियों को अभिव्यक्ति मिलती है :

“ मुझे नित नर शिल्प में ढालने वाले, / मेरे उलझे लम्बे चन्दन  
वासित केशों में / पतली उजली चुनौती देती हुई माँग / क्या  
वह आखिरी पगडंडी थी जिसे तुम रिता देना चाहते थे /  
इस तरह / उसे आम्र मंजरी से भर-भरकर ।” 1

वस्तुतः राधा की अनेक भावानुभूतियों बिम्ब के माध्यम से ही अभिव्यक्ति की गई है। जिससे राधा की अभिव्यक्ति अत्यन्त तशक्त बन गई है। राधा की अनेक भावानुभूतियों को बिम्बों में ही अभिव्यक्ति मिलना स्वामाधिक था, क्योंकि समस्त 'कनुप्रिया' राधा की वैयक्तिक अनुभूति से परिचालित है। इसमें कवि ने स्वयं कुछ न कहकर केवल एक पात्र राधा के द्वारा ही सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को व्यक्त किया है।:

“ मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है / और जकड़ती जा रही हूँ/  
और निकट, और निकट / कि तुम्हारी साँसें मुझ <sup>जैसे</sup> प्रविष्ट  
हो जाएँ / तुम्हारे प्राण मुझ में / प्रतिष्ठित हो जाएँ / तुम्हारा  
रक्त मेरी कृत प्राय शिराओं में प्रवाहित होकर / फिर से  
जीवन संचरित कर सके ..... ” 2

सौन्दर्य का प्रयोजन ऐन्द्रिय सहजता को मानसिक स्तर पर

1. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 28
2. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 51

विश्लेषित करता है। और यह सदा ज्ञान दो प्रकार का होता है....शून्य और ज्ञान। यह सदा ज्ञान जीवन के सदा पथ को भी स्वीकारता है। इसमें नारी एवं पुत्र। जन्मों की पगलण्टी पर ज्ञान की अनन्तयात्रा करते आ रहे हैं। अनेक जन्मों में अनेक सम्बन्धों का भी निर्वह किया है। किन्तु अन्तिम परिणति में दोनों ही तब कुछ झुकाकर, डोढ़कर एक-दूसरे के पास आ जाते हैं। 'कुप्रिया' में विम्ब-योजना एन्हीं आधारों पर अभिव्यक्त हुई है।

डॉ० धर्मवीर भारती जी ने स्वच्छन्द कल्पना की उड़ान में नवीन विम्ब की योजना की है, 'और अगर चन्द्रमा मेरी उँगुलियों के पोरों की छाप है।' यह विम्बोक्ति सर्वथा नवीन है। इस संदर्भ में डॉ० रमेश कुन्तल ने। का कथन है : "मुझमें बिना स्व तथा आकृति के रही ही नही जा सकती। और व्याकृति का स्वधर्म है अनुभूति की प्रगाढ़ता अर्थात् तन्मयता। विमोक्षक या विमोपम काव्य की आक्षेपी तन्मयता का एक रहस्य यह भी है जहाँ शब्द जादू की विम्ब धर्म निभाते रहते हैं।" 2

डॉ० केदार नाथ सिंह के विम्ब उनको शब्दों के साथ ही उभरते चलते हैं, 'घर-घर-घर...../ घरती है पत्तियाँ सघेरे से/आज हवा पागल है।' 3 श्रीमती शकुन्त माधुर प्रकृति के तीन्द्र्य में रात में हिरार कर विम्बोक्ति किया है, कि सूर्य छिपने के साथ ही चन्द्रमा का उदय होता है, तभी कमलिनिर्धा पुन रही है, चन्द्रमा के निकलने के साथ ही तारे भी उदित हो रहे हैं, यह ऐसा प्रतीत होता है जैसे चन्द्रमा ने छुकर ही उन्हें जीवन प्रदान किया हो। 4 किन्तु सदा जय सूर्य उदित होता है उसकी फिरसे ऐसी प्रतीत होती है :

"निकल रहा था सूरज/उषा की फैल रही थी/चमकती परब पर रोनी।" 5

1. डॉ० धर्मवीर भारती : कुप्रिया : पृ० 51
2. डॉ० लक्ष्मणदास गौतम : धर्मवीर भारती : [डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का नेत्र : परवाही भूमिका का आयतीकरण] पृ० 201
3. डॉ० केदार नाथ सिंह : अग्नी विष्णुल अग्नी : पृ० 41
4. शकुन्त माधुर : पद्मिनी पुरन : पृ० 38
5. शकुन्त माधुर : पद्मिनी पुरन : पृ० 59

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नयी कविता के कवियों के काव्य की अभिव्यक्ति भी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति से कहीं न कहीं अप्रत्यक्ष मिलती है। नयी कविता के कवियों ने भी बिम्ब-योजना का निर्माण किया है। किन्तु भाषा के शब्दों की अभिव्यक्ति के नूतन अभिव्यक्ति पायी है। जिससे बिम्बों का दृष्टिकोण में नवीनता आ गई है। डॉ० नामवर सिंह का बिम्ब के संदर्भ में कथन है, " बिम्ब से साहित्यकों का तात्पर्य प्रायः दृश्य-बिम्ब से होता है, अर्थात् मस्तिष्कगत चित्र, लेकिन मनोविज्ञानिकों के अनुसार सभी ऐच्छिय चीजों और भावनाओं की क्रियाओं के बिम्ब होते हैं।" 1 वस्तुतः बिम्बों में मनोविज्ञानिक बोध होने के कारण स्वच्छन्दतावाद से जुड़े हैं। नयी कविता के बिम्ब स्वच्छन्दतावादी चेतना का आभास देते हैं।

**प्रतीक :**  
—

' प्रतीकों का अत्युत्थान मानसिक अवस्थाओं से होता है। अकेल जगत् की दृष्टाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक एक माध्यम है। प्रतीकों का प्रयोग अधिकांशतः भाषा, धर्म, विद्या, कला, संस्कृति, दर्शन मनोविज्ञान और दैनिक क्रिया-व्यापारों में मिलता है। इस प्रकार विचार-विज्ञान की प्रक्रिया अथवा अभिव्यक्ति में इसका योग स्पष्ट है।" 2 वस्तुतः प्रतीक साध्य और साधन की विचार व्यवस्था है। अतः इसमें कल्पना की मुख्य भूमिका रहती है। जिससे प्रतीक के निर्माण में मनुष्य की सम्पूर्ण जात्वा क्रियाशील रहती है।

स्वच्छन्दतावादी कवि प्रतीकों को सीमित अर्थ नहीं देता बल्कि इसकी अभिव्यक्ति आध्यात्मिक होने के साथ-साथ मानवीय चेतना से भी जुड़ी रहती है। अतः मानवीय व्यवहार में भी प्रतीक की अभिव्यक्ति

1. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृष्ठ 124

2. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 194

मिलती है। मानवीय व्यष्टार से जुड़े होने के कारण इसकी यथार्थ अभिव्यक्ति शक्ति में चेतनता होती है। स्वच्छन्दतावादी प्रतीक सभी सार्थक होते हैं जब वह विषय एवं विषयी की अभिव्यक्ति को एक साथ लेकर चले। दोनों में से किसी एक के अभाव में स्वच्छन्दतावादी प्रतीक नहीं बनता। अतः प्रतीक में सामाजिकता, अनुभूति, चेतनता, अचेतनता एवं कल्याण का समावेश अवलंबित है। यह वस्तुतयाँ स्वः ही एक-दूसरे से बरस्वर गुंथी हुई बनती है। और प्रतीक का निर्माण करती है।

“ श्री राम पौराणिक प्रतीक हैं। वह कल्याणकारी हैं। इसी आस्था को लेकर चलने वाली ‘शबरी’ अपने परिवार को त्याग कर वन में भटकती हुई अन्त में मत्स्य मुनि के आश्रम में रामभक्ति में लीन होती है। जो अपनी भक्ति-भावना के कारण आज स्वयं एक भक्ति का प्रतीक बन गई है। यह कथा तो साधारण है, किन्तु मत्स्य मुनि के त्याग एवं शबरी की तन्मयता तथा राम के मानव स्त्री प्रेम से उभरी हुई है। अतः इसमें मत्स्य मुनि ‘धर्म’<sup>1</sup> का प्रतीक और ‘शबरी’ ‘शक्ति’<sup>2</sup> का प्रतीक बन गये हैं। तथा अन्य मुनि जो तपस्या में लीन रहते हुए भी कुंठा ग्रस्त हैं वह ‘अधर्म’ के प्रतीक बन गये हैं।

मत्स्य मुनि को श्रद्धियों के आराध्य भी हैं वह साधारण मुनि बनकर शबरी की परीक्षा लेते हैं। जिसमें शबरी सफल रहती है। और शबरी अपनी तन्मयता, लगन से ‘शिव-शक्ति’ बन जाने के बाद भी श्री राम के समुच्च साधारण, अद्वैत वासिनी की बनी रहती है। तथा अखिर स्व राम सब लीला जानते हुए भी मानवीय क्रियाएँ करते हैं। अतः यह पर यह प्रतीक पौराणिकता के साथ-साथ स्वच्छन्दतावादी चेतना में भी अभिव्यक्त होते हैं।

इसी प्रकार सीता भी स्वयं ‘लक्ष्मी दुर्गा’ का प्रतीक हैं तथा लक्ष्मण ‘शे-भाग’ के प्रतीक हैं। किन्तु ‘प्रवाद पर्व’ में यह सब जन-

1. श्री नरेश मेहता : शबरी : पृ० 81

2. श्री नरेश मेहता : शबरी : पृ० 82



साधारण मानव के रूप में ही स्वीकार किए गए हैं। राम जो सर्वशक्तिमान है एक निम्नस्तर के व्यक्ति के द्वारा सीता के चरित्र पर अंगुली उठाये जाने पर उसे धन-दातृ का आदेश दे देते हैं। सीता जो सब जानती हैं तो भी राम की आज्ञा को सुनकर धन में जाने को तैयार हो जाती हैं। लक्ष्मण और कृष्णाओं के जानने के स्वभाव ही विरोध करते हैं, लेकिन राजा की आज्ञा के सामने निरुत्तर हो उठते हैं। अतः प्रवाद पर्व में भी मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों की कथा है। अन्तर्द्वन्द्वों में वे ही लोग धिरे रहते हैं जिन्हें ईश्वर का अवतार माना गया है। वास्तुतः अन्तर्द्वन्द्वों से धिरे रहने पर ही वह मानवीय अभिव्यक्ति अभिव्यक्त कर पाये हैं। जिसे राम ने वेदनायुक्त शब्दों में व्यक्त किया है :

“ यह धिक्तानी कूर और / अमानुषी सीता है प्रिये, / जो प्रत्येक धार / हमारे और तुम्हारे बीच / आकाश की आकाशों छूती / एक अम्ब / प्राचीन पिले की / अन्धी / मृत, पुष्पधिल प्राचीर / प्रतिप्राचीर ती आ गड़ी होती है / जिससे हम / केवल टकराते हैं / लौट-लौट कर टकराते हैं / और टूटते हैं / टूटते ही चले जाते हैं । / घ्याकुल लहरों का यह टूटना ही / लौटते हैं / समुद्र धनता जाता है । / यह / मानवीय बुद्ध्याय की विडम्बना नहीं तो / और क्या है सीता । ”

‘ कृष्ण’ का व्यक्तित्व अनेकों, धर्मों का सम्पूर्ण रूप है, जो राम ईश्वर के प्रतीक रूप में ही जाना जाता है। लेकिन फिर महाभारत के युद्ध में साधारण मानवी कृष्ण ही करते हैं। यह दोनों ही युद्ध के लिए उकसा कर युद्ध करवाते हैं। यद्यपि अर्जुन के समक्ष वह अपना विराट-रूप भी दिखाते हैं। ‘ युधिष्ठिर’ को ‘ धर्म’ के प्रतीक हैं वह भी मानवीय कमजोरियों से ग्रस्त हैं। इसी मानवीय कमजोरी के स्वभाव युद्ध जीतने पश्चात् हिमालय की गोद में ‘ महाप्रस्थान’ करते हैं। मानवीय वृत्तियों

के पलायन ही उनकी आस्था उद्धित होती है, तैत्तिरीय के प्रति धितुणा उत्पन्न होती है, धितुणा उत्पन्न होने के कारण ही वह राज-पट छोड़कर शान्ति की खोज में, स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से अपने भाएयों एवं पत्नी को लेकर हिमालय पर चले जाते हैं।

“आत्मजयी” व्यक्तिवादी और वस्तुवादी अन्तर्द्वन्द्वों की कथा है। जिसमें नयिकेता और वाजसपा का संघर्ष चलता है। नयिकेता और वाजसपा की असहमति, तथा वाजसपा का श्रौप में नयिकेता को मृत्यु को दे देना, न केवल नयी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है बल्कि उन वस्तुपरक वैदिक तथा आत्मपरक उपनिषत्कालीन दृष्टिकोणों का भी प्रतीक है जिनका एक रूप हम अपने आज के जीवन में भी पाते हैं। एक ओर तो हमारी भयावह भौतिक उन्नति दूसरी ओर आत्मिक स्तर पर वह जोर असंयम जो इस भौतिक प्रगति को अपने ही लिए अभिघात बनाये ले रहा है। \* \* \* वाजसपा वैदिक कालीन वस्तुवादी दृष्टिकोण का प्रतीक है और नयिकेता उपनिषद्कालीन आत्म-पथ का।<sup>1</sup> वस्तुतः नयिकेता और वाजसपा पौराणिक चरित्र हैं जो आधुनिक संदर्भ में व्यक्तिवादी चेतना के प्रतीक बन गये हैं।

“अधेय” जी ने अपने काव्य में रोमांटिक प्रतीकों को प्रस्तुत किया है। “अधेय” जी प्रेयसी के आने की राह को प्रतीकात्मक रूप दिया है, वह राह को धाम के समान मानते हैं जिससे गुजर कर, बंध कर, वह चले आयेगी।<sup>2</sup> “बुढ़ाते जो प्रभामण्डल”<sup>3</sup> का प्रतीक बनाकर अपनी प्रपत्नी की स्मृति में खोते हैं। “अधेय” जी प्रेयसी के साथ बिताये प्रत्येक क्षण के विषय में सोचकर पुनर्जित होता है। उसकी गंध घर के हर कोने में बिखरी हुई है। वह अपने विगत क्षणों को उस पर चोटावर

1. हुँवर नारायणः आत्मजयी : पृ० 9

2. ‘अधेय’ : अरी जो कल्ला प्रभामण्डल : पृ० 23

3. ‘अधेय’ : कितनी बारों में कितनी बार : पृ० 8

करता है :

“ जिन शिखरों की / हेम-मज्जित उँगलियों ने / निर्दिकृत  
 दंगित से / जिस निर्व्यासि उजाले को / ततत एककाया है—/  
 उसमें जो छाया मैं पहचानी है/ तुम्हारी है।”<sup>1</sup>

कवि प्रेयसी की याद को ताजा करने के लिए कवि उसी स्थान पर जाते हैं, जहाँ वह और उसकी प्रेयसी गये थे। कवि को वह पेड़, नदी की छाँव, रंग-धिरंगा जल सभी उसी की याद दिनाता महसूस होता है।<sup>2</sup> पौराणिक ईश्वर के प्रतीक कृष्ण की कंठी को धुन के पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, कंकर-पत्थर, गोपिकारों सभी प्रेमी थे। उसी कंठी को धुन को सुनकर नदी के किनारे स्थित कदम्ब की छार को कृष्ण का स्मरण हो जाता है जो प्रेमवशा स्वतः हुकुर अपना अनुराग प्रदर्शित करती है।

कवि ने अपनी प्रेयसी का हाथ दिन में सहलाया था, उसी का अनुसंधान रात्रि में स्वप्न में भी जाता है :

“ प्यार के तरीके तो और भी होते हैं / पर मेरे सपने में मेरा  
 हाथ/पुष्पाप तुम्हारे हाथ को सहलाता रहा/सपने की रात भर।”<sup>3</sup>

यहाँ पर सपना और हाथ दोनों के प्यार का प्रतीक बना है। अतः यहाँ रोमांटिक प्रतीक ही परिलक्षित होता है। इसी प्रकार कोयल और पपीहे<sup>4</sup> की आवाज को अपनी आवाज के रूप में प्रतीक दर्शाया है उमसती साँझ, छिना की गंध, कवि को प्रेयसी की याद दिना देता है। अतः साँझ और गंध प्रेयसी के प्रतीक हैं। पेड़ों की लम्बी छतरों में अपनी प्रेयसी के साथ चिचरणा किया था, अब वही पेड़ प्रेयसी के प्रतीक बन गये हैं।<sup>5</sup> जब गमन में फिरते हैं तो प्रेमी और प्रेमिका दोनों एक

- |           |   |                             |        |
|-----------|---|-----------------------------|--------|
| 1. 'अधेय' | : | कितनी नावों में कितनी बार : | पृ० 17 |
| 2. 'अधेय' | : | कितनी नावों में कितनी बार : | पृ० 23 |
| 3. 'अधेय' | : | अरी ओ कसना प्रभामय :        | पृ० 56 |
| 4. 'अधेय' | : | अरी ओ कसना प्रभामय :        | पृ० 58 |
| 5. 'अधेय' | : | अरी ओ कसना प्रभामय :        | पृ० 64 |

दूसरे का स्मरण करते हैं।'' 1 अतः यहाँ मेघ' उनके प्यार के प्रतीक बन गये हैं। वन्यु, नदियाँ को अपने प्यार के प्रतीकों में ढालते हैं :

'' इसी अमुना के किनारे एक दिन / मैं ने तुनी थी दुःख जो गाथा  
तुम्हारी / और सदा कदा था बेबस / तुम्हें मैं प्यार करता  
हूँ। / गहे थे दो हाथ मौन समाधि में / x x x वन्यु हैं नदियाँ  
/ प्रकृति भी वन्यु हैं।'' 2

वस्तुतः 'अशेष' ही ने अपने एवं अपनी प्रेयसी के प्रतीकों को उद्घाटित किया है। जिसमें नये-नये बिम्ब बनकर उभरे हैं। क्योंकि बिम्ब के मूल में ही प्रतीक का जन्म होता है। अतः यहाँ बिम्ब के साथ-साथ प्रतीक भी अपने मौलिक रूप में उभरे हैं। इसी नवीनता के फलस्वरूप 'अशेष' की के काव्य-प्रतीक स्वच्छन्दतावादी हैं।

श्री शमशेर बहादुर जी के प्रतीकों की अपनी ही शैली है। उन्होंने 'राहों' को प्रेमी का 'प्रतीक' माना है। उसकी तुलना बादलों से की है, जिस प्रकार बादल उमड़-गुमड़ कर जाते हैं फिर थोड़ी देर बाद धरत कर चले जाते हैं, उसी प्रकार प्रेमिका अपने राखी प्रेमी के लिए कहती है कि वह भी दो पल कुत्ताने वाली पाली छह कर चला गया है। कवि के एवं उसकी प्रेयसी के बीच 'फटा-बिफाका' प्रतीक बन गये हैं :

'' जब तुम मुझे मिले, एक तुला फटा हुआ बिकाफा/तुम्हारे हाथ  
आया / बहुत उसे उलटा-पलटा- उसमें कुछ न था—/ तुमने उसे  
पैक दिया, सभी जाकर मैं नीचे/ पड़ा हुआ तुम्हें' मैं' लगा।  
तुम उसे/ उठाने के लिए लुके भी, पर फिर कुछ सोचकर / मुझे वहीं  
छोड़ दिया / मैं तुमसे/ यों ही मिल लिया था।'' 3

अपनी प्रेयसी की याद को कवि ने उसके नाम के प्रतीक रूप में माना है :

1. 'अशेष' : सर्वना के छा : पृ० 28

2. 'अशेष' : सर्वना के छा : पृ० 53-54

3. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ कवितारें कुछ और कवितारें : पृ० 134

“ एक छुआ जो मेरी पलकों में झगारों की तरह/ बस गयी है  
जैसे तुम्हारे नाम की नन्हीं सी/ स्पेलिंग हो, छोटी-सी-  
प्यारी सी, तिरछी स्पेलिंग ” ।

यहां पर प्रतीकात्मक भाषा अपना रूप एवं आकर भी ग्रहण करती है। इसमें मन की सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति परिलक्षित होती है। क्योंकि मन एवं हृदय को अच्छा लगने वाला व्यक्ति की हरेक चीज प्रतीकात्मक रूप ग्रहण करती है। कवि की प्रेयसी की छुआ ही उसके सौन्दर्य, रूप, एवं नाम का आभास दे जाती है। अतः यह प्रेम की सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति ही है।

“ कुआनो नदी ’ संस्कृति में घुलमिल कर आधुनिक युग में महानगरों का प्रतीक बन गयी है । जो अब सूख गयी है, जिसमें अब कीचड़ और सिवार के सिवा अब कुछ भी नहीं है। यही हालात अब नगर, महानगर में भी हो गये हैं। यहां आपस में एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ जलन, ईर्ष्या हर किस्म में पैठ गयी है। मनुष्य की संस्कृति में भी कीचड़ और सिवार के अलावा अब कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसी की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक रूप में ‘ कुआनो नदी ’ करती है। पहले लोग ‘ शव-यात्रा ’<sup>2</sup> में पूरा गांधि जाता था, किन्तु अब मृतक के घर-परिवार के व्यक्ति ही नहीं जा पाते। इसी घेदना में आज का मानव भी जी रहा है। जैसे यह नदी संकरी होकर बह रही है उसी प्रकार मानव के रिश्ते भी तिकुड़-तिमट गये हैं :

“ कुआनो नदी/ संकरी/ नीली शान्त/ जाने कब होगी/ अक्षितिज,  
लाल, उददाम / बहुत गरीब है यह धरती/ जहाँ यह बहती है। ”<sup>3</sup>

जंगल का दर्द’ अन्तर्मन की पीड़ा को व्यक्त करने वाला काव्य संकलन

1. शम्भेर बहादुर सिंह : कुछ कवितारें, कुछ और कवितारें : पृ० 135

2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृ० 014

3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी : पृ० 21

है। यह काव्य संग्रह तब रचा गया जब देश में आपात स्थिति लागू थी। उसी पीड़ा की अनुभूति कवि ने इसमें अभिव्यक्त की है। यस्तुतः जंगल का दर्द मानवता का प्रतीक बन गया है। 'मेड़िया' कविता में 'सत्ता' का प्रतीक है। जिसे जन-चेतना की मज्जा से ही भगाया जा सकता है। जब तक जनता मिल कर क्रांति नहीं करेगी, तब तक सत्ता स्त्री मेड़िया उनको नोच-नोच कर खायेगा। यह मेड़िया अमानक उत्पन्न नहीं होते। बल्कि जनता में से ही ढोई एक जनता है और यह सत्ता की हथकड़ी की गिरफ्त में मेड़िया बन जाता है। अतः यहाँ क्रांति लाने की बात अग्रत्यक्ष रूप में दर्शायी है।

कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी ने देश-संस्कृति के अलावा प्रेम के प्रतीकों को भी उद्घाटित किया है :

“ कितना आसान था / तुम्हारे लिए यह कह ले जाना / 'अनविदा' /  
 जैसे गुलाब की पंखुरियों में से एक सुन्दरा कीड़ा उड़ा हो / और  
 मेरा..... / महसूस करना, भरा हुआ / उस पालीवन को /  
 जहाँ तुम खड़ी थी / सड़क की अधिरी पटरी पर / फिर कुछ न  
 कह पाना / केवल पुटनों तक / वर्ष महसूस करना / अलग हो जाने  
 के डर का की ” ।

यहाँ 'अनविदा' शब्द की पूरे प्रतीकार्थ को छोड़ता जाता है। यह शब्द ही दोनों की मानसिकता को पहन करता है और कवि की भावानुभूतियों को व्यक्त करने में समर्थ हुआ है।

‘पहाड़ जो दोनों के बीच प्रतीकार्थ है उसके लिए अब नया नाम देना चाहता है :

‘ कुछ और नाम देना चाहता हूँ / उस पहाड़ को / जो मेरे कहने और  
 तुम्हारे समझने के बीच है । ” 2

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जंगल का दर्द : पृष्ठ 96

2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविताएँ दो : पृष्ठ 13

एक नन्हीं छहनी की धुँसी, छिलती छँह, कवि के पिछे की सम्भावनाओं की लहरों को फिर-फिर जोड़ती हुई प्रतीकार्थ ग्रहण करती है।''<sup>1</sup>

जी गजानन माधव मुक्तिबोध जी के प्रतीक ' प्राचीन गाथाओं के तुल्ये जान पड़ते हैं। मगर इन तुल्यों में तंदम आधुनिक होता है। यह आधुनिक पदार्थ कथा का भयानकतम अंग होता है।''<sup>2</sup> वस्तुतः मुक्तिबोध जी के काव्य-प्रतीकों में रहस्यमयी गाथाएँ परिलक्षित होती हैं, जो प्राचीन छीसे हुए जी आधुनिकता कहन करती हैं :

'' बावड़ी की इन मुँहों पर/ मनोहर हरी कुहनी टेक सुनते हैं/  
 टगर के फुल्ल-तारे गेट/ से छनियाँ, / सुनते हैं करोंकी के  
 सुनोमल फूल/ सुनता है उन्हें प्राचीन ओडुम्बर/ तुन रहा हूँ  
 मैं वही/ पागल प्रतीकों में कही जाती हुई / वह ट्रेजिडी/  
 जो बावड़ी में अड गयी।''<sup>3</sup>

कवि ने आत्मा को सुरज का प्रतीक माना है। जो छती मिट्टी से उत्पन्न होकर पुनान्तरों से प्रकट होता है।''<sup>4</sup> कवि ने त्यों की जिन्दगी को ही प्रतीकों का रूप दिया है, ' प्रतीकों और चिन्मयों के/ असंख्य रूप में भी रह, हमारी जिन्दगी है यह' <sup>5</sup> भीतर का शून्य वेदना का प्रतीक बन गया है।

अनहोनी के समय-र से बाहर कुत्तों की, तियारों की आवाजें और भी हर मन में बोल जाती हैं,' <sup>6</sup> इन्हीं आवाजों को प्रतीकार्थ

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारं एक : पृ० 180

2. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह देढ़ा है : क्लेप एक पर,

3. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह देढ़ा है : क्लेप एक पर, पृ० 38

4. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह देढ़ा है : पृ० 126

5. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह देढ़ा है : पृ० 166

6. गजानन माधव मुक्तिबोध : यदि का मुँह देढ़ा है : पृ० 262

में कवि ने व्यक्त किया है। शिबु को देवा का प्रतीक बनाकर व्यक्त किया है:

“ मेरे पास चुपचाप तोया हुआ यह था ।  
समतिना उसको , सुरक्षित रखा ” १

वस्तुतः मुक्तिबोध जी ने अपनी माया, भावानुभूतियों को ही प्रतीकार्थ रूप में व्यक्त किया है। उनके प्रतीकों की सांकेतिक भाषा पाठक बहुत ही समझ जाता है। यह सांकेतिक भाषा- प्रेमी और प्रेयसी के बीच की भाषा नहीं है वरन् कवि और पाठक की है। जिसका अर्थ ग्रहण पाठक वर्ग सरलता पूर्वक कर लेते हैं।

‘ कनुप्रिया ’ में प्रतीकात्मक सांकेतिक भाषा अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है। डॉ० धर्मवीर भारती जी ने ‘ कनुप्रिया ’ की शुरुआत में ही प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है, छायादार अशोक वृक्ष ‘ कनु ’ का प्रतीक है, जिसकी प्रतीक्षा में राधा जन्म-जन्मान्तर से खड़ी हुई है :

“ जो पथ के किनारे खड़े / छायादार पावन अशोक-वृक्ष / तुम  
यह क्यों कहते हो कि / तुम मेरे चरणों के स्पर्श की प्रतीक्षा में /  
जन्मों से पुनःपुनः खड़े थे । ” २

अतः राधा का अशोक-वृक्ष से ‘ तुम ’ सम्बोधन हो कनु के अस्तित्व का प्रतीक बन जाता है, जिसे राधा पहले निर्मिप्त, धीतरागी समझ बैठती है , परन्तु उसके बाद धीरे धीरे उसके अन्दर स्वर्णिम संगीत बन कर फूट पड़ता है। इस संदर्भ में डॉ० रमेशा कुन्तल मेघ का कथन है, “ राधा का ‘ तुम ’ सम्पूर्ण का लोभी होकर भी एक बन देवता के समान धीतरागी और निर्मिप्त है। अतः पहले और दूसरे गीत में अशोक एवं स्वर्णिम संगीत के प्रतीक से राधा के अंतःस्थित ‘ तुम ’ की पहचान है जो कितने ही जन्मों से, और कब से उसमें छिपा है, और वह उसमें छिपी है । ” ३ इसके साथ ही प्रेम के

1. गवानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है : पृ० 280

2. डॉ० धर्मवीर भारती : कनुप्रिया : पृ० 11

3. डॉ० लक्ष्मण दत्त गौतम : धर्मवीर भारती : डॉ० रमेशा कुन्तल मेघ का लेख :



स्वयं का विकास स्वर्णिम संगीत, पाट से लीटते हुए तीसरे पहर की अनन्तार्ध घेना, जुगुना में घेतनता का कपिता जिम्म, रास आदि प्रतीक पौराणिकता के साध-साध रोमांटिक माय-भूमि पर टिक जाते हैं। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ की करते हैं, " ये पाँच गीत आस्र और कर्दब, जल और संगीत के रोमांटिक प्रतीकों का पौराणिक अध्ययन भी करते हैं।" १

राधा, कनू की शक्ति का प्रतीक है जो अनन्तकाल से उसके साथ सुष्टि सृजन करती चली आ रही है। जो कनू की शक्ति के रूप में प्रकटित होती है :

" तुम्हारा सम्झ/ तुम्हारी योग माया / इस निश्चिन्ना पारावार में ही परिध्याप्त हूँ / बिराद/सीमाहीन/ अदम्य/ हृदयान्त" २

वस्तुतः यह आर्तिदायक प्रतीक का परम चिन्ह है, जो अनन्तकाल से, अनन्त दिशाओं से गुजर कर धामधु, दिग्बधु बन चुकी है। इसी प्रतीक की कड़ी से होकर हा हा के सौन्दर्य-बोध की कड़ी भी गुजरती है। जो पमझकी राधा की पत्नी उजली मणि की चही प्रकारान्तर से ' आकाश बंगा' में अन्विष्ट हो जाती है जो राधा के छा-विन्यास की गोमा है। ३ कुछ प्रतीक ' अनुप्रिया' में वियोगावस्था के भी मिलते हैं, जिसमें राधा कनू की पाद में पैड़ी हुई लंक-वत्सर पुनती रहती है :

" वहाँ तुमने मुझे अमित प्यार दिया था

वहाँ धंजल लंक, पत्ती, तिनके, हुकड़े पुनती रहती हूँ।" ४

वस्तुतः यह लंक, पत्थर राधा और कनू की मधुर स्मृति के प्रतीक हैं, जिसका अनुभव राधा का-प्रतिष्ठा करती है।

" अनुप्रिया" में मिथलीय प्रतीक भी परिलक्षित होते हैं। राधा इतिहास निर्माणा के लिए बुद्ध की बातचीत को नकारती है। बुद्ध की

1. सं० लक्ष्मण दत्त गीतमः धर्मवीर भारती : डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का मेघ : परवाही भूमिका का आयतीकरण। पृ० 191

2. डॉ० धर्मवीर भारती : अनुप्रिया : पृ० 36

3. डॉ० धर्मवीर भारती : अनुप्रिया : पृ० 47

4. डॉ० धर्मवीर भारती : अनुप्रिया : पृ० 63

काल्पनिकता मिटौं, असीष्टिणी तेनारें, अकल्पनीय, अमानुषिक धनारें  
आदि, युद्ध की भासदी की ही प्रतीकात्मकता का पोष कराते हैं।

डॉ० केदार नाथ सिंह के सूर्य के उदय होने में प्रतीकात्मक भाषा  
का प्रयोग किया है। सूर्य का प्रकृति-विष्णु तथा उत्तम सोन्दर्य वर्णन  
सन्धी ने किया है, किन्तु उसे विमर्शकन में ग्रहण करके प्रतीकार्य दिया है  
डॉ० सिंह ने :

“ भोर से पहले/ तुम्हारे द्वार पर / या रास्ते में/ छँहरों के पास  
या फिर किसी अन्धेरे अपेक्षित कूल पर / कम उगुंगा मैं।”<sup>1</sup>

यहाँ पर सूर्य को प्रत्यक्ष प्रकट न करके ‘कम उगुंगा मैं’ से  
सम्बोधित करके प्रतीक रूप दिया है। वस्तुतः यह प्रतीक पौराणिक रूप  
में नये विमर्शों को सा-लेकर उदित हुआ है।

इस मिनाकर यह कहा जा सकता है कि प्रतीक ही ऐसा  
माध्यम है जो आन्तरिक भावानुभूतियों का पोष कराता है। प्रतीक ही  
घोषाम्यता एवं नवीनता का पोषक है। कृति के अन्दर जितनी नवीनता  
से प्रतीक उद्भूत होगा कृति ही नवीनता एवं मौलिकता परिष्कृत होगी।  
वस्तुतः प्रतीकों के माध्यम से ही नई कृति का सृजन होता है। जिसे  
‘अपेक्ष’ की ने भी स्वीकारा है, “ कोई भी स्वस्थ काव्य साहित्य  
प्रतीकों की नये प्रतीकों की, हृदि उतरता है और बय बिसा करना बन्द  
कर देता हैतब जड़ हो जाता है- या बय जड़ हो जाता है तब बिसा करना  
बन्द करके पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर करने लगता है।”<sup>2</sup>

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में जो प्रतीकों  
की चयनना हुई है उसमें मौलिकता, घोषाम्यता एवं घोरिकता परिमिश्रित  
होती है। मौलिकता, नवीनता एवं घोषाम्यता के कारण ही यह प्रतीक  
स्वच्छन्दतावादी मोड़ पर मिलती है।

1. डॉ० केदार नाथ सिंह: अग्नी धिनुक्त अग्नी : पृष्ठ 31

2. ‘अपेक्ष’, आत्मनेपद : पृष्ठ 42

मिथक :  
०-०-०-

‘ लक्ष्मी एक ऐसी विधा है जो काल में प्रवेश कर काल से बाहर निकल जाती है। मिथक काल से बाहर निकलने का सबसे शक्तिशाली माध्यम और सत्य है।

‘ मिथक’ के साथ सांस्कृतिक मूल्यों को बचन करने वाली व्याख्या की जाती है। उसकी प्रस्तुति प्रतीकवाद में अभिव्यक्ति है। अतः मिथक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्राचीन माध्यम है। प्राचीन होने पर ही यह सांस्कृतिक चेतना को तेज करता है। वस्तुतः ‘मिथक’ जब ही पूर्ण होता, जिसमें पौराणिक व्याख्या, पुराणवादी, पौराणिक प्रसंग आते हैं। इनके अभाव में ‘मिथक’ अपना स्वयं स्वरूप नहीं कर सकता। पौराणिक व्याख्या या प्रसंग के कारण ही इसमें अचेतन मन की प्रधानता रहती है। चेतन मन द्वारा प्राकृतिक उपादानों और घटनाओं के मानवीकरण की यह अचेतन विधा मिथक-रचना का मूल चिह्न है। सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के कारण इसका सत्य आत्मपरक एवं मनोवैज्ञानिकता पर टिका हुआ होता है।

‘ मिथक वस्तुतः आत्मनिष्ठ एवं मनोवैज्ञानिक होता है और यह सांसारिक धर्मार्थ को मानवीय अनुभूतियों की शब्दावली में प्रस्तुत करता है। मिथक की रचना में यद्यपि यथेष्ट उत्पन्नगति से काम लेता है, लेकिन ऐसा लगता है कि सत्य ही इसका आधार है। इस प्रकार उत्पन्न और सत्य या भाष्यगत सत्य एवं वस्तुगत सत्य की अद्वैत प्रतीति मिथक की परिकल्पना का धरातल चिह्न है।’ 2

वस्तुतः मिथक का प्रयोग देखी-देखाओं अथवा अतिश्रुत, काल की स्थापना घटनाओं में किया जाता है। किन्तु स्वच्छन्दतावाद में मिथकीय चेतना नहीं होती बल्कि यह एक अतिश्रुत या मानवीय धरातल पर

1. डॉ० विवेन्द्र नारायण सिंह : आध्यात्मिकता की समस्याएँ, पृष्ठ 28

2. डॉ० अरवि सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृष्ठ 200

आज ही संवेदनाओं को धरन करेंगे। यदि साहित्य में उस प्रकार का प्रयोग नहीं होगा, तो वह ऐतिहासिकता, पौराणिकता तो होगी, लेकिन स्वच्छन्दतावादों में ऐसी कल्पना से जुड़ी चेतना नहीं होगी। अतः स्वच्छन्दतावादी मिथर्तीय कल्पना से जुड़ी चेतना नहीं होगी। अतः स्वच्छन्दतावादी चेतना के लिए यह अति आवश्यक है कि कवि या साहित्यकार अपने अतिप्राकृत पात्रों को मानवीय रूप देकर आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करें।

राम पौराणिकता में ऐश्वरीय रूप हैं। किन्तु आधुनिक संदर्भ में उन्हें साधारण मानव के रूप में 'गधरी' में प्रतिबिम्बित किया है। साधारण मानव के रूप में ही वह गधरी के गूँठे पैर धाते हैं।'' आदि-कवि वात्सीकि ने इस प्रसंग के पीछे सामाजिक प्रयोजन भी समझा है। प्रत्येक व्यवस्था का दोषग्रस्त होना उसकी नियति एवं प्रकृति है। वर्ण-व्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं हो सकती थी। यह व्यवस्था किस प्रकार अपने चेतन्य की रक्षा इस सामूहिक चतुता से लेकर सकती है। यह प्रश्न आदि-कवि के युग में भी उत्पन्न था तथा आज के वर्ण व्यवस्था वाले समाज में भी जीवन्त समस्या है। वात्सीकि ने सामाजिक वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न शक्ति के आध्यात्मिक स्वतन्त्र एवं असंख्य रूपों को प्रतिबिम्बित किया और गधरी की नीच-परिस्थिति है।'' वस्तुतः गधरी पौराणिक परित्र है। उसके साथ ही वह वांछि से जुड़ा भी है। जुड़ा होने के कारण ही वह मानसिक संज्ञा, सामाजिक अपमान तिरस्कार को भोगती है। वह सामाजिक अपमान आधुनिक युग में भी भोग रहा है। अतः गधरी पौराणिकता में जोर ही आधुनिक संवेदनाओं को धरन करती है।

‘प्रवाद पर्व’ में राम की सारी क्रिया-कलाप माननीय हो हैं जो उद्विग्नता, घेदना, चिन्तन मनुष्य में संकटावस्था में दिखायी पड़ता है। यही भावानुभूतियाँ राम में परिलक्षित होती हैं। अपनी अरिमता की रक्षा हेतु वह सीता को घनवात का आदेश देते हैं। क्यों मनुष्य वह नहीं चाहता कि कोई अनजान व्यक्ति उसके या उसके परिवार के चरित्र के अन्तर्गत उठायें। खास तौर पर राजा का यह परम कर्तव्य है कि वह प्रजा के सारे दुखों को सहितों को दूर करे। यही कार्य राजा होने के नाते राम करते हैं। अतः हमेशा स्व में होते हुए भी वह मानवीय क्रियाओं में परिलक्षित रहते हैं। अन्तः यही स्व स्वयच्छान्दतावादी सिद्ध का है।

दुःख क्यों आते हैं अववाद क्यों बनते हैं यह साधारण मानव की बुद्धि से परे है। इसी चिन्ता में राम भी डूबे हुए हैं :

“मनुष्य की इस आदिम जिज्ञासा का उत्तर/ किसी भी दिशा पर / कभी भी दस्तक देकर देखो / किसी भी प्रहर के/चित्ति-  
-वशोप को हटाकर देखो/ कोई उत्तर नहीं मिलता राम, /  
दस्तकों को कोई प्रतिष्ठा नहीं तक नहीं आती। शून्य है किसी का  
देखना नहीं लीटता।”

व्यक्ति चाहे राजपुरुष हो या इतिहास-पुरुष, चिन्तु उसे भी इतिहास की मर्यादा रखनी पड़ती है। राम भी साधारण मानव चरित्र में जोकर यह दावाति हैं। वह एक राजा हैं और राजा का प्रथम कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को पूरा न्याय दे। उस न्याय के सत्य में उसे स्वयं भी हो हो जाना पड़ता है। यही अग्नि सीता को राम से अलग कर देती है।

वस्तुतः सीता और राम पौराणिक दिव्य पुरुष होते हुए भी आधुनिक संदर्भ में ही जीते हैं। यह मानसिक त्रासदी ऐसते हैं जो साधारण-नर-नारी भोगते हैं। अतः यहाँ स्वच्छन्दतावादी मिथकीय परिकल्पना ही परिलक्षित होती है।

‘आत्मजयी’ में भी पौराणिक प्रसंगों पर आधारित नयिकेता और वाजसवा की कथा है। पौराणिक होते हुए भी इस कथा का नाटक आधुनिक युगीन चेतना को लिये हुए है। जिते कवि ने स्वयं स्वीकारा है, “कठोपनिषद् से लिये गये नयिकेता के कथानक में मैंने थोड़ा परिवर्तन किया है, लेकिन इतना नहीं कि आधार-कथा की वस्तु-स्थितियाँ ही भिन्न हो गयी हों। कथा को आधुनिक ढंग से देखा गया है, पौराणिक दिव्य-कथा के रूप में नहीं”<sup>1</sup>। वाजसवा पूजा-यात्रा यह आदि कार्यों से जीवन की मुक्ति चाहते हैं, किन्तु नयिकेता का मत है कि इस प्रकार के कार्य-कौशल मुक्ति प्रदान नहीं करते बरन् संसार में आना-जाना लगा ही रहता है। नयिकेता के इस विद्रोह को देखकर वाजसवा उसे मृत्यु का शाप दे देते हैं। नयिकेता अधिपत भाव से इस शाप को अपनाता है। अदृष्ट से वह यमराज के पास जाता है। अटल, हृद प्रसिद्ध देखकर यमराज उसे अनोखा-जित तीन वरदान देते हैं। यही वरन सुष्ठि का रहस्य नयिकेता को करवाते हैं। उन्होंने के कारण वह जोधम-भरण के मोह से दूर होता है।

“अधेय’ जी मे’ नदी की घाट पर छाया’ कविता संग्रह में एक कविता के अन्दर मिथक का वर्णन किया है :

“कौन शरदिह हुआ, कृष्ण १/ तुम, मेरे नारायणा, कि मैं/ नियति का आभागा आकेट, अहेरी मैं, / x x x पछी धाती को भी दे दिया था शाप तुरत / मानव था कवि, कृष्ण था, द्रोणी था, / और तुम, नारायणा मेरे, / दाता, जिते तारा जग वन्दता है / दे न सके अपनी अजस्र उदारता में मुझे / एक शाप तक।” 2

1. कुँवर नारायणा : आत्मजयी : पृ० 8

2. अधेय : नदी की घाट पर छाया : पृ० 23

कृष्ण अवतारी पुरुष हैं, पूर्णपुरुष। उन्हीं पर आधुनिक कवि ने किया है कि मेरे प्रभु तू या मैं साधारण नियति का अंग। अहो १ आदि कवि ने तो इतने कथ के लिए अहो को गाय दे डाला था, परन्तु वह मानव ही था। किन्तु आज तो दीनबन्धु, कृपालु, दयावान हैं, क्या मुझे नहीं मुक्ति का गाय देना। क्या यही आपकी दयालुता है कि अपराधी तो मुक्त-स्वच्छन्द निरपराध से स्वतंत्र पूर्ण और मैं निरपराध, अपराध का बोध लिए कि १ वस्तुतः यहाँ साधारण मानव को इतना संश्लेषण बनाया है कि वह प्रायः देने में समर्थ है, दूसरी ओर ऐतिहासिक पौराणिक कृष्ण का यह दिखाया है कि वह समर्थवान होते हुए भी आज के संदर्भ में असहाय, असमर्थ हैं। अतः उन्हीं विन्दुओं पर यहाँ स्वच्छन्दतावादी मिथक आधुनिकता लिए हुए हैं जो नयी कविता में परिलक्षित होता है।

डॉ० धर्मवीर भारती की कृति 'कुप्रिया' राधा-कृष्ण के पौराणिक स्वल्प पर ही निर्मित है। जिसमें स्वभावतः पौराणिक संदर्भ, कथा-सूत्र एवं संकेत पाये जाते हैं। परन्तु डॉ० धर्मवीर भारती ने इनके आधुनिक भाव-बोध पर अवलम्बित किया है जिसमें आधुनिक, स्वच्छन्दतावादी तत्व मिलती है। जिसके कारण पुरातनता का एवं नवीनता का सामंजस्य स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। कथा-प्रसंग, प्रतीक, उपमान, दार्शनिक सूक्ष्ममयि, वैष्णव महाभाव आदि अनेक बातें डॉ० भारती ने परम्परागत ही अपनाई है। इन पौराणिक प्रतीकों उपमानों को उन्होंने पूर्णतः आधुनिकता का पोषा पहनाया है। महासुख के प्रतीक राधा-कृष्ण को भी अंतिम परिणति में आधुनिकीकरण कर दिया है। अभिव्यक्ति शैली तो सर्वथा नवीन आधुनिक ही है। इस प्रकार नूतन और पुरातन का मणि-काँचन योग सा रचना में दिखाई पड़ता है। राधा का मिथक, साहित्य में 'राधिकोपनिषद्' से ही प्रमाणित होता है। क्योंकि श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु इसके बाद के पुराणों में उसका उल्लेख भर मिलना आरम्भ होता है। धीरे-धीरे यही प्रारम्भ प्रामाणिकता बनता गया और मध्ययुग तक आते-आते राधा का निश्चित स्वल्प बन गया कि

वह कृष्ण की प्रेमिका है। अतः राधा का प्रेमिका स्वयं का मिथक ही लोक प्रचलित है। यह प्रेमिका सर्वगुण सम्पन्न है। उसमें न तो त्व का गर्व है और न बुद्धि वासुदेव का धर्म है, बल्कि उसके अन्दर सहन-शीलता का विलम्बा शक्ति है। वस्तुतः उन्हीं गुणों के कारण वह कृष्ण की अति विशिष्ट प्रेमिका बनी है जिसके अभाव में कृष्ण आधे-अधूरे रह जाते हैं। यह राधा ही कृष्ण को शक्ति बनती है। इसी प्रकार कृष्ण के मिथकीय त्व का विकास हुआ। पहले उन्होंने वासुदेव के पुत्र के त्व में व्याप्ति पायी, परन्तु बाद में धीरे-धीरे उठकर युगनायक बने। गीता का प्रणेता बने और महाभारत के संघातक बने, युग-नायक, युग-निर्माणा और स्वयं में एतिहास बने, अवतार बने और अन्त में बन गये एक मिथक।

अतएव जो नवीनता, आधुनिकता, मौलिकता, 'कनुप्रिया' में देखने को मिलती है वह है समस्त युग की, मिथक को राधा की दृष्टि से देखने की सही मौलिक दृष्टि 'कनुप्रिया' में कैजोड़ बन पड़ी है। इनके अतिरिक्त प्रणय-सम्बन्धी कुछ मिथक परम्परानुसार ही हैं।

इसी प्रकार कृष्ण की रास-लीला का संदर्भ, दार्शनिक, कानिय नाग, उन्म-प्रकोप से प्रेम की रक्षा, राधा का कृष्णामितारिका बनना, लखियों से गोपन, आदि संदर्भ परम्परानुसार ही है। दार्शनिक संदर्भ में कनु को ब्रह्म का प्रतीक या विष्णु का अवतार पुरुष माना है। जिसकी छछा से ही दृष्टि का उद्भव होता है, एवं राधा को कनु की शक्ति बनाया है। ये सब परम्परामत उद्भावनाएँ ही हैं। राधा ही कनु की लीला सहचरी है। वह विराट्-प्रकृति व्या है। राधा और कनु का सम्बन्ध प्रकृति और ब्रह्म का शाश्वत प्रणय है। अतएव दृष्टियों का प्रेम राधा कनु के ही प्रणय की पुनरावृत्तियाँ हैं। जब छछा की तरह कनु राधा को अर्थात् अपनी शक्ति को जगाते हैं तो दृष्टि का उद्भव होता है। दोनों का प्रणय व्यापार दृष्टि की स्थिति का प्रतीक है और जब प्रगाढ़ प्यार, उद्दाम वासना, डेलि-झीड़ा, के पश्चात् राधा थक कर ले जाती है तो यह दृष्टि विनीत हो जाती है। वस्तुतः जीव और ब्रह्म



अंग और अंगी की जो दार्शनिक भावना है वह मूलतः वैष्णव सम्प्रदाय से ही परिलक्षित होती है, 'तुमने जो रात की रात जिसे अंतः भी आत्मज्ञान दिया उसे सम्पूर्ण जनर धारण अपने-अपने घर भेज दिया।''<sup>1</sup>

वस्तुतः इस मिथकीय घटना को डॉ० फर्ग्यूसन भारती ने आधुनिकता की नयी शैली में अभिव्यक्त किया है। फलतः इस दृष्टि सुनन का धिक्कार प्रहम की छप्पा से होता है और प्रहम की छप्पा सिर्फ राधा ही है। इसी दार्शनिक तथ्य को कवि ने 'सुनन-संगिनी' में व्यक्त किया है। राधा कहती है, '‘कौन है वह जिसकी लोच में तुमने काल की अनन्त समझड़ी पर तूरज और पवि को भेज रखा है। कौन है जिसे तुमने छंदा के उद्दाम स्वरों में पुकारा है। कौन है जिसके लिए तुमने महासागर की उत्ताल सुमार फैला दी है। कौन है जिसकी आस्था को तुमने तरंग-मालाओं की तरह अपने कंठ में, वक्ष पर कलाओं में लपेट लिया है— वह मैं हूँ मेरे प्रियतम, वह मैं हूँ, वह मैं हूँ।’’<sup>2</sup> अतः राधा केवल पौराणिक संदर्भों की भोग धिक्कारिणी और धियोनिनी नारी नहीं बनी है। वह तो आधुनिक युग मूल्यों के अनुसार कृष्ण की इतिहास निर्मात्री भी है। क्योंकि उसके बिना कृष्ण के सांकेतिक अर्थ, निरर्थक, अर्थहीन हो जाते हैं। राधा ही कृष्ण के युद्धाभियोजन तथा धर्मार्थ के निर्णय पर ध्यान्य करती हुई भीष्मा नर-संहारक युद्ध के प्रति कृष्ण उत्पन्न करती है। इस प्रकार कृष्ण की मनोवृत्ति की बदलना एवं राधा के युग मूल्य को जागृत करना कृति की मिथकीय घटना ही है। स्वात्मिक मिथकीय अभिव्यञ्जना में पौराणिकता एवं समकालीनता का संयोग होना आवश्यक है।

‘‘ एक कंठ धिक्काराही ’’ काव्य नाटक पूर्णतः मिथकीय है।’’ शिव’’ जो कल्याणामयी हैं, अपनी प्रिय पत्नी की आत्महत्या से पूर्ण मानवीय व्यवहार करते हैं। जिस प्रकार मानव की प्रिय वस्तु के वंशित हो जाने

1. डॉ० फर्ग्यूसन भारती : कृष्णप्रिया : पृष्ठ 19
2. डॉ० फर्ग्यूसन भारती : कृष्णप्रिया : पृष्ठ 42

पर उसकी मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है, या क्रोध के कालभूत होकर वह विध्वंस को बाहें सोंघता है, ऐसी ही मानसिकता उन परम शक्तिमयी 'शिव' की है। ऐसी ही मानवीय क्रियाएँ महादेवी 'सती' के पिता भी करते हैं। मानव समाज में, विशेषकर मध्य वर्ग के लोग अपनी प्रतिष्ठा की बहुत रक्षा करते हैं, यह ठीक ऐसी बात सहन नहीं कर सकते जो उनकी प्रतिष्ठा में क्षय लगाये। महादेवी 'सती' की शादी 'शिव' के साथ होने पर 'दध' क्रोधित होकर अपने आपको अवमानित महसूस करते हैं क्योंकि यह शादी उनकी इच्छा के विरोध में हुई थी। इसी पीड़ा को देखते हुए कहते हैं :

“ क्या आवश्यकता थी दोनो / एक स्पष्ट के आलम्बन की /  
व्यर्थ प्रेम के नाम / हमारी लोह-हँसार्ह, बदनामी की /—  
परम्पराओं के खंडन की ... ।” 1

ऐसी ही तीव्र वेदना मध्यम के चिन्तन में मिलती है।

मानवीय पीड़ा महादेव 'शिव' भी प्रकट करते हैं। वह शिव जो देह मुक्त, मोह से दूर, तत्त्वज्ञानी और सन्ध्याती है, वही पत्नी वियोग में दुष्टि में विनाश करने के लिए उत्तेजित हो उठते हैं। तथा क्लिप्त करते हैं :

“ आह, शोक ने मुझे / अधीन्हीं स्थितियों से जोड़ दिया /  
महासूनु के अन्तराल में / निपट अकेला छोड़ दिया / सारा  
धीरज तोड़ लिया है / सारा रक्त निघोड़ दिया, × प्रिया-  
हीन व्यक्तित्व-विखंडित / जगह-जगह से तोड़ दिया ।” 2

वस्तुतः यह पौराणिक पात्र जब आधुनिक संदर्भ में मानवीय कसक पर अवतरित होते हैं तब वहाँ मिथकीय घेतना होती है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि नयी कविता के कवियों के कुछ अंशों के काव्यों में मिथकीय घेतना परिलक्षित होती है।

1. दुष्यंत कुमार : एक कण्ठ विजयायी : पृष्ठ 18

2. दुष्यंत कुमार : एक कण्ठ विजयायी : पृष्ठ 71

यह मिथकीय चेतना स्वच्छन्दतावादी मूल्यों को घटाने लगी है। नयी कविता में जो मिथक परिलक्षित हुए हैं वह राम और कृष्ण के साथ वास्तवता और नयिनेता भी है। कवि जब आधुनिक युग की वास्तविकता से संलग्न रहता है तो वह पौराणिक, ऐतिहासिक युग का समर्थ वरिष्ठ नेहरू अपनी कल्पनाओं को उसमें दालकर नवीन युग-बोध कराता है। यही युग-बोध मिथकीय कल्पना, या चेतना कहलाता है। युग-बोध के अन्तर्गत ही वह स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के नवदीर्घ पहुँचता है। कविता के मिथक के संदर्भ में डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह का कथन है, "कवितारों और मिथक काल की एक विशिष्ट पार्थिव श्रेणी में स्थान्तरित करने में अनुस्यूत सिद्ध होते हैं, एक अतीत में जो कि तदा भविष्य होता है और जो तदा वर्तमान बनने को प्रस्तुत रहता है।"।

**प्रगीत :**  
□-□-□

प्रगीत स्वच्छन्दतावाद की शैलीगत प्रवृत्ति है। प्रगीत की चेतना में लौक-संस्कृति एवं व्यक्तिगत अनुभूति अनुगमन करती है। अतः इसके अन्तर्गत आन्तरिकता की अनुभूतियाँ स्वतः ही प्रघाहित होती रहती हैं। वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी चेतना में विषय-वस्तु का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। मन की प्रक्रिया ही काव्य में घटना को आधार देती है और मानसिक क्रिया स्वयं की सृष्टि करती है। प्रगीत की प्रवृत्ति में व्यक्तिगत भावोच्छ्वास होना आवश्यक है। प्रगीत का काव्य व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि देता है।

"स्वच्छन्दतावादी कवि सुप-दुःख निर्वर्धन अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रगीत का दाम पकड़ता है। यह काम सरलता पूर्वक प्रगीत के द्वारा ही संभव है। प्रगीत की आत्मा भाव है जो

जो किसी प्रेरणा से ब्य़र एक साथ गीत में बह जाता है। अतः प्रकृति से ही उसमें हाँसिफाँस या उपकरण रहता है। सच्चा प्रगीत एक सरल, शण्ड एवं तीव्र मनोबल होता है।\*\* 1

वस्तुतः प्रगीत में कवि की निजी एवं स्वच्छन्द अनुभूति कार्य करती है। इसमें सज्ज-भावानुभूतियाँ ही विद्यमान रहती हैं। सहज - भावानुभूतियाँ के फलस्वरूप ही कोई आवरण, दुराव, छिपाव कवि नहीं कर पाता। डॉ० नामवर सिंह का ध्यान है, "प्रगीत कविता अनुभव सम्पन्धी अनुभव अथवा अनुभव को अनुभव करने की कविता है।" 2

वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी प्रगीत में लोक-संस्कृति, आन्तरिक अनुभव, सहज भावानुभूतियाँ कार्यरत रहती हैं।

स्वच्छन्दतावादी चेतना की यह भावानुभूतियाँ नयी कविता में भी परिलक्षित होती हैं। श्री शमशेर सिंह जी प्रगीत की अभिव्यक्ति दी है :

"शाम का आखिरी गाना —/ तुम जाना न जाना/ वो नाम तो मन को रटाना— न खोजेगा/शाम का गाना—/ न बुझेगा / शाम का आखिरी गाना।" 3

प्रगीत में लो-आवा के शब्द आकर ही लोक-संस्कृति से जुड़ते हैं :

"तावन के उनहार/ अग्नि-पार/मधु बरसे, तुन बरसे/ बरसे— स्वर्गति पार / अग्नि- पार।" 4

मुक्तिबोध जी ने प्रगीतों की रचना नहीं की, किन्तु फिर भी कहीं - कहीं प्रगीतात्मक चेतना परिलक्षित हो जाती है :

1. डॉ० अजय सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : पृ० 206

2. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 136

3. शमशेर सिंह : कुछ कवितारें, कुछ और कवितारें : पृ० 51

4. शमशेर सिंह : कुछ कवितारें, कुछ और कवितारें : पृ० 60

“ छँहरों के मूक आँ निस्यन्द से / उमड़े अकेले गीत / ये  
भूत से निर्देह भयकर/ बेघेन काले व्यथित आतुर / तिमिर  
नुपुर के अकेले स्वर/ डुमड़े अकेले गीत।” 1

वस्तुतः प्रगीत का नाता वेदना से ही होता है। यह वेदना तब  
और भी उग्र हो जाती है जब व्यक्ति अकेलापन महसूस करता है। इसी  
अकेलापन में ‘प्रगीत’ जैसे गीत की संरचना होती है। अतः इसके शब्द  
स्वतः ही भावनापूर्ण बन जाते हैं। यही अभिव्यक्ति मुक्तिबोध जी की  
कविता में परिलक्षित है।

श्री सर्वेश्वर दयाल जी के काव्य में प्रगीतात्मक शैली विस्तृत रूप  
में देखने को मिलती है। इनके प्रगीतों में लोक-संस्कृति की झलक भी  
मिलती है। सावन मास में जब झूला डाल कर नव युवतियाँ पैंगे भरती  
हं तब उनकी अभिव्यक्ति एवं मनो भावों को व्यक्त किया है :

“ सर-सर-सर सर बहत बयरिया/ उड़ि-उड़ि जात चुनरिया रे,  
खुलि-खुलि जात किँवरिया ओठगी/ धिरि-धिरि जात  
बदरिया रे” 2

इसी प्रकार का दूसरा भाव है :

“ धरती डोलूँ अम्बर डोलूँ हाथ न उनके आऊँ रे।  
हरी घुड़ियाँ हरी चुनरिया  
हरी नीम की डाल रे ” 3

वस्तुतः इन प्रगीतों में लोक धुन से पगी अनुभूतिही व्यंजित हुई  
है। इसके सरल-शब्द हृदय में अनायास अपना स्थान बना लेते हैं। बिम्ब

1. सं० ‘अज्ञेय’ : तार सप्तक X पृ० 70

2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें एक : पृ० 95

3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कवितारें एक : पृ० 96

एवं प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करते प्रगीत प्रस्तुत किया है :

“ दादुर मोर पपीहा पीले,  
बोले अचिल पानी रे,  
छने-छन-छन-छन चुरियाँ पीले  
रिमझिम रिमझिम पानी रे” ।

इन प्रगीतों में व्यंग्यता नहीं आ पायी है। अतः भाषा में भी उतना ही मिठास आया है जितना गद्य की सुवती छुटा होकर गायी है<sup>1</sup> परती डोन्नु अम्बर डोन्नु हाथ न उनके आऊँ रे ।<sup>2</sup> अतः यह प्रगीत आन्तरिक अनुसूतियों का व्यक्त करते हैं। इन्हें पढ़ने में कैहूँ तनाव उत्पन्न नहीं होता बल्कि मस्तिष्क का तनाव मनोवैज्ञानिक ढंग से हटता जाता है। अतः इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रगीत बोधिक युग के तनाव को दूर करने में सक्षम है।

इसी प्रकार ‘अज्ञेय’ जी ने भी प्रगीतात्मक शैली का प्रयोग किया है :

“ हतराया यह मोर ज्वार का/ ज्वारि जी ज्वार चली,  
राशि गगन पार होते न होते— रेकाली आहुँ टार चली ✓  
नम में रक्खीन दीन/ पगुलों की डार चली ,/  
मन की सब अनकही रही—/ पर मैं बात हार चली ।”<sup>3</sup>

बाड़े के मांस के बाद जब फलन कहती है उसी पर व्यंग्यात्मक भाषा में प्रगीत रचा है।

“ बह चुडी बहली हवाई चेत जी/ कट गयी पूर्ण हमारे चेत की  
कोठरी में ली बड़ा ख दीप जी/ गिन रहा होगा महाजन तैत  
की ।”<sup>4</sup>

1. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कवितारं एक : पृ० 95

2. सर्वेधर दयाल सक्सेना : कवितारं एक : पृ० 96

3. ‘अज्ञेय’ : हरी पात पर छा भर : पृ० 49

4. ‘अज्ञेय’ : सर्वना के छा : पृ० 64

की गिरिजा कुमार माधुर जी ने प्रगीत को परिशीलित किया है,  
 “ गीतात्मक या गिरिज्य तत्त्व कविता की एक बहुत घड़ी आन्तरिक  
 शक्ति है। वास्तव में यह तत्त्व समूची भारतीय कविता की विशिष्टता  
 है, उसकी मीति परवान को रेखांकित करता है। यही उसे अपने वृहत्तर  
 परिवेश से जोड़ता है, मोठ-संगुचित प्रदान करता है।”<sup>1</sup> वस्तुतः  
 प्रगीत में मोठ-धुन से पये गीत, प्रकृति के गाये प्रगीत मिलते हैं। मिट्टी  
 की सोधी गंध को प्रगीत में पाया है :

“य मिट्टी की मन्थ से सोधी हवाएँ/ ये जामुन के रंग-सी नीली  
 पहाएँ/ उड़ी आ रही है लहर-सी कुहारें / उमंगते उरज  
 मेघमाती झुआएँ”<sup>2</sup>

कवि अपनी प्रेयसी को बिदा समय अपना अन्तर्जन खोलते हैं कि  
 अभी तो हमें मिले दो ही आँसु हुए और यह बिदा का समय आ गया।  
 अब तुम्हीं पताओ कितनी जल्दी बिदाई लौ दूँ।”<sup>3</sup> प्रिय के धियोन  
 में छोटे दीप के समान यह ठानी रातें बीत चली हैं। जाने किन महलों  
 में उसका प्रिय निवास कर रहा है।”<sup>4</sup> प्रकृति का चित्रण किया  
 है, “जब कली के लुने जंगों पर लगेगी/रंग छाप दलन्त की / कामिनी  
 तो अब लिपट कर सो गयी है / रात यह हेमन्त की”<sup>5</sup> तनतनाती  
 साँझ सूनी, वायु का छलना उनका, कीँचुरों की खेड़ो पर, दक्षिण  
 पीहड़ बनकता”<sup>6</sup>

वस्तुतः माधुर जी के प्रगीतों में आत्मिक अनुभूति के साथ परिवेश

1. गिरिजा कुमार माधुर : आध्यात्म जूना मन : पृ० 8
2. गिरिजा कुमार माधुर : आध्यात्म जूना मन : पृ० 13
3. गिरिजा कुमार माधुर : आध्यात्म जूना मन : पृ० 42
4. गिरिजा कुमार माधुर : आध्यात्म जूना मन : पृ० 48
5. गिरिजा कुमार माधुर : धूस के धान : पृ० 50
6. गिरिजा कुमार माधुर : धूस के धान : पृ० 89

गत भाषा का प्रयोग मिलता है। लौकिक परिवेश से जुड़े हुए होने के फलस्वरूप भाषा के कुछ शब्दों में तत्सम शब्दों का समावेश है। फिर भी उनकी प्रगोतात्मकता की मिठास कम नहीं हो पायी है। इनके प्रगीतों में पूरी भाषानुसृतिपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

की डेदार नाथ अग्रवाल जी के काव्य में भी प्रगोतात्मकता प्रकट होती है :

“ छोटे हाथ/ तवेरा पीते/ लाल कमल से खिल उठते हैं / करनी करने को उत्सुक हो / धूप हवा में हिल उठते हैं।” 1

कभी धीरे-धीरे चोते, जड़ को घेतन बनाते हैं। मिट्टी में सोना उपजाते हैं। छोटे हाथ परस्पर करके ईंटों पर ईटरकर महलों का निर्माण करते हैं, यह छोटे-हाथ मेहनत करते ही रहते हैं कभी थकते ही नहीं है। तब सम्पूर्ण प्रकृति को अवनत्य भावना देते हैं :

“ जब भी अपना-का भी अपना/ और गगन भी अपना है।

कर्म, कला, जीवन के स्वामी—/ जब का प्रण भी अपना है।” 2

इस प्रगीत में जितान की मेहनत के साथ सेवा का प्रेम भी परिलक्षित होता है :

“ बाल्दी-बाल्दी हाँकि जिताना / पंखों को धुरियाये जा।

युग की पैनी लोह लुनी को / धुँध में छुव गड़ाये जा।

x x x x x x

अपना प्यारा छून पत्तीना/तो-सी पार चुआये जा।

आखादी की हर सपना को / बारम्बार खिलाये जा।” 3

1. डेदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृष्ठ 133

2. डेदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृष्ठ 142

3. डेदार नाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी : पृष्ठ 160



केदार नाथ अग्रवाल की है काव्य में जन-जीवन एवं गाँवों का वर्णन मिलता है :

“ नाव मेरी पुरछन के पात की,  
 लोमल है गात की ,  
 प्याकुल है जैसे ि वातकी ,  
 त्वाँतो के स्वाद की ” ।

“ आसमान की ओ,ने ओढ़े/धानी पहने/ फलम पोरिया/

राधा घन पर धरती नाची /महवा हँसमुख / कृष्ण सँवरिया ।” 2

वस्तुतः जी केदार नाथ अग्रवाल जो है प्रगीत लोक-चेतना के प्रगीत है। जिसमें गाँवों की भावानुभूति प्रकट हुई है। यह सत्य होते हुए भी असाधारण लगते हैं। इनके प्रगीतों में पद्यार्थवादी चेतना परिलक्षित होती है।

डॉ० फर्ग्यूसन भारती के काव्य संग्रह 'सात गीत जब' और 'ठंडा लोहा' में प्रगीतात्म्यता है। वस्तुतः यह प्रगीत रोमांटिक है। क्योंकि डॉ० भारती मूलतः रोमांटिक कवि हैं। अपनी प्रेमिका के उज्ज्वल पाँवों को गोद में रखकर भावविभोर हो जाते हैं और उन्हें 'कमल की छाँव, दो बड़े मासूम बादल' 3 की संज्ञा देते हैं। प्रेमिका की उदासी उसे और भी सौन्दर्यमयी बना देती है:

' मुँह पर हँस लेती हो आँखें / ज्यों बूझ रहे रधि पर बादल,  
 या दिन-भर उड़ कर थकी फिरन/ तो जाती हो पाँवें समेट,  
 आँखें में जल उदासी वन, / हो मूले-भटके सान्ध्य- पिछन ,  
 पुतली में कर लेते निवास, / तुम कितनी सुन्दर लगती हो/जब  
 तुम हो जाती हो उदास।' 4

1. केदार नाथ अग्रवाल : फूल खोस नहीं, रंग खोजते हैं : पृ० 27

2. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग खोजते हैं : पृ० 31

3. डॉ० फर्ग्यूसन भारती : ठंडा लोहा : पृ० 3

4. डॉ० फर्ग्यूसन भारती : ठंडा लोहा : पृ० 7

डॉ० भारती ने विषय में प्रगीत को बाँधा है कि हवाओं नाचो गाओ, यह तितारों के झुर बाँध कर\*<sup>1</sup>। बोझाई के समय किसान बादलों से पानी माँगता है, कुम्भी, उल्लास में गाता है :

“ गौरी-गौरी सौंघी धरती- - ज़रे-जारे बीच/ बहरा पानी दे।”<sup>2</sup>

उन संस्थितियों में लोक-संस्कृति, एवं लोक-भाषा का प्रयोग हुआ है। धरती का सान्दर्भिकरण भी किया है। साथ ही प्रकृति के नियम से भी अवगत कराया है। जिससे इसकी स्वाभाविकता और भी बढ़ गयी है। कच्चे की शाम कितनी सुहावनी होती है। तथा शाम के समय गाँव में क्या हलचल रहती है, ऐसा हीर्ष्यन णि ने किया है कि टीनों पर, तालों पर हलके, -हलके अपने-अपने ार जाते हैं, जुलूस की पूजा कर दिवारी जलती है, और यह हलकी-हलकी दिनती हुई उजाला फैलाती है। पर भर के बच्चों में शाम उतर जाती है।”<sup>3</sup> अपनी उदासी में कवि को शाम भी अपनी तरह उदास लगती है :

“ एक छागोज सखि तारा है / दूर छूटा हुआ किनारा है

उन सबों से छाया सहारा है / एक धुँधली अथाह नदिया है  
और बहती हुई दिशा-सी है”<sup>4</sup>

इस प्रकार डॉ० धर्मवीर भारती के प्रगीतों में रोमांटिक भाव-बोध के साथ-साथ लोक-संस्कृति भी परिलक्षित होती है। इन्हीं दोनों विन्दुओं पर यह प्रगीत-त्मकता, स्वच्छन्दतावादी फलक पर नयी कविता में परिलक्षित है।

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि जो प्रकृति स्वच्छन्दतावादी ढाँच्य में है, वही नयी कविता में भी कहीं न कहीं अवलोक्य विद्यमान है।

1. डॉ० धर्मवीर भारती : ठंडा लोहा : पृ० 17

2. डॉ० धर्मवीर भारती : ठंडा लोहा : पृ० 34

3. डॉ० धर्मवीर भारती : सात गीत-वर्ष : पृ० 34

4. डॉ० धर्मवीर भारती : सात गीत-वर्ष : पृ० 63

पत्नी के कलस्वस्व यह स्वच्छन्दतावादी चेतना से लुझी है।

डॉ० रवीन्द्र भूषर प्रगीत काव्य के कवियों में अग्रणी हैं। उनके गीत सरल, सुवोध एवं सघन ही आकर्षित करने वाले हैं। डॉ० का प्रतिधियाव जब पृथ्वी के तरल पदार्थों में विस्थित होता है उसे आकर्षण शब्दों में बाधकर प्रगीत की रचना की है :

“ चाँद को लुठ-लुठ पर देखा है / तटि की तलेपा के/ निर्मल  
जल दर्पण में/ पारे तो विठलन धामे/ समझीने मन में—/  
स्व की राशि को परेखा है।” 1

हरियाली के समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे हरियाली ने चारों ओर वंदोषे ज्ञान दिये हों, जोषल की मीठी लूक पपिहे की पुकार अनछुये छा में मैं मान दिये हुए हैं। 2 प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवी सौन्दर्य में तुलना चाँद से की है, एक चाँद हरमूट की ओट से छॉक कर रिखा रहा है और दूसरा बिड़ली से अफि ठर। 3 जब प्रेयसी से मिलन हो जाता है तो स्वतः ही प्रगीत के स्वर फूटते हैं :

“ तुमको पाकर लुझा गये हैं प्रान/ मत्थल में मूँछे हैं निर्धर गान /  
कांतिक की काँसी लज्जन्ती फुँ / नयन सफल हैं निरख तुम्हारा  
स्व / तुम तो जैसे जुग-जुग की पहचान।” 4

डॉ० भूषर ने प्रगीत के माध्यम से सौंद मानवता, को जगाकर समुल भेद को मिटाना चाहा है। जिससे अमृत कलश सहर देवगणा इस पृथ्वी पर उठें। बीणापाणि वरदायिनी सरस्वती का स्वर शशवत धनकर दोनों-दोनों में लहराये। जिससे अचेतन में भी चेतनता जाग्रत हो। प्रत्येक सतियों में नव जीवन का स्वर सुपरित हो। 5 इन विचारों की अभिव्यक्ति में कवि को

1. डॉ० रवीन्द्र भूषर : रवीन्द्र भूषर के गीत : पृ 0 21
2. डॉ० रवीन्द्र भूषर : रवीन्द्र भूषर के गीत : पृ 0 37
3. डॉ० रवीन्द्र भूषर : रवीन्द्र भूषर के गीत : पृ 0 44
4. डॉ० रवीन्द्र भूषर : रवीन्द्र भूषर के गीत : पृ 0 55
5. डॉ० रवीन्द्र भूषर : रवीन्द्र भूषर के गीत : पृ 0 85

उन विचारों की अभिव्यक्ति में कवि ने हवा में ऊँची और पायलों की मधुर धुन घबानि गूँजती प्रतीत होती है :

“ हवा ऊँची है कि धिगुआ प्य उठा, सब गह पायल ,  
उड़े मन गुन्तल कि सुख-कवि धूमने को उठे पादल,  
आत्ममानी दुपट्टा गिर गया तिर से यूँ फिसल पर —  
ठाकनों में मीन-सा फँसने लगा है यदि ।  
एक आँखेली हँसी हँसने लगा है यदि ,  
नील नम से नयन में घसने लगा है यदि । ” 1

भारत की ये एक ताव में जितनी झुलई जाकर मन को सुभाती है, उतनी अन्य किसी देश में न हो जाती। इन्हीं प्रसंगा में कवि ने कहा है कि तुम तयसुच किसी सुन्दर हो, आर में तुम्हें यूँ ही जीवन पर्यन्त देखता रहूँ। ” 2

शहनाई की गूँज मीठी एवं सुभावनी होती यही अनुभूति व्यक्तकर प्रगीत को रचना की है :

“ क्यों सुने आँखें रस-घरला / सब अड़ चेतन भीमे ।  
ठमठ-ठमठ पादों की / पिजली काँधी तन-धन भीमे ।  
नहर उठी पुरवाई । दिशा-दिशा धिंव जाई । /  
कहाँ कभी शहनाई ? / किसने गूँज उठाई । ” 3

प्रगति के प्रमुख गीतकार की गीतनाय सिंह की ये प्रगीतों में भावाभिव्यक्तियों में विम्वर भी उभरते चले हैं। मन की उमंग जब तरंगित होकर उठती है तो वह हवा से भी तेज उड़ने लगती है। खोती बातों का समरण कर सुख-दुख की धूसर-छाँट में मन दाढ़ने लगता है। का

1. डॉ० रवीन्द्र भूषण : तीन मछरी मन घसी : पृ० 27
2. रवीन्द्र भूषण : तीन मछरी मन घसी : पृ० 43
3. डॉ० रवीन्द्र भूषण : तीन मछरी मन घसी : पृ० 55

अभिव्यक्ति में आशा एवं निराशा दोनों का रूप एक समान रहता है।  
 उस अभिव्यक्ति की दीर्घ में हवा आगे न निकल जाए, उस प्रकार हवा  
 को संयत करते हुए कवि हवा को संयत करते हैं कि पुरवैया धीरे बहो।<sup>1</sup>  
 प्रिय की विरहानुभूति प्रेयसी को धीरेन बनाये रहती है :

“ तीन से टिकोरे ये / कित के ये फूल रे १ आम के टिकोरे रे /  
 महुर के फूल रे / पिरम गये पिया, तुम कहाँ १ / टेर रही  
 प्रिया, तुम कहाँ।”<sup>2</sup>

प्रेमी की आत्मानुभूति की प्रगीत में वर्णित है :

“ यह रात हाथ में हाथ धरे अरमानों की।  
 वीरान जंगलों की निर्जर पदतानों की  
 भादती में टकराते धामोश तरानों की  
 खोहार तरौखी हँसी अजाने लोकों की।”<sup>3</sup>  
 यह वे पहिणानी तुम जानों या मैं जानूँ<sup>4</sup>।<sup>3</sup>

वस्तुतः श्री शम्भूनाथ सिंह जी के प्रगीतों में आन्तरिकता  
 की अनुभूति प्रधान है जो प्रगीत की पहचान है जो प्रगीत की अभिव्यक्ति  
 उकेरती है। डॉ० शम्भू नाथ सिंह के प्रगीत लोक धुन तथा लोक-संस्कृति  
 से पगे हुए हैं, पूजा के समय ढोल की आवाजों के साथ शक्ति भाव का  
 स्वर सुनाई देता है। विशेष कर दुर्गा पूजा के नवमी पर्व पर। ऐसे समय  
 गीत के हिलों पर रात्रि भी डोलती प्रतीत होती है।<sup>4</sup> डॉ० सिंह  
 ने पगड़ड़ी का मानवीकरण कर उसे प्रगीत के रूप में बना है :

1. सं० चन्द्रदेव सिंह : पंचि जोड़ बाँसुरी : पृ० ९९
2. सं० चन्द्रदेव सिंह : पंचि जोड़ बाँसुरी : पृ० ३३
3. सं० चन्द्र देव सिंह : पंचि जोड़ बाँसुरी : पृ० ३९
4. सं० कल्याण पति त्रिपाठी : डॉ० शम्भू नाथ सिंह : व्यक्ति और झुंटा :  
 चतुर्थ खंड, प्रतिनिधि कवितारं : पृ० ३९

“ कनकन बिछिया झींगर वाली / किंकिन ज्यों तक-पाँत है ।  
 स्वयंवरा धन चली बावरी / क्या दिन है, क्या रात है ।  
 पहलू से कुछ पीली कँगली वाले पेड़ बबूल के ।  
 बरज रहे, री पाँच न धरना मोरी कहीं कुठाँव में ?  
 अपना जी अँगन क्या कम हो चली पराये गाँव में ? ” १ २

सड़क कभी कभी नहीं है वरन् उस पर चलने वाले की आहूँट सुनाई देती है । इसी प्रकार वह स्वयं न चलकर पथिक ही उस पर चलता है । बिना लूके हुए एक गाँव से दूसरे गाँव में पहुँचती हुई घूमती ही रहती है । अतः डॉ० शम्भूनाथ सिंह जी ही प्रगीतात्मकता में लोक-धुन एवं लोक-संस्कृति का आकलन मिलता है ।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नयी कविता के कवियों की अभिव्यक्ति 'प्रगीत' में भी होती है । वस्तुतः कवि अपने आन्तरिक भावों को जब उकेरता है तभी प्रगीत का जन्म होता है । इनमें लोक-जीवन से पगी धुन भी मिलती है, साथ ही सहज भावानुभूति की तरंग भी है । अतः जो स्वच्छन्दतावादी अभिव्यक्ति है, वह नयी कविता में भी परिलक्षित होती है ।

**उपसंहार**

नयी कविता मानव मूल्यों एवं नये भाव-बोध की कविता है। छायावाद एवं प्रगतिवाद पश्चात् जो भाषा का बदलाव, अभिव्यक्ति की कल्पना, विषय चयन की नवीनता एवं जो काव्यात्मक प्रतिक्रिया हुई, उसी का नाम नयी कविता है। वस्तुतः इसमें जो नवीनता आयी, वह विषय-वस्तु की, आस्था-परम्पराओं की, अभिव्यक्ति काँशल की, नये उपमानों, छंदों, प्रतीकों एवं चिह्नों की है।

प्रत्येक युग अपनी परम्परा एवं परिधि के अनुसार नये मानव-मूल्यों की सृष्टि करता है और नये एवं पुराने का मिलान करके उसके खरेपन की जाँच करता है। इसी के आधार पर युग की महत्ता, मूल्यान्वेषण तथा व्यापक सामाजिक परिधि से अंकित है। जिससे सुबन-शीलता को सही दिशा तथा वास्तविक प्रेरणा मिलती है। नयी कविता में एक ओर सामाजिक रुढ़ियों के प्रति बोध एवं विद्रोह तो दूसरी ओर कल्याणकारी भाव भी परिलक्षित है। अतः नयी कविता व्यक्तिमन की प्रतिक्रिया बन गयी। फलतः अनेक विचारों दृष्टियों का सामंजस्य नयी कविता में विद्यमान है।

सामाजिक या पारम्परिक रुढ़ियों के प्रति विद्रोह स्वच्छन्दतावादी चेतना ही है। वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी चेतना में भी कवि अपने अनुस्य या समाज के अनुस्य न होने वाले कार्य के प्रति एक उदासीन एवं तिरस्कार पूर्ण भाव रखता है। जब यह भाव अपनी गरम सोमा पर पहुँचता है तब ही क्रान्ति होती है। यही क्रान्ति स्वच्छन्दतावादी होती है। अतः नयी कविता की आत्मता स्वच्छन्दतावादी चेतना से भी जुड़ती है। फलतः नयी कविता के विकास क्रम में नये आयामों का विकास आर उसकी सौन्दर्यानुभूति को वांछित चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है, जो स्वच्छन्दतावादी रतन आयाम भी है।

नयी कविता प्रत्येक अनुभव को देश-काल के आधार पर स्वीकार



करती है। उसके कवि जीवन के हर रंग को छूने का प्रयास करते हैं। इसीलिए इसमें पीड़ा, झुंठा, विद्रोह जैसे भावनाओं को मानव मर्यादा के साथ सम्बद्ध किया गया है। मानव मर्यादा के फलस्वरूप ही मनोवैराग्यता का अधिक प्रभाव है। इसमें संतर्प, स्मृति विचार, अनुभव आदि इस प्रकार एक-दूसरे से गुंथे उभरते हैं कि बिना इस सम्पन्न स्थितियों की ग्रहणा किये बिना किसी भी भावानुभूति को समझना ठठिन लगने लगता है।

डॉ० रामदरश मिश्र का कथन है, 'नयी कविता वास्तव में कवि के व्यक्तित्व के सहारे सामाजिक यथार्थ का ही निरूपण करती है। कवि भी अन्ततोगत्या समाज का ही तो एक अंग है। कवि जो भोगता है, अकेले थोड़े ही भोगता है। समाज का वह सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी होता है अतः वह अपने ही समान दर्द को भोगते हुए समाज के तमाम प्राणियों की मूक वेदना को स्वर देता है।' वस्तुतः नयी कविता की चेतना में यथार्थ के प्रति व्यंग्य, आधुनिकता एवं समताप्रियता, नयी छंद योजना, उदार मानववादी दृष्टिकोण, चिंतन का नरैन्तर्ध, जागरूक व्यक्ति चेतना के साथ सामाजिक दायित्व, विद्रोहात्मक सक्रियता का समावेश व्यक्तिगत परिलक्षित होता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कविता के क्षेत्र में एक ठहराव की स्थिति उत्पन्न हुई। कवि कुछ नया करना चाह रहे थे। छायावादी कल्पनाशीलता से ज्यादा कवि कुछ 'तेज' की तलाश में घूम रहा था। इस तलाश में उसने रुढ़िगत परम्पराओं के अन्धोकार करने तथा नये जो न-मूल्यों की स्थापना हेतु कदम उठाया। फलतः कवियों में एक आन्दोलनकारी चेतना जागृत हुई। यही चेतना नयी कविता में परिणत हुई। जब किसी कारणावश नयी चेतना विकसित होती है, तो अपने समय की 'आधुनिकता' बन जाती है। काव्य की पारम्परिक बंधन, रुढ़ियों की बाध देने के कारण प्राचीन साहित्यकारों को पीड़ा अवश्य पहुँचती है। इसी पीड़ावश वह नये

साहित्य को स्वीकारने में कुछ असमर्थता पाते हैं। अतः पहले-पहल न तो पद्यति या आन्दोलन की आलोचना की। चिन्तु जैसे-जैसे उसे प्रशंसा मिली, जैसे-जैसे आलोचकों की स्वीकृति मिलती रही। नयी कविता की केतना में साहित्यिक परिस्थितियाँ प्रबल रही हैं। अतः उसकी स्वस्थता यह है कि वह अपने परिवेश के हरेक पहलू को वास्तविकता एवं यथार्थता में देखती है।

श्री गजानन माधव

उपादानों के द्वारा चित्रित करता है अथवा अपने मन की भाव-स्थिति की आधुनिक सत्यता के उपकरणों के प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता है। उसकी कविता में सामाजिक यथार्थ, प्राकृतिक सौन्दर्य और मध्यता से लेकर निगूढ़ भाव-स्थितियों के विश्लेषण और चित्रण ध्वंग्य और विद्रोह सभी सम्मिलित हैं।''<sup>1</sup> डॉ० नामवर सिंह का कथन है, '' 1951-59 के बीच नयी कविता के रूप में सर्वनात्मक सम्भावनाओं का जो अभूतपूर्व आवेश दिखायी पड़ता है उसका येय समकालीन परिवेश के साथ कवि की इस रागात्मक संगति को देना अनुचित न होगा। इस वातावरण में जो भी विसंवादी स्वर निकला, अपने-आप डूब गया। सुखशीलता का जादू ऐसा चला कि किसी भी प्रकार के 'आलोचनात्मक' स्वर के लिए गुंजाउत न रही। केदारनाथ ग्रगपाल, नागार्जुन, दिलीपन ही नहीं मुक्तिबोध की आवाज भी इस 'सुख-ध्वजा' में डूब गयी। स्वाधीनता की पहली लहर में कुछ ऐसा लगा जैसे नव रोमनवाद का पुनरुत्थान हो रहा है।''<sup>2</sup>

वस्तुतः यही सामाजिक चेतना तथा नव रायनवाद का पुनरुत्थान स्वच्छन्दतावादी चेतना है। छायावाद युग में सामन्तवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह या जो स्वच्छन्दतावादी छान्ति में परिलक्षित

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्मसंदर्भ : 127

2. डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान : पृ० 87

होता है। इसके बाद यह विद्रोह, क्रांति में परिवर्तित होकर पूँजीवाद के चिह्न हो गया। जिससे सामाजिक चेतना, क्रांतिकारी चेतना, सर्वहारा वर्ग की चेतना, यथार्थवादी चेतना, प्रगतिशील चेतना, मनोवैज्ञानिकता, अस्तित्वादी चेतना, नवमानववादी चेतना, नवसत्यवादी चेतना जाग्रत हुई। यही चेतना वर्तमान में नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों में परिवर्तित हुई है। अतः यही मौलिकता एवं यौद्धिकता नयी कविता में परिलक्षित हुई है। इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण नयी कविता स्वच्छन्दतावाद-नवस्वच्छन्दतावाद की मुख्य धारा में बहती है। श्री गजानन माधव मुक्तिबोध का ठकन है, “नयी कविता का कवि जगत और जीवन से, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति-परिस्थिति से आगस्त रहा।”<sup>1</sup> ऐसी ही अभिव्यक्ति, किन्तु दूसरे शब्दों में श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा जी ने कही है, “जिस ‘निरिक्त’ मूढ़ को पिछले पन्द्रह वर्षों से नया कवि तोड़ना चाहता था आज वह पूरी तरह उस पर सवार है।”<sup>2</sup> उसी संदर्भ में श्री वर्मा जी का पुनः मत है, “नयी कविता में कहीं न कहीं पूर्ववर्ती रोमांटिकता के साथ पुनरावृत्ति समाप्त होकर लिया था।”<sup>3</sup> यही स्वीकृति हिन्दी आलोचना के मूर्धन्य विद्वान नगेन्द्र जी ने दी है, “स्वदेश-विदेश के अनेक आलोचकों का मत है कि नयी कविता मूलतः रोमान्सी और प्रगतिवादी होती है।”<sup>4</sup> यही रोमांटिकता या स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति नयी कविता की चेतना है।

नयी कविता ने अपने चारों तरफ से सामाजिक, समासायिक पुन-जीवन से सामंजस्य स्थापित किया है। शिल्प की दृष्टि से जीर्ण, वर्जर उपादानों का परित्याग किया है। भाव भूमि की दृष्टि से नये

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्मसंघर्ष : पृष्ठ 126

2. लक्ष्मीकान्त वर्मा : नये प्रतिमान : पुराने निरुद्ध : पृष्ठ 291

3. लक्ष्मीकान्त वर्मा : नये प्रतिमान : पुराने निरुद्ध : पृष्ठ 36

4. डॉ० जयचम सिंह : नवस्वच्छन्दतावाद : १ से डॉ० नगेन्द्र का ग्रामुख से उद्धृत ।

मानववाद तथा एक समग्र जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा को उन्नत बनाया है।

नयी कविता का विकास प्रगतिशील आन्दोलन से भी प्रभावित रहा है। इसी आन्दोलन से नयी कविता ने सामाजिक चेतना को पाया है। अतः नयी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में प्रगतिशील धारा भी है जिसमें सामाजिक चेतना को प्रमुख अभिव्यक्ति मिली है।

स्वाधीनता प्राप्ति के आस-पास हिन्दी कविता का संघर्ष गहरा हो गया। एक ओर काव्य में अन्तर्मुक्ता, कुंठा, पुटन, अनास्था, निराशा बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर सौन्दर्य-बोध और नवीनता के नाम पर विस्मयता में सौन्दर्य ढोवने की ठोसिहा हो रही थी। इस प्रकार कविता सामाजिक धरातल से कटकर व्यक्तिमन की सीमा में सिमट आयी। पौष्टिकता के कलस्वस्थ ज्वलन्ता बढ़ती जा रही थी। प्रगतिशील काव्य सामाजिकता, मार्क्सवादी चेतना और कलात्मक चिन्ता की जगह सिद्धान्त ध्वन और नारेबाजी को उठाकर कर रहा था। वस्तुतः नयी कविता राजनीतिक एवं सामाजिक संक्रान्ति के मध्यमें विकसित हुई। भारत में आयोगीकरण के कलस्वस्थ परम्परित अर्थ-व्यवस्था का ढाँचा- चरमरा गया था। वैधानिक प्रगति के बावजूद भी सामाजिक एवं नैतिक मानदण्ड खंडित हो रहे थे। ऐसी परिस्थितियों के कारण कवियों में मानसिक परिवर्तन हुआ, जिसमें प्रगतिशील सामाजिकता और प्रयोगशील व्यक्तिवाद को लाया गया।

वस्तुतः समाजवादी चेतना मानव में एक संधर्भशील ढाँचा तैयार करती है। मानव यथार्थ के आन्तरिक एवं बाह्य रूप में जुड़ा है। प्रगतिशील साहित्यकार अपनी कला में प्रौढिकारी समाजवादी चेतना विकसित करता है। प्रसिद्ध चीनी कवि पेन्ना नेस्दा की कविताओं में इसी स्वर की प्रधानता है। इसी दृष्टिकोण से ज़िम्बो, परित्रो, संभो, संघातों में समाजवादी कला नये रूपों में दिखाई पड़ती है। अतः यही चेतना नयी कविता में नवस्वच्छन्दतापवाद में परिलक्षित होती है। मनोविज्ञानिकता

व्यक्ति-मन का वैज्ञानिक रूप है। किसी भी कलाकृति की समझने के लिए साहित्यकार की रुचि भी समझना- जानना अनिवार्य है, वहीं उन वैज्ञानिक आधारों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना भी अनिवार्य है। मनोवैज्ञानिकता आधुनिक युग में जीवन का विशिष्ट अंग बन गया है, जिससे व्यक्ति की मानसिकता का आभास सहजता से हो जाता है। कविता भी व्यक्ति मन के अचेतन, अन्तर्द्वन्द्व की क्रिया है। कवि का अन्तःमन जब वाह्य-क्रिया से आक्रान्त हो उठता है तो रचना-क्रिया की तरफ मुखरित होता है। इस रचना-प्रक्रिया में कलाकार या साहित्यकार की पूरी मानसिकता उभरती है। अतः रचना-प्रक्रिया में वैयक्तिक भूमिका का रहस्य कवि की सामाजिक चेतना में निहित होता है। कलाकार या साहित्यकार की यह रचना प्रस्तुति वैयक्तिक एवं सामूहिक अचेतन की सम्पूर्ण रूप से सम्मिलित रहता है। अतः रचनाकार की रचना का पता तथा मानसिक स्थिति का पता सहजता से चल जाता है। नयी कविता का कवि तनाव ग्रस्त, छुंठाग्रस्त है। उसे उपेक्षा मानसिक आघात भी मिला है। अतः उसकी रचना की मनोवैज्ञानिकता की जानकारी कवि की रचना में परिलक्षित होती है।

नयी कविता आधुनिकी यथार्थ को समकालीन रूप में प्रस्तुति देती है। इसीलिए कि व्यक्ति स्वयं कैसी ही स्थितियों में जीता है। यूरोप में साहित्य के क्षेत्र में ऐसी वस्तुगत नवीनता और परिवर्तित जीवन की छाँटी मिलती है, नयी कविता पर भी उसका प्रभाव है। यथार्थवाद दो रूपों में मिलता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद। इन्हीं विन्दुओं में नयी कविता में नवस्वच्छन्दतावाद का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः यथार्थवादी साहित्यकार की दृष्टि वस्तुगत मूल्यों को बहन करती है। यथार्थवादी साहित्यकार सत्य को चरित्रवार प्रस्तुत करता है, किन्तु ज्यों का त्यों नहीं। बल्कि सारी घटनाओं एवं पात्रों की, सामाजिक जीवन से प्राप्त अपने यथार्थ अनुभवों को तराश कर, नुकाली बनाकर अपनी कृति के अन्दर कलात्मक नियोजन करता है। हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि समूचे

देश में यथार्थवादी दृष्टिकोण को उत्पन्न करने का येय मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा को ही है। आर्विन के विचारवाद ने यथार्थवादी चेतना को ठोस और वैज्ञानिक आधार दिया। अतः नयी ठ्विता में यथार्थवादी प्रवृत्ति मुख्य रूप से सभी ठ्वियों में विद्यमान है, क्योंकि ठायावादी कल्पनाशीलता को छोड़कर प्रगतिशील एवं प्रयोगशील युग ने यथार्थवाद की गुरुजात की। यही गुरुजात नयी ठ्विता में आकर विकसित हुई। अतः नयी ठ्विता के ठ्वि ने हर ठ्विय एवं देश में यथार्थवादी चित्रांकन किया है, जिसमें मन की वेदना एवं अनुभूति होती हुई प्रतीत होती है।

नयी ठ्विता में विास्यगत वैविध्य एवं अस्तित्ववादी दर्शन की प्रमुख्या है। अस्तित्ववाद मानव को वैयक्तिक चेतना को ध्यत करता है। अतः इसमें मानव स्वयं अपनी खोज करता है, अपने व्यक्तित्व को परखता है, उसमें विद्यमान उन विशेषताओं को समझना चाहता है जो उसकी विशेषता है। इसी लिए अस्तित्ववादी दर्शन मानववादी दर्शन है। इसी कारण इसका मूल तत्त्व धीर वैयक्तिकता है। मानववाद से जुड़े रहने के कारण अस्तित्ववादी दर्शन नवत्वच्छन्दतावाद से जुड़ा है, जो नयी ठ्विता की मूल चेतना है।

अस्तित्ववादी दर्शन में 'स्व' की प्रमुख्या है। यह भी नयी ठ्विता की परधान है। नयी ठ्विता आधुनिक जाधन-मूल्यों की व्याख्या करती है। जिसमें अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषण, टेक्नीकल, 'सैमीनल ओज', आधुनिकता की सहर जाती है।

अस्तित्ववादो दर्शन का मूल तत्त्व व्यक्ति का अस्तित्व ही है। तार्क की विचारधारा है कि यदि अखर की सत्ता नहीं है तो कम से कम एक सत्ता अवश्य ऐसी है जिसमें अस्तित्व सार से पूर्ववर्ती है। यह सत्ता ऐसी है कि किसी अवधारणा द्वारा उसकी परिभाषा की जा सके, उससे पहले ही उसका अस्तित्व होता है और यह सत्ता है मानव।<sup>1</sup> वस्तुतः मानव के सर्वोपरि होने के कारण ही यह प्रवृत्ति नयी ठ्विता और नवत्वच्छन्दतावाद

की व्याख्या करती है।

मध्यकाल में धार्मिक भावना के फलस्वरूप मानव का कोई अस्तित्व नहीं था। साहित्यकार अपना लक्ष्य ईश्वर को ही बनाते थे। किन्तु आधुनिक युग में ऐतिहासिक बदलाव के कारण यह मान्यता खंडित हो चुकी है। आज सर्वत्र मानव की सामर्थ्य एवं उसकी उपलब्धियाँ दिखलाई पड़ती हैं।

स्वच्छन्दतावादी साहित्य में मानव अपने सर्वथा नवीन रूप में परिणत होता है। यहाँ मानव ही सर्वोपरि है। अतः यही मानव यहाँ नवमानव हो गया है।

नयी कविता में मानव की विशालदत्ता और आत्मविश्वास के आधारों की निखोजना है। मनुष्य की यथार्थ और अकतुल्य अभिव्यक्ति अभी तक सम्पूर्ण रूप में नहीं हो सकी है। सर्व प्रथम 'प्रयोगवाद' में उसकी विवेचना की और नयी कविता में इसका विकास महत्त्व एवं उपयोगिता की दशावा गया है। क्योंकि आज मानव-मूल्य ही सबसे अधिक युगीन दायित्व है। मनुष्य अपना विकास तेजी से कर रहा है। उसका हर दृष्टिकोण, विचारधारा में परिवर्तन हो रहा है। वह अपने को केन्द्र बिन्दु बनाकर देख रहा है। हर कार्य में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रहा है। "पछनियेक्षता के नये सामाजिक संदर्भों में अब तक की परिभाषाएँ अपर्याप्त हो चुकी थीं। विभिन्न क्षेत्रों से देखी हुई आदमी की तस्वीर 'आर्ट्स आफ फोकस' हो चुकी थी। आदमी तेजी से बदलता जा रहा था पर नज़र नहीं थे। शुरू में यह आदमी भावनाशील 'रोमान्सी' व्यक्ति के रूप में प्रकट हुआ जो अपनी ऐतिहासिकता और अपने संघर्षों के प्रति जागृत था, दूसरी ओर आत्मानुभूति भरे हीरो के रूप में जिसे अपने अहं का प्रथम साम्राज्य हुआ था। तत्पश्चात् सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतीक प्रभु के रूप में और अन्तिम के साथ संक्रांति के बीच पड़ा 'गहरीद मसीहा' फिर हार्ड अधिक विस्तारों में उतरी और आधुनिक युग के मूल्यों के विघटन की समस्या सामने आई। इस बिन्दु पर हमने उसे टूटा हुआ, लॉकित, पथभ्रष्ट, पराजित और विकृतियों से खंडित पाया। तथा यह स्वीकार किया गया कि यद्यपि आदमी तुच्छता, दुर्बलता और विकृतियों के कर्दम में पड़ा हुआ है और

उसका व्यक्तित्व लुप्त हो चुकता है, फिर भी उसका आत्म-सम्मान मरा नहीं है जो वित है और रह सकता है।” ।

समु-मानवता मनुष्य की विशिष्टता है। वह साहसी, पराक्रमी, दृढ़-निश्चयी है, तथा पूर्ण आत्मश्रद्धा का विरोधी है। सत्य का अन्वेषी है। समु मानव दुःख के अस्तित्व को स्वीकार ही करता है परन्तु साथ ही स्वतंत्रता का पक्षपाती भी होता है। वह अपने विवेक से ईमानदारी, साहस और व्यक्तित्व की पूर्णता और लुप्तता का निर्माण करता है। वस्तुतः आधुनिक युग में मानव, संग्राम, पीड़ा, तनाव, अवहेलना का शिकार है। यह घातकयी कविता का कवि स्वीकार कर, अपने को समु-मानव घोषित करता है। वह अपने अस्तित्व को प्रतिमा न बनाकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। इसीलिए उसने समु रूप को स्वीकारा है।

नयी कविता ने अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर छायावाद से जन्म होने की चेष्टा की, किन्तु फिर भी नयी कविता में रोमांटिक प्रवृत्ति एवं रहस्यवाद मौजूद है। वस्तुतः यह रहस्यवाद मानव द्वारा ही परिचालित है। यह प्रवृत्ति 'अज्ञेय' की के काय में परिलक्षित होती है। जिसका स्रोत प्राचीन औपनिषदिक और वीर दर्शन भी है। डॉ० नामधर सिंह ने इसी नव-रहस्यवाद को नूतन-रहस्यवाद कहा है। इनके अतिरिक्त डॉ० रामलाल शर्मा, डॉ० जगदीश गुप्त, श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, आदि मूर्धन्य विद्वानों ने भी नयी कविता में नव-रहस्यवाद को माना है। 'अज्ञेय' की के अतिरिक्त कुँवर नारायण जी जी 'आत्मबोधी', श्री नरेश मेहता जी 'महाप्रस्थान' 'शरीर' में नव-रहस्यवादो केतना मिलती है। उन्होंने वस्तुवादी दृष्टिकोण और भौतिक जीवन को नकार कर आत्मवादो दर्शन प्रति पादित किया है। इस मृत्यु शरीर आदि से परे देखा है। श्री कुँवर नारायण जी ने वेदिक और उपनिषद् कालीन संस्कृति को प्रतीक रूप में अपनाकर सार्थक जीवन की समस्या को उठाया है। श्री नरेश मेहता जी ने युद्ध के प्रति धिक्काना दिखाकर युधिष्ठिर द्वारा राव-पाट छोड़कर शान्ति



शान्ति की खोज में महाप्रस्थान दिखाया है। अतः यह नवरहस्यवादी चेतना ही है। इसके अतिरिक्त डॉ० धर्मवीर भारती एवं श्री गिरिजा कुमार माथुर जी में भी नवरहस्यवादी चेतना दिखाई पड़ती है। 'ग्रंथा युग' में जो अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था प्रकट की है वह नवरहस्यवादी चेतना ही है। वस्तुतः रहस्यानुभूति स्वर्णदत्तावादी चेतना की आत्मगत प्रवृत्ति है, जो देशवास और तत्ता से परे अनन्त शक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करती है। भारतीय हिन्दी साहित्य में 'नयी समीक्षा' के ऊपर अमेरिकी समीक्षा एवं स्त्री समीक्षा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अमेरिकी समीक्षा शास्त्रीयों ने स्वर्णदत्तावाद का विरोध किया। उसी स्थान पर नवरहस्यवादी निवेदनितता को अपना लक्ष्य बनाया अर्थात् समीक्षा में शिल्प पक्ष को महत्व दिया। स्त्री शक्ति के पश्चात् वहाँ भी साहित्य के क्षेत्र में बदलाव आया। दोनों देशों की विचारधारा अलग-अलग होने के कारण, इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था। अतः इसी आलोचना में समीक्षा शास्त्रीयों ने वैचारिकता को प्रमुखता दी जबकि अमेरिकी नयी समीक्षा में सिर्फ शिल्प पक्ष पर ही जोर दिया। इन्हीं दोनों देशों की सम्मिलित प्रक्रिया भारतीय साहित्यकारों के ऊपर हुई। फलतः नयी समीक्षा में भारतीय विद्वानों ने वैचारिकता एवं शिल्प-पक्ष दोनों को अपनाया। इसी के फलस्वरूप इसकी सम्मिलित प्रक्रिया 'नयी कविता' में परिलक्षित होती है। 'नयी समीक्षा' की प्रवृत्तियाँ, आयरनी, पैराडॉक्स, टेक्सचर, स्ट्रेचर, टैंगन में से आयरनी, विरोधाभास एवं तनाव नयी कविता में भी अभिव्यंजित है।

वस्तुतः नयी कविता में जो आयरनी, विरोधाभास एवं तनाव है वह कवि को आन्तरिक एवं समकालीन घूर्णनों की देन है। आयरनी विरोधाभास एवं तनाव यह सिद्ध करता है कि कवि अब अपने आत्मगत धरे में न रहकर घूर्णन जगत् में घिरना कर रहा है। सामाजिक यथार्थ की तरफ स्तान रखता है। श्री ग्वानन माधव मुक्ति-बोध ने राजनैतिक,

सांस्कृतिक, सामाजिक सभी स्तरों पर व्यंग्य किया है। 'वादि का मुख देहा है' कविता-संग्रह में उसे परिलक्षित किया जा सकता है। यह व्यंग्यवादी चेतना वीरशक्ति का परिणाम है। वीरशक्ति के कारण कवि विरोधभास और तनाव के मध्य सत्य की खोज करता है। इसी सत्य की अभिव्यक्ति के लिए वह व्यंग्य का सहारा लेता है।

इस प्रकार नयी कविता की मूल अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक भौतिकवादी विश्व-बोध, सर्वद्वारा श्रुति, धर्म संघर्ष, परम्परा के निषेध का निषेध, सहयोगी एवं धर्महीन समाज का गठन में अभिव्यक्ति होती है। यही प्रवृत्तियाँ मूलतः नवस्वच्छन्दतावाद की भी चेतना में निहित हैं। नयी कविता का संघर्षशील कवि समाजवादी, धर्मवादी चेतना से भी जुड़ा है। जिसके फलस्वरूप समाजवादी समाजवाद कविता में स्पष्ट रूप से उभरा है। जिसकी परिकल्पना कवि सर्वद्वारा धर्म के जीवन एवं संस्कृति के रूप में करता है। जिसकी अभिव्यक्ति, श्री भुक्तिबोध, श्री डाँठ केदारनाथ सिंह, श्री केदारनाथ अग्रवाल, श्री गिरिजा कुमार माथुर, श्री नागार्जुन, श्री जगदीश चहादुर सिंह, आदि कवियों के काव्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

“ हिन्दी की नयी कविता या आज की अन्य भूमिका की कविताओं में भाषा, छन्द, मिथ, धिम्प, प्रतीक, प्रगीत एवं स्पष्ट की अभिव्यक्ति नये स्वरों में होती है। ऐसी स्थिति में आधुनिक कविता साहित्यगत धरातल पर स्थापित हो रही है, क्योंकि भाषा, छन्द, मिथ, धिम्प, प्रतीक, प्रगीत एवं स्पष्ट कवि-मन की उपज है। आधुनिक हिन्दी कविता स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत एक नया मोड़ लेती है। इस बिन्दु पर हिन्दी कविता स्वच्छन्दतावादी बोध से छुटकारा पाने के लिए उत्पत्ती तो है, लेकिन इसकी साधना विफल रहती है। लेकिन यहाँ स्वच्छन्दतावाद में धर्मवाद का संयोग होने के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावाद एक नये रूप में दिखाई पड़ता है। इसलिये स्वच्छन्दतावादी या छायावादी दौर के पश्चात की कविताओं में स्वच्छन्दतावादी आधुनिक बोध की

नहीं किया जा सकता है। इसे ही नवस्वच्छन्दतावाद, नवरोमनवाद के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी, नवस्वच्छन्दतावादी विचारधाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ आज की कविताओं में भी मिलती हैं।\* ।

हमें हिन्दुओं पर नयी कविता में स्वच्छन्दतावाद प्रोत्साहित किया गया है। अतः स्वच्छन्दतावाद की जो प्रवृत्तियाँ हैं भाग्यगत एवं विनाशगत उसमें नयी कविता की तलाश की है।

नयी कविता की दृष्टि सृष्टि से सृष्टम वस्तुओं की ओर गई है और उसके मूर्त-अमूर्त को विश्लेषित कल्पना के द्वारा करती है। सृजनात्मक कल्पना को यह एक वैज्ञानिक ढंग में स्वीकार करता है। साहित्य चाहे किसी भी युग में रचा जाए, सृजनात्मक कल्पना के बिना अधूरा ही है। अतः नयी कविता की कल्पना, छायावाद की कल्पना से सर्वथा भिन्न है। छायावाद में कल्पना, 'कानन की रानी' थी, किन्तु नयी कविता में कल्पना कानन की रानी न होकर यथार्थवाद की रानी हो गयी। वस्तुतः उसकी दृष्टि सर्वद्वारा वर्ण, मजदूर वर्ग के प्रति क्रांतिकारी चेला में कल्पित हुई है। वस्तुतः छायावादी में कल्पना की अभिव्यक्ति अति कोमल रूप में हुई है, किन्तु नयी कविता की कल्पना समाज के यथार्थ धरातल पर विराजमान है। अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति की अभिव्यञ्जना नयी कविता में भी परिलक्षित होती है। नयी कविता की भावानुभूति जीवन के प्रत्येक संदर्भ में देखने को मिलती है। कवि मन संवेदनशील होता है। अतः परिवेश के अन्तर्गत जो सौन्दर्य-विषय स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, उनका सम्पन्नता पूर्वक गंजन करना ही भावानुभूतियों के अन्तर्गत आता है। फलतः नयी कविता के अधिकांश कवि संवेदनशील हैं। श्री मुक्तिबोध जी, 'गोप' जी, श्री सर्वेश्वर दयाल सप्तैना, श्री धर्मदोर भारती, श्री केदारनाथ सिंह,

श्री केदारनाथ अग्रवाल, श्री नागार्जुन, श्री त्रिलोचन, श्री गिरिजा कुमार माधुर आदि के काव्यों में अनुभूति की सूक्ष्म अभिव्यंजना हुई है। ये अनुभूति की अभिव्यक्ति चाहे रोमांटिक संदर्भ में या सामाजिक संदर्भ में, इसकी प्रस्तुति मार्मिक बन पड़ी है।

स्वच्छन्दतावादी व्यक्तिवाद के अन्दर कल्पना, अनुभूति, प्रतीक, चिन्मय आदि प्रेरक तत्त्व कार्यशील रहते हैं। ये प्रवृत्तियाँ जहाँ भी कविता में एक साथ गुंथिती होती हैं वही स्वच्छन्दतावादी व्यक्तिवाद दिखलाई पड़ता है। नयी कविता सर्वद्वारा वर्ग की चेतना की उपज है। फलतः नयी काव्यता में व्यक्तिवाद के अन्तर्गत व्यक्तिमन की अनुभूतियों के साथ-साथ वास्तव स्थितियाँ, परिधेश एवं रोजी-रोटी की समस्याओं का आकलन भी परिलक्षित होता है। यदि अपने अन्तर्गमन की भावाभिव्यक्तियों को सामाजिक परिधेश में ढालकर प्रस्तुत करता है वहीं व्यक्तिवाद परिलक्षित होता है। यह प्रवृत्ति नागार्जुन जी में विशेष-रूप परिलक्षित होती है।

‘मानववाद, देवतावाद, परमोच्चवाद के बदले मनुष्य केन्द्रित बुद्धिवादी, भीतिछादी, विद्वानवादी बोधन-दर्शन है, जो मानव-कल्याण का सपना फहराता है। विद्वान की सहायता से मानव प्रकृति के रहस्यों को ज्यों-ज्यों समझने लगा, त्यों-त्यों उसमें आत्मनिर्मरता स्वाध्यात्मिक, विश्वास, आस्था एवं विवेक सम्मत तर्क की प्रवृत्तियाँ बनवने लगीं।’<sup>1</sup>

वस्तुतः मानववाद में मानव-आवरण की नैतिक अवधारणा ही मिलती है। मानववाद मानवीय सम्बन्धों में कल्पना की महत्ता एवं सम्भावनाओं के प्रति आग्रह है। जो सम्पूर्ण विश्व की मानवीय चेतना को लेकर चलता है। परम्पराओं को तोड़ने के कारण एवं नूतन अभिव्यक्ति के फलस्वरूप मानववाद, स्वच्छन्दतावादी चेतना से बुद्धा तथा सम्पूर्ण विश्व की मानवीय चेतना को लेकर चलने के कारण नयी कविता की प्रवृत्ति बना।

नयी कविता में विद्रोह, आन्दोलन के रूप में उभरा है। क्योंकि एक तो इस युग के साहित्यकार अपना मत स्थापित करना चाहते थे जो बुजिबुकी वर्ग स्वीकारना नहीं चाहता था, दूसरे मध्यवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण सामाजिक रीतियों के विरुद्ध अपना रचना कार्य कर रहे थे। अतः इसमें प्रत्येक कवि के विद्रोह का स्वर अलग-अलग है, किन्तु नवीनता प्रत्येक कवि माना चाहता है।

नयी कविता के कवियों ने प्रेम का स्वरूप रूप में वर्णन न करके आन्तरिक प्रेम की अभिव्यक्ति दी है। यह प्रेम-प्रकृति-प्रेम भी है और देना प्रेम भी। देना प्रेम में अब कवि को अनुभूति विषय प्रेम तक पहुँच गयी है। छायावाद के कवि ने तो देना प्रेम के ही प्रयोग दिये, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नयी कविता के कवि का दृष्टिकोण विषय प्रेम की धेतना पर गया। वह सम्पूर्ण विषय को प्रेम के माध्यम से एक-सूत्र में पिरोकर इस संसार को मानवतावादी संदेश देना चाहता है।

छायावादी कवि की सौन्दर्यमयी दृष्टि प्रकृति के सुरम्य सौन्दर्य में, नारी के सौन्दर्य में रही, किन्तु स्वच्छन्दतावादी कवि ने मानवीय सौन्दर्य को निरुप-परुषा है। उसकी दृष्टि मजदूरी करती, पसीना पोंछती नारी में वही सौन्दर्य महसूस किया है जो एक उच्चवर्ग की सजी हुई नारी लगती है। अतः नयी कविता के कवि की प्रकृति भी ऐसी ही है। वह मानव के हर दृष्टिकोण को जो मन को छूता है, वही सरल सौन्दर्य उसे मोहित करता है। अतः सुजन करने की ध्येयता ही सौन्दर्य है। यह सुजन-क्रिया-जीवन पर्यन्त चलती है, फलतः सौन्दर्य दृष्टि भी जीवन्त दृष्टि है। वस्तुतः छायावादी कवि को जो दृष्टि हर सौन्दर्यमयी नारी पर टिकती थी, वहीं नयी कविता के कवि को दृष्टि निम्नवर्ग, मजदूर वर्ग, निम्नमध्य वर्ग की कार्यरत नारी के प्रमशोस सौन्दर्य पर पड़ी है।

सौन्दर्य एवं प्रेम की अनुभूति की प्रकृति मानव में वितरित है। वही धर्मत्व है जिनके समागम से संसार की रचना प्रक्रिया-चलती चढ़ती है। यह प्रक्रिया केवल विद्यमान मानव में ही नहीं बल्कि आदि मानवों में भी परिलक्षित हुई है जिसका प्रतिफल वर्तमान है। वस्तुतः सौन्दर्य मन को

शीतलता प्रदान करता है मानव की कार्य क्षमता को विकसित करता है। सौन्दर्यानुभूति मनोवैज्ञानिक है, जो मनोवशा के अनुसार अनुभव गम्य है। मानव की आसक्ति सिद्ध अनुभूति जिस वस्तु या किसी वस्तु या पदार्थ में व्यापाररत होती है। अथवा जिस वस्तु उसे कोई वस्तु या पदार्थ रमणीय प्रतीत होता है वह स्थिति को सौन्दर्य कहा जा सकता है। अतः अतः सौन्दर्य वह गुण कहलायेगा जो व्यक्ति के बाहरी और आन्तरिक गुणों से सामंजस्य स्थापित करता है। अतः सौन्दर्य के प्रति वही दृष्टि नयी कविता के कवि की रही है।

नयी कविता में संस्कृति के साथ-साथ लोक संस्कृति का रूप भी मिलता है। संस्कृति-लोक संस्कृति मानवीय अनुभूतियों से जुड़ी होने के कारण ही स्वच्छन्दतावादी चेतना से जुड़ी है। अतः नयी कविता की मूल चेतना समाजवादी यथार्थवाद एवं सर्वद्वारा वर्ग तथा सम्पूर्ण विश्व की चेतना लेकर चलती है। अतः स्वाभाविक रूप से इसमें संस्कृति लोक संस्कृति समाहित है।

सांसारिक मोह से दूर जब किसी अज्ञात, रहस्यमय शक्ति से प्रति चिन्मय-बोध प्रकट किया जाता है, वही चिन्मय एवं रहस्यानुभूति होती है। यह प्रवृत्ति 'गोप्य' जो, श्री सर्वेश्वर दयाल सज्जेना, श्री केदारनाथ अग्रवाल, श्री गिरिजा कुमार माथुर, श्री बुंदेल नारायण, श्री नरेश मेहता, डॉ॰ फकीर भारती, श्री मुक्तिबोध जी आदि की कृतियों में परिलक्षित हुई है।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति अवसाद-विधाद-वेदना भाव नयी कविता के कवियों में सर्वत्र चिह्नित है। क्योंकि नयी कविता के कवियों ने स्वयं की एवं दूसरों की पीड़ाओं, संघात को देखा और देखा है। कोई गरीबी से तंग है, कोई प्रतिभा न पहचाने जाने से संघात है तो कोई निम्न वर्ग के तबड़े में जाकर उनकी वेदना को देखता है। अतः कहीं-कहीं इस प्रवृत्ति को व्यंग्य के माध्यम से भी प्रस्तुत की है। अतः नयी कविता में वेदना भाव को कई रूपों में मिलता है।

विशालतः देशात्पुत्र में भी नयी कविता का उचित पीछे नहीं है, परन्तु उसके अन्दर वहीं प्रवृत्ति है जो स्वच्छन्दतावाद की कसीटी है। नयी कविता के कवि की काव्य-भाषा में धीम-पाल के शब्दों के अतिरिक्त साहित्यिक भाषा भी प्रयुक्त हुई है। जिससे इसमें वैचारिकता प्रधान होगई है। वैचारिकता के फलस्वरूप ही यह गद्य के अधिक निकट है। 'अपेक्ष' की का काव्य कृति 'अन्तरा' तो पूरी गद्य कविता संग्रह ही है। छायावाद तथा उसके पहले कवि अपनी कविता की भाषा काव्य रूप में ही रखता था, किन्तु नयी कविता के कवियों ने यह परम्परा तोड़ कर गद्य पर नवनिर्माण कर अपने मूल्यों को स्थापित करता है। अतः जो भाषा काव्य में कविता के रूप में उभरते थे, वही भाषा अब गद्य के रूप में कविता में उभरे हैं। अतः पुरानी परम्परा को तोड़ना ही स्वच्छन्दतावादी कवि का स्वप्न है।

नयी कविता पौडिखता की कविता है। अतः इसमें जो काव्य चिन्म उभरे हैं वह पौडिखता लिए हुए हैं। छायावादी काव्य में जो आलंकारिक भाषा में चिन्मों को मूर्त्त किया जाता था वह कोमलकांत भाषा नयी कविता में नहीं है, तरन् यहां सीधे-सपाटत पयानों में ही चिन्मों का सम्मूर्त्त न किया है। यह काव्य-चिन्म नूतनता का आभास निरन्तर देते हैं। यह पारम्परिक नियम का नहीं है अतः परम्परा से छटे होने के कारण ही इनकी चेतना स्वच्छन्दतावादी है।

प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग भी नये अर्थों में नयी कविता में आया है। अतः प्रतीक, चिन्म एवं मिथक का सहारा लेकर चलते हैं। इनमें कवि प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देता है, चिन्मों पौराणिक, रोमांटिक दोनों ही प्रतीक मिलते हैं। अतः माननीय होने के साथ-साथ इसकी अभिव्यक्ति आध्यात्मिक स्तर पर भी होती है।

नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति मिथनीय चेतना की परिलक्षित होती है। इन मिथकों को युगोन संदर्भ में रखकर ही देखा गया है। कवि इनके माध्यम से सामाजिक सुधारों को जोर दंगित करता है।

धस्तुतः इन मिथ्यों के माध्यम से नयी कविता के कवियों ने आधुनिकता को उजागर किया है। प्रगति में व्यक्तित्वता प्रवल होती है तथा इसमें मानव-जीवन के रागात्मक स्तरों का विमर्श होता है। स्वच्छन्दतावादी प्रगीत काव्य में सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का महत्त्व अधिक मिलता है। प्रगीत के माध्यम से मानव अपनी अनुभूतियाँ जैसे, सुख-दुःख, आशा, निराशा, क्रोध-आक्रान्ता आदि भावों की अभिव्यक्ति अधिक सहजता से व्यक्त हो जाती है। अतः स्वाभाविक अनुभूतियों का माध्यम काव्य, मानवीय प्रगतिवाणी है। साहित्य में तिरक़ का यही वह विधा है जो मन की अनुभूतियों को कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक व्यक्त करती है। अस्तुतः स्वच्छन्दतावाद की यह प्रवृत्ति नयी कविता की चेतना में भी विद्यमान है। प्रगीत मन के सन्नाह को कम कर मस्तिष्क के बोझ को कम करता है। नयी कविता के कवियों में प्रगीतों की रचना में लोक-संस्कृति से पगे प्रगीतों की, प्रकृति प्रेम के प्रगीतों की रचना मिलती है। इस प्रकार नयी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को अन्वेष्टित किया है। डॉ० अजय सिंह का कथन है, “आधुनिक कविता में स्वच्छन्दतावाद का ही स्पन्दन है, क्योंकि उसमें कवियों के प्रति विद्रोह का स्वर बहुत साफ़ है। फिर वह विद्रोह चाहे समाज की कदियों के प्रति हो, चाहे साहित्य की रसात्मक सत्ता के प्रति हो।”

---

डॉ० अजय सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० 204



संदर्भ ग्रन्थ

हिन्दी

अंग्रेजी

**हिन्दी**  
**संस्कृत**

**अंग्रेजी की स्वच्छन्द कविता - प्रमोद वर्मा, हिन्दी ग्रन्थ ज्ञादयी, मोपान,**  
**प्र० सं० 1971**

**अंग्रेजी भाषा और साहित्य - डॉ० रामस्वयं द्विवेदी, प्रकाशन शास्त्र,**  
**सुयना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्र० सं० 1960**

**अंग्रेज और आधुनिक रचना की समीक्षा - डॉ० रामस्वयं पट्टेदी, भारतीय**  
**पान पीठ काशी, प्र० सं० 1959**

**अंग्रेज का काव्य -** हुजी सुमन शा. - अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य  
नगर, पानपुर, प्र० सं० 1964

**अन्तारा - 'अंग्रेज',** राजपान कण्ड तन्त्र समीची गेट, दिल्ली,  
प्र० सं० 1975

**अंग्रेज कवि और काव्य -** राजेन्द्र प्रसाद, तद्विज्ञान प्रकाशन 23/4762  
अंतारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र० सं०  
1970

**अरी ओ कस्मा प्रमाय - 'अंग्रेज' भारतीय पानपीठ प्रकाशन, काशी,**  
**प्र० सं० 1959**

**अंधा युग -** डॉ० धर्मवीर भारती, ज्ञान मंडल, 15 थान  
जिन रोड, ज्ञानावाह, सं० 1987

**अमी विन्तुन अमी** केदार नाथ सिंह, संभाषना प्रकाशन, रेषती  
हुं, बापुड, दूसरा संस्करण, 1980

आधुनिक हिन्दी साहित्य - डॉ० कुमार विमल, पराम प्रकाशन, पटना  
१० स० १९६५

अरथान - त्रिलोचन, - बाप्री प्रकाशन सी- ३/१६९ खुना बिहार दिल्ली, १० स०  
१९८३

अनुद काव्य की संतुति में - डॉ० विमलेश्वर नारायण सिंह, परिमल प्रकाशन,  
१७ एम० आर० जी० कायस्थरा आवास योजना  
अन्नापुर, झाडाबाद, प्रथम स० १९८५

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य - डॉ० रायचर नाथ कटेलवान  
मेमन पब्लिशिंग हाउस, हरियाण, दिल्ली, १९९८

आधुनिक कविता की स्वच्छन्द धारा - डॉ० निरुध्न सिंह, हिन्दी प्रचारक  
पुस्तकालय

आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ- डॉ० नरेन्द्र, मेमन पब्लिशिंग  
हाउस, दिल्ली, १९६२

आधुनिक साहित्य - आचार्य नन्द हुनारे बाबोयी, भारतीय मंडार सीडर प्रेस  
झाडाबाद स० २०१३

आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ० लक्ष्मीशानर बाबोयी, हिन्दी  
परिषद, झाडाबाद, १९५२

आधुनिक काव्य: रचना और विचार - आचार्य नन्द हुनारे बाबोयी, साथी  
प्रकाशन, नागर, चतुर्थ स० १९६९

आधुनिक हिन्दी काव्य में अनुत्तुत विधान - डॉ० नरेन्द्र मोहन, मेमन  
पब्लिशिंग हाउस, हरियाण, दिल्ली, १०स० १९७२

आमजन- 'अधेय' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1971

आधुनिक हिन्दी साहित्य- एक दृष्टि - प्रकाश चन्द्र गुप्त, आलोचक प्रकाशन  
पीठानेर, प्र० सं० 1952 ई०

आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त-डॉ० सुरेन्द्र चन्द्र गुप्त, हिन्दी  
साहित्य संसार, दिल्ली, प्र० सं० 1960 ई०

आधुनिक काव्य धारा - डॉ० केजरी नारायण गुप्त, सरस्वती मंदिर,  
धनारस-संस्कृत 2007

आधुनिक परिक्रमा और नवमेलन - डॉ० शिव प्रसाद सिंह, लोक नारती  
प्रकाशन, झांझाबाद, 1970 ई०

आधुनिक हिन्दी कविता में चिन्मय-विधान-डॉ० केदार नाथ सिंह, भारतीय  
प्रान-पीठ प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली  
-6 प्र० सं० 1971

आधुनिक हिन्दी लेखन- सं० प्रभाकर माचवे एवं कृष्णमुरारि शर्मा, धर्मसूत्र  
ग्रुप, इंडिया लिमिटेड॥ दिल्ली॥ प्र० सं०

आधुनिकता और हिन्दी आलोचना - डॉ० उन्मुनाय मदान, राधाकृष्ण  
प्रकाशन, हरियाणव, दिल्ली, प्र० सं० 1975

आत्मा के चरण- डॉ० नरेन्द्र, मेहनत पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं०  
1968

आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यार्जन - डॉ० उन्मुनाय मदान, हिन्दी भाषन  
वाचनमय और झांझाबाद, प्र० सं० 1962

आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ- डॉ० मामर सिंह, नोट भारती  
प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गान्धी मार्ग, जवाहराबाद  
चतुर्थ सं० 1968

आधुनिक साहित्य - आचार्य नन्द कुमार वाघपेयी, भारती स्टोर, लीडर प्रेस,  
जवाहराबाद, द्वि० सं० संवत् 2013 वि०

आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी श्रुतिका - डॉ० जगमूद तिवारी, नन्द किशोर  
एण्ड सन्स, चौ० वराणसी प्र० सं० 1962

आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ-डॉ० अश्व सिंह, विषयविशालय  
प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं० 1975

आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं - नायार्जुन, वाणी प्रकाशन 4697/5 21 ए,  
दरियागंज, अठ्ठारी रोड, नई दिल्ली, प्र०सं०  
1978

आधुनिक हिन्दी काव्य- डॉ० राधेन्द्र मिश्र, ग्रन्थ भानपुर, 1966

आधुनिक कवि - विश्वम्भर "मानव" नोट भारती-प्रकाशन, 15 ए, महात्मा  
गान्धी मार्ग, जवाहराबाद द्वि०सं० 1965

आधुनिक काव्य - हिन्दी काव्य ३- कुमार विमल, अर्पणा प्रकाशन, आरा [बिहार]  
प्र०सं० 1964

आधुनिक हिन्दी-साहित्य - डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान, विनोद पुस्तक  
मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा, प्र०सं० 1962

आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत - डॉ. केसरी नारायण गुप्त,  
सरस्वती मंदिर, काशी, प्र० सं०

आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प- केनाथ वाजपेयी, आचार्याराम सन्त सन्त  
जमीरी गेट, दिल्ली, प्र० सं० 1963

आधुनिक हिन्दी कविता में नीति-सत्त्व - डॉ० तख्तिदानन्द तिलारी, हिन्दी  
साहित्य सम्मेलन, प्रयोग, 1964

आलोचना के सिद्धान्त- सिद्धान्त सिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961

आज का हिन्दी-साहित्य- प्रकाश चन्द्र गुप्त, मेनन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली  
प्र० सं० 1966

आधुनिक समीक्षा - डॉ० देवराज, राजधान सन्त सन्त दिल्ली, 1954

आधुनिक हिन्दी कविता में कवि - डॉ० कृष्णलाल शर्मा, ग्रन्थमाला, 1964

आधुनिक हिन्दी कविता- प्रमुख प्रवृत्तियाँ और कवि- डॉ० देवीशरण  
रतनगो राजवंत प्रकाशन मंदिर, अर्धशाली, रामनगर,  
प्र० सं० 1966

आलोचना की ओर - डॉ० जेम प्रकाश, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली 1951

आधुनिक हिन्दी कविता में धर्म ध्यान- डॉ० कान्ता शर्मा, आगरा  
विश्वविद्यालय, 1970

आत्मकथा- हुंकर नारायण सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ 18, एन्स्टीदुपुस्तक  
एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, प्र० सं० 1987

आधुनिक कविता में शिल्प- डॉ० केदारनाथ पाखरेयी, आचार्याराम सण्ड संत,  
दिल्ली प्र० सं० 1965

आधुनिक गीतिराज्य का शिल्प-विधान- डॉ० मंगु गुप्ता, मीनाधी प्रकाशन  
वेनम त्रिभु, मेरठ

आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र-विधान- डॉ० रामचतन सिंह 'भ्रमर' नेशनल  
पब्लिशिंग हाउस, चन्द्रलोड, जवाहर नगर, दिल्ली  
प्र० सं० 1965

आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग - डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत  
सरस्वती प्रकाशन मंदिर, झाडापाद प्र० सं० 1961

आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली- डॉ० रमिय राय, राजपाल सण्ड  
सन्त, दिल्ली, प्र० सं० 1962

आधुनिकता के घारे में तीन अध्याय-संक्षेप रूप, विद्या प्रकाशन मंदिर 1601  
हरियागंज, नई दिल्ली, प्र० सं० 1984

आधुनिकतावाद और आधुनिकीकरण - रमेश पुन्नाल मेघ, जल प्रकाशन, प्र० सं०  
2/36 अंतारी रोड, हरियागंज दिल्ली, प्र० सं०  
1969

आधुनिक आलोचना के सिद्धान्त - विश्वाकर 'मानव' ठावेरी प्रकाशन 888  
कन्याजी देवी, झाडापाद, प्र० सं० 1972

अंगन के पार-द्वार - 'अक्षय' भारतीय प्रकाशन, पंचम सं० 1975

आत्मगंध - केदारनाथ गुप्ता, परिमल प्रकाशन, 175 म० आर्ष० बावम्हरी,  
आवास योजना, अन्नापुर झाडापाद, प्र० सं० 196

आधुनिक हिन्दी काव्यमें पथार्थवाद- डॉ० परशुराम शुक्ल 'लनेही' ग्रन्थ  
प्रकाशन, रामदान कानपुर, 1966

आधुनिक हिन्दी कविता पर औपवी कविता का प्रभाव-डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डेय  
अनुम्व प्रकाशन, 105/ 727 लीनगर कानपुर, प्र०सं० 1983

आधुनिक हिन्दी गीति काव्य का स्वतन्त्र और विकास-डॉ० आशा पणोर,  
विश्वविद्यालय प्रकाशन, धाराणसी, प्र०सं० 1971

आलोचना के आधुनिक बाद और नयी समीक्षा-डॉ० शिवकरणा सिंह, संजय कुमार  
सेन्टर, धाराणसी प्रथम सं०

आधुनिक हिन्दी कविता में नवतन्त्रतन्त्रवाद- डॉ० अजय सिंह, पटना  
विश्वविद्यालय को डी०सि० उपाधि के लिए  
अनुशासित शोध-प्रबन्ध, 1981-82

इतिहास और आलोचना - डॉ० नामधर सिंह, साहित्य प्रकाशनक 2-डी मिलो  
रोड, इलाहाबाद, फरवरी, 1952

उत्तरजायावादी हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ अथवा धाराएँ - डॉ० छन्द नाथ  
सदान द्वारा लिखा गया निबन्ध, जो भाषा विभाग,  
पंजाब की वार्षिक गोष्ठी, 1959-60 में पढ़ा

एक कंठ विधायी - हृषिकेश कुमार, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गान्धी  
मार्ग, इलाहाबाद, सं० 1963

एक साहित्यिक की डायरी - मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञान पीठ, बी/45-46 कर्माट  
प्रीत, नई दिल्ली, पंचम सं० 1980



ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या।- नागार्जुन, धाणी प्रकाशन, प्रॉपिओ 8  
नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, दि० सं० 1984

बाब्यालोचन की समस्याएँ- डॉ० ज्योत्सु नारायण सिंह, धाणी प्रकाशन  
4697/5, 21 ए दरियामेंज नई दिल्ली, प्रॉपिओ 1

कविता के नये प्रतिमान- डॉ० रामधर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली  
सु० सं० 1982

कितनी नावों में कितनी बार - 'ग्रेष' भारतीय छात्रपीठ प्रकाशन, प्रॉपिओ  
1967

कविताएँ एक - सर्वेधर दयाल तल्लेना, राजकमल प्रकाशन प्रॉपिओ, प्रॉपिओ 1976

कविताएँ दो - सर्वेधर दयाल तल्लेना, राजकमल प्रकाशन, प्रॉपिओ, नेताजी  
सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, प्र० सं० 1976

कुछ कविताएँ और कुछ कविताएँ - लक्ष्मीर बहादुर सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन,  
2/38 जंतराही रोड, दरियामेंज, नई दिल्ली, दूसरा सं०  
1984

कुआनो नदी - सर्वेधर दयाल तल्लेना, राजकमल प्रकाशन दि०सं० 1976

कुमुप्रिया- धर्मवीर भारती, भारतीय छात्रपीठ, सी/45-47 कनॉट प्लेस, नई  
दिल्ली, प्रकट सं० 1984

कल्याण और छायावाद - जेदार नाथ सिंह, हंस प्रकाशन, छायावाद, प्रॉपिओ 19

काव्य के रूप- मुताप राय, आत्माराम छण्ड संत, जमीरी गेट, दिल्ली  
चतुर्थ सं० 1958

काव्य में उदात्त तत्त्व - डॉ० नरेन्द्र, राजकमल सं० संत, दिल्ली, 1958

काव्य विाल्य के आयाम - सुरेश शर्मा, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली,  
प्र० सं० 1971

काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व - शिवपाल राय, पृथ्वी 38, बीरो रोड  
लखनऊ, सं० 1968

काव्य की भूमिका - डॉ० रामधारी सिंह 'दिनेश' उदयाचल, आर्य कुमार  
रोड, पटना, प्र० सं०, 1958

काव्यज्ञी - हेसरी कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र० सं०

क्योंकि मैं उसे जानता हूँ - 'अक्षय', भारतीय छात्रपीठ प्रकाशन, प्र० सं० 1970

छिपड़ी विप्लव देण हमने - नागार्जुन, संभाधना प्रकाशन, रेवती कुंभ, हापुर,  
प्र० सं० 1980

छुटियों पर ली लोग - सर्वेधर दगाम सजोना, राजकमल प्रकाशन प्रा० लिमिटेड  
नैतायी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, प्रि० सं०, 1984

जगोब और पविता - डॉ० सुदतेन "नीहार" मोरा प्रकाशन, मेरि रोड, अलीमद  
प्र० सं०

जबानन माधव मुक्तिबोध- सं० सधमज्जस्त गौतम, विद्यार्थी प्रकाशन, 113/4 वेस्ट  
आलाद नगर, दिल्ली, प्र० सं० 1972

गिरिजा कुमार नाथुर और उनका काव्य- डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र, हिन्दी साहित्य  
मंदार, 95, पॉपटियर्स रोड, पॉप, लखनऊ, प्र० सं० 1973

गुमर्हदी- केदार नाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन 743 मोतीनाथ मेहर नगर,  
लखनऊ, प्र० सं० 1978

पाननन्द और त्वच्छन्द का यथारा- मनोहर लाल गोड़, नागरी प्रचारिणी  
सभा, काशी सं० 2015

चिन्तामणि भाग-3 सं० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1983

वादिनी पुनर - शर्मा माधुर, साहित्य भवन प्र०सि०, जवाहराबाद, प्र०सं० 1960

छायावादोत्तर काव्य में पि.छ-विमान-डॉ० उमाशंकर शर्मा, शार्व  
दिपो, नयी दिल्ली, प्र०सं०

छायावाद - डॉ० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, दि०सं०

छायावाद पुनर्मूल्यांकन- श्री सुमित्रानन्दन पंत, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए,  
महात्मा गान्धी मार्ग, जवाहराबाद, प्र०सं० 1965

छायावाद का पुनर्मूल्यांकन - डॉ० रामदत्त मिश्र, साथी प्रकाशन, सागर, म०प्र०  
प्र०सं०

छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन-डॉ० कुमार धिमेन, राजकमल प्रकाशन,  
दिल्ली 6, प्र०सं० 1970

छायावाद-सं०डॉ० उदयमानु सिंह, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली छठा सं०

छायावादोत्तर काव्य- सिद्धेश्वरप्रसाद, केन्द्रीय पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1966

छायावाद का पतन- डॉ० देवराज, काशी मंदिर प्रेस, कपरा, 1948

छायावाद पुन - डॉ० राममुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर जलनगर, वाराणसी  
द्वितीय संस्करण 1962

छायावादःकाव्य तथा दर्शन- डॉ० हरनारायण सिंह, प्रन्थम रावायण  
कानपुर, 1964

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की तानाबिच और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि-

डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय, रचना प्रकाशन, 45-ए, बुन्दाराद  
छायावाद, प्र०सं० 1972

छायावादी कवियों पर अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रभाव- डॉ० कुल

विहारी शर्मा, एन्ड्रिया राजपूत, रावेरा प्रकाशन, दिल्ली,  
प्र०सं० 1977

छायावाद एक पुनर्मूल्यचिन् - डॉ० रवीन्द्र भूषण, राजकमल प्रकाशन, प्र०सं०

1971

छायावादी कवियों की गीत-कृति-डॉ० नगेन्द्र, पुनवाणी प्रकाशन, बवाहर

नगर, वानपुर

छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना- डॉ० संतोष कुमार तिवारी,

भारतीय श्रेष्ठ निवेदन 133, लाजपत राय मार्केट, दिल्ली  
प्र०सं० 1974

छायावादी काव्य में सौन्दर्य चेतना- डॉ० कृष्ण मुरारी मिश्र, प्रगति प्रकाशन

आगरा, 3, प्र०सं० 1974

छाया मत कुना मन- गिरिजा कुमार माथुर, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंतरा

रोड, दरियाबाँव दिल्ली प्र०सं० 1978

लंगल का दर्द - सर्वेश्वर दयाल सप्तमेना, राजकमल प्रकाशन, प्र०सं०, नेताजी

सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली प्र०सं० 1976

कमीन एक रही है- डॉ० ठेदार नाथ सिंह, प्रकाशन संस्थान, ज्यू 22 नवीन

शाहपरा, दिल्ली, तृतीय सं० 1982

ठंडा सोहा -धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1970

तार सप्तक- सं० अक्षेप ८, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1966

तीसरा सप्तक- सं० 'अक्षेप', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र० सं० 1967

तार सप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान- कृष्ण साहू, साहित्य प्रकाशन, भागी  
बाड़ा दिल्ली. प्र०सं० 1979

दिनकर : मुद्रि-ट और मुद्रि-ट- सं० गोपाल कृष्ण जीन हरप्रसाद शास्त्री धाराधन  
प्रकाशन, माधियाबाद प्र०सं०

दूसरा सप्तक - सं० अक्षेप, प्रगति प्रकाशन, प्र०सं० 1951

दूसरी परम्परा की खोज- डॉ० नामधर सिंह, राजस्थान प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं०  
1983

ध्रुव के धान- गिरिजा कुमार माधुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र० सं० 1966

धर्मवीर भारती- सं० लक्ष्मण दत्त गौतम, कुमार प्रकाशन, मई दिल्ली. 1974

धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम - डॉ० सुब्रह्मण्य रावणामाचरि  
प्रकाशन, साहित्याकाद, प्र०सं०, 1980

नदी की बाँध पर छाया - 'अक्षेप', राजस्थान एण्ड सन्त जयसिंही मेड, दिल्ली  
प्र०सं० 1981

नवतन्त्रधर्मतावाद - डॉ० अक्षेप सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक धाराधनी,  
प्र०सं० 1987

नयी कविता: सीमाएँ और सम्भावनाएँ- गिरिजा कुमार माधुर, मेनन  
पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, दिल्ली,  
परिचरित सं० 1973

नयी कविता - आचार्य नन्द कुमार वाक्येयी, दि मैथिलिन कंपनी आफ  
इंडिया लि०, प्र०सं० 1976

नयी कविता और अस्तित्ववाद- डॉ० रायचिलास शर्मा, राजबन्स प्रकाशन,  
प्रा० मिथिलेश, प्र०सं० 1976

नयी कविता परिक्रमा प्रवृत्ति एवं अभिव्यक्ति- बाबूकुमार गोविन्द रजनीश,  
रंजन प्रकाशन, चौक चिलास, तिहरी स्टेशन, जगहरा, 1975

नयेन[1] - नमिन चिलोपन शर्मा, केतरी कुमार नरेश, मोती साह, बनारसीदास  
मुद्रक-इण्डियन केस प्रेस, प्र०सं० 1956

नयेन[2] नमिन चिलोपन शर्मा, केतरी कुमार नरेश, परिवार प्रकाशन, एच  
केला, रोड, पटना

नयी कविता के सात अध्याय - डॉ० देवेश कुमार, मौलिक साहित्य प्रकाशन  
162, पी.एम.सा नगर, दिल्ली, 1970

नयी कविता श्रोत और सिद्धान्त - डॉ० विश्व सिन्धी, प्रगति प्रकाशन, जगहरा  
प्र०सं० 1978

नयी कविता के प्रतिमान- कलमीरॉत शर्मा, भारती प्रेस प्रकाशन 10 दरभंगा  
रोड, इलाहाबाद, अ

नयी कविता - सं० बगदीरा गुप्त, सोच भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा  
गान्धी मार्ग, इलाहाबाद, अंक-8-1966-67

नयी कविता का परिप्रेक्ष्य- डॉ० परमानंद जी.लाल, नीलाम प्रकाशन ए हुसरो  
बाग रोड, इलाहाबाद, प्र० सं० 1988

नयी कविता के प्रतिमान- सं० डॉ० निरंजना शर्मा, मेनन पब्लिशिंग हाउस,  
नयी दिल्ली, प्र०सं० 1977

नयी कविता में मूल्यबोध - शशि सहगल, अभिनव प्रकाशन 21-ए, दरियागंज,  
नई दिल्ली, प्र०सं० 1976

नयी कविता की भूमिका - डॉ० प्रेमचंद, मेनन पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज  
नयी दिल्ली, प्र०सं० 1988

नयी कविता स्वयं और समस्याएँ- डॉ० जगदीशगुप्त, भारतीय छात्रपीठ प्रकाशन,  
प्र०सं० 1969

नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र-मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, 3 अंतारी रोड,  
दरियागंज, दिल्ली सं० 1971

नयी कविता की प्रबन्ध चेतना- सं० डॉ० महावीर सिंह चौहान डॉ० तरोच पाण्डे  
गिनार प्रकाशन, भिमानी गंज महेताना, प्र०सं० 1981

नये प्रतिमानः पुराने नियम - लक्ष्मीकांत वर्मा, भारतीय छात्रपीठ प्रकाशन, प्र०सं०  
1966

नयी कविता का आत्म संबंध-मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन प्रा०सं० 00, 8 मैताजी  
ब्राम्च मार्ग, दिल्ली प्र०सं० 1983

नयी कविता में वैयक्तिक चेतना-डॉ० अध्वनारायण शिवाजी, बजावर पुस्तकालय,  
मथुरा, प्र०सं० 1979

नयी कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवन-दर्शन- डॉ० उमाकांत गुप्त, भाग 1  
प्रकाशन, 4697/5, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली

नयी कविता का मूल्यांकन : परम्परा और प्रगति की भूमिका पर- डॉ० हरिचरण  
वर्मा, ज्ञान प्रकाशन, करीमपुर नई दिल्ली, प्र०सं० 1972

नयी कविता नयी ज्ञानोदना और उमा : डा. लक्ष्मणार विमल, भारती भवन, पटना  
प्रथम सं० 63

नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर-डॉ. संतोष तिवारी, जवाहर पुस्तकालय, तदर  
बाजार मथुरा, प्र० सं०

नया काव्य नये मूल्य-ललित गुप्त, गैकमिशन, नयी दिल्ली, प्र० सं०

नयी कविता उदय और विकास, डॉ. रामचन्द्र राय, बिहार हिन्दी ग्रंथ  
अकादमी, जे. एम. बुँडा, पटना, प्र० सं०

नयी कविता नये संदर्भ - डॉ. नगेन्द्र - नेमन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली  
द्वितीय संस्करण

नया साहित्य नये प्रश्न - आचार्य नन्द हुनारे बाबूयेयी, विद्यामंदिर प्रहम नामा  
धनारस, द्वितीय संस्करण

नया हिन्दी काव्य-डॉ. शिव कुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, जानपुर  
1962

नया हिन्दी साहित्य : ए. भूमिका, प्रकाश चन्द्र गुप्त, सरस्वती प्रेस, बनारस,  
1953

नन्द हुनारे बाबूयेयी-डॉ. प्रेमशंकर साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्र० सं० 1983

नयी समीक्षा, यमुतराय, ईत, प्रकाशन, लनाहाबाद, 1990

नयी कविता का आत्मसंदर्भ तथा अन्य निबन्ध - गजानन माधव मुक्तिबोध  
विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1964

नयी कविता - देवराज, बाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र० सं० 1987



प्रवाद पर्व-की नरेश मेहता - लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गान्धी  
मार्ग, छायावाट, 1977

प्रतिनिधि कवितारें - गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली  
द्वितीय संस्करण, 1987

प्रयोगवाद - नरेन्द्र देव शर्मा, अनुत्तमान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, प्र०सं० 196

प्रमदीन नाम गाँव - नागार्जुन, संभाषना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड, प्र०सं०, 1951

प्रसाद का काव्य, डॉ० प्रेमशंकर, भारती भंडार, लीडर प्रेस, छायावाट, संगोष्ठी  
संस्करण, सम्वत् 2018 वि०

प्रतिक्रियारें- डॉ० देवराज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966

पाँच जोड़ पाँचिरी - ताम्बादक, चन्द्रदेव सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1969

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० तारकनाथ घासी, मेकमिलन, नई  
दिल्ली, प्रथम संस्करण

फूस नहीं रंग घोलते हैं- ठेदार नाथ ज्ञानवाल, परिमल प्रकाशन, छायावाट, प्र०सं०  
1977

वर्तमान और कविरिज-समोषा सिद्धान्त, डॉ० विक्रमादित्य राय, आलेख  
प्रकाशन, नवीन तहादरा, दिल्ली, 1976

ब्रह्माण्ड का संगीत-डॉ० पुष्पेन निहार, मीरा प्रकाशन, मेरिस रोड, जलौगढ़, प्र०सं०

व्योक्ति सिद्धान्त और काव्याद-डॉ० विवेन्द्र नारायण सिंह, परिमल प्रकाशन  
643 मोती लाल मेहरा नगर, छायावाट, प्र०सं० 1961

भारती का काव्य- डॉ० रघुपंजा, मेकमिलन नई दिल्ली, प्र०सं० 1980

भीतरी नदी की यात्रा- गिरिजा कुमार माथुर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,  
हरियाणव, दिल्ली, प्र० सं० 1975

भूरी-भूरी डाक-धूल, गजानन माथल सुजितबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र० सं०  
1980

विथक और आधुनिक कविता-डॉ० सम्भूमाध-नेशनल पब्लिशिंग हाउस, हरियाणव,  
नई दिल्ली, प्र० सं० 1985

विथक और स्वप्न : कामायनी को मनस्वीन्दर्प साहित्यिक भूमिका-डॉ० रमेश  
कुमार ने, ग्रन्थम, रामधाम, कानपुर, 1967

विथकीय कल्पना और आधुनिक काल - डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, वि० वि०  
प्रकाशन, चौक वाराणसी, प्र० सं०

विथक और उनका साहित्य-डॉ० नयेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र० सं०

महाप्रस्थान - श्री रमेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, हनुमानगढ़, दिल्ली सं० 1981

विथक साहित्यः विविध संदर्भ -सम्पादक, डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव  
दिल्ली, हार्टन बुक डिपार्ट्मेंट, दिल्ली, प्र० सं०, 1984

मानववाद और साहित्य - डॉ० नवलकिशोर, राधाकृष्ण प्रकाशन, हरियाणव  
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1972

मानवीय नैतिकवाद - डॉ० पुष्पेन चौधरी, गीता प्रकाशन, गैरिज रोड, जलौनगढ़ ।  
प्रथम संस्करण, 1987

मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी कथा साहित्य-डॉ० हुंवरप्रसाद सिंह, धरती  
प्रकाशन, गंगाशहर, पिछानेर, प्रथम संस्करण, 1984

वार्थवाद-डॉ० विमल कुमार मिश्र, मैथिली, नई दिल्ली, प्र० सं०-1970

युवधारा-नागार्जुन, यात्री प्रकाशन, यमुनाविहार, दिल्ली, 1982

यहां से देखो-केदार नाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियामंज, दिल्ली, डि०सं० 1984

रवीन्द्र स्मर के गीत, -डॉ० रवीन्द्र स्मर, साहित्यभवन, प्र०सि०, जवाहराबाद,  
प्रथम संस्करण, 1963

रोमांटिक साहित्य शास्त्र, डॉ० देवराय उपाध्याय, आचार्यराम कण्ड संत,  
दिल्ली, 1951

शमरी- पी नरेण मैदता, मोठ भारती प्रकाशन, महात्मा ज्ञान्यी मार्ग,  
जवाहराबाद, 1980

पीयर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी राज्य-डॉ० रामधन मिश्र  
रणवीर प्रिन्टर्स कण्ड पब्लिशर्स, वाँदनी चौक  
दिल्ली, प्र० सं०-1959

समकालीन हिन्दी कविता — डॉ० रवीन्द्र स्मर, राजेश प्रकाशन ।  
साथी रहे वर्तमान-गिरिजाठाकुरार बाथुर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली  
प्रथम संस्करण, 1979

सात-गीत वर्ष - धर्मवीर भारती, भारती ज्ञानकोठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976  
सर्वना के छा, -अणु, भारतीय साहित्य प्रकाशन, 286 पाणवपुरी, तदर, मेरठ,  
संस्करण, 1984

संज्ञन और समीक्षा-डॉ० प्रेम शंकर-प्रकाशन संस्थान, 4715/21 दयानन्द मार्ग  
दरियामंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1987

साहित्य के नये धरातल-राजार्थ और दिगार्थ-प्रो०केसरी कुमार राय कमान  
प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980

स्वच्छन्दतावाद: जवाहराबाद-डॉ० जयसिंह, चिन्मयविद्यालय प्रकाशन, चौक,  
वाराणसी, प्र०सं०, 1975

स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ० पी०ठादेश्वर राय,  
प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्र०सं०, 1972

संस्कृति और साहित्य-डॉ० रामचिन्ताश शर्मा, किताब महल, जवाहराबाद, 1949  
समी

समीक्षा के सातवाँन-डॉ० रामेश्वर शास्त्रि, नटराज पब्लिशिंग हाउस,  
करनाल, प्रथम संस्करण,

गुप्त पवित्रा पीठोव-डॉ० रामधारी सिंह, दिनकर, उदयाचल रायेन्द्र नगर, पटना,  
प्रथम संस्करण

शबरी- श्री नरेण मेहता, लोक-भारती प्रकाशन, महात्मा गान्धी मार्ग, जवाहराबाद  
1986

साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, डॉ० रवेण कुन्तल मेघ, वैशाल पब्लिशिंग हाउस,  
नई दिल्ली, प्र०सं०, 1980

सोन मछरी मन पसी- डॉ० रघोन्द्र श्रमर, ग्रंथायन, मानसिंह गेट, जालीगढ़, प्र०सं०  
1980

हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास [प्रथम भाग-सम्पादक-डॉ० मोहन, नागरी  
प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2015 वि०

हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, द्वि भाग, सम्पादक डॉ० मोहन, नागरी  
प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम सं०

हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ० राममूर्ति बिषाठी, गुलाबचन्द्र मेढरिया,  
मानवचन्द्र कुल डिप्टी, लाली पब्लिशिंग, जयपुर, प्र०सं०

हरी पास पर क्षण-अर-अण्य, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य की सदी शताब्दी, आचार्य नन्द कुमार दावरेयी, लोकभारती  
प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गान्धी मार्ग, जवाहराबाद, 1970

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद पुनर्मुल्यांकन-डॉ० नरेन्द्र देव वर्मा, साथी प्रकाशन,  
सागर, 1968

हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ-डॉ० रघुवीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,  
द्वितीय संस्करण, 1958

हिन्दी का सामयिक साहित्य- आचार्य विचित्राथ प्रसाद मिश्र, वाणी  
वित्तान, काशी, प्रथम संस्करण,

हिन्दी साहित्य विधार्थ और दिगार्थ-डॉ० गणेश्वर सिंह, प्रवीण  
प्रकाशन, महरौली, दिल्ली, 1981

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, -डॉ० प्रेमशंकर, मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी  
भोपाल, 1974

हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ-सम्पादक, डॉ० रामेश्वर लाल छद्मेनवास  
डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-  
1966

हजार-हजार बार्तों वाली-नागार्जुन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियामंज, नई  
दिल्ली, -1982

**कोश :**

**बृहत् हिन्दी कोश - सम्पादक कालिका प्रसाद, ज्ञान मण्डल लि०,  
वाराणसी, तृतीय संस्करण,**

**बृहत् हिन्दी . अंग्रेजी कोश-भाग-एक-दो-डॉ० हरदेव वाहरी, ज्ञानमंडल,  
लिमिटेड, वाराणसी, 1969**

**मानवीकीय पारिभाषिक कोश साहित्य छण्ड, सम्पादक डॉ० नगेन्द्र,  
राजकमल प्रकाशन, प्रिन्टि०, दिल्ली, 1955**

**साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश-राजेन्द्र द्विवेदी, आत्माराम  
छण्ड सन्त, दिल्ली, 1955**

**हिन्दी साहित्य कोश-भाग-एक-पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० धीरेन्द्र  
धर्मा, ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी, प्रिन्टि०**

**हिन्दी साहित्य कोश :भाग दो-नामवाची शब्दावली, डॉ० धीरेन्द्र  
धर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्रिन्टि०**

## पत्र-परिचय

अवन्तिका-सं० लक्ष्मीनारायण सुधाशु, जनवरी, 1954

आलोचना- प्रेमासिंह, जुलाई, 1954 अक्टूबर, 1956 जनवरी, 1957  
जुलाई, 1964, अक्टूबर, 1966, जून, 1965, दिसम्बर, 1968, जुलाई-  
सितम्बर, 1969, अप्रैल-जून, 1971, अप्रैल जून 1981

छंद- सं० शिबकुमार तालानी, दिसम्बर 1980

कल्पना- जनवरी, 1963 अगस्त 1965

जनपाणी- सितम्बर, 1947, दिसम्बर, 1949 नवम्बर, 1950

ज्योत्सना- सं० विजयेन्द्र नारायण-दिसम्बर, 1980, फरवरी, 1981,  
जुलाई, 1981, अगस्त 1982, अप्रैल, 1984, मई, 1986, जून, 1987,  
जनवरी, 1988

कर्मगुण- 6 अगस्त, 1967, 13 अगस्त, 1967, 18 जनवरी, 1970, नवम्बर,

नई धारा-सम्पादक उदयराम सिंह, जून, 1970, अप्रैल, 1985-88

भाषा-प्रेमासिंह, जून, 1981

विज्ञान भारत- जुलाई, 1939

माधुरी-अगस्त, सितम्बर, 1928, अगस्त जनवरी, 1929, दिसम्बर, 1940

राजद्रवाणी- अगस्त, 1969

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 17 अगस्त, 1985

सम्पादन-पृष्ठ 1 अंक 1 तथा 2

सम्मेलन पत्रिका-प्रेम मार्गशीर्ष शक, 1884, पौष ज्येष्ठ शक 1888

आषाढ माघ पक्ष शक 1893

सरस्वती-जून, 1921, जनवरी, 1932

साहित्य धर्मिता-सम्पादक लक्ष्मीनारायण सिंह, दिसम्बर, 1987, अगस्त,

ENGLISH

- |                                                       |                              |                                                            |
|-------------------------------------------------------|------------------------------|------------------------------------------------------------|
| A History of Modern<br>Criticism                      | - Rene Wellek                | - Jonathan Cape<br>Thirty Bedford<br>Squares - London 1961 |
| An out line of<br>Psychology                          | - William Vougall            | - Methuer and Co.<br>Ltd., London- 1936                    |
| Aesthetics and<br>Poetics                             | - Yuri Parghagh              | - Progress Publishers<br>Moscow - 1977.                    |
| Appreciation                                          | - Walter Pater               | - Macmillan & Co.<br>London - 1944.                        |
| A History of English<br>Literature                    | - A. Compton<br>Rickett      | - Thomas Nelson & Sons<br>Ltd. London - 1950.              |
| A Literary History of<br>England                      | - A.C. Ed. Daugh             | - Routledge & Kegan<br>Paul Ltd., London 195               |
| A History of English Poetry                           | - W.J.Courthope              | - Macmillan & Co. Ltd.<br>London - 1920.                   |
| A critical History of<br>English Poetry               | W H.Grierson &<br>J.C. Smith | - Chatto & Windus,<br>Penguin Victoria- 1962               |
| A History of English<br>Literature                    | - F.Legouis &<br>L. Cazemch  | - J.M.Dent & Sons Ltd.<br>London - 1951                    |
| A History of Nineteenth<br>Century English Literature | - G.Saintsbury               | - Macmillan & Co. Ltd.<br>London - 1929.                   |



- An Introduction to the study of Literature - W.H.Hudson - George G. Harrop & Co. Ltd. London - 1949.
- A Background to the study of English Literature - B. Prasad - Macmillan & Co. Ltd. Calcutta - 1950.
- Art and Social life - G.V. Plekharoll - P.P.H. Ltd., Bombay - 1963.
- Biographia Literaria - S.T. Coleridge - London J.M. Dent & Sons Ltd. - 1949.
- Biographia Literaria - Ed. Ernest Rhys - J.M. Dent & Sons Ltd. London - 1917.
- Biographia Literaria - Ed. G.Watson - J.M.Dent & Sons Ltd. London - 1956.
- Cambridge History of English Literature - Vol. XII - Cambridge University Press - Cambridge - 1932.
- Coleridge - H.D. Trail, F.M.L. Series - Macmillan & Co. Ltd., London- 1909
- Concepts of Criticism - Rene Wellek - Yale University Press - London - 1965.
- English Literature of the Nineteenth Century - R.C. Churchill - University Tutorial Press Ltd., London - 1956.

- English Critical Essays - Ed. F.D. Jones, XIX Century  
Oxford University Press, London- 1950
- Essays in Criticism - Matthew Arnold, II Series  
Macmillan & Co. Ltd., London- 1954.
- English Romantic Poets - Ed. M.H. Abrams, Oxford University  
Press, New York - 1960.
- German Romanticism - O. Walzel - Translated by Alma F  
Lusky, New York - 1932.
- Illusion and Reality - Caudwell Christopher, people  
Publishing House Ltd., Delhi- 1956.
- Imagination - E.J. Furlong, George Allen and  
Unwin, New York- 1961.
- Imagination - Harold Rugg - Harper & Row, New York.  
1963.
- John Keats - Edmond Blunden, Longmans Green &  
Co., London- 1950.
- Keats - Sidney Colvin, P.M.L. Series  
Macmillan & Co. Ltd., London- 1928.
- Lyrical Ballads - Ed. H.L. Brett and A.R. Jones,  
1963, The Edition of 1798 & 1800.

Modern Essays in Criticism - Ed. A.S. Cairncross - Macmillan & Co.  
Ltd., London-191

Myth and Literature Contemporary - Edited by John B. Vickery,  
University of Nebraska Press,  
Lincoln - 1966.

Myth - K.K. Ruthven, Methuchand Co.,  
Ltd., 1976.

Naturalism in English Poetry - S.A. Brooke - J.M. Dent & Sons Ltd.,  
London.

Natural and supernaturalism - Tradition and Revolution in Romantic  
Literature, M.H. Abrams, New York,  
Norton- 1971.

Odes of John Keats - Ed. A.R. Weeks - University Tutorial  
Press, London - 1953.

Oxford Lectures on Poetry - A.C. Bradley - Macmillan & Co. Ltd.,  
London - 1950.

Poems of Wordsworth - Ed. Mathew Arnold - Macmillan & Co.,  
London- 1893.

- Psychology of sex - Havelock Ellis - Pan book ltd.,  
London - 1963.
- Poetical works of P.B.Shelley - Ed. W.M.Rossetti- Ward Lock & Co.  
London.
- Prometheus Unbound - Cassel & Co. Ltd., London- 1988.
- Poetical works of John Keats - Ed. J. Hogben, Walter Scott, London.
- Romanticism Reconsidered - Ed. by Northrop Frye, Columbia  
University Press, U.S.A.- 1963.
- Romanticism in Perspective - Villan R. Furt - Macmillan, London,  
Melbourne, Toronto St. Martin's Press  
New York- 1969.
- Romanticism - Edited by John D. Halsted, Macmillan  
London, 1969.
- Romanticism - Lascelles Abercrombie - London Marti  
Secker- 1926.
- Rousseau & Romanticism - Irving Habbit, Meridien Books,  
New York - 1955.
- Romantic Image - Frank Kermode, Kegan Paul, London-  
1957.
- Romanticism Speculations - Gilliere J.R. Hulme Ed. by. Herbert  
Read, Ernest, New York- 1929, London  
Routledge & Kegan Paul Ltd., Broadw  
House 68-74 Carterlane N.C.4 2nd Ed  
1926

- Selections from Wordsworth - Ed. W.J. Webb - Macmillan & Co.  
London- 1902.
- Shelley and His Poetry - F.W. Edmunds - George G. Harrap & Co.  
Ltd., London- 1923.
- Six Great Poets - A.C. Selincourt - Hamish Hamilton,  
London- 1960.
- Shelley - J.A. Symonds E.M.V.,  
Series - Macmillan & Co., Ltd. London-  
1927.
- Selected Philosophical works - A Herzen - Moscow - 1956.
- Socialist Realism and the Modern  
Literary Process - A. Gerasimov, Progress Publishers, Moscow- 1978.
- Social Psychology - M.C. Daagall - George Allen & Unwin - 1936.
- The Romantic Assertion - R.A. Foakes, London - 1958.
- The Sacred Wood (Essay on Poetry & Criticism) - J.S. Eliot,  
Barnes and Noble in New York - 1928.
- The Romantic Agony - Marie Praz - Oxford University Press, London,  
New York, Toronto- 1951.
- The Spirit of the Age - Harditt , Oxford University Press, London-1935
- The Mirror & the Lamp - M.H. Abrams, Oxford University Press- 1953.
- The Poetic Image - C.D. Lewis, London - 1947.

The Romantic Revolt - Charles Edwyn Vaughan, London - 1907.

The Romantic Survival - John Bayley, London - 1957.

The Characters of Love - John Bayley, London - 1936.

Theory and Practice Principles of Literary Criticism -

I.A. Richards, Routledge & Kegan Paul Ltd., 1952.

The Complete works of Wordsworth - Ed. C.K. Burrow, W.P. Nimmo Hay  
and Mitchell, Edindurgh.

The Complete Poetical work of P.B. Shelley - Ed. Thomas Hutchinson,  
Oxford University Press - 1952.

The English Muse : A Sketch - Sir Oliver Elton, G. Bell & Sons Ltd.,  
London - 1950.

The Literary History of England - Mrs. Aliphant, Macmillan & Co.,  
Ltd., London.

The Romantic Imagination - C.M. Bowra, Oxford University Press,  
London- 1961.

The Age of Wordsworth - C.H. Herford, London, G. Bell & Sons Ltd. 191

The Decline & Fall of the Romantic Ideal - F.L. Lucas, Cambridge- 1963.

The Romantic Theory of Poetry - A.W. Powell, London - 1926.

The Romantic Triumph - T.S. Omand, London - 1st Edition.

The Last Romantic - Graham Hough, London - 1961.

The French Revolution - George Fernoud & Sabine Fleissner, London-1960.

The French Revolution & English Literature - Edward Dowden,  
London - 1916.

The French Revolution - Thomas Carlyle, London- 1837.

The Romantic Movement in Germany - L.A. Willough  
by. Oxford University Press- 1930.

Upanishadic Symbolism - Dr. S.P. Singh, Chand Lachman mehar and  
Das, New Delhi - 1981.

Wordsworth - F.W.H. Myers, F.R.S. Series, Macmillan  
and Co. Ltd., London - 1919.

Wordsworth and his world - P.E. Halliday, Thames and Hudson,  
London - 1970.

Wordsworth - Helen Darbishire , Longmans Green & Co.,  
London - 1953.



Dictionaries and Encyclopaedia's

Chamber's Twentieth Century Dictionary - Edited by William Geddie,  
Allied Publishers Bombay, New Delhi, Calcutta, Madras,  
Revised Edition.

Cassell's The Encyclopedia of Literature - Volume 1 - Edited by  
S.H. Steinberg, Cassel & Company Ltd., London -  
1st published - 1953.

Dictionary of world literary Terms - Edited by Joseph T. Shipley,  
George Allen and Unwin Ltd., Ruskin House, Museum Street,  
1st published in Great Britain - 1955.

The Encyclopaedia Americana - 1st published EA in 1829. Americana  
Corporation, New York, Chicago Washington. D.C. Volume XXII

The Macmillan Everyman's Encyclopaedia - Fourth Edition, Vol. X,  
The Macmillan Co., New York - 1959.

The World Book Encyclopaedia - Vol. 15, Field Enterprises Educational  
Co-erporation, Merchandise Mart Plaza, Chicago 54 Illinois,  
Copyright- 1960, U.S.A.

The Encyclopaedia Britanica - Vol. XIX, Encyclopaedia Britanica, I.N.  
William Benton, Publisher, Chicago, London, Toronto,  
Geneva, Sydney, Tokyo - 1966.

The Reader's Encyclopaedia; An Encyclopaedia of World Literature and  
the Arts - Edited by William Rose Benet, Thomas Crowell Co.  
New York, Third Printing December 1951.

English Journals and Magazines

Studies in Romanticism - Editor : David Wagenknecht, 236 Bay. State  
Road, Boston, Massachusetts, 02215, Published by the  
Graduate School Boston University, 704, Commonwealth  
Avenue, Boston, Massachusett 02215.

Volume 16 Number 4, Fall 1977

Volume 17 Number 4, Fall 1978

Volume 17 Number 3, Summer 1978

Studies in Romanticism - Editor W.H. Stevenson.

Volume 12 Number 1 Winter - 1973

Volume 12 Number 2 Spring - 1973

Volume 12 Number 3 Summer - 1973

Volume 12 Number 4 Fall - 1973

Volume 19 Number 1 Spring - 1980